

श्री गोविन्दराम सेकसुरिया चेरिटी-ट्रस्ट (इन्दौर)

की सहायता से प्रकाशित ।

1982

कृष्ण-गोपाल ग्रन्थमालाका पञ्चमस्त

अषध-गुणधर्म-विवेचन ।

प्रकाशक

कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय

पो० कालेडा-भोगला (जिला बखसमेर)

द्वितीय संस्करण } १९४९ ई० { सामान्य कागज ३)
प्रति २५०० } { विशेष कागज ४॥)

श्री० गोविन्दराम श्रेष्ठारिषा चेरिटी-ट्रस्ट
(इंदौर) की सहायता से प्रकाशित

आयु कामयमानेन धर्माय सुग्रसाधनम् ।
 आयुर्ये दोषदेशेषु विधेय परमादर ॥
 + + + +
 यया विप यया शस्त्रं ययाऽग्निरशानिर्येषा ।
 तथौषधमविशतं विशाठममृतं यया ॥
 + + + +
 दुर्गृहीतं क्षिणोत्पेध शास्त्रं शास्त्रमिवाधुयम् ।
 सुगृहीतं तदेष शं शास्त्रं शस्त्रं च रक्षति ॥
 + + + +
 न चैषान्तेन निर्दिष्ट शास्त्रे भिविशते युष्म ।
 स्वयमप्यत्र भिपजा चर्कनीयं विप्रिस्तता ॥
 + + + +
 अजावानाममुत्पद्यी जातानां विनिष्ठये ।
 रोगाणां यो विधिर्दृष्टः सुखार्थं तं समाचरेत् ॥

५३६—

दुर्गादेव त्रिपाठी,
'चन्द्रमग'के व बनारस ।

निवेदन +

यो देवोऽग्नीं योऽप्सु यो विश्व भुवनमाधिवेश ।
 य औपधीषु यो वनस्पदिषु सस्मे देवाय नमो नमः ॥

198

समस्त संसार के कल्याणार्थ निर्धन और पनिक, नागरिक और ग्रामीण, विद्वान् और सामान्य बुद्धिवाले, सब कोई सरलतापूर्वक आयुर्वेदसे लाभ उठा सकें, इस बात का लक्ष्य में रखकर प्राचीन महर्षियोंने औषध गुण, परिभाषा और कृति रोगनिदान, प्रतिरोध, प्रतिकार और चिकित्सा आदि विषयों को शिक्षा सरल प्रकारसे दी है। उनके सामने लक्ष्य ही यह था कि सर्वसाधारण को उस सम्पूर्ण विषय का ज्ञान होना चाहिये। उन महर्षियों का विचार सृष्टि में कभी व्यवसायात्मक दृष्टि का प्रवेश नहीं हुआ था। उनमें परोपकार दृष्टि थी। वे चाहते थे कि भावी सर्व सन्तान या जनता उन सब बातों से जानकार हो जाय, जिनकी सहायता से वे अपने शरीर को निरोगी बनाये रख सकें। परन्तु समय तो निरन्तर परिवर्तनशील रहा है। समयानुसार मनुष्य की विचारधारा, रूढ़न-सहन और यहाँ तक कि जीवनमात्र ही का लक्ष्य भी बदल जाता है। आज के मीथिकवाद और यात्रिक युग ने जीवन के प्रत्येक पहलूमें इतना परिवर्तन किया है कि, प्राचीन युग की सभी बातें कल्पना से भी बाहर और शक्य हो गई हैं। इसका प्रभाव चिकित्सा शास्त्र पर भी होना ही था। फलस्वरूप आज इसे एक व्यवसाय का रूप मिल गया है।

हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि, आयुर्वेद की उत्पत्ति और विकास ही एकदम आज से विपरीत लक्ष्य का मद्दे नजर रखते हुये सहस्रों वर्ष पूर्व हुआ है। भारतका मध्यकालीन युग कितना अन्धकारमय रह चुका है यह किसी से छिपा नहीं है। आतंतायियोंके आक्रमण, विधर्मियों की लूट लसोट और स्वार्थान्धताने ज्ञानके विकास और उन्नतिके सब साठ ही एकदम रोक दिये थे। फलतः को कुछ हमारे पास था उसमें उन्नति करना तो दूर रहा प्रत्युत हम उसे ही भूल बैठे। हमारा पुर्नान्य है कि, आज मूल ग्रन्थोंमें प्रक्षेप आ मिले हैं जिससे अनेक स्थलों पर कहीं कहीं विचारों में ही भेद प्रतीत होने लग जाता है। अब हमारे पास सत्य, असत्य, वास्तविक-अवास्तविक एवं लुप्त प्राय ज्ञान को खोज निकालने के लिये न आचार्य हैं न दिव्य दृष्टि और न आत्मपल ही। ऐसी विषम परिस्थिति में किस माग का अबलम्बन किया जाय कि आयुर्वेद की उन्नति हो सके? यही प्रश्न है जिसे स्वतन्त्र भारत को हल करना है। विदेशी शिक्षा-दीक्षा से विमूषित एवं मन्त्रों की चमत्चौंच से प्रभावित सरकार चाहे इस प्रश्नको कुछ समयके लिये टाल दे परन्तु इस प्रशासनके युगमें जिस

किसी-किसी स्थान पर श्री० बापालाल गबबर शारद्वत निष्पट्ट आदर्श (गुमरावी मन्त्र) का उपयोग किया गया है। अतः इन ग्रन्थकारोंका अन्तःकरणपूर्वक आभार मानना है।

जिस विषय का "रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह अथवा चिकित्सातन्त्रप्रदीप" में यज्ञानेपर अतिरिक्त हो गया है और जो चिकित्सा शास्त्रको चाही रूप होनेसे अति महत्त्वका है, उसे इस ग्रन्थमें स्थान दिया गया है। अनेक प्रसंग "चिकित्सातन्त्रप्रदीप" में लेने योग्य हैं। इनमेंसे कुछ प्रथमप्रकरणमें और कुछ द्वितीय प्रकरणमें लिये जाये हैं। उनका विवेचन इस ग्रन्थमें नहीं किया गया।

इस ग्रन्थके प्रथम संस्करणका "हरयाज निपाठा भी० रसपेय, वैद्यरत्न करियाज प० वंशीधरजी और उनके सुपुत्र प० मोहनलालजी छासुपेंडानाथ" ने निःस्वार्थ भावसे आद्यन्त सच्यपूर्वक देख, संशोधन कर दिया है, एवं प्रार्थना करने पर आद्यन्त प्रस्तावना लिख देनेकी भी कृपा की है, एतदर्थ आपके इन आभारी हैं।

इस पुस्तकका प्रथम संस्करण १९४१ ई० में हुआ था। उस समय प्रतिस्तिपि लिखनेवालोंके दुर्लक्ष्यसे "वैज्ञानिक विचारणा नाम लिखा गया और छप गया था। उस संस्करणकी २५०० प्रति मात्र ३ वर्ष में बिक गई थी। इस पुस्तकके अतिरिक्त स्थानोंमें विचारोंमें कुछ कठिनता रह गई थी, उसे इस संस्करणमें मरवा भाषामें विलुप्त विवेचन करके दूरकी है। इस दृष्टसे इस संस्करणमें पहिलेकी अपेक्षा लगभग एक तिर्था लेख बढ़ गया है। यह सब धर्योचन परिकल्पना भी यथासमय पर लिया था किन्तु कागज और छपाईके लिये प्रतिकूलतायका आर्थिक कठिनतायोंके कारण यह द्वितीय संस्करण ८ वर्षके पश्चात् चिकित्सकोंकी सेवामें समर्पित हो रहा है।

हमें यह कहते हुए प्रसन्नता होती है कि, आर्थिक प्रतिकूलताय समय इस पुस्तकके प्रकाशनाय श्री गोविंदराम सेकठरिया चेरीगी टूर इन्दीर कट्टियेने समर्थ सेवामें अभिरुचि प्रकटकर २५००) रु० सहायता दी है, जिससे इस ग्रन्थ (य ५६ संस्करण समर्पित कर सके हैं। पहिले भी 'गोविंद आषपरत्न' प्रथमप्रकरणके प्रकाशनाय २५००) रु० सहायता दी थी। इस सहायताके लिये हम उनका अत्यन्त ऋणपूर्वक आभार मानते हैं।

इस ग्रन्थके छपानेमें माया संशोधन और अन्तिम प्रक संशोधन आदिकार्यमें निःस्वार्थ सेवा भावसे प्रेरित होकर श्री० प० मन्मोहाजी शर्मा बनारसने पूर्ण सहयोग दिया है, अतः हम उनके आभारी हैं।

यह औपचारिक परमात्मार्थ है। तीनत्रयोत्तरी सेनाके निमित्त ही स्थापित हुआ है। पार्थिव औपचारिकता से वंचित आद्य दिनकर विज्ञाने स्वार्थके लिये अत्यन्त नहीं किया। इस औपचारिकतासे सहायता ११ टूरकी बनाये हैं और टूरकीट रसिद्ध ग्रन्थ दिया है। इस औपचारिकताय द्वारा २० वर्षोंके निरन्तर रोगियोंकी सेवा और आसुर

साहित्यकी सेवा हो रही है। इस सेवाका लाभ आगे के लिये प्राप्त करना, यह जनताकी सहायता और सद्भाव पर अवलम्बित है।

यह सन् १९४५ ई० तक सिर्फ चिकित्सालय (Dispensary) द्वारा रोगियोंकी सेवा करती थी। १९४५ ई० के नवम्बर मासमें कई सजनोंकी प्रेरणावश एवं दूर दूरसे आनेवाले रोगियोंकी असीम कठिनाइयोंको देखकर आशुतोष (Hospital) बनानेका निश्चय किया। इसके लिये पुन्य स्वामीजी महाराजने अथक परिश्रम करके ३०,०००) चन्दा इकट्ठा किया। इसके अतिरिक्त ७०,०००) २० की सहायता सरकारकी ओरसे मिलनेका अभिवचन मिला था। मयन निर्माण कार्य आरम्भ हो जाने तथा बहुत कुछ कार्य हो जानेके बाद भी सरकारकी ओरसे मिलनेवाली रकम न मिल सकी। जितसे इस सन्धापर अस्मात् आर्थिक भार आ गया है। इस भारसे मुक्त होनेके लिये स्वामीजी महाराजका लेखन कार्य बन्द रहना, अति दुःखदायी प्रतीत होता है, किन्तु निरुपायवश ऐसा करना पड़ता है। ७००००) मेंसे १५०००) की सहायता मिल चुकी है। शेष सहायता मिल जानेपर पुनः पड़िलेके समान लेखन कार्य चालू किया जा सकेगा, ऐसी आशा है।

इस आशुतोष मयन निर्मास्थायं बहुतसी रकम कज रूपसे बैंकसे और परिचित सज्जनासे ली है और कुछ रकम औपचारिकी एक गई है। इस हेतुसे औषध निर्माण और अन्य प्रकाशन कार्यमें बाधा पहुँच रही है। आर्थिक सुविधा न होनेसे कितने ही संशोधित ग्रन्थ और नूतन ग्रन्थ अप्रकाशित रह गये हैं। ऐसी अवस्थामें उदारचित्त पत्रिक १ वष के लिये १०००) व ५००, या २५०-२५०) रुपये की रकम उपहार देनेकी कृपा करेंगे, तो भी सरलतापूर्वक साहित्य सेवा हो सकेगी।

कालिका योगला
अजमेर
ता० १ ११ ४९

जनता अनार्दनक सेवक
कुंभर जसवंतसिंह
मन्त्री

ग्रन्थ-प्रकाशन और औषध विक्रय

इस सस्था की ओर से ग्रन्थों का प्रकाशन और औषध-विक्रय ये दोनों कार्य सेवाभाव से किये जाते हैं। इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भगसक कम रखा गया है और भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा। हमारे ग्रन्थों का अन्य भाषाओं में कोई भी चिकित्सक अनुवाद कराना चाहेंगे, तो उन्हें निस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं, भविष्य में कदाचित् किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ-प्रकाशन बन्द हो जाय, या कोई भी धर्माय सस्था हमारे ग्रन्थों को प्रकाशित करा सकती है। हमारी ओर से किसी प्रकार का विरोध नहीं किया जायगा।

हमने औषध-प्रयोगों में से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रखा और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं आयेंगे। प्रयोगविधि गुप्त रखने से उनका दृष्टानुसार दस-बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करने में आयुर्वेद-साहित्य तथा देश को हानि पहुँचती है। अतः इस नियम के सम्बन्ध में हमने अन्य फार्मसियों का अनुकरण नहीं किया और न भविष्य में करेंगे। यह धर्माय सस्था महाप्रभु फल्याणराय की है। वे यदि इसे निभालना चाहते हैं, तो इसके संरक्षकवर्ग (ट्रस्टियों) के हृदय में विराहता और सत्यपावन में दृष्टता प्रदान करेंगे ऐसा हमारा हृदय विश्वास है।

राजवेश सोहनलाल श्रमवाल

व्यवस्थापक

प्रस्तावना

यस्याभीषद्य-रोग-निर्णयविधौ प्राच्यप्रतीच्याद्रिता—
सन्ध्यास्तारच विचारणा सुभिपजा विद्वानदा दृश्यते ।
आयुर्वेद विलम्बमान निखिल-ग्रन्थेषु चूडामणी,
सोऽयं द्रव्य विवेचनाऽखिल जगद्भव्याय धो भूयताम् ॥

अनादि आयुर्वेद आप्त प्रन्थों में विज्ञान की जो प्रसर छटा सूत्ररूपेण उपलब्ध होती है; वह सध्या अपरिवर्तनशील अवस्था में आज भी ज्यों की त्यों अपने सिद्धान्तों की अक्षुण्ण प्रतिमा से ससार को चकित करती है। हमारे त्रिकाल दर्शी महर्षियों ने अपनी आप्यात्मिक विज्ञान-ज्ञान प्रतिमा से यह आयुर्वेद सिद्धान्त भित्ति स्थिर की है, और प्राचीन तम काल में ही निर्णय कर दिया है कि, अमुक औषध में अमुक-अमुक रस-गुण-वीर्य विपाक-प्रभाव हैं। अमुक रोग इतने प्रकारेण अमुक दोष वैषम्य द्वारा प्रकट होता है।

कुछ काल से भौतिक विज्ञान का प्रारम्भ हुआ है। इस नव्य विज्ञान प्रखालों में अस्थिरता और परिवर्तनशीलता प्रतीत होती है। इसमें अनेक भेद हैं। इन सब में समय-समय पर परिवर्तन होता रहने की रूप रेखा खिंची है, और खिंची या रही है। यह नव्य विज्ञानवाद एक पार किन्तु एक नूतन औषध के विशिष्ट गुण धर्म का तुलना भोष करता है, दूसरी पार वह उसी औषध को सामुहिक अथवा आर्थिक रूप से हानिप्रद सिद्ध करता है। इतना होने पर भी यह विचारशीली विचारधान पुरुषों को महामक होती है, इस हेतु से हम उसे आदरणीय समझते हैं। जिस तरह सर्प भयकर होने पर भी उसके विष और मखि का सदुपयोग करने से लाभ ही होता है, वही तरह खंचल विज्ञान से भी कुछ अंश में सहायता मिलती ही है।

महर्षियों का त्रिकालाभाष्य विज्ञान सिद्धान्त अति गम्भीर है परन्तु सब रूप होने से उसे साधारण बुद्धि प्राप्त नहीं कर सकती। अतएव मूल बुद्धि के समक्ष वह अपूर्णता बोधक है। यह अपूर्णता आध्यात्मिक ज्ञानरत्न्य समाग को अस्मरती है अतः उसे आधुनिक शिक्षा शाखा वालों के समक्ष मौन धारण करना पड़ता है।

कहते ही होता है कि, इस अपूर्णता को पूर्ण करने के लिये ही आनन्दकन्द सन्निदानन्द रूप श्री कृष्णचन्द्र मगवान् ने अपनी आध्यात्मिक विचारणा तन्त्री की तान श्रीपूज्य स्वामीजी महाराज के अतस्थल में जाग्रत को जिससे स्वामीजी महाराज की प्रसर लेखनी ने 'औषध गुणधर्मविवेचन' नामक पुस्तक लिखकर ससार के सामने समर्पित की।

इस 'पुस्तक' में आ विषय वर्णन किया गया है, यह वास्तव में अत्युत्तमोत्तम, अत्याधुनिक और सामाजिक ज्ञानानुसृत ही है। इस ग्रन्थ में आपस गुणधर्म विवेचन चरक आदि आर्य ग्रन्थों के अनुसृत है। आर्य सिद्धान्तों को अत्युत्तम आर प्रथम रखते हुए आधुनिक एलोपैथी मतानुसार पद-पद पर, उच्च सरलताया समझने का पूर्ण प्रयत्न किया है। अमुक औपधि शारीरिक अमुक स्थान में प्रवेश कर अमक रीत्या अमुक अंग-वर्त्यंग पर अमुक गुणधर्म प्रकटित करती है, इत्यादि विवेचन इस ग्रन्थ में जैसा स्पष्ट रूप से समझाया गया है; वैसा वर्तमान के किसी भी हिन्दी ग्रन्थ में नहीं पाया जात। संक्षेप में लेखक ने औपधि गुणधर्म और चिकित्सा सम्बन्धी यात्राधिक मेद सरलता पूर्वक सुनोय शैली द्वारा समझाने का सकल प्रयत्न किया है।

मुझे दृढ़ विश्वास है कि, यह ग्रन्थ चिकित्सा विज्ञान के रहस्य को न जानने वाले पाठकों के मानस मन्दिर में अजरममयेय प्रकाशमानक सिद्ध होगा। हिन्दोंने स्वामीजी महाराज लिखित 'रसतन्त्रसार व चिकित्सायोगसंग्रह' तथा 'चिकित्साउत्तरतो' ग्रन्थों का स्वाध्याय किया है वे महामुमान इस 'औपधिगुणधर्म विवेचन' का पाठक ग्राह्यो जो की लेखनी और ज्ञान की प्रथम प्रतिमा सम्पन्नता का पुनः अनुभव करेंगे और इससे आमान्वित होंगे।

अजमेर
सा० ११४६

रसवेद्य वैद्यरत्न

फधिराज वशोधर दामा आयुर्वेदाचार्य.

औपधियां मिलनेके पते।

- | | |
|----|--|
| २ | भी० कश्मिर योगेश्वरनाथ आयुर्वेदालंकार, कशी औपधात्रय, महाराजपुर, पानीगत (हरनाथ) |
| २ | पाटिया स्टोड |
| ३ | भी० दिव्यराम बाबन पाटेल, आयुर्वेदिक संग्रहलय, पल्लो मि० कुलबाना |
| ४ | भा० पैय रामलभाया एटी, एटी कामेशी, मन्त्रीपुर—उरसपुर |
| ५ | भी० शान्तिनाथ एन० वसंत १३७, शेरा नेमन स्ट्रीट |
| ६ | गोवाल स्टोड |
| ७ | भी० देगरूपधनी राठी |
| ८ | भी० यमगोवालजी भूतना |
| ९ | पाराशिका मार्ग |
| १० | भीमलक्ष्मणभूतनाथ |

पानामेसो-गोवाल (कुलबाना)

उरसपुरागार (घडोवा)

आधेसा

धतर (धिरनाथ)

प्रकाशित पुस्तकें

१ रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोग समूह प्रथमखण्ड, षष्ठ संस्करण चिकना कृपाय १८×२१ अठपेजी पृष्ठ संख्या ८००, छपाई सुन्दर, अभिरक्ष मूल्य १०) अजिल्दका ७) ६० डाकखर्च ॥१२) व ॥३) पृथक ।

यह ग्रन्थ कालेज और पाठशालामें पढ़नेवाले आयुर्वेदके विद्यार्थियों और वैद्योंके लिए अत्यन्त ही उपयोगी है । ग्रन्थकी रचना सारगर्भित भाषामें की गई है । इस ग्रन्थ में मस, रसायन, गुटिका, चूण, क्वाथ, आसथ अरिष्ट, पाक, अवलेह, अंजन, मलमल लेप आदिके सूत्रों अनुभूत प्रयोग दिये गये हैं और गुण वषण और उपयोग विधिका वर्णन नम्य विज्ञानके अनुरूप विस्तारसे किया गया है ।

२. चिकित्सासत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड द्वितीय संस्करण । १८×२२ अठपेजी पृष्ठ ८०० । मूल्य अजिल्द का १॥) ६० डाकखर्च ॥१२) पृथक ।

उक्त ग्रन्थमें आयुर्वेदिक और बाह्यरी, दोनों प्रकार से रोगोंका निदान दिया है । प्रत्येक रोगकी चिकित्साके प्रारम्भमें चिकित्सोपयोगी सूचनाएँ भली भाँति समझाई गई हैं । जिससे साधारण बोधवाला वैद्य भी निमग्न होकर चिकित्सा करके लाभ उठा सकता है ।

३ गावों में औषधरत्न प्रथम खण्ड १८×२३ अठपेजी पृष्ठ ३२० । अजिल्दका मूल्य १) ६० और अजिल्दका २) ६० । इस पुस्तकमें अजवायन, आंवला, आम्र, आभीमन्त्रा, कालामिर्च, कपूर, पीपल, पुनर्नवा आदि सामान्य औषधियाँ, जो गावोंमें सफलतापूर्वक मिल सकती हैं, उनका गुणधर्म और उपयोग वैज्ञानिक शैलीसे दर्शाया गया है । यह पुस्तक सब ग्रामवासी, मजदूर-ग्रहस्थ-विद्यार्थी और वैद्योंके लिये अति उपयोगी है ।

४ रुग्णपरिचर्या २०×३० सोलहपेजी पृष्ठ ६० ५०० । मूल्य ३॥) इस पुस्तकमें मित्र मित्र रोगोंसे पीड़ित रोगियोंकी परिचर्या किस तरह की जाये, यह समझाया गया है जिसको डाक्टर और कम्पाउण्डरोंने बहुत पसन्द किया है ।

५ सक्षिप्त औषध परिचय २०×३० सोलहपेजी पृष्ठ संख्या १२० । मूल्य ॥२) इस पुस्तकमें रसतन्त्रसारके भीतर आई हुई मस, रसायन आदि औषधियोंके गुणधर्म संक्षेपमें समझाया गया है । जिससे चिकित्सकको इस छोटी-सी पुस्तकसे बहुत सहायता मिल जाती है ।

६ नेत्ररोग विज्ञान इस ग्रन्थके लेखक स्व०, बा० जादवजी हंसराज D O M S (London) हैं । जिन्होंने इस ग्रन्थमें अपना ४० वर्षका अनुभव

दर्शाया है। १८×२३ अठपेजी पृष्ठ संख्या ६५०। विषय संख्या २४२ से अधिक। मूल्य सत्रह-रुपया (१५) ४० + डाकखर्च १) ४०। इस ग्रन्थमें अ लोकी रचना, अर्वाणोंके भिन्न-भिन्न व्यवसायका काय, नेत्ररोग, औषध—द्वारा चिकित्सा तथा अल्प चिकित्सा आदि सब बातें विस्तारसे अति सरल भाषामें समझायी गई हैं। संस्कृत, हिन्दी, गुजराती, मराठी आदि किसी भारतीय भाषामें इस प्रकारकी पुस्तक आमतक प्रकाशित नहीं हुई।

७ सिद्ध परीक्षा पद्धति प्रथम खण्ड १८×२२ अठपेजी पृष्ठ संख्या ६५० मूल्य ४० ८)। इस ग्रन्थमें नाडीररीक्षा तथा कफ, रक्त, मल, मूत्र, लेपन, आदि विविध प्रकारकी परीक्षाएं मूलतः शैलीसे सरल भाषामें समझ समझ कर लिखी गई हैं। जो अमीलकके प्रकाशित आयुर्वेदके किसी भी ग्रन्थमें नहीं हैं।

८ ज्वर विज्ञान २०×३० सोलहपेजी पृष्ठ संख्या ३६८ इस पुस्तकमें सप्त प्रकारके जुन्कारके निदान, चिकित्सा, पम्पापम्प आदि सरल भाषामें दिये गये हैं। घैय और आमवासी, गृहस्थ सप्तकेलिये परम उपयोगी है। यह पुस्तक पत्रपरी ५० है० के अन्तमें प्राइकोंडो मेज सफेगी।

९ गृह विज्ञान २०×३० सोलहपेजी पृष्ठ संख्या ११५। मूल्य केवल लागत मात्र ॥) लेखक राजवदन-पंडित दुर्गाप्रसादजी शास्त्री इस पुस्तिकामें आयुर्वेदके अनुभूत प्रयोग जो सर्व सामान्य गृहस्थोंके लिये उपयोगी हैं, उनका दिग्दर्शन करवाया गया है।

आतुरालय के लिये भवन निर्माणार्थ निवेदन

भीमन्माननीय महोदय,

यह आपको भलीभाँति विदित है कि, कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक परामर्श औषधालय तथा चिकित्सालय (Dispensary) द्वारा गत १९ वर्षों से जनता जनार्दन की सेवा सफलता पूर्वक करता आ रहा है। अपने उच्च उद्देश्य और सच्चाई के कारण इस संस्था की कीर्ति अजमेर-मेरवाड़ा और इसके सन्निकटस्थ रियासतों तक ही सीमित न रहकर हिन्दुस्तान के कोने कोने में प्रसारित हो गई है। इस संस्था के धर्माध्यक्ष विभाग ने अपने विगत जीवन काल में लगभग ३॥ लाख गरीब लोगों की निःस्वार्थ सेवा की है। इसके अतिरिक्त उन रोगियों की संख्या भी कम नहीं है जिन्होंने औषधियाँ मूल्य से लेकर या मगवा कर रोग से मुक्ति प्राप्त की है।

इस संस्था की अनेक विशेषताएँ हैं, परन्तु सर्व प्रथम विशेषता यह है कि, यह एक ग्राम में स्थित है। यह प्रत्येक सुबोध व्यक्ति का पता है कि, आज भारत के सामने गाँवों की कठिन समस्या उपस्थित है। हिन्दुस्तान की ८० प्रतिशत जन-संख्या ग्रामों में निवास करती है। ग्रामवासियों को प्राकृतिक साधन सहज ही उपलब्ध होने पर भी शिक्षा, स्वास्थ्य सम्बन्धी विचार तथा यथोचित आर्थिक साधनों के अभाव से ग्रामों की हालत दयनीय ही नहीं, अपिठ्व चिंताजनक भी है। नगरों में अनेक बड़े बड़े अस्पताल हैं, परन्तु ग्रामीण जनता की आवश्यकता की पूर्ति की इनसे आशा करना निताम्ब मूल होगी। ग्रामीण जनता के पास न तो इतना पैसा है और न उतनी बुद्धि या परिचय ही है कि, नगरों के, अस्पतालों से सहायता प्राप्त कर सके।

इस संस्था की दूसरी विशेषता आयुर्वेद की साहित्य सेवा है। इस संस्था ने अपने अग्रज जीवन में ८१० ग्रन्थ प्रकाशित करके अगत् को ग्रामाधिक साहित्य मेंट किया है। जो भारत के कोने कोने में पहुँची हैं। ये पुस्तकें आयुर्वेद महारथी, सामान्य वैद्य, विद्यार्थी और सामान्य बोधवाले आयुर्वेदमेंती सब्जन, सबके लिये उपयोगी सिद्ध हुई हैं। इस हेतु से विज्ञापन के लिये एक पैसा भी खर्च किये बिना आज इस संस्था का नाम सम्पूर्ण भारत में आदर की दृष्टि से लिया जाता है।

इस संस्था में एक ही प्रयोग को गुप्त रखकर फेटेरा नहीं जगया है, क्योंकि ऐसा क ना इस विद्वान्त के विरुद्ध है। समस्त अनुभवों को आयुर्वेद की सेवा में सादर समर्पित कर दिया गया है।

कापी समय से अनेक स्थानों से चिकित्सार्थ आनेवाले रोगियों को कठिनाई को देखकर आशुपालय का अग्रगण्य खलता था। इस अभाव की पूर्ति के लिये संस्था के ट्रस्टियों ने आशुपालय बनवाने का निश्चय किया क्योंकि, चिकित्सार्थ दूर दूर से रोगी आते रहते हैं पर रहने के लिये स्थान की अनुविधा के कारण उनको अति कष्ट होता है, फलतः इस स्थान पर एक आशुपालय (Hospital) की परमावश्यकता थी। गत अक्टूबर १९४५ में अजमेर में (पाड़ा) के पीम् कमिन्स साहब यहाँ पधारे तो उन्होंने भी यहाँ पर एक आशुपालय की आवश्यकता का अनुभव कर आशुपालय मदन बनवा देने का आश्वासन दिया तथा ७-११४५ को उक्त शिलान्यास भी स्वशरकमलों से कर, सरकार (Post war Reconstruction Fund) से ७००००) रुपया दिलवाने का वचन दिया। इस बार कुल खर्च लगभग एक लक्ष का अनुमान होने पर, उसमें से १०००) पण्डा पण्डा किया गया और निर्माण सामग्री तरीद की गई एवं पूना जालि का ठेका दे दिया गया, जिसमें उक्त खर्चे की रकम खर्च हो जाने पर श्रुद्ध लेना पड़ा। अभी काम अधूरा ही था कि पाकिस्तान का जन्म हो गया, अतः उक्त पोस्ट वार फंडशामी ७००००) की रकम शरणार्थियों में वितरित होने के परिणामस्वरूप इस संस्था पर उक्त ७००००) के खर्च का भार पड़ गया है। फलतः पुनः खर्चे के लिये पण्डा पड़ा, जिसमें से धनिकों से अथवा १५०००) की रकम प्राप्त हो सकी। शेष ५५०००) की आवश्यकता है।

आशुपालय के खर्चे की उपाधि आने के पर्याय आयुर्वेद साहित्य की सेवा अर्थात् नूतन ग्रन्थ निर्माण कार्य लगभग बन्द हो गया है। अतः का समय पारो और जितने में का रहा है। इस प्रकार पुस्तक प्रकाशन और स्थापन शाखा के कार्य में बड़ी भारी बाधा उपरिगत हो गई है। मेरी यह शक्ति इच्छा रही कि, औषधालय के संभालन का आर्थिक भार जनता पर न डाला जाय। जब तक इस संस्था का खर्च प्रकाशित ग्रन्थों तथा औषध विक्री से ही चलाया गया है और भविष्य में भी औषधालय के संभालन का भार जनता पर नहीं डाला जायगा। केवल आशुपालय मदन के निर्माण पर्यन्त में जनता का सहयोग आवश्यक है। अतः पण्डा पण्डा होने में अतिनी देर होनी उठनी ही शक्ति आयुर्वेद साहित्य को पंथितो और इस कार्य की पूर्ति के लिये उदार दानी और इस संस्था के दिग्दर्शक लक्ष्मणों से नम्र निवेदन है कि, वे इस सहायक को आगे चलावने के लिये जितनी ही धरें उठनी अधिक सहायता प्रदान करें और परिचितों को भी प्रेरणा करने की कृपा करें।

को रकम भेजनी हो वह चेक, ड्राफ्ट, हुडी, मनीआर्डर या इश्योर्ड रजिस्टर लेटर द्वारा भेजने की कृपा करें।

ता० १।५।४८

जनता-जनार्दन का सेवक—

कालोड़ा-बोगला ।

(स्वामी) कृष्णानन्द

(अजमेर) ।

संस्थापक

कृष्ण गोपाल आयुर्वेदिक घर्मार्य औषधालय

कालोड़ा-बोगला (अजमेर)

ग्रन्थ प्रकाशन और औषध विक्रय

इस संस्था की ओरसे ग्रन्थोंका प्रकाशन और औषध-विक्रय ये दोनों कार्य सेवा भाव से किये जाते हैं। इस हेतु से प्रत्येक वस्तु का मूल्य भरसक कम रक्ता गया है—और भविष्य में परिस्थिति अनुकूल होने पर और भी कम किया जायगा। हमारे ग्रन्थोंका अन्य मापाओं में कोई भी विक्रिसक अनुवाद कराना चाहेंगे, तो उन्हें निस्वार्थ भाव से सहर्ष अनुमति दी जायगी। इतना ही नहीं, भविष्य में कदाच किसी कारण से इस औषधालय द्वारा ग्रन्थ प्रकाशन बन्द हो जाय, तो कोई भी घर्मार्य संस्था हमारे ग्रन्थों को प्रकाशित करा सकती है। हमारी ओर से किसी भी प्रकारका विरोध नहीं किया जायगा।

हमने औषध प्रयोगों में से अभी तक एक भी प्रयोग गुप्त नहीं रक्ता, और भविष्य में भी प्रयोग छिपाये नहीं जायेंगे। प्रयोग विधि गुप्त रखने से उनका इच्छानुसार दस बीस गुना या अधिक मूल्य मिल सकता है, परन्तु ऐसा करने में आयुर्वेद साहित्य को और देश को हानि पहुँचती है। अतः इस नियम के सम्बन्ध में हमने अन्य फर्मेशियोंका अनुकरण नहीं किया और न भविष्य में करेंगे। यह घर्मार्य संस्था महाप्रभु कृपाशायक की है। वे यदि इसे निमाना चाहते हैं, तो इसके संरक्षक वर्ग (ट्रस्टियों) के दृष्टय में विद्यालता और सत्य पान्थन में दृढ़ता प्रदान करेंगे, ऐसा हमारा दृढ़ विश्वास है।

राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल (व्यवस्थापक)

सिद्ध परीक्षा प्रदीप । (प्रथम खण्ड)

(ले०—राजवैद्य सोहनलाल अग्रवाल)

इस ग्रन्थ में क्रियारमक रोग-निदानका सविस्तर वर्णन किया है। प्रारम्भ में प्रश्न-परीक्षा और रोगीकी सामान्य दशा तथा आकृति का विस्तृत वर्णन करने के

पश्चात् अस्थानुसार परीक्षा लिखी है। बधनेन्द्रियसंस्था, उदर, बन्धन, गल, आहार, पुष्पपुत्रासंस्था, कफ, रक्तवाहकसंस्था, रक्त, मूत्र और लज्जा आदि की परीक्षा का विस्तृत बयान है। प्रायः Clinical Methods आदि अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों के आधार पर लिखा गया है। अतः छात्रों के लिए यह प्रायः आयुर्वेदके विद्यार्थी तथा चिकित्सकोंके लिये अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगा।

यह चिकित्सातत्त्वप्रदीप के टाइपों में छप रहा है। सप्टेम्बर के अन्त तक छप जानेकी आशा है। काहल १८ × २२ अठपैन्ची, मूल मूल्य ६०० के अन्तर्गत है। (मू० ६)

रसतन्त्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह ॥

(सशोधित भीर परवर्धित, पहलम संस्करण)

इस ग्रन्थमें अस्म, कृपीपरब रसायन, खरसीय रसायन पर्यटी, गुटिका, पूण, क्वाप, आसव, अरिष्ट, पाक अपलोह, पृत, दल अन्नन, लेप, मन्त्रम आदि सब प्रकारकी औषधियोंके सेकड़ों प्रकारके अनुभूत प्रयोग दत्त लोसकर दित्त दिये गये हैं। साथ ही औषधि बनानेकी विधि भी सब समझाकर लिखी गई, एवं औषधियोंका गुण विवेचन भी विस्तारपूर्वक किया गया है, अन्तमें योगानुसार औषधि-सुखीमें उपरव भेद और पातादि दोष भेदके औषध भेद दित्तलाये गये हैं। मू० अरिष्ट १०) अरिष्ट ७)

गाँवों में औषध रत्न — (प्रथम खण्ड) — यह पूरव स्यामीकी महाराज द्वारा लिखित — गाँवों में सुलभता से प्राप्त होनेवाली, बनौषधियों का अपूर्व संग्रह है। प्रत्येक औषधि का गुण धर्म विवेचन इस प्रकार किया गया है कि साधारण हिन्दी का शब्दा भी उसके पूरा पूरा नाम उठा सक और योग नष्ट कर सकने में समर्थ हो सके। अतः इस पुस्तक का 'पर का पैघ' कहना असुविधा न होगी। मू० अरिष्ट का ३) तथा अरिष्ट का २) है।

अपर विज्ञान — [लेखक — राजपैठ सादनशाल सम्प्रदाय] निरुद्धाय प्रामोद्य जनता, विश्वके पाठ म इतना समय दे न पैठा कि, यह वर्तमान के डाक्टर और वैद्यो म किन्ही प्रकार की सहायता प्राप्त कर सके। अतः उसके दिशार्थ ही "गाँवों में औषधरत्न" प्रकाशित किया गया था। अब यह द्वितीय पुस्तिका, जिसमें वेदभेद सहित चर के सर्वाङ्ग पूरव बयान के साथ साथ ग्रामों में सुलभ चिकित्सा का बयान है, पैघार की गई है, आ शीघ्र ही प्रकाशित होगी।

प्राधि स्थान : मैनेजर हृष्णगोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय, पो० कालेका-योगला पाया नसीराबाद जि० अजमेर।

बनारस के पत्र बनारस के समय रहनेवाले लखन, अथ पुस्तकें भ्रमरनयेयल चर्मा C/o नम्मागपेठ, (टाउनहाल के पास) बनारस में भी प्राप्त कर सकत है।

अनुक्रमणिका

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
स	५	अवसादक औषध	४७
मधुर रस	७	परिषर्तक औषध	४७
अम्ल रस	१०	स्पर्शिक फलपत्रांक	४८
लवण रस	१५	बीर्य	२७६
तिक्त रस	२१	विपाक	२७२
कटु रस	२२	प्रमाण	२८१
कषाय रस	२६	औषध गुण निर्णय	२९०
बद्धरस योग	२८	औषध परिखाम	२९२
शिवारितीय द्रव्य	३२	साक्षात् परिखाम	२९२
परस्पर विरोधी द्रव्य	३४	भौतिक परिखाम	३६३
गुण	३८	रासायनिक परिखाम	२९७
गुरु आदि गुण	३९	शरीरनीय परिखाम	२९८
गुणोक्ती व्याख्या	४०	परम्परागत परिखाम	२९९
डाक्टरी गुण विभाग	४३	व्याधि प्रतिकार	३०१
उत्तेजक औषध	४६	चिकित्सा विधान	३०५

औषध गुणविषेचन

(४९) अत्वार्थबजनहर	१६९	(३३) उदर कृमिनाश विरेचन	१४१
(१४) अनुलोमन	९३	Purgative Anthel-	
(८४) अमिष्यन्दी	२३३	mintics	
(५५) अरुचिनाशक	१८१	(३) उदरमातल	५८
(७४) अवसादक (शामक)	२०८	Carminati ea	
(८७) अशौच	२३७	(८६) कफघ्न	२३६
अस्थिसन्धानक	१५८, १५९	(३७) कफघ्न	१४८
(४८) आर्तवबधन	१३६	Antipruntic	
Emmenagogues		(९) कफ दोषनाश	७९
(१००) उग्रतासाधक	२६५	(१०) कफघ्न	८३
(७५) उत्तेजक	२१५	Expectorants	
(३२) उदर कृमिघ्न	१३८	(९) कफशामक	७६
Anthelmintics			

विषय	पृष्ठांश	विषय	पृष्ठांश
(१६) आमशामक Anaphrodisiacs	१०६	(१३) पुरीय यक्षकारक	११
(८८) कासहर	२३७	(६०) पीठिक	१८८
(१४) प्रतिविकारण Preventive Anthelmintics	१४१	(१०१) प्रस्युमता शोषक (पित्तोभोत्पादक)	२००
(३५) श्रियाणु नाशक	१४२	(५०) मरहर	१६१
(३६) कुष्ठन Antiparasitics	१४३	(८३) प्रमापी	२२२
(५६) प्रादी Astringents	१८२	(१९) वृक्ष्य Nutritiouses	१११
(०९) चतुर्ध्व	२५१	(६०) रक्त Tonics.	१८९
(७९) शैतन्य शारक	२६६	(१६) मेहन	६४
(१७) जीवनीय Restoratives	१३१	(२०) मस्तिष्क शोषक Errhines	१११
(०१) न्वरण (न्वरहर)	२४१	(७७) मादक	२२१
(५५) वृत्तिपन	१८१	(२९) मूत्रकृष्णनाशक (मूत्र विरेचन)	१३२
(२३) शृषा निमहण Refrigerants	१९२	(२८) मूत्रल Diuretics	१३१
(१२) रंत मरपक	३४४	(१९) मूत्र विरेचनीय Hydragogue Diuretics	१३५
(५१) दाद प्रशमन	१७०	(४७) मेदोहर	१६५
(५२) दोषन Appetizers.	१७२	(६८) मेधाकर	१०९
(५४) दोषन-शोषन Stomachics.	१७४	(६९) वागवारी	२००
(७६) निद्रा उत्पारक	३२२	(४१) रक्त प्रमान	१५०
(८०) निद्रानाशक (निद्राहर)	२३०	(४०) रक्तप्रदं क Blood Tonic	१५६
(५३) शोषन Digestants.	१७३	(५८) रक्तममन	१८८
(५) विषशोषन	६५	Haemostetics.	
(८) विष नि-शारक Cholagogues.	७५	(४८) रक्तो नि-शारक	१६६
(६) विषशामक-शारक	७९	(९६) रक्तान	१७८
(७) विषशामक-प्रादी	७३	Alteratives	
(२१) शिषाणु हर Refrigerants	१२२	(१५) लालानि-शारक	१४८
		(१६) लालानि-शारक शोषक	१४०
		(११) लेसन Absorbents	२०

विषय	पृष्ठाङ्क	विषय	पृष्ठाङ्क
(२१) वमन Emetics	११५	(९८) शीतप्रशमन	२५०
(२२) वमन निवारक Antiemetics	१२०	(९९) शुक्रल	१९१
(८५) वयर्ष	२१४	(१००) शुक्रल वा शोषण	१९६
(६४) बाबीकरण Aphrodisiacs	१९३	(१०१) शुक्रल और शीतल	१९२
(१) वातनीपन्न	४९	(१०२) शुक्र शोषण	१९३
(४) वातराजपन्न Antineuralgics	६२	(१०३) शुक्रप्रशमन	१९५
(२) वाताक्षेपन Antispasmodics.	५७	(१०४) शोषहर Anthydropice	१३७
(२१) वातिकर	११५	(१०५) भ्रमहर	२५०
(८२) विकाराशी	२३२	(८९) श्वातहर	२३८
(१७) विरेचन Cathartics, Purgatives	६६	(४२) संधानीय union	१५८
(१८) विषवर्ष Poisons.	१४९	(१२) संशमन	९१
(१९) विषघ्न Antidotes विषसामक	१५२	(१८) संशोषण	१०७
(५९) वीर्यस्वम्भन	१८९	(१४) सारक	९३
(४५) वेदनास्थापन	१६३	(७२) स्तन्यपर क्षयकर	२०३
(८१) व्यथापी	२११	(७१) स्तन्य जनन Galactagogues	२०१
(४३) मूत्र शोषहर Antiphlogestics	१५९	(७३) स्तन्यनाशन Lactifuges	२०८
(४४) मूत्रपाचक Maturant	१६०	(७०) स्तन्यशोषण	२००
(४४) { मूत्रशोषण { मूत्रशोषक	१६०	(५७) स्वम्भन	१८७
(७४) शामक Sedatives	२०८	(९४) स्निग्धकारक	२४७
(९३) शिथिलकारक	२४६	(१५) संशन	९४
(२०) शिरोविरेचन Esrhines.	११३	(२४) स्वेदल Diaphoretics	१९३
		(२५) स्वेदाशोषक Anhdrotios	१२७
		(९०) हिक्काहर	२४०
		(६७) हृद्य Cardiotonics	१९७

चरक-सुश्रुत कथित गण कथाय

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
अङ्गमर्दं प्रथमन कथाय	१६३	निपत्त्यादि गण	८०
अङ्गनादि गण	१७१	पुटीय संमहणीय वर्ग	१८२
अनुपासनोपग	११३	पुटीय विरजनीय	९१
अम्ल रङ्ग	१०९	प्रमास्थानन वर्ग	१९२
अर्कादि गण	१६१	बन्धवर्ग	१९१
आरग्वपादि गण	१४९	वृत्त्यादि गण	८०
आस्थाननोपग	१११	सृंक्षणीय कथाय	११२
उत्पलादि गण	१७८	मेदनीय गण	१५
उदय प्रथमन कथाय	१५७	मयुर स्कन्ध	१०८
ठमादि गण	१६२	मुष्णकादि गण	८०
एकसर गण	१५३	मुस्तादि गण	२०१
पलादि गण	४९	मूत्रविरजनीय कथाय	११२
कपटक त्र्यमूल	८०	मूत्रविरजनीय कथाय	११५
कटु स्कन्ध	११०	मूत्रसंमहणीय कथाय	११७
कटुहृत्त गण	१४९	रोमादि गण	१७०
करमर्दादि गण	१३८	लवण स्कन्ध	१०९
कषाय स्कन्ध	११०	लापादि गण	१६१
कामोत्थादि गण	६७	लेहानाय कथाय	९०
कुशय गण	१४६	पक्षादि गण	१००
दृदि विग्रहण वर्ग	१२०	पमनोपग कथाय	११५
औषधान कथाय	१०२	पपा स्थानन गण	११८
गुप्तिष्ण कथाय	१८२	पक्षपादि गण	१६५
नृपामिग्रहण वर्ग	११२	पक्षी पञ्चनूत	८०
गिष्ठ रङ्ग	११०	वातसंशमन वर्ग	४९
गन्धादि गण	१५३	विगरी गन्धादि गण	१०
बीजनीय कथाय	१७२	विदापादि गण	१६०
न्यदापादि गण	६७	विरेकनोरमण कथाय	१७
बद्धवृत्त मूल	६८	शिष्ण गण	१५३
बद्धवृत्तादि गण	१७१	बद्धवृत्तीय गण	११६
विशालकथन वर्ग	६०	बद्धवृत्तीय वर्ग	१६३

विषय	पृष्ठांक	विषय	पृष्ठांक
प्रथरोपख कथाम	१६२	संज्ञास्थापन कथाम	२१५
द्विरोपख लेख	१६२	सम्भानोत्र गण	१५८
शिरोबिरेचनोपग	११४	सारिवादि गण	१७१
शुक्रचनन वर्ग	१९१	साल आदि गण	१४६
शोणित स्थापन वर्ग	१८८	सुरवादि गण	८०
श्यामादि गण	९५	स्नेहोपग	२४७
श्लेष्म संशमन वर्ग	८०	स्वेदोपग वर्ग	१२४
श्यासहर कथाम	२१८	हृद्य वर्ग	१९८

शारीरिक यन्त्र

नेत्रेन्द्रिय (नेत्र रचना)	२५५	रश्मिन्द्रिय	२८६
------------------------------	-----	--------------	-----

द्वय सूची

अक्षुसा	८९	कुटकी	९५
अनार	७३	कुष्ठ	८१
अफीम	६४	कुटमत्वक्	७४
अम्ल रस	८७	सुरासोनी अक्षुषायन	५२
अम्लतास	९४	गन्धक	५९
अमलकी	७३	गुडूची	९२
इन्द्रायण	१४१	गूगल	५४
उमरायण	२२०	गोरखमुयडी	५३
उसारैरेकन्द	१४१	चन्द्रसूर	५५
परयङ्ग	५२	चित्रकमूल	५९
कण्टकारी	८९	जटामांसी	५६
कपित्थ	७४	डीकामाली	१४२
कपिला	१४१	सार्पिण सैल	८८
कपूर	६३, ८८	वास	५९
कस्तूरी	५७	सेजाम	८७
कासीस	६३	त्रिषंग मरम	१८९
कीटमाटी	१४२	दरामूल	५४
कुचिला	५२	देवनाग	५६

क्रियक	परांक	क्रियक	पूरांक
धनुष	५८, ८९	मुलाहठी	१०
तरसा	७३	रोप	५१-६३
नागमदन	१४८	लहनुन	५२
पलाशर्षांग	१४१	लोश्चान	५३
पिशापपत्रा	७२	बन्दनाग	५२
पुनर्नया	२५२	पृद्धाक	५१
पुष्पराग	५१	शिलाश्रीत	५२
प्रयागपिष्टी	१८९	शृङ्गमल	६३
बच	५३	रवेत बन्दन	७२
पला	५५	समुद्रशोष	५६
मिह्व	७४	सर्पसिप	१४८
शोणपूरक	७५	सुयण	५१
शोल	१६९	सोमल	५९
गिसामा	५३	सादागा	५७, १४८
माशिक्य	५१	हालो	५५
माणकागनी	५५	हिंणुपत्री	१४९
गुच्छक	८२	हीम	५७

शास्त्रोक्त आयुर्वेदिक औषधियों, पुस्तकों

तथा

मुफ्त वैद्यकीय सलाह

पूज्य स्वामी कृष्णानन्दजी महाराजद्वारा आयुर्वेद की सेवा से सम्पूर्ण वैद्य समाज मल्ली भाँति परिचित है। पूज्य स्वामीजी एक आदर्श चत्यासी हैं। आपने सन् १९२० से १९२६ तक जगत विख्यात भिन्दु अर्खानन्दजी, सच्च साहित्य षष्क कार्यालय, अहमदाबाद के साथ हिन्दु धर्म, संस्कृति, और समाज की उन्नति के लिये समुन्नत साहित्य मॉट करके जनताको सेवा की। अब सन १९३० से अजमेर-मेरवाड़ा के अन्तर्गत कालेडा-योगला ग्राममें आयुर्वेदकी सेवा कर रहे हैं। यह आपकी सेवा परायणता, नि स्वार्थ भाव और आयुर्वेद के साथ प्रेम ही का फल है, कि आज, अपनी सत्यता, साहित्य सेवा, और विशुद्ध औषधियों की उपलब्धीके कारण सवत्र इस संस्थाका नाम आदरके साथ लिया जाता है। आपने इस संस्थाद्वारा प्रकाशित होने-वाले साहित्य में अर्वाचीन और प्राचीन मतोंका तुलनात्मक दृष्टिसे सभिस्वार विवेचन किया है। एष अनेक अनुमूत प्रयोगों की बनाबट, उपयोग तथा अनुपात आदिको सरल हिन्दी भाषामें लिखा है। सैकड़ों वर्षोंके अनुमूत प्रयोग बिना किसी छिपावके आयुर्वेदोन्नतिकी भावना से वैद्य समाज के सामने प्रगट कर दिये हैं। इसी कारणसे इस पुस्तक के संस्करण इतने अल्प समयमें ही प्रकाशित हो चुके हैं।

संत्यामें किसी व्यक्ति विशेषका स्वार्थ निहित नहीं है। एवं इसका संचालन प्रान्तके ११ सुविख्यात प्रतिष्ठित सज्जनोंके रक्षित ट्रस्ट मयबल द्वारा सुसम्पादित होता है।

संत्याकी रसायन शालामें औषधि निर्माणकी पवित्रता और विशुद्धता, पर विशेष ध्यान दिया जाता है तथा प्रत्येक प्रयोग संस्थाद्वारा प्रकाशित प्रयोगोंमें बखित विधिके अनुसार ही बनाया जाता है।



॥ ❀ ॥

धन्यन्तरये नम

औषध-गुण-धर्मविवेचन

—❀—

आयुर्वेद प्रयोजन

हिताहितं सुख दुःखमायुस्तस्य हिताहितम् ।
मानं च तद्य यत्रोक्तमायुर्वेदं स उच्यते ॥

यिस शास्त्र में हितमय (सदाचार आदि गुणयुक्त) आयु, अहित मय (दुराचार आदि दोषयुक्त) आयु, सुखमय (आरोग्य) आयु, दुःखमय (व्याधियुक्त) आयु, आयु के लिये हितकर और अहितकर द्रव्य (आहार औषध), गुण और कर्म, आयुप्रमाण तथा आयु का लक्षण द्वारा वर्णन हो, उस शास्त्र को 'आयुर्वेद' करते हैं ।

इस तरह आयुर्वेद से आयु (जीवन) सम्बन्धी पूर्ण बोध मिलता है । अतः इसे जीवनविज्ञान (Science of life) ही कहा जायगा । यह शास्त्र अनादि और शाश्वत है । इस आयुर्वेद का प्रयोजन "स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशामनं च" अर्थात् मुख्य प्रयोजन स्वस्थ मनुष्यके स्वास्थ्यका संरक्षण और गौण प्रयोजन आतुरोंके उत्पन्न रोगोंको नष्ट कर पुनः स्वास्थ्य की प्राप्ति करना है ।

इस अनन्त पार (सीमारहित) आयुर्वेद को भगवान् आश्रये ने "हेतुलिङ्गौ-पधज्ञानं स्वस्थानुरपरायणम् ।" इस वचन से निम्नानुसार त्रिसूत्रात्मक (त्रिसूत्रात्मक) कहा है ।

- १ रोग हेतु (Causes-Etiology)
- २ स्वस्थता और रोग के लक्षण चिन्ह (Symptoms & Signs)
- ३ औषध ज्ञान अर्थात् स्वस्थ रहने के लिये औषध, पथ्य, चिकित्सा आदि (Treatment)

‘धारणाद् धातवः ।’, ‘दूपणस्वभावाद् दोषाः ।’ और ‘मखिनी-करणान् मलाः’ । इस व्युत्पत्तिसे अनुसार आयुर्वेदमें वात-पित्त-कफ (त्रिधातु-त्रिदोष) की भीमताके आधार पर जीवन विज्ञान लिखा गया है ।

आयुर्वेदके सिद्धान्तानुसार ये त्रिधातु ही संसार और शरीर के चरण करने वाले हैं । इस भ्रमन्वमें मगवान् घन्क्न्तरिजोने लिखा है कि :—

विसर्गादानविक्षेपैः सोमसूर्यानिता यथा ।

धारयन्ति जगद्दहं कफापित्तानिलास्तथा ॥

(सु० घ० अ० २१-८)

विसर्ग (पोषण), आदान (शोषण), विक्षेप (उत्सर्जन), इन त्रिविध क्रिया द्वारा सोम, सूर्य और वायु मित्त तरह जगतका चरण करते हैं, उसी तरह इन्हीं क्रियाओं द्वारा कफ, पित्त और वात देहको चरण करते हैं ।

ये त्रिधातु सूक्ष्मासिद्धम् और स्थूल मेरुसे त्रिविध हैं । ये देहमें सयव्यापी होनेसे प्रत्येक अवयवके घटक और जोवित परमाणुओंके अन्दर बाहर व्याप्त हैं । ये वात, पित्त, कफ जोवित देहमें प्रति दिन पञ्चभूतात्मक भोजनके परिपाकसे उत्पन्न होते हैं । अर्थात् सतम्भ मांजनसे धातु रूप और असतम्भ भोजनसे दोष रूप उत्पन्न होते हैं । इनसे रक्त, मांस आदि पोष्य धातुओंका पापण यथा नियम होता रहता है और इसी हेतुसे इनसे शुक्र और ओष्र पर्यन्त धातुपापण क्रम क्रमश चलता रहता है । वात, पित्त, कफ सर्व शरीरमें व्यापक होते हुए भी, इन तीनों के कार्य पृथक्-पृथक् स्थानसे अधिकतया होते हैं । अत इन अधिक कार्यवाले अवयवोंको ही उनके सुगम स्थान कहे हैं ।

इन वात, पित्त, कफके जो स्थूल रूप हैं, वे क्रिया द्वारा प्रत्यक्ष हैं । सूक्ष्म स्वरूप यन्त्र आदि साधनों द्वारा प्रत्यक्ष होते हैं और सूक्ष्मतम स्वरूप केवल अनुमानगम्य माने गये हैं किन्तु ये सूक्ष्मतम स्वरूप ही विशेष प्रमत्वात्पादक हैं ।

इन त्रिधातुओं की साम्यायस्या नष्ट होकर वैषम्य होने पर व्याधि की उत्पत्ति होती है । (रोगस्तु दापवैषम्यं दाषसाम्यमरोगता ।) प्रारम्भमें बहुधा सूक्ष्मतम स्वरूपमें धातुवैषम्यकी प्रगति होती है । फिर उससे रस, रक्त आदि स्थूल धातुधामों को विकृत अवस्था उत्पन्न होती है, वे टाप कइलाते हैं । जब वे रूपान्तरित होकर अधिक हानिकर रूप धारण करते हैं, तब वे मल कइलाते हैं और वे ही त्रिविध रोगसृष्टि का सञ्चन करते हैं (दोषा एव हि सर्वेषां रोगाणामेक कारणम्) इस तरह आयुर्वेदने त्रिधातु, त्रिदोष और मलमें भेद कहा है ।

इस शरीर में त्रिधातु-त्रिदोष ही स्वाम्यका संरक्षण करते हैं, और ये त्रिविध व्यापार होनेमें सहायक होते हैं । यह कार्य इन धातुधामों रहे हुए त्रिविध गुणा (रुच, शीत, तीक्ष्ण, उष्ण, स्निग्ध आदि) के हेतुसे होता है । इन गुणोंमें वैषम्य

हने पर ही रोग उत्पन्न होता है। परन्तु यह वैयम् सीनों दाया तथा बाय गुणमें एक साथ नहीं होता। एक या एकाधिक गुणमें होता है। इस विहितिके शरीर गुणोंके रूद्धि-रूप (अभिप्राय या न्यूनता) की प्राप्ति होती है। फिर इन दोषवैयम्में म्य कर धातुसाम्य प्रस्थापित करनेका श्रीषय द्वारा प्रयत्न किया जाता है। बड़े हुए रोग के दुःख गुणाका नाश करना, और बड़े हुए दायाय गुणाका यशाना—अर्थात् रोगो लक्षणाना उपशम रूप धातुसाम्य स्थापित करने के लिये अविहित विधातु (व्यक्तीक शक्ति) की सहायता करना, यह श्रीषयिका मुख्य काम है।

शरीर कर्ममें विविध व्यापार सक्त होते रहनेमें विधातु-विशेषमें हास व्यपन्न और घट होन रहत है। इस न्यूनताकी पूर्ति क्रम उत्साह द्वारा होती है। इस परसे विहित होता है कि, जिस तरह यह शरीर वात, पित्त, कफ (विधातु) से बन है, उस तरह इस उत्साहके समम पदाथ भी इन धातुओंमें ही उत्पन्न हुए हैं। एवं मत्वगुण, रजोगुण, तमोगुणसमक विदोष द्वारा ही गच्छ पण्य एवं अति-असम संवाहन दाया है। इस संसारके मूलतत्त्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु आर आकाश, न ग्य महामूल कहें हैं। इन पञ्चभूतामक अमाल आग्नि द्रव्योक्त देहमें जो स्थावर क्षय है आर जो देहका पारण्य करन है, उनका सरलतम सममानेके लिय विहा करण (छाग्य धुनिके अनुभव) करके कफ, पित्त, वात क्षय भी है। अतः के विधातु पञ्चभूतम पृथक् नहीं हैं।

इन पञ्च महामूलोंमें (चेतनाभिहित महामूलोंमें) २ प्रकारके (चेतन-अचेतन) द्रव्योंकी यति हुई है। इन्द्रिय सुष्ठो चेतन तथा निरिन्द्रियसे अचेतन कहा है। मनुष्यादि प्राणियोंमें शरीर शरीर मनस्वति भेन्द्रिय द्रव्य (चेतन) तथा इनस द्वा जनित-धातु उपधातु आदि निरिन्द्रिय (अचेतन) है।

पुनः सममजन की सुविधाके लिय इन द्रव्योंके ३ बग बनाये हैं। १—दहन (मनुष्य, पशु, पक्षी आदि) २—उद्भिन्न (पतंगदि) ३—गण्डि (द्रव्यके उत्पन्न)।

असम द्रव्यके ४ प्रकार हैं। अणुद्रव्य, अरुद्रव्य, एतद्रव्य, उद्भिन्न। जो रोग उत्पन्न अ आणुद्रव्य दाया उत्पन्न होते हैं वे अणुद्रव्य रोग—मनुष्य रोग, वृद्ध आदि, अरुद्रव्यमें उत्पन्न रोगोक्त अरुद्रव्य—गरी, गर्भ आदि। एतद्रव्य उत्पन्न रोगोक्त एतद्रव्य—वृद्ध आदि आर एतद्रव्य भयकर निवर्तन व उद्भिन्न आणुद्रव्य है—उत्पन्न वीर्यद्रव्य, मूत्र आदि।

इस अणुद्रव्यमें अणुके रोगोक्त रोग, अणु अणुद्रव्य, पित्त, वीर्य आदि का उत्पन्न विविध रोग रोग रोग विविधरूपमें होता है। इस रोग उत्पन्न रोगोक्त रोगोक्त रोग है।

उद्भिन्न द्रव्यके ४ प्रकार हैं। १—अणुद्रव्य (मनुष्य आदि उत्पन्न रोग, वृद्ध, वृद्ध आदि), २—अणु (पुनः रोग उत्पन्न) इस प्रकार विविधरूपमें उत्पन्न रोगोक्त रोगोक्त रोग है।

दी है। ३—ओषधि (फलके पकनेपर स्वयं सूखकर गिर पड़े जैसे—अपामार्ग तिल, गेहूँ आदि), ४—वीरुष (प्रवान जिनमें निश्चयते हों, लवा और गुरुमोक्षा अन्तर्माय इसी प्रकार में किया है) इसका विशेष विचार 'धनीपधसंग्रह' ग्रन्थ में किया है जो सुविधापर छपाया आयगा ।

पार्थिव द्रव्योंमें सुवर्ण आदि घातु उपधातु, पारद, विविध पत्थर, लथय गुरु सोम्ल, हरताल आदि विष, विविध रत्न उपरत्न और शिलाजतु आदि का समावेश होता है ।

इनमेंसे कृतिपय द्रव्य मानव शरीरके लिये सात्म्य होते हैं, और कृतिपय नहीं होने । जो सात्म्य होते हैं, उनसे वेदका पोषण होता है । परन्तु उनके भी प्रमाणाधिक्य व्यवहार या प्रकृति, आयु, सत्व, देश, काल, बल, संयोग आदिके भेदसे (विरुद्ध उपयोगसे) इसके स्थान पर अनिष्ट परिणाम हो जाता है । अर्थात् मात्रा अधिक होने या प्रकृति-विरुद्ध, अतु विरुद्ध, काल विरुद्ध होने इत्यादि कारणोंसे त्रिधातुकी साम्यावस्था भंग होकर विविध व्याधियों की उत्पत्ति होती है । परन्तु इनके नियारणाय परमात्माने संसारके पदार्थोंमें विभिन्न रस-गुणोष्ण संयोग करान्या है, अर्थात् दूसरी ओर निसर्गने समस्त पदार्थोंमें ६ रस और २० गुणोष्ण सृष्टि की है । ६ रस और गुण सब औषधियोंमें असम मिश्र-मिश्र जातिमें मिश्र मिश्र रूप से रहते हैं । एवं अनेक औषधियोंमें रसकी समानता होनेपर भी गुणमें विषमता होती है । जैसे सोंठ, मिच, पोपल, खोंग आदि औषधियाँ सब चरपरी हैं, किन्तु इन सभमें पृथक्-पृथक् गुण रहते हैं ।

इन औषधियोंके गुण और परिणाम समझनेके लिये आचार्योंने सब औषधियोंके ५ वर्ग (पदार्थ-कर्म-समूह) दिये हैं । (१) रस, (२) गुण, (३) बौर्य, (४) विपाक, और (५) प्रभाव ।

(१) रस ।

औषधि जिन्हा पर डालनेसे स्वादद्वारा जिन गुणोष्ण दोष होता है, उनको

• १ रसनाड्यो रस । (चरक)

२ रसनेन्द्रिय प्राणो योऽयं स रस । (चक्रपाणिदत्त)

३ रसनेन्द्रियप्राणवृत्तिगुणत्वावान्तरजातिमत्त्वं रसत्वम् ।

यदि नैयायिकाँकी परिभाषाके अनुसार विचार किया जाय, तो पहिले और दूसरे सूत्रमें कहे हुए लक्षणों का रसाभाव में प्रवेश हो जाने से अस्तिम्यासि दोष और अतीन्द्रिय रसमें प्रवेश न होनेसे अम्यासि दोष भी होता है । इस हेतुसे रसका लक्षण शिष्यासत्तेनने पृथक्-रीतिसे अस्तिम्यासि, अम्यासि और असम्य, तीनों दोषोंसे उद्धृत शुद्ध किया है ।

'रस' कहा है। चन्दि यह रसगत विक्रम नहीं होता क्योंकि, तब द्रव्य द्रव्यावस्था (Liquid state) का प्राप्त नहीं होने, जो द्रव्य रसायनमें अवद्रव्य (Insoluble) हो उनका जिदा स्वरुं होनेपर भी रसप्रतीति नहीं होती। उन श्रीपद्युग्मोंके परिपानमें आधारेमें रसका निधिय किया जाता है। * जैसे सुक्क, पीप, लोह, अन्नक आदि पात उपधातुधर्मों जो रस (यास्त्र-स्फुटित रस) रखते हैं, उनका योष जिदा हाग नहीं हो सकता। इन रसोंका ज्ञान मरिक्क, हारय, मान पाक्षिनिर्वा, रस, मांस कल्प आदि पर विराय काय ज्ञानसे उपलब्ध होना है।

इस रसके कार्यमें प्रतीति श्रीरस या भाजनका पचन (स्वात्तर पिचयन) होने पर होती है। यह रस मुख्य आदि पातुधर्मोंमें मिष, विभी आदिक रसान ही रहता है परन्तु उन पातुधर्म रसोंका विपयजन होनेमें अपि काल लगता है। अन्तरीय काय नहीं हो सकता।

संसारकी समस्त श्रीपद्युग्मि रहने पात रस ६ प्रकारके हैं। मधुर, अम्ल, लवण, तिष्ठ (कटुपा), कटु (परपग) और कषाय। + ये सब रस न्यूनधिक मापमें सम्मिश्रित रहते हैं। इनमेंसे जो रस जिस द्रव्यमें विद्यमान परिमात्में हो, उनका निर्देश किया जाता है। प्राचान आचार्यों ने कहा है कि —

द्रव्यमेपरसं नास्ति न रसोप्येकदायज ।

योऽधिकस्तन निर्देश प्रियते रसदापयो ॥

यह अक्षर पाँच भूतानोंमें बना है। हम देखते संसारके किसी भी द्रव्य (आपधि) में कदाएक एक ही रस ही, होगा नहीं है। सब रस मिल हुए ही रहते हैं। एवं कोई भी गात काय, जिस कारणसे किसी एक ही रस में उत्पन्न होगा हो, ऐसा नहीं है। जो रस या टार अपि कालमें ही, उसका निर्देश किया जाता है। इन कटु पातुधर्मों में कटुपा विमानुसार गुणों की प्रधानता रहती है।

सब द्रव्यमें सबभवात्मक रसोंके रस भी इन भूत रसोंके हुए ही रहता है। अन्तरीय के निर्देश परकरके भी विपयनेमें रसमें ही जाता है। इन रसोंमें प्रधानता विमानुसार रहती है।

+ पातुधर्मों । रसके ६ प्रकार माने हैं, जो सामान्यतः अनुभवमें आते हैं। पद्युग्मिक इतिवद विज्ञानशास्त्रियों (Physiologists) में मधुर, अम्ल, लवण, तिष्ठ, इन पाँच रसोंका मुख्य माना है। अन्तरीय मद्युग्मपर कटु और कषाय भी रस हैं। अन्तरीय रसों का प्रसर विषय पर विषय मद्युग्म (Taste buds) श्रीपद्युग्मोंकी नहीं हो सकती। जिस द्रव्यमें रसोंका उत्पन्न होता है। कदाएक और कदाएक रसोंका उत्पन्न होता है। अन्तरीय रसोंके भी रस ही नास्तिके (Sensory organs) के उत्पन्न होते हैं। हम देखते उनका रस ही रहता है।

- | | |
|---------------------------|--------------------------|
| १ मधुर रस—पृथ्वी, जल । | ४ तिक्त रस—वायु, आकार । |
| २ अम्ल रस—पृथ्वी, अग्नि । | ५ कटु रस—वायु अग्नि । |
| ३ लवण रस—जल, अग्नि । | ६ कषाय रस—पृथ्वी, वायु । |

इन सबमें दो दो मूल प्रधान और शेष मूल गौण हैं। यथार्थमें सब रसोंके भीतर पाँचों मूल रहते हैं। गौण मूल सूक्ष्म भाव से रहने के हेतुसे उसका स्पष्ट अनुभव नहीं होता।

किसी किसी द्रव्यमें अवस्थामेदसे रसमेदकी प्रतीति होती है। जैसे आम्र प्रथमावस्थामें कषाय रसयुक्त, द्वितीयावस्थामें अम्ल रसयुक्त और तृतीयावस्थामें मधुर रस युक्त बन जाता है। मधुरता आनेमें पहिलेके रसोंका रूपान्तर होता है और कुछ अंश में पहिलेका रस भी शेष रह जाता है। उसका अनुभव पृथक्करण द्वारा हो सकता है। इस अदृश्य रसको अभ्यक्ष रस संज्ञा दी है।

मधुर रस ।

मधुर रस (Sweet) कफवर्द्धक, वात-पित्त नाशक, शीतल और पोष्टिक है। यह रस शरीर और मनमें प्रसन्नता लाता है। संतोष देता है। तृप्ति कराता है। प्राणोंको धारण करता है। मुखके भीतर श्लेष्मा या त्विपचिपे रसका आन्व्यादन करता तथा श्लेष्म पातुकी वृद्धि कराता है। योग्य पचन होनेपर देहको मृदु बनाता है, पुष्ट करता है तथा वीर्य की वृद्धि कराता है।

चरक संहिताकार ने लिखा है कि, मधुर रस शरीर को सात्म्य होनेपर रस, रक्त, मांस, मेद, अस्ति, मज्जा, वीर्य और ओज, इन सबको पुष्ट बनाता है और आयु बढ़ाता है। भोज, त्वक्, चक्षु, श्रिष्ठा, घ्राण, इन पाँच ज्ञानेन्द्रिय तथा मनका प्रसादन करता है। वल, वर्ष की वृद्धि कराता है। पित्तप्रकोप, विष, वृद्ध वायु और तृयाका शमन कराता है। त्वचा, केश, कण्ठ (आवाज) को सुन्दर बनाता है। यह रस प्रतिकर्षक जीवन शक्ति वद्धक, वृद्धि, देहको दृढ़ बनानेवाला, क्षीणता नाशक, क्षत संधानक (ठर-छतको दूर करनेवाला), नासिका, मुख, कण्ठ, श्रोष्ठ, शिष्ठा, इन सबको मुख देनेवाला, दाह और मूत्रका शमन, मूर्छे और चिह्नियों को अति भिष, स्निग्ध, शीतल और गुरु है।

यदि इसका सेवन अत्यधिक किया जाय, तो स्थूलता, मांसपेशियोंमें मृदुता, आलस्य, अति निद्रा, देहमें भारीपन, भोजन करनेमें अनिच्छा, अग्निमांस, मुख और कण्ठके मांसकी अतिवृद्धि, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अससक (विस्त्रुचिका मे), शीत-ज्वर, आनाह (मलावरोध और उदरभासका अयरोध), मुँहमें मीठापन, वान्ति, संशानाश (बेहोशी), आवाजमें भारीपन, गलगण्ड, गण्डभाला, क्षीणद, कण्ठशोथ, वस्ति, धमनो (वातनाशियाँ) और ग्रन्थियों पर श्लेष्माका आच्छादन,

'रस' कहा है। क्वचित् यह रसज्ञान जिहासे नहीं होता क्योंकि, सभ द्रव्य द्रवावस्था (Liquid state) का प्राप्त नहीं होते, जो द्रव्य सवाशमें अद्राव्य (Insoluble) हों उनका जिहा स्पश होनेपर भी रसप्रतीति नहीं होती। उन औपचियोंके परिष्कारके आचारसे रसप्र निम्निय किवा जाता है। जैसे सुवर्ण, रौप्य, लोह, अन्नक आदि घातु उपघातुओंमें जो रस (शास्त्र-कथित रस) रहते हैं, उनका बोध जिहा द्वारा नहीं हो सकता। इन रसोंका ज्ञान मस्तिष्क, हृदय, घात वाहिनियों, रक्त, मांस तथा आदि पर विशेष कार्य होनेसे उपलब्ध होता है।

इस रसके कार्यकी प्रतीति औपच या भोजनका पचन (स्वान्तर वियोजन) होने पर होती है। यह रस सुवर्ण आदि घातुओंमें मित्र, मिश्री आदिके समान ही रहता है परन्तु उन घातुस्य रसोंका वियोजन होनेमें अधिक काल लगता है। अतः शीघ्र बोध नहीं हो सकता।

संसारकी समस्त औपचियोंमें रहने वाले रस ६ प्रकारके हैं। मधुर, अम्ल, लवण, तिक्त (कड़ुवा), कटु (चरपरा) और कषाय। ये सभ रस म्यूनाधिक मात्रामें सम्मिलित रहते हैं। इनमेंसे जो रस जिस द्रव्यमें विशेष परिमाणमें हो, उनका निर्देश किया जाता है। प्राचीन आचार्यों ने कहा है कि —

द्रव्यमेकरसं नास्ति न रोगोप्येकद्रोपज्ज ।

योऽधिकस्तेन निर्देश क्रियते रसद्रोपयो ॥

यह संसार पाँच मूर्तामेंसे बना है। इस हेतुसे संसारके कित्ते भी द्रव्य (औपचि) में केवल एक ही रस हो, ऐसा नहीं है। सब रस मिले हुए ही रहते हैं। एवं कोई भी राग वात, पित्त, कफमेंसे किसी एक ही दोष से उत्पन्न होता हो, ऐसा नहीं है। जो रस या दोष अधिकारमें हो, उसका निर्देश किया जाता है। इन पद्यों में बहुधा विन्मानुसार गुणों की प्रधानता रहती है।

सभ द्रव्यपञ्च मरामूर्तात्मक होनेसे ६ रस भी इन मूर्ताके ही गुण या रूपान्तर हैं। मूर्ता के विविध प्रकारके संमिलनसे रसभेद हो जाता है। इन रसोंमें प्रधानता विन्मानुसार रहती है।

+ आयुर्वेदने रसके ६ प्रकार माने हैं, जो सामान्यतः अनुभवमें आते हैं। आधुनिक इन्द्रिय विज्ञानशास्त्रियों (Physiologists) ने मधुर, अम्ल, लवण और तिक्त, इन चार रसोंको मुख्य माना है। उनके मतानुसार कटु और कषाय गौण रस हैं। मुख्य रसों का अस्तर जिहा पर स्थित स्वादाहुर (Tastebuds) और स्वादमाही नाकी धनुर्भोतर होता है। पित्त हमें स्वादका बोध होता है। कषाय और कटु रसका प्रमाण स्वादमाही नाकियाके अतिरिक्त संवेदना नाकियाके (Sensory nerves) के ऊपर भी होता है। इस हेतुसे उनका गौण मानते हैं।

- | | |
|---------------------------|--------------------------|
| १ मधुर रस—पृथ्वी, जल । | ४ तिक्त रस—वायु, आकाश । |
| २ अम्ल रस—पृथ्वी, अग्नि । | ५ कटु रस—वायु अग्नि । |
| ३ लवण रस—जल, अग्नि । | ६ कषाय रस—पृथ्वी, वायु । |

इन सबमें दो दो मूत्र प्रधान और शेष मूत्र गीण हैं। यथार्थमें सर्व रसोंके भीतर पाँचो मूत्र रहते हैं। गीण मूत्र सूक्ष्म भाव से रहने के हेतुसे उसका स्पष्ट अनुभव नहीं होता।

किसी किसी द्रव्यमें अवस्थामेदसे रसमेंकी प्रतीति होती है। जैसे आम्र प्रथमावस्थामें कषाय रसयुक्त, द्वितीयावस्थामें अम्ल रसयुक्त और तृतीयावस्थामें मधुर रस युक्त बन जाता है। मधुरता आनेमें पहिलेये रसोंका रूपान्तर होता है और कुछ अंश में पहिलेका रस भी शेष रह जाता है। उसका अनुभव पूयकरण द्वारा हो सकता है। इस अदृश्य रसको अम्लरस संज्ञा दी है।

मधुर रस ।

मधुर रस (Sweet) कषयर्द्धक, वात-पित्त नाशक, शीतल और पौष्टिक है। यह रस शरीर और मनमें प्रसन्नता लाता है। संतोष देता है। तृप्ति करता है। प्राणोंको धारण करता है। मुखमें भीतर स्नेह्या या चिपचिपे रसका आच्छादन करता तथा स्नेह्य भावकी वृद्धि कराता है। योग्य पचन होनेपर देहको मृदु बनाता है, पुष्ट करता है तथा बीर्य की वृद्धि कराता है।

चरक संहिताकार ने लिखा है कि मधुर रस शरीर को सात्व्य होनेपर रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, बीर्य और भोज, इन सबको पुष्ट बनाता है और आयु बढ़ाता है। भ्रूण, त्वक्, चक्षु, शिखा, प्राण, इन पाँच शानेन्द्रिय तथा मनका प्रसादन करता है। बल, बर्षा की वृद्धि कराता है। पित्तप्रकोप, विष, वृद्ध वायु और तृषाका शमन कराता है। त्वचा, केश, कण्ठ (आवाज) को सुन्दर बनाता है। यह रस प्रतिकर्षक, जीवन शक्ति बद्धक, वृद्धिकर, वृहण, देहको दृढ़ बनानेवाला, क्षीणता नाशक, क्षण संधानक (उरःश्वेतको दूर करनेवाला), नाशिका, मुख, कण्ठ, श्रोत्र, शिखा, इन सबको मुख देनेवाला, दाह और मूर्च्छाका शमक, मीरों और चिकित्सियोंका अति प्रिय, स्निग्ध, शीतल और गुह्र है।

यदि इसका सेवन अत्यधिक किया जाय, तो सूक्ष्मता, मांसपेशियोंमें मृदुता, आलस्य, अति निद्रा, देहमें भारीपन, भोजन करनेमें अनिच्छा, अग्निमांस, मुख और कण्ठके मांसकी अतिवृद्धि, श्वास, कास, प्रतिश्याय, अलसक (निश्चिका मेद), शीत-स्वर, आनाह (मलावरुष और उदरवाक्का अनरोष), मुँहमें मीठापन, वान्ति, संशानाश (बेहोशी), आवाजमें भारीपन, गलागण्ड, गण्डमाला, स्त्रीपद, कण्ठशोथ, वस्ति, पमनो (वातनाशियाँ) और ग्रन्थियों पर श्लेष्माका आच्छादन,

विविध नेत्ररोग, श्मिन्धन् (मुख, नाक, नेत्र आदि से स्याय होना) आदि कृम्यपान रोगोंकी उत्पत्ति होती है।

घटाङ्गसंग्रहकारने अतियोग जन्य हानिके सम्बन्धमें लिखा है कि :-

एवंगुणोऽपि स सदाऽत्युपपुन्यमान
 स्यौस्त्याग्निसाद-गुरुवातसकाति निद्रा ।
 श्वास-प्रमेह - गलरोग विसंज्ञताऽस्य-
 माधुर्यं श्लोचन गलार्जुद - गण्डमाला ॥
 ऊर्ध्ववर्धं मूर्धरुक्षस - पीनस कुम्भीन् ।
 श्लीपद् ग्वरोदर ष्ठीघनानि चावहेत् ॥

सर्वदा मधुर रसका अति सेवन करनेपर स्थूलता, अग्निमांस, देहमें भारीपन, अलसता, अतिनिद्रा, श्वास, प्रमेह, गलरोग, बेहोशी, मुँहमें मीठापन, नेत्रार्जुद, गलार्जुद, गण्डमाला, यमन, उदरद (शीतपित्त), शिरोरोग, कास, पीनस, उदरकुम्भी, स्त्रीप, ज्वर, ठण्डरोग, मुँहमें विषविषे शूलकी वृद्धि आदि विकारोंकी संप्राप्ति हो जाती है।

इस रसका विपाक मधुर और धीर्य शीत है। पचनमें भारी है, सिग्घ, शीतल, गुफ, मन्द (शमनकारी) विच्छिन्न और स्थिर गुणकी वृद्धि कराता है। पित्त और वातको शमन करनेवाला है किन्तु शीतधीर्य होने से पित्तयुक्त वातके समान केवल वात प्रकोपकर उठना मात्र कायकर नहीं होता किन्तु वात नाभियों तथा नाभ केन्द्र आदि को शान्त और समल भी बनाता है। इस तरह रस, रक्त, मांस आदि भातुओंको पुष्ट बनाता है तथा मलमूत्रकी प्रवृत्तिमें भी सहायक बनता है।

यह रस बालकोंके लिये अति हितकर है। इस देहसे भीहरिने बकरी और गी के दूध की अपेक्षा माताके दूध (स्तन्य) में अधिक शक्कर मिलायी है, जो बच्चोंकी देहकी और बलकी वृद्धि उत्त्पर कराती है।

अधिक शारीरिक भ्रम और मस्तिष्क भ्रम करनेवालोंके लिये यह रस अति हितकर है। शारीरिक भ्रम अधिक हो और मधुर रस कम मिले तो वेह कृन्त होने लगती है और अकाल में हृत्दावस्थाकी प्राप्ति होती है। मानसिक भ्रम अधिक हो और इस रसका सेवन कम हो तो स्मरण शक्तिका ह्रास, बुद्धिमान्य, उन्माद आदि की उत्पत्ति होती है। यदि आवश्यक माथा में इसका सेवन होता रहे, तो हृदावस्थामें भी अधिक निर्मलता नहीं आती।

काल दृष्टिसे विचार किया जाय, तो हेमन्त और शिशिर ऋतुमें अर्थात् शीत कालमें वायु शीतल होनेसे जठराग्नि प्रबल बनती है। इस देहसे मधुर पदार्थ और गुण अलसका पचन सरलतासे होता है। यदि इन ऋतुओंमें योग्य आहार नहीं मिलता, तो वेह बल होती है और पित्त वृद्धि समानैः सर्वेषाम्' इस नियम के अनुसार शीत काल और उदर देहके कारण वायुका प्रकोप हो जाता है।

वसत ऋतु कष प्रकोपकर है। अतः इस ऋतु में मधुर और गुरु भोजन का सेवन कम किया जाता है। आनायोनि ईल का रस और शहद से बनी हुई शराब का विधिबत् सेवन करने की आज्ञा की है।

श्रीष्म-ऋतु में मधुररस विशिष्ट भोजन और मधुर शीतल पेय हितकर होता है। इनमें मी ठण्डाई रूपसे शकर का सेवन अधिक हितकर है। मिथीमें विद्युत् स्वभाव सिद्ध रहती है। अंधेरे में मिथीके टुकड़े को टोکنे पर वह विदित होती है। केवल मिथी १० २० तोले चनाकर खायी जाय, तो १ २ घण्टे बाद शारीरिक उच्चाप बढ़ जाता है। इस हेतुसे शकर मिला हुआ भोजन सम्भाल पूषक करना चाहिये। इसके विपरीत ठण्डाई पीने पर १ घण्टेके भीतर पेशाब साफ आ जात है, शारीरिक उच्चाप कम हो जाता और मनमें प्रसन्नता आ जाती है।

यक्तव्य—जिनके मूत्र यन्त्र में विकृति हो, उनको यह गुण्य प्रतीत नहीं हो सकेगा। सामान्यतः निरोगी मनुष्य को उक्त गुण का अनुभव होता है।

वर्षाऋतु में यात आदि प्रकोप होने से जठराग्नि दुर्बल हो जाती है। अतः खाने पीने के पदार्थों में शहद प्रधान मधुर रसका सेवन करना चाहिये। एवं अग्नि का रक्षण हो, उस तरह बर्ताव करना चाहिये।

शरत्ऋतु में सामान्यतः पित्त का प्रकोप होता है। मधुर रस पित्तशामक है किन्तु तिक्त रस सहित मधुर रसका सेवन करना चाहिये। कारख, पित्त प्रकुपित होकर ग्राम विष की वृद्धि तथा अग्नि मंद करता है। इस ग्राम विष को जलाने के लिये तिक्त रस की आवश्यकता है।

वेद के भीतर उग्रता पहुँचकर श्लैथ्मिक कक्षा फट गई हो और बारम्बार फटती हो या कैशिकाएँ टूटती रहती हों फिर नासिका, मुँह, गुदा आदि से रक्तस्राव होता हो, तो उसे दूर करनेके लिये मधुर रस प्रधान औषधियाँ दूध, घृत, मन्थन, मुक्ता, प्रवाल, मुलाहठी, शतावरी, पियूष खसूर, मुनक्का, गुलरके पत्र, जुम्भापत्र आदि का सेवन करया जाता है। उर चतुर्में मी मधुर रसका संधान क्रय प्रतीत होता है।

रक्तसाय, अधिक परिभ्रम, प्रबल रोग, स्तम्भ दान, मानसिक चिन्ता आदि कारणाँ से वेद क्षीण हुई हो, सब मूला हेतु को दूर करके मधुर रसका विधियत् सेवन करया जाय तो शरीर सबल बन जाता है। वेद की कान्ति नष्ट हुई हो, वह पुनः प्राप्त होती है। अस्वामाविक कोष आदि बंद गया हो, वह शान्त हो जाता है। बालों का वर्ण सुन्दर बन जाता है। स्तन्य की उत्पत्तिमें न्यूनता हुई हो या अस्थिमें निषलता आई हो वह प्रवाल, मुक्ता और जुम्भादि मधुर द्रव्य के सेवन से दूर हो जाते हैं।

अस्थिमग पातित, अधिक स्त्री-सेवा, अधिक व्याख्यान आदिसे जिनका कष्ट पैठ गया हो उन सबके लिये मधुर रस प्रधान औषधियाँ—दूध, घीर विदारी, मुलाहठी शतावरी मुनक्का आदि दिवाबद्ध हैं। यदि विष सेवनसे मस्तिष्क, नेत्र और छाती

में उष्णता बनी रहती हो तो सुवर्ण, मुक्ता, प्रवाल, दुग्ध, घृत आदि मधुर रस का सेवन करने पर विष शमन हो जाता है। संक्षेप में इस रस का सेवन अधिकारी मनुष्य विधिपूर्वक करता रहे, तो पूर्ण आयु भोगता है और वृद्धापस्थामें भी देहबल बना रहता है।

वक्तव्य—कोई भी वस्तु खाने मात्र से लाभ नहीं पहुँचा सकती। सम्यक् पचन होने पर ही गुण दराती है।

सर्व पदार्थ अधिकारी का ही लाभ पहुँचाते हैं; अनधिकारी को नहीं। जैसे—मधुमेह और नूतन ज्वर में शक्कर रोग की वृद्धि करती है। आमालिसारमें गादुग्ध बानि पहुँचाता है। अर्ध पीकित को कच्चा गोदुग्ध सेवन करने पर रक्तसाव हाता है। उदर कृमिके रोगीको शक्कर-गुड़का सेवन विपत्तुल्य हाता है। मेदोवृद्धिवालों का मधुर रस सेवन करनेपर स्पृशताकी वृद्धि होती है।

अम्लरस।

त्वहारस (Sour Acid) वातहर, पित्त-कफ-खर्दक, उष्ण और पाषक है। इसके सेवनसे दाँत आम जाते हैं। मुँहमें लालास्रावकी वृद्धि होती है। मोहन करनेमें रुचि बढ़ती है। अम्लता अधिक होने पर रंगटे लगे होते हैं। नेत्र और झूका आर्कुचन करता है। छाती और कण्ठमें विदाह कराता है।

शरक संज्ञितकारने लिखा है कि, यह रस देहको स्थूल बनाता है, जीवन देता है। मनको उत्साहित करता है। इन्द्रियोंको दृढ़ बनाता है। क्लम बढ़ाता है। वायुका अनुलाम करता है। हृदयका घृम करता है। लामे हुए अन्नकी अन्नमें धागे गति करती है। मोहनमें लाला (शूक) का मिलाकर तरलमय बना देता है। स्थूल बना देता है। पचन करता है और प्रसन्नता ला देता है। यह रस लघु, उष्ण और स्निग्ध है।

यदि इसका अतियोग किया जाय, तो दंतहय (दाँत आम-जाना) और रुपा की उत्पत्ति करता है। नेत्रोंको मन्द करता है। रंगटे लगे करता है। श्लेष्माको पक्का बनाता है। पित्तकी वृद्धि करता है। रक्तको दूषित करता है। मांस-पशियोंका जलाता है। देहकी (साथे साथेको) शिथिल कर देता है। निषल, छवरीकित, कृश और दुर्बल मनुष्यमें शोथ ला देता है। छव (पाव), अभिहत (पत्थर आदिकी चोट), ग्रन्थ (सर्प कुत्ते आदि द्वारा काटे गये), दग्ध (आग्नि, घार आदिमें जला हुआ), मम (दहड़ी दूटना), शून (शोथमय), ध्युत (स्थानसे हट्टी उठर जाना), अकमत्रित (मूत्रविषयक अनुष्मा के मूत्र के स्पर्श से छोटे छोट घले होना), परिसर्पित (जिन अन्तुष्मां का शरीर पर चलनेमात्र से ही विरमकोय होता हो, उनके स्पर्शसे पीडा होना) मर्दित (मांसपेशियों आदि दबकर शून्य हो जाना), जिन (दा या अधिक टुकड़े हो जाना), भिन्न (विभिन्न दाना), विरिल्लप्ट (चाट लगन

पर सांघे ढील हो जाना), विद्ध (फाटे, सूई आदि का चुभना), उत्पिष्ट (अन्न कुचल जाना) आदि पोषित स्थानांको पका देता है । क्योंकि, यह अमानेय स्वभाव वाला है । एवं कण्ठ, छाती और हृदयमें जलान कराता है ।

अम्ल रस पृथ्वी और अग्निप्रधान है । इस रसका विपाक अम्ल होता है । वीर्य उष्ण है । इस हेतु से पाचन, भ्रम, तृषा, दाह आदि कराता है । पाचन, भ्रम, तृषा, दाह आदि, ये सब पित्तिवृद्धि होने पर होते हैं । देह के भीतर जहाँ जहाँ दाह होता है, वहाँ वहाँ पर दाह को शमन करनेके लिये श्लैष्मिक रस उत्पन्न होता रहता है । परिश्राममें कुछ कफ-वृद्धि भी होती है ।

अम्ल रसको वात-शामक कदा है किन्तु सब प्रकारके वात रोगोंको दूर नहीं करता । उदरमें आचरा, शूल, वायु भरा रहना आदि विकार हैं, उनका यह दूर कर देता है । वातनाशियोंके दोम (Inflammation) पक्षवध, सर्वाङ्गवध, आक्षेप आदि रोगों पर इस रस के सेवन से योग्य लाभ नहीं मिलता ।

अग्नि मनुष्यों के रक्त की प्रतिक्रिया क्षारीय हो या उदासीन हो (अम्लीय न हो), उनके लिये अम्ल रस हितकर है । रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल बन जाने पर मूत्रको प्रतिक्रिया अम्ल बनती है । ऐसी अवस्थामें अम्ल पदार्थ खाने पर दतहर्ष, सांघों सांघोंका दूटना, नाशियोंका खिंचना, अम्ल विपाकयुक्त भोजन करने (चावल खाने) पर १ घण्टे बाद उदरमें भारीपन हो जाना, स्वप्नदोष, निद्रावृद्धि, उत्साहका हास आदि लक्षण उपस्थित होते हैं । ऐसे मनुष्य अम्ल रसका सेवन वारम्बार करते रहें, तो सांघों सांघोंमें वेदना, खास, कास, ग्राम-ज्वर आदि हो जाते हैं । अतः अनधिकारीको अम्ल रसका सेवन कम करना चाहिये तथा अधिकारीका भी अति सेवन नहीं करना चाहिये ।

अम्ल रस पाचक होनेसे पित्त और रक्तकी वृद्धि कराता है । जब पित्त स्वस्थ हो उस समय यह लाभ मिलता है । विदग्धाजीर्ण, अम्ल-पित्त आदि, जिनमें आमाशयस्थ पित्त बढ़ा हुआ रहता है अर्थात् आमाशयिक रस (Gastric juice) में लवणाम्ल (Acid Hydrochloric) बढ़ जाता है, उनमें अम्ल रसका कार्य वैसा नहीं हो सकता । भोजनके साथ अम्लरसका सेवन करने पर पित्तप्रकोपमें वृद्धि हो जाती है । यदि पित्तप्रकोप की प्रथमावस्था है, भोजनके बाद ही अधिक खाया होता है (भोजनके पहिले आमाशयमें पित्त नहीं रहता), तो भोजनके २०-३० मिनट पहिले परिपक्व ताजे नींबूको १०-२० तोले जलमें निचाड़, १/४ मासे शक्कर मिलाकर पिलाने पर अधिक पित्तखावका रोध होता है । प्रातःकालको आमाशयमें सहा पित्त संग्रहीत हो गया हो, तब अम्ल रसका सेवन कराया जायगा, तो अधिक हानि पहुँचती है । ऐसा अवस्थामें तो दमन कराकर या आमाशय नाशिकाले आमाशयको धेकर साफ कर देना पड़ता है और अम्ल रसका सेवन अति कम कराया जाता है । केवल आंवले

आदि बैसी सीम्य ग्यार्ह दी जाती है। अम्ल पित्तके समान रक्त पित्त के कितनेक प्रकारोंमें भी अम्लरसका संकोच करना पड़ता है। जब आमाशयमें पित्तसाध कम होता हो, तब लवण रस सहित अम्ल रसका सेवन आशीर्वाद के समान है। (केवल अम्ल रसका सेवन करने पर आमाशय रससाय कम हो जाता है) अम्लरस रक्तहास पर भी उपकारक है। यह सरसतासे रक्त को बढ़ा देता है। फिर हृदयको भी समझ बना देता है।

सुभ्रत संहिता, अर्चना संहिता आदि के ग्रन्थकारोंने अम्ल रसको दूध कहा है। दूधके २ अर्थ हैं। हृदयके लिये हितकारक तथा मनका प्रसन्न करनेवाला। अम्ल रस इन दोनों गुणोंको दर्शाता है। मनको रुचिकर तथा दोषन-पाचन होनेसे रसवातुकी उत्पत्ति अधिक करता है। रस घातु सबल होमेपर उनसे उत्पन्न रक्त आदि घातु में समझ बनती हैं। हृदय मांसपेशीसे बना है। व्यायाम मांस बाढ को बल मिलने पर हृदय भी बढ़ बन जाता है। हृदयपर अम्ल रसका विशेष प्रभाव पड़ता है। इस हेतुसे मगवान् आश्रमने दूध कयाय वर्गमें आम्र, अनार, इमली, बेर, विभीरु, अम्लवैत भई बेर, अंयाका, कर्पूरा, बबहल, इन १० अम्ल रसप्रधान औषधियोंका ही संग्रह किया है।

अम्ल रस आग्नेय सत्वप्रधान होनेसे इसका मुख्य कार्य अग्निप्रदीपन है। अग्नि प्रदीप्त होनेसे आहारका पचन सम्यक् और अधिक होता है। इसके अतिरिक्त रस, रक्त, मांस, शीर्ष आदि सब घातुओंमें अग्निवत्यका कार्य अधिक होता है। जिससे उत्पन्न दोष, विष और आगन्तुक कीटाणुओंका नाश होता रहता है। एवं आमयिष या कीटाणुविषयजन्य हानिसे रोकना संरक्षण होता रहता है।

अम्लरसमें दीपनके अतिरिक्त पाचन गुण भी अवस्थित है। दीपन गुण अग्निको प्रदीप्त करता है, किन्तु दीपन गुणसुक्त द्रव्य आमका पचन नहीं करता। पाचन गुण सुक्त द्रव्य आमका पचन कराता है, यह इन दोनों गुणोंमें भेद है। अम्लरसमें ये दोनों गुण होनेसे अग्नि-प्रदीपनके अतिरिक्त आमाशयके भीतर भाग्य पचन करता कार्य है तथा अन्तगत आहारके पचनमें भी सहायता पहुँचाता है, इस तरह आमको पचानेका सम्यक् प्रकारसे करता है। जिससे अर आदि रोगोंकी उत्पत्तिमें प्रतिषेध होता है।

अम्ल रससुक्त पदार्थसे रुचि बढ़ती है। अनेकोंको ही दर्शनमात्रसे ही गुहने शुरू करने लग जाता है। इस अम्लरसके मिश्रणसुक्त भोजनमें लासाभिभव अधिक होता है और अनाज अन्धी तरह खाया जाता है। यदि अम्ल रसको लवणके साथ मिलाया है, तो आमाशयपित्त भी अधिक आवित होता है। परन्तु अन्नमें भोजन जानेपर उठोने अशुभ सब भोजनको समझन बनानेके लिये पक्ष्यस्वका स्नान भी अधिक होता है। फिर शायथ क्रिया भी अधिक होती है। इस तरह रुचिकर भोजन देहको पुष्ट बनानेमें सहायक बनता है।

सुप्त संदिताकारने इसे 'यद्दि शीत' और अष्टाङ्ग संग्रहकारने 'शीतस्पर्श' लिखा है। इसका शीतस्पर्श जिह्वा, त्वचा और मन द्वारा विदित होता है। गर्मके दिनमें इसी गुणके हेतुसे शर्षप नीबू, शर्षप सन्तरा आदिका उपयोग होता है। पंजाबमें मछोको काममें लेते हैं। इनसे थोड़ा समयमें पेशाब साफ आ जाता है। फिर उष्णता दूर हाकर शीतलता आ जाती है।

आगे आचार्योंने इसे 'पवननिग्रहणो (अनिलनिवर्हणो) अनुलोमन' कहा है अर्थात् उदरवातका यह निग्रह करता है तथा मूढ वातका अनुलोमन करता है (आमाशय-वायुकी ऊर्ध्वगति तथा अन्त्रस्थ वायुकी अधोगति करा बाहर निकाल देता है) उदरमें दुष्टवायुकी उत्पत्ति और स्थिति हो तो भोजनकी गति सम्यक् नहीं होती। फिर मलावरोध होता है, उदरमें दुर्गन्ध उत्पन्न होती है। मलमेंसे प्रवाहो रसका शोषण रक्तमें होनेपर रक्तवृष्टि होती है। पश्चात् मस्तिष्कस्य केन्द्र वृषित होते हैं और अनेक रोगोंकी सृष्टि होती है। अम्ल रस इस हानिकी परंपराको रोक देता है।

चरक संहिताकारने 'भुक्तमयकर्मयति क्लेदयति जरयति, कहा है अर्थात् अम्ल रस आहारको नीचे ले जाता, गलाता है, और पचाता है। अम्ल रसमें पृथ्वी तत्त्वकी भी प्रधानता होनेसे यह आहारको नीचे नीचे ले जाता है, आहारमेंसे सत्वका सम्यक् शोषण कराता है तथा शौच शुद्धिमें भी सहायता पहुँचाता है।

अम्ल रसमें स्वाद अधिक रहा है। इस हेतुसे जिह्वा लोलुप मनुष्य इसका अस्तियोग करते हैं तथा अनधिकारी मनुष्य जानसे दुःख भी इस रसके स्वादको छोड़ नहीं सकते। परिश्राम में संधिपाठ, कष्ट, पाण्डू भ्रम (चकर आना), शोथ, तिमिर आदि रोगसे पीड़ित हो जाते हैं। इस सम्बन्धमें अष्टाङ्ग संग्रहकार लिखते हैं—

जनयति शिथिलत्वं सेवितं सोऽति वेहे
कफविलयन करद् पाण्डुता दृग्विषातान् ।
ततबिहस्तविसर्प रक्तपित्त पिपासा
शययथुमपि कृशाना तैजसत्वाद् भ्रमं च ॥

अनेक अनधिकारियोंको अम्ल रसकी अधिकतासे दूसरे ही दिन साभाकी शिथिलता, नाभिमोक्षा सिंचाव, रात्रि को स्नानदोष, मूत्रका कुछ अंशमें अयरोध व्याकुलता, मुखपर कुछ शोथ और ज्वर आदिकी संप्राप्ति कर देता है। जिनको पहिले मुआक, पिरंग आदि दुःख हों, अथवा अन्य हेतुसे वृक्कधिकार हो गया हो, उनको अम्ल रसका दुष्परिणाम सत्वर प्रतीत हो जाता है।

बहुत दिनों तक अम्ल रसका अस्तियोग होनेपर कफ घातका विलयन हो जाता है। फिर पित्तघात प्रकुपित होकर त्वचापर शुष्कता ला देती है और कण्डूकी उत्पत्ति कर देती है। किडीको विसर्प से प्राप्ति भी हो जाती है।

निर्बल बहूत् वाले महिनो तक अम्ल रसका अस्तियोग करते रहें तो उनका

रक्त दूषित हो जाता है, उसमें रक्त रंजक पदार्थ कम हो जाता है फिर मुखमण्डल और वेह निस्तेज बन जाते हैं। पचनक्रिया सम्पूर्ण कार्य नहीं करती। मज्जाशोथ बना रहता है। मस्तिष्क अस्वस्थ बन जाता है। मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, बोन्य आदि भागों दूषित हो जाती हैं। मज्जा दूषित होनेपर भी अम्ल रसके सेवनमें निम्न नहीं होता, तो रक्तके भीतर अस्वामाविक जीव केन्द्रमुक्त रक्तानु और सेतासुओंके उपस्थिति होती है। फिर शोथ पकने लगता है और रोग अधिक बढ़ बन जाता है।

तन्मध्ये आचार्योंने कषायाम्ल कहा है। एक और अन्य अम्ल रस रक्तकी प्रतिक्रिया अम्ल बन जाने और विस्थापीर्ण हो जाने पर अनुकूल नहीं रहते। फिर भी एक वा अन्य अम्ल रसका आग्रहपूर्वक सेवन कराया जाय, तो रक्तपिच्छकी संश्रुति हो जाती है।

कुछ वर्षों पहिले एक कषया इंवीरमें संभ्रहणीकी चिकित्सा करा रही थी। उसके आमाशयका विष अति तेज था इस हेतुसे उसे एक नहीं देना चाहिये। फिर भी चिकित्सकने कुछ मी सुनाई न करते हुए एक कल्प कराया। परिणाममें २५ दिनके पश्चात् रुग्णा अति निपल बन गई। रक्तपित हा गया। मुँहसे रक्तस्राव होने लगा, चकर आने लगे। निद्रा दूर हो गई। रात्रिको थोड़े थोड़े समयमें पेशाबके लिये उठना पड़ता। फिर सुग्धकलनका प्रारम्भ कराया, एक १५ दिनके बाद शुष्ट लक्षण शमन हुए थे।

जो मनुष्य अम्ल रसमें अधिक प्रीति रखते हैं, उनमेंसे अनेकोंको नेत्रविकार हो जाता है। अग्रहाद्दृढदन्धर तिमिर रोग होनेका लिखते हैं। तिमिररोग पहिले, बूबरे, तीसरे, चाये पटलमें क्रमशः गति करता है। चौथे पटलमें जानेपर उसे लिङ्गनाश (काचबिन्दु) कहते हैं। यह रोग अम्ल रस, सूर्यका ताप, अग्नि, धूम्रपान इनका अधिक सेवन करनेवालोंको अधिक होता है। संसार के अन्य देशोंके अपेक्षा भारतमें काच बिन्दु पीबितोंकी संख्या अनेक गुनी अधिक है। इसी हेतुसे अमरिका और यूरोपसे नेत्रविशेषज्ञ अपना अनुभव बढ़ानेके लिये भारतमें आते रहते हैं।

जिन मनुष्योंको प्रथ-विद्रधि हुआ हो, वे अम्ल रसके सेवनमें आसक्त होते हैं, तो उसे कठिन और दुष्ट नाशो नश्यकी संश्रुति हो जाती है। अम्ल रस, रक्तको अम्ल बना देनेमें सफल हो जाय, तो शरभके पाक पक जाते हैं। इसी हेतुसे शरभका घास लगनेपर अम्लरसका निषेध किया जाता है।

काल दृष्टिसे आचार्योंने कहा है कि, यद्यत् कतु आनेपर कफ प्रकोपको दूर करने के लिये धमन क्रिया का आग्रह लेना चाहिये, तथा कफ वृद्धिवालोंका 'गुर्भस्थान्मथ मधुरं दिवाभ्यन्तं च्चर्जयेत्' अम्लरसका सेवन करशोभन होने तक छोड़ देना चाहिये।

सामान्यतः प्राथमकालमें अम्ल रसके सेवनमें प्रीति न रहनी चाहिये। इस सम्बन्धमें आचार्योंने कहा है कि, 'लवणाम्लकटुप्यानि म्यायामं चाप चर्जयेत्'। फिर भी यद्यत्मानमें कित्तासी लोग गरम गरम चाय, गरम भोजन और गहरे रसके

सेवनमें कुछ भा संकोच नहीं करते । परिष्काममें वे नाना प्रकारके रोगोंसे पोषित होते रहते हैं ।

धर्पा ऋतुमें घात और धर्पके 'कारण अधिक शक्ति होनेपर, उसकी शान्तिके लिये खट्टे-नमकीन रसका सेवन करना चाहिये । आचार्योंने लिखा है कि—

व्यञ्जन्त लघण स्नेहं घातवर्पा कुल्लेऽहनि ।

विशेषशीसे भोक्तव्य धर्पास्वनिक्षप्रशान्तये ॥

शरद ऋतुमें स्थामात्रिक पित्त प्रकोप जाता है । उसे शान्त करनेके लिये पित्तशामक तिक्तद्रव्योंका सेवन हितकर तथा पित्त-कफ-वर्द्धक दधि आदिका सेवन हानिकर माना जाता है ।

हेमन्त ऋतुमें जठराग्नि प्रबल होने लगती है । उस समय स्निग्ध, अम्ल, लघण रसका सेवन हितकर होता है । आचार्योंने शिशिर ऋतु में भी हेमन्तनिर्दिष्ट आहार विहारके सेवनकी आशा दी है ।

अम्ल रस कफकी तरलताका ह्रास करता है । इस सम्बन्धका धर्पान आगे कफपत्र गुणके साथ किया जायगा ।

लघण रस ।

नमकीन रस (Salty) में जल और अम्लितत्वकी प्रधानता है । यह घातकर कफ-पित्त-वर्द्धक, उष्ण, धार्प, मधुविपाकी, पाचक, दाहक और अचक्षुष्य है ।

मगवान् आश्रयेने लिखा है कि, लघण रस पाचन, स्नेहन (अन्नका गलानेवाला) दीपन, प्याथन (साव करनेवाला), छेदन (चिपके हुए घुए कफ आदिको उम्पावने वाला), मेदन (बद्ध मलादिका मेदन करनेवाला), तीक्ष्ण, सर, (अनुलोमन), विक्रांती (संभिन्धनोंको शिथिल करनेवाला), अयस्त्रयी (उदरमें संघृष्ट मल आदिको बिना ही प्रकारे नीचेकी ओर गिरानेवाला), अयस्त्रयी (स्थानको रिक्त बनानेवाला), पातहर, स्तम्भित, बद्ध (कठोरमल) और सखीतमलोंका नाशक, शोष सब रसोंका विशेष (मोचनोंमें नमक अधिक हो जानेपर सब रसोंका स्वाद मारा जाता है), गुप्तमें लालासायको बढानेवाला, कफसाधी, मार्गशोधक, देहके सब अयस्यों को मृदु करनेवाला, भोजनमें रुचि लानेवाला तथा भोजनमें सर्यदा और सवया उपभोगी है । यह अति गुरु और अति स्निग्ध नहीं है । यह उष्ण है ।

इन गुणोंसे मुक्त होनेपर भी इसका अतियोग होनेपर पित्तको प्रकुपित करता है । रक्तामितरण क्रियाको उत्तेजित करता है । वृषा पक्वाता है । मूर्च्छा (चकर) ला देता है । संताप करता है । हाय-वैरोंके तलोंकी त्वचा फट जाती है या फूटनी कराता है । मांसपेशियोंको शिथिल बनाता है । कुष्ठ गलने लगता है । सेन्द्रिय विपत्ती वृद्धि करता है । शोषकी अति वृद्धि कर उसे पक्व देता है । दांतोंको गिराता है । पुंसत्वक

नष्ट करता है। इन्द्रियाँको निर्बल बना देता है, जिससे वह अपने कार्य करनेमें असमर्थ हो जाती है। भुर्रियों पक जाना, बालोंका श्वेत हो जाना आदि वृद्धावस्था के चिह्न उत्पन्न करता है तथा खालित्प (गंजापन) की प्राप्ति कराता है। एवं रक्तपित्त, अम्लापित्त, विसप, वातरक्त, बिचर्बिका, इन्द्रज्वर प्रभृति विकारोंको उत्पन्न करता है।

महर्षि वाग्भटाचार्यने आघ्राहृतसंग्रहमें लिखा है कि :—

खलति पलित-तृष्णा-ताप-मूर्छा विसर्प—

श्वयथु क्किटिम-कोटाक्षेप रोधास्रपित्तम् ।

स्रुत-विष-मदवृद्धि वातरक्तं करोति—

सूपयति बलमोजः सोऽति वा सेवनेन ॥

नमकका आत सेवन करनेपर गंजापन, बालोंका श्वेत हो जाना, तृषणादि, भ्याकुलत्व, मूर्छा, श्वित्प, शोथ, क्किटिम, कुष्ठ, कोठ (शक्तिपित्त मेद), आक्षेप, रोध (रक्त मिसरण और हृदयका रोध) रक्तपित्त, स्रुतवृद्धि, विषप्रकोप, मदवृद्धि (नशा-शा रहना), वातरक्त, बलक्षय और आज्वर्य कराता है।

लवणरसमें विरोध लवणका ही उपयोग होता है। लवणको डाक्टरीमें सोडियम क्लोराइड (Sodium Chloride) कहा दो है। उसका सांकेतिक अक्षर NaCl है। अल्प मात्रामें यह अग्निप्रदीपक, बलकारक, परिवर्तक (Alterative) है। अधिक मात्रामें धानक विरोधक, हृमिष्य है। अत्यधिक मात्रामें आमाराय और अन्धमें प्रदाह उत्पादक है। बाह्य स्थानिक प्रयोगमें उम्रवासायक तथा प्रसूपाकका रोषक है। परिशुक्त मात्रा १० से ६० ग्रेन। घमन-विरोधनार्थ आपसे २ ग्रॉस तक निवाये जलके साथ। स्नानाय १ गलन जलमें ४—६ ग्रॉसके हिसाबसे। इसके अतिरिक्त नमक से जलसे मुल्ले मी कराये जाते हैं।

नमक १ गुने शक्तिजल और १० गुने विसरसेनमें गल जाता है।

लवण, यह सर्वरसोंमें राजा रस है। बिना लवण मोचनमें स्वाद नहीं आ सकता। सेन्द्रिय विषको नष्ट करनेके लिये लवणकी अत्यावश्यकता है। संसारमें जो दूषित वायुके शोषणका कार्य लवण (लवणप्रधान समुद्र) ही कर रहा है। शुक्रान या मज्जनमें नमक सुखा रहनेपर वायुका आकर्षण करता रहता है। इसी हेतुसे सर्पा ऋतुमें यह गोला हो जाता है।

लवणका उपयोग संसारमें सर्वत्र हो रहा है। पशुचाल्य देशोंमें जिस तरह संग्रहालय पूर्वक रखते हैं, उस तरह सम्राज्य भारत आदि निर्जन देशोंमें नहीं होती। अपने स्वास्थ्य का संरक्षण करनेवालों को आदिये कि, बजारसे शरीर किसे हुए समुद्र नमक और घामर नमकको शुद्ध करके उपयोगमें लें। समुद्रनमक और घामरनमक बनानेके समय बहुतसा धूला, रेत और कीड़े उबकर उसमें मिल जाते हैं। तैयार होनेके पश्चात् उसपर चूरे मूले रहते हैं; मकड़ी जाला पौषवी और क्षिप्रावृत्ती

उसमें फिरती रहती हैं। छोटे छोटे जन्तु उसमें मरते रहते हैं, धूल गिरती रहती है और दूषित वायु आकर्षित होती रहती है। ऐसे नमकको भोजनमें मिलाना, यह अनेक रोगोंको आह्वान करनेके समान है। यथार्थमें नमकको जलमें मिलाकर छान लेवें। फिर कबाहीमें उमालकर सुखा देने पर घूनेके समान उज्वल बन जाता है। उसे अमृतबानमें भर लें और उसमेंसे उपयोग करते रहें, तो सब दोषोंसे बचाव हो जाता है तथा योग्य गुणकी प्राप्ति हो जाती है।

लवणरसको घातहर कहा है। यह क्रिया उष्ण, गुरु और स्निग्ध गुणके हेतुसे होती है। यह घातहरपना समस्त घात रोगोंमें स्पष्ट प्रतीत नहीं होता, किन्तु उदरमें उत्पन्न घातपर स्पष्ट प्रतीत होता है। उदरमें अघ्राण, वेदना, शूल या भारीपन हो, उनको यह दूर करता है। यदि यह शूल कोणज जन्य हो तो कीटाणुओंको नष्ट करता है, विषको जलाता है और सदाहीन मलको आगे फेंक देता है।

लवण पिचवर्द्धक है, यह कार्य अग्नि रसकी प्रधानताके हेतुसे होना है। भोजनमें जितना नमक अधिक होगा, उतना ही लाला निस्सरण कम और आमारायिक रसस्वाय अधिक होता है। पुनः आहार रसको आमारायमेसे अन्त्रमें जानेपर नमकीन बनानेके लिये आमाराय रसके अनुपातसे यकृत की पिचस्वाय करना पड़ता है। आमाराय रस और यकृत इन दोनोंको आयुर्वेदने पिच कहा गया है। इन दोनोंका स्वाय करनेमें नमक हेतु होता है।

इस पिच वर्द्धक गुण के हेतु से लवण में अग्निप्रदीपक, पाचक, रोचक गुण प्रतीत होते हैं। लवण के साथ अम्लरस का संयोग होने पर इसका कार्य प्रबलतर बन जाता है। पाचन गुण के हेतु से आम का सम्यक् पचन होता है। कोणाणु और विष नष्ट होते हैं तथा उदर में दुग्ध की उत्पत्ति नहीं होती। रोचक गुण होने से जिह्वा और मुख की शुद्धि होती है। लालास्वाय अधिक होता है, इससे भोजन में संतोंग मिलता है और वेदबल की वृद्धि होती है।

लवण रस के सेवन से कुछ स्निग्ध गुण की प्राप्ति होती है। यह स्नेहन कार्य सर्व पदार्थों में सम्मिलित हो जाने के हेतु से प्रतीत होता है। भोजन स्नेह प्रधान (घृत-चैल मुक्त) हो, तो उसकी स्निग्धता को लवण चारों ओर सत्वर फैला देता है। फिर उस हेतु से त्वचा में तेजी आ जाती है।

लवण रस में अग्नि के साथ जलतत्व की भी प्रधानता है। इस हेतु से लवण को कफवर्द्धक भी माना है। लवण में गुरु और स्निग्ध गुण होने से तथा पिपाक मधुर होने से कफघात की वृद्धि होती है। सामान्यतः पिच की घीक्ष्यता उत्पन्न होने पर उस स्थान में तीक्ष्णता के शमनार्थ कफघात (पतला कफ त्रय) उत्पन्न होती है। जो देह को मोटा बनाती है। लवण, कफ-मल की वृद्धि तो केवल

प्रदाहवस्था में ही स्वचित् परम्परागत करावा है। सामान्यत यह सपरीत कच-मल का नष्ट करने का कार्य कर देता है।

मानव देह के भीतर लवण अन्य पदार्थों की अपेक्षा रक्त में रहता है। रक्त के भीतर रक्ताणु, श्वेताणु, रक्तचक्रिकाएँ और रक्तस से ४ विभाग हैं। इन में रक्तस के (Blood plasma) के भीतर नमक रहता है। मनुष्य जो वनस्पति आहार का सेवन करता है, उस आहार में खनिजिक ही नमक यत्मान है। यह नमक पोषक भुक्त है। इस आहार में से रक्त बन कर फिर रक्त में प्रवेश करता है, तब इसके साथ पोषक युक्त नमक भी रहता है। रक्तसके भीतर जो नमक है वह सोडियम युक्त है। इन दोनों नमकों का संयोग होने पर रासायनिक पिरलेक्स होता है। पोषक क्लोरोइड और सोडा कार्बोनेट या फोस्फेट निर्मित होता है, जो शारीरिक रचना में अनावश्यक माना गया है। जिससे उस (कार्बोनेट या फोस्फेट का) अपरिपक्व रूप में ही देह से बाहर निकाल दिया जाता है। इस सम्मिलन या युग्म में नमक (नाडा क्लोरोइड) का हास होता है। जिससे मांसन में इसकी आवश्यकता रहती है।

मोजन में जो नमक लिया जाता है, उसके विधोपांश का त्याग, पोषक क्लोरोइड के रूपमें मूत्र द्वारा होता और उसका कुछ अंश मल और स्वेद द्वारा बाहर निकलता रहता है। कितनेकराग—कुफुसप्रदाह और कर्कशोट के नूतन सन्तुभ्रों की वृद्धि होने पर वृक्षप्रदाह हो, तो मूत्र द्वारा नमक का बाहर निकालना नहीं हो सकता या अति कम होता है। ऐसी अवस्था में नमक का सेवन होता रहेगा ता रक्त के भीतर लवण का अत्यधिक संग्रह हो जायगा। फिर अनेक रोगों का निर्माण होगा।

नमक उष्ण धीर्य होने से स्वेद भी वृद्धि करेगा है। इसी हेतु में आनाकों ने स्नेहन के साथ स्वेदन गुण भी दर्शाया है। इस स्वेदन क्रिया द्वारा देहगत विष बाहर निकलता रहता है। यदि स्वेद का अचरोच हो जाय तो विष वृद्धि होने लगती है। अधिक नमक का सेवन होने पर स्वेद प्रतियोगी शाय पीडित हो जाती है। फिर घृन्तन बढ़ने लगती है।

यदि लवण का सेवन न किया जाय, तो आहार में मिला हुआ विष देह में रह जाने से रक्त के भीतर लवण का अभाव हो जायगा, उस से विष का अंतर देह और मस्तिष्क पर होने के पश्चात् विविध रोगों का उत्पत्ति हो कर पचन क्रिया मन्द हो जायगी। मांस पेशियों को शक्ति का हास हो जायगा, मस्तिष्क शक्ति भी शिथिल हो जायगी और बाहर से प्रकृत कीटाणुओं का नष्ट करने का कार्य योग्य रूपसे नहीं हो सकेगा।

अत्यधिक रक्तभाव, एवं विषुषिका के दस्तसे रक्त में से रक्तस का अति हो जाना क्लोरोइड का प्रयोग, अथवा विषुषिकाजनित बेहोला, शक्तिपाठ मन्त्र दीप त्यागों

प्वर में नाभी अति क्षीण और शरीर शीतल हो जाना आदि अवस्थाओं में लवणजल का अन्त सेचन (Infusion) कराया जाता है। यह अन्त सेचन गुदा मार्ग से और त्वचा के नीचे से होता है। इसको विवि रोगपरिचर्या के मोतर ६ ठप्पे प्रकरण उपचार पद्धति के २५ और २७ वे भाग में बताया है।

डॉक्टर पोप ने मेटेरिया मेडिका में बताया है कि, विद्युच्चिकी की चिकित्सा में लवणजल के अन्त सेचन से बहुत अन्त्रा परिणाम होता है। उस के लिये निम्न लिखित मिश्रण को विशेष लाभप्रद माना है।

लवण (साडियम क्लोराइड)	१२० ग्रेन
पोटैश क्लोराइड	६ ग्रेन
केल्शियम क्लोराइड	४ ग्रेन
विशुद्ध वाष्प जल	१ पिण्ड

इस मिश्रण के मोतर सोडा वाई कार्ब ४० ग्रेन और ट्राइशर्करा (ग्लूकोज) २४ ग्रेन मिला लेना विशेष हितायक है। यह मिश्रण लगभग १ पिण्ड तक लिया जाता है।

मस्तिष्क शोथ और कर्नाटि के मोतर दनाश वृद्धि होने पर शिरा द्वारा लवण जल का सेचन किया जाता है। मस्तिष्कगत अयुर्दजन्य दबाव वृद्धि, वृषसन्ध्यास (रक्त में मूत्रविष वृद्धि और मस्तिष्कपर्यन्त प्रवाह के तात्कालिक लक्षणों की उपस्थिति होने पर सामयिक शान्ति पहुचाने के लिय अन्त सेचन किया जाता है (२० से ३० प्रतिशत द्रावण में से ३० मिली लीटर अर्थात् लगभग १ औंस) परन्तु मस्तिष्क शोथ, मस्तिष्क दबाव के प्रबल लक्षणसमूह की उत्पत्ति के पश्चात् और कितनेक प्रकार के सिर दर्द में इसका समर्थन कम हुआ है।

अति रक्तसाव, रक्त में से रक्तद्रव का हास आदि से उत्पन्न यक्ष्मा या शक्ति पात, कृत्तियम सेन्द्रिय विपप्रकोपमय स्थिति, कार्बन मोनोक्साइड गैसजन्य विषाक्त अपूर्ण पोषण और स्लान्ति पीडितों को शिरा या गुदा द्वारा लवणजल का अन्त सेचन किया जाता है। ९ प्रतिशत अर्थात् १ औंस विशुद्ध जल में १८ ग्रेन नमक।

यदि रक्त सफल होगा, तो मांस, मेद आदि घातुर्दे भी सफल बनेंगी। रक्त में से लवण का हास होगा, तो मांस पेशियों शुष्क और कठोर बन जायेंगी। उनकी वृद्धि में प्रतिश्रय होगा। वायु का आक्षेप होगा रूग्ण और फिर विक्रिया भी होने लगगी।

यदि लवण का सेवन अत्यधिक होगा, तो रक्त में लवण की मात्रा बढ़ जायगी। फिर तृप्ता बनेगी। जिससे जलपान अधिक करना पड़ेगा। वृक्षा को अधिक भ्रम पहुँचेगा। पश्चात् शैतः शैत वृक्षप्रदाह, कम्बु, शोथ, रक्तपित्त, धमनीक्षेपकाठिन्य आदि रोग उपस्थित हो जायेंगे।

लवण उष्ण वीर्य होने से वेह में अत्यधिक मात्रा हो जाने पर मम्बा, शुक्र, और ओज, जो शक्ति गुणसूचक हैं, उनको बहुत हानि पहुँचती है। मम्बा कम होने पर नेत्र की दृष्टि भी मन्द हो जाती है। हानि होते हुए भी नमक का हास नहीं होगा तो त्वचा, मांस लसिकावाहिनियों, लसिका ग्रन्थियों में कोय होगा। फिर वातरू और कुष्ठरोग की प्राप्ति दो आयगी।

त्वचा पर घाव में कीटाणु प्रवेश हो जाने से वहाँ पर गलनावस्था उत्पन्न हुई हो या घायली गलनक्षम (Septic) हो तो उसे लवण-घावन से घाया बचा है। नमक ४ भाग, सोडा साइट्रेस १ भाग और जल १२० भाग मिलाया जाता है। ड्राफ्टरी में इसे राइट्स का घावन (Wright's solution) संज्ञा दी है।

उसका उपयोग नाडीग्रह, विद्रधि और गुदाप्रवेश को घौने के लिये किया जाता है।

विषप्रकोप, आमाराग में आमसृष्टि रीत्यज्ञार (Silver Nitrate) के मेकनःसे उत्तम विष, जलोका आमाराग में चली जाना या नासिका से छपर चढ़ जाना आदि विकारों में लवणजल का पान कराकर घमन करायी जाती है।

यदि अन्त्र में सूत्र जैसे कृमि (Thread worms) हो गये हों, तो गुदा मार्ग से लवणजल धुआया जाता है। परन्तु ४ घोंत से ज्यादा नमक नहीं लेना चाहिये, इससे उपस्थित कृमिओं को नष्ट करना और उनकी भाषी उत्पत्ति को रोकना, इन दोनों कार्यों की सिद्धि होती है।

यदि लवणजल का अन्तःसेवन अधिक हागा तो कृमिम मधुमेह (Glycosuria), मन्त्र प्वर और क्वचित् लसिकामेह (Albuminuria) की प्राप्ति हो जाती है। कमी कमी पुस्तकशोध और हृदय का अत्यधिक प्रसारण होकर मृत्यु भी हो जाती है।

कण्ठमाल, नलगायड, कफप्रकोप, कफमन्त्र जोर्ष स्वासरोमा आदि रोगों में लवणजल से स्नान तथा समुद्र तट पर निवास कराना हितावह माना जाता है।

पूयमय अमिष्पन्द रोग में नेत्रों को घौने के लिये नमक जल का उपचार किया जाता है।

आलादृष्टि से आचार्यों ने लिखा है कि, मीष्पन्द में नमक का सेवन कम न कम करना चाहिये। इस तरह शब्द अन्त में भी अब कि गर्मी अधिक पड़ती है या उस समय भी नमक कम कर देना चाहिये।

यदि रक्त दबाव वृद्धि या घमनिकोपकाठिन्य नया रोग हो या रक्तस्राव कम करने के लिये कुछ समय के लिये नमक का त्याग करना पड़ता है।

तिक्त रस ।

कटुया रस (Bitter) वायु और आकाश-सत्त्व-प्रधान होने से वातवर्द्धक, पित्तनाशक, कफनाशक और अग्निप्रदीपक है । इस रसका विपाक कटु और धीर्य शीतल है ।

चरकसंहिता में लिखा है कि, कटुये रस के सेवन की मनुष्यों की स्यामाविक रक्ति नहीं होती किन्तु यह अरुचिका नाशक है । यह विपहर, कृमिनाशक, मूर्च्छा, गद, कण्डू, कुष्ठ और तृषा को शमन करनेवाला, स्वचा और मांस को दृढ़ बनानेवाला, ज्वरघ्न, दीपन, पाचन, स्तन्यशोधक, लोखन, क्लेद (गीलापन), मेद, घसा, मज्जा लसिका, पूय, स्वेद, मूत्र, मल, पित्त और कफ, इन सब को सुखानेवाला, रुच, शीतल और क्षुद्र है ।

इस का अतियोग होने पर रीक्ष्य के हेतु से तथा सर और विशद (क्लेद शोकक) स्वभाव होने से रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा, शुक्र, इन सत्तों धातुओं को सुखाता है । खोता को पुरकुरा बना देता है, बल का हरण करता, देह को कृश बनाता, क्लान्ति, बेहोशी, भ्रम (चक्र) ला देता, मुंह को सुखा देता है एवं इनके अतिरिक्त इतर वातविकारों (मन्वाक्षम, आक्षेप, अर्दित आदि) को उत्पन्न कर देता है ।

अष्टाह संप्रहकार ने लिखा है कि —

धातुघ्न क्षय-मूर्च्छा-क्लान्ति-भ्रम-वातरोग-परुपत्वम् ।

स्वर-विशद-रीक्ष्य-भावै सोऽतिसमासेयिषः कुर्यात् ॥

तिक्त रस का अधिक सेवन करने पर धातुघ्न, घ्नघ्न, मूर्च्छा, क्लान्ति, भ्रम (चक्र आना), वातरेग, फोडोरता, श्वरकुरापन, विशद (क्लेदशोषण, रुचता आदि उत्पन्न करता है । तिक्तसम्प्रधान औषधि का सेवन करने पर विज्ञा की वातनाडी के तन्तुओं में अणिक धरिता आ जाती है) जिससे उस समय ग्रहण की हुई अन्य वस्तु का स्वाद विदित नहीं होता । मुंह में बेस्वातुपन रहता हो और वह चिपचिपा रहता हो, तो यह दोष तिक्त रस के सेवन से साफ़ हो जाता है । फिर भोजन में रुचि उत्पन्न हो जाती है ।

चरक संहिताकार ने तिक्त रस का गुण सब से पहिले विपघ्न कहा है अर्थात् यह आमविष, सेन्द्रिय विष, नाना प्रकार के कीटाणुजन्य विष, पित्तप्रकोपज विष; इन सब को दूर करता है । ज्वर को उत्पत्ति विशेषतः आमविष और कीटाणु जन्य विष (पित्त प्रकोप) से होती है । कटुया रस आम, कीटाणु और विष को नष्ट कर ज्वर को दूर कर देता है । इसी हेतु से आचार्यों ने इसे ज्वरघ्न कहा है । शरद ऋतु में ज्वर पित्त प्रकोप से होता है या विषम ज्वर के कीटाणुओं के विषप्रकोपसे होता है । कटुये रसमें पित्तशामक और विषनाशक, दोनों गुण अभस्थित हैं,

इतदनुसे त्रिज्वर और विषमज्वरमें सफलतापूर्वक कार्य करता है। कटु ज्वर में भी गिलास, कुटकी, चिरायता, सप्तपत्र आदि का प्रयोग हितकारक है।

दूसरा गुण कृमिघ्न दर्शाया है। सूत्रम कीटाणुओं को भी आसुबेद ने कृमि मारती है। रक्त और त्वचा के भीतर विविध रोगों का कीटाणु प्रवेश कर जाते हैं, जो फिर कण्डू, कुष्ठ, दाह, मूत्र, विद्रधि तथा नाना प्रकार के त्वचारोग उत्पन्न करते हैं। वे इस रस के सघन से नष्ट हो जाते हैं। फिर त्वचा, रक्त और मांस को सजान बना देता है। एवं यह शीतवीर्य होने से रक्त का प्रसादन भी कर देता है।

यह रस शीतवीर्य और पित्तशामक होने से तृषा और दाह का शमन करता है। शारीरिक उष्णता का ह्रास करता है।

कले शोथक गुण होने से ग्रन्थों में रहे हुए क्लेस को सुम्भाता है। एवं रक्त और लघु गुण होने से मेद, मज्जा और शुक का शोथक करता है। शुक में पतलापन और उष्णता हो तो वह शीतल और गाढ़ा बन जाता है। यदि इस रस का अतियोग किया जाय तो शुक की मात्रा भी कम हो जाती है। इस रस के रक्त गुण का प्रभाव मल पर भी पड़ता है। मल में से स्निग्धता और द्रव्यता का ह्रास होता है। मल गांठदार बन जाता है। जिससे मलाशयोष होता है। मलाशयोष होने पर रक्त के भीतर दूषित रस का आकर्षण होता है, इसलिये मलाशयोष न होने के लिये सम्हालना चाहिये।

देह में पित्त, आम या कटु विहृत होने पर स्तन्य (दूध) में भी विहृति आ जाती है। स्तन्य दूषित रहे तो सतान के स्वास्थ्य पर खराब असर पहुँचता है। अतः स्तन्य शोधनार्थ माता को तुरन्त तिक्त-रस प्रधान गिल्लोय सप्तपत्र, नीम की अन्तरहास, निरायता, कुटकी आदि का सेवन कराना चाहिये।

इस रस का प्रयास में सेवन करने पर वातनादियों पर पापक परिष्कार होता है। वातनादियों का प्रदाह दूर होता है। वातनादियों और मस्तिष्कस्य केन्द्र ससक्त जाते हैं। विचारशक्ति और स्मरणशक्ति की वृद्धि होती है।

तिक्त रस वातकफ हाने से कण्डू के शक, भाजी आदि का सघन शीतलत्व कम से कम करना चाहिये। पर्याकषु में वायु का स्वाभाविक प्रकोप होता है। अतः इस कषु में तिक्त रस का सेवन कम करना चाहिये। शरद ऋतु में तिक्त प्रकोप होता है अतः कण्डू के रस का सघन हितकर माना गया है।

कटु रस

धरपा रस (Sharp Acrid Puogent) वायु और अग्नि की प्रधानता युक्त है। यह वातकफ, पित्तकफ, कानाशक, उष्ण वीर्य, कटुविराग, रुच, लघु-तीक्ष्ण है।

चरक सहिताकार लिखते हैं कि, कटु रस रसस्त्राव कराकर मुख को साफ करता है। अग्नि को प्रदीप्त करता है। रागे हुए अन्न का विदाह करता है। नासिका से कफस्त्राव कराता है। आँसुओं में जल ला देता है। इन्द्रियों को उत्तेजित करता है। अतसक, शोथ, स्थूलता, कफप्रधान शीतपित्त, अभिष्यन्द (अतों में रस मरा रहना) र्नेह, (चिकनापन) स्वेद, क्लेद (चिपचिपा रस) तथा मर्लों को नष्ट करता है। योञ्ज को रुचिकर बना देता है। कण्ठ का नाश करता है। ब्रणों का घैटा देता है। कृमियों का नाश करता है, मांस को मुलाता है। जमे हुए रक्त को तोड़ देता है। प्रतिबन्ध को दूर करता है, (जड़के हुए साँवों को मुक्त करता है)। मार्गों को साफ कर देता है। श्लेष्मा को दूर करता है। यह लघु, उष्ण और शुष्क है।

इस रस का अत्यधिक उपयोग किया जाय, तो कटुविपाक के प्रभाव से पुंसत्व नष्ट हो जाता है (यह शुक्र को पतला बना देता है) रस (कटु) धीर्य (उष्ण) के प्रभाव से मोह (चिचिनाश), ग्लानि, अषसाद, कृशता, मूर्च्छा, वेद का टैकापन, भ्रम (जङ्गर), कण्ठग्राह, देह में जलन, यक्ष-हास तथा तृया वृद्धि करता है। वायु और अग्नि के मातृत्व से भ्रम, मद, (इपत्तय), दध्यु (दाह), कम्प, तोद (नुई चुमाने के समान दर्द), मेद (हाय पीर टूटना) आदि घात प्रकोपज लक्षण चरक, नाहु, पीशु (इस्ततला), पार्वी और पीठ आदि प्रदेशों में उत्पन्न करता है।

अष्टाङ्ग समदकार ने लिखा है कि —

कुरुतेऽतिनिपेक्षित स वृष्णा-भव-मूर्च्छा-यमि-मोह-वेहसादान् ।

यस्य-शुक्र-ग्लोपशोष-कम्प-भ्रम-ताप-ग्लपनाति कर्शनानि ॥

कन्द-चरण-पारश-वृष्ट-अमृतिष्वनिलस्य कोपयसितीत्रम् ।

सकोच-तोद भेदेर्वाय्यचग्नि-गुणाधिकत्वेन ॥

चरपरे रस का अधिक सेवन करने पर तृपावृद्धि, मद, मूर्च्छा, पान्ति, मोह, अषसाद (यिषिलता), यक्षहास, शुक्रक्षय, कण्ठकाशोप, कम्प, भ्रम, दाह, ग्लानि, अतिकृशता, हाय और पैरों के तल, पार्वी, वृद्धमाग आदि में वायु और अग्नि का तीव्र प्रकोप होकर संकोच (लिंचाव), तोद (नुई चुमाने समान वेदना), मेद (फूटनी) आदि लक्षण प्रकाशित होतें हैं।

इस रस में अग्नि की प्रधानता होने से लाला ग्रामाशय रस, यक्षपित्त, अन्नरस आदि का स्त्राव अधिक होता है। मुख से लेकर गुदा तक रबी हुई श्लैष्मिक कला में दाहक असर पहुँचता है। इस का विशेष कार्य दीपन पाचन है। यह ग्राम को पचाता है और पाचन शक्ति को यदाता है। कीटाणुओं का नष्ट करता है। विट्, चिका, अपचन आदि के उत्पादक कीटाणुओं का यह नाश कर देता है।

यह यक्षपित्त का स्त्राव अधिक करता है। जिससे मूत्र में पीला रंग आ जाता है। यदि यक्षपित्त का स्त्राव कम हो तो मूत्र सफेद, दुर्गन्धयुक्त ग्राम-मिथित

और कमो कमो सूक्ष्म पृथिव्युक्त बन जाता है। कटु रस इस निबलता को दूर कर देता है। यदि यकृतित्त का साथ अत्यधिक कठया आय, तो मल पतला गरम और सास-पीसा हो जाता है। पक्वाशय को क्षीयिक कला में क्षीम उत्पन्न होता है। मूत्र बोधी माया में और अपनसह लाल उतरता है।

यह रस सामान्यतः रुचिकर है। इस के साथ अम्ल रस का संयोग हो, तो अधिक रुचिकर बन जाता है। इस के सेवन से मुह का चिपचिपापन दूर होता है। लालासाय अधिक होता है। इस हेतु से भोजन को चबा कर मुलायम करने में बड़ी सुविधा मिल जाती है। अन्न कितना अधिक चबाया जाता है, उतना ही भ्रम आमाशय को कम करना पड़ता है। भूँह में चराने के लिये भीक्षि ने दाँत दिया है। यह साधन आमाशय के पास न होने से आमाशय को अति मंयन क्रिया करनी पड़ती है। फिर भी कितनाक अंश नहीं टूट सकेता, उसे आगे फेंक देता है। जो अन्न गुमा गुमा कर मल के साथ बाहर निकाल देता है।

अम्ल रस और लघु रस जिस तरह भोजन के अणु अणु में प्रवेश कर जाता है। उस तरह कटु रस भी भोजन में सर्वत्र फैल जाता है। जिससे भोजन के सत्व माग के शोष्य के साथ इसका भी शोष्य हो ही जाता है। रक्त, मांस आदि घातुओं में यह पहुँच जाता है। रक्त में पहुँचने से अन्न या लसिका का अधिक शोषण होता है। रक्त में रही हुई नित्यता का कुछ अंश में नाश होता है। फिर जल जाता है। कितनेक प्रश्नर के उद्भिज क्षीणु कष्ट हो जाते हैं। मांस को कुछ अंश में सुखावा है। एवं मेद, मज्जा, वीर्य आदि को लघु और पतला बनाता है। इस रस का सेवन मर्यादा में किया जाय और स्नेह (घृत, तेल, भस्मन, दूध, दही) का सेवन साथ में किया जाय, ता मांस आदि घातुओं का रक्षण हो जाता है और वे सबल भी बन जाते हैं।

कटु रस दीपन, पाचन, आम, कफ और विर का नाशक होने से असमक (आमाशय में भोजन पका पका दूषित हो जाना), कण्ठरोध (कण्ठ से गल में रुकावट), क्वचिका, अपचन, उदरद (कटिणु से उत्पन्न शीतपित्त), मेरोशुद्धि क्षीणारोध, प्रणशोय, इन सब पर प्रयुक्त होता है।

इस का दीर्घकाल तक अति सेवन होता रहे और घृतादि का बोध्य सेवन न हो तो धातनाशिया प्रदाह-पीडित होती हैं। फिर मांस पेशियों का आकुंचन होता है। पेशी आक्षेप (वायुटे आना), वेद के किसी भी माग में कम्प होना, कमर जकड़ जाना, सन्धियों में टूटने के समान पीका होना, फण्ड रूढ़ जाना, स्नेदसाय अधिक होना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं।

कटु रस में लाल और पीली मिच का उपयोग अधिक होता है। काल की

अपेक्षा पीली मिच अति नाटक है। नेपाल, धरार, सी० पी० आदि मार्गों में पीशी मिच का उपयोग होत है।

डाक्टरों मतानुसार मिच घमनियों के रक्षाभिरण का उत्तेजना देनेवाली और अग्नि प्रदीपक है। खाने पर श्लैष्मिक कला में उग्रता पहुँचाती है। बाहर त्वचा पर या नासिका छोट, नेत्रादि की श्लैष्मिक कला पर लगाने पर उग्रता पहुँचाती है और लाली ला देती है। स्वल्प मात्रा में सेवन करने पर मुख में लाला साव करती है। अधिक मात्रा में सेवन करने पर हृदय को उच्चैःस्थित करती है। हृदय के स्पन्दन संख्या में वृद्धि करती है। नाडी के ठोके भी बढ़ जाते हैं। इससे अधिक मात्रा में घामाणय, अत्र आदि में उग्रता आती है। यकृत प्रदेश में वंदना और वैचैनी का अनुभव होता है। अत्यधिक मात्रा ली जाय तो वृक्षों में उग्रता और प्रदाह उत्पन्न होती है। फिर मूत्रवृच्छ होता है। मूत्र का घर्षण लाल हो जाता है। इसके अतिरिक्त जननेन्द्रिय में भी उत्तेजना उपस्थित होती है।

शोथकाल में स्वामाधिक अग्नि प्रदीप्त होती है, उस समय मधुर रस का सेवन अधिक लाभदायक होता है। कटु रस का सेवन कम होता मधुर रस क्लृप्तवृद्धि का कार्य अधिक कर सकता है। इसलिये आचार्यों ने कटु विक्रम-श्याम भोजन का निषेध किया है।

बसंत ऋतु में कफ प्रकोप होता है। कफ को बाहर निकालनेवाला आहार रित्तावह माना जाता है। इस हेतु से कटु रस का सेवन हो सकता है। प्रोष्णऋतु में स्वामाधिक स्वेद अधिक आता है। व्याकुलता और दाह होती हैं। ऐसी अवस्था में कटु रस का सेवन हानिकर होता है। इस हेतु से लघण, अम्ल, कटु रस का निषेध किया है।

वषा ऋतु में स्वामाधिक वात प्रकोप होता है। कटु रस में पित्त वृद्धि के साथ वात वृद्धि कराने का भी गुण है। इस हेतु से अग्नि का संरक्षण हो, इस तत्त्व सम्बलते हुए कटु रस का सेवन करना चाहिये।

शरद ऋतु में पित्त प्रकोप हो जाता है। थोड़ी-सी भूख होने पर शीतज्वर (मलेरिया) का आक्रमण हो जाता है। उस समय पित्त शमनार्थ तिक्त रस का सेवन रित्तावह है। कटु रस के सेवन से पित्त वृद्धि होती है अतः वह इष्ट नहीं है।

प्राचीन आचार्यों ने कटु रस का सेवन अधिक रूप से करने की आशा नहीं दी। कटु रस में एक प्रकार का विशेष स्वाद होता है, जिससे सामान्य जनता उसे छोड़ नहीं सकती, यदि आचार्य अनुमति प्रदान करते, तो जनता जिह्वा (रसनेन्द्रिय) पर विशुद्धता समय ही नहीं रखती।

कफ प्रवृत्तियों को मिच या अन्य कटु रस जितना सहन होता है, उतना पित्त प्रकृति और वात प्रकृतियों से नहीं होता। पित्त प्रकृतियों के लिये वा

मिर्च की मात्रा थोड़ी सी भी बढ़ जायगी तो अपना असर पहुँचाये बिना नहीं रहेगी। अतः जिन का शरीर के स्वास्थ्य के रक्षक और दीर्घायु भोगने की चाहत है, उनका चाहिये कि, कटु रस का अवियोग न होने दें।

कटु रस का उपयोग जिस तरह पचनेन्द्रिय ४स्था पर होता है, उसी तरह त्वचा पर बाह्य उपयोग भी होता है। संनिपात में शीतल रसद्वारा पर अजस्रता, साँठ, रास आदि की मालिश करायी जाती है। बच्चों का पाक ज्वर को दूर करने के लिये पुस्तिस के साथ कटु द्रव्य मिला दिये जाते हैं। स्नान विरोध में उमता पहुँचाने, के लिये प्रयोग किया जाता है। यान्त्रिक शमन न होने पर हृदयापरिक प्रदेश में एा का स्नान लगाया जाता है। स्नान विरोध में पातप्ररोज पीना मियाने के लिए मालिश या लेप का प्रयोग किया जाता है।

कपायरस

कत्रैला रस (Astringent) वायु और पृथ्वी तत्त्वप्रधान है। यह कटु नाशक, पित्तशामक और पातवर्द्धक है। इस में मुख्य गुण प्राची है। यह विद्रा में विशदता, स्तम्भता और जकता लाता है। कण्ठ को जकता है। हृदय में भी निष्काय करता है। विषाक कटु और धीरे शीतल है।

चरक संहिता में लिखा है कि, कपाय रस संशमन, प्राची सधारण, पीडित (आकुंचनकारी), रोषण शोषण, स्तम्भन श्लेष्मा, पित्त और रक्त को शमन करनेवाला, शरीर के म्लेद का शोषण करनेवाला, रुद्ध, शीतल और गुह है।

इसका अत्यधिक सेवन होने पर मुख्य में शोष, हृदय में पीडा, उदर में आध्मान, पाथी का अमरौध, सौंठों व मागों का रोष (या आकुंचन), त्वचा पर श्यामता, पुंस्तल का नाश विष्टम्भ (अपाय) गुहगुहाद्वार छोकर पचन कराना, वायु, मूत्र और मल का अमरौध, कृशता, उदासीनता, कृयाद्वि तथा विविध साधों का रोष आदि विकार उत्पन्न करता है। यह स्वर, विशद और रुच गुणयुक्त होने से पदमथ, मन्पास्तम्भ, हनुमद, अपठानक, अर्दिग आदि यात व्याधिओं को उत्पत्ति करता है।

अधारा संमहकार ने लिखा है कि—

अत्यभ्यसात् सोऽपि शुक्रोपरोधं कृष्णाभ्मानस्तम्भविष्टम्भ-अपर्यम ।

स्रोतोषथं यातविष्टमूत्रसङ्गं पद्माघाताशेषकाधीरथ कुर्पात् ॥

कपाय रस का अति योग होने पर शुरुनाश, कृया, आध्मान, स्तम्भ (मांस को रोक देना), उदर में गुहगुहाद्वार, कृशता, सौंठों का संक्रोध, उदरवायु, मूत्र और मल का अमरौध, पद्माघात, आशेष आदि विकार उत्पन्न करता है।

भोजन में मधुर, लयण, अम्ल और कटु रस का अति उपयोग दाता है, उतना निक रस और कपाय रस का नहीं। निक रस में करेला, मेयो आदि बहुत मात्र पदार्थ हैं। निक अनुभवाने विज्र, स्थलनाश, पालनशी, मन् (सजीव)

आदि पदार्थ मा कम हैं। कषाय रस मुख्य हो, ऐसे पदार्थ का भोजन प्रायः नहीं होता। अनुरस कषाययुक्त हल्के प्रकार के चावल, कुल्थी, मय, मूंग, रावमाय, तिल आदि अन्न, हरिण, शशा, ग्वह्नि (गेंडा), पारायत, कपोत, गोधा (गोह), रोहिठक आदि मत्स्य, कुलिह आदि पाणियों के मांस, चांगेरी, कलविक्का, करीर, छत्रक अदि शाक, पालश्याम, पालश्लिव, द्राक्षा, दाडिम, केला, पनस, लयली (हरफरी), घल्लता आदि फल तथा मधु भोजन रूप से प्रयुक्त होते हैं। इनमें कषाय रस अति कम होने से मंद असर दशाता है। कषायरसयुक्त आयुधियां में हरक, वहेका आयुला इनका प्रयोग भारतवर्ष के प्रत्येक ग्राम में अति निमगतापूर्वक होता है।

हरक में कसैला रस है और विरेचन गुण भी है। पहिले विरेचन गुण की सशानि होती है अथात् मल को अन्न से मार फेंक देती है। फिर कसैले रस के प्राहो गुण की क्रिया होती है अथात् विथिल अन्न का आकुचित कर देती है। जिससे वह अपनी जवाबदेही का अच्छी तरह पालन कर सके।

कषाय रस में प्राहो, शोण्य और आकुचन करने का विशेष गुण है। इन गुणों के हेतु से यह अन्न, रक्तवाहिनियों और श्रोतों का सक्च करता है। उस में खे हुए द्रव या क्लेद का शोषण करता है। फिर मल या अय द्रव्य को भाग जाने से रोक भी देता है। अन्नगत आहार रस (मल) में से द्रव और स्निग्धता का शोषण कर लेता है तथा मल की गति और मूत्र की गति को रोक देता है। यदि दूषित ग्राम उदर में होने पर, भूल से कषाय रस का उपयोग किया जाय तो आमविष्य प्रकुपित होकर आमज्वर आदि की प्राप्ति कर देता है।

इसमें द्रव का और क्लेद का शोषण करना गुण है। इस हेतु से इस रस का उपयोग प्रदर पर किया जाता है। बाहर से मामूखल या र्थनिक एसिड आदि के जल का पिचकारी रूप से उपयोग किया जाता है। एवं कितनोक कषायरसप्रधान औषधियों का सेवन भी कराया जाता है।

रक्तदाव होता हो, तब रक्त्रोधनार्थ कषाय रस का उपयोग होता है। कुम्कुष में से रक्तक्षाम, रक्तधमन, रक्ताविसार, रक्तप्रदर, रज साव अधिक होनाआदि, इन सब विकारों में कसैली औषधियां का कार्य सफल होता है।

अपचन (आमाशयप्रसेक) में क्लेद को दूर कर पचन क्रिया सुधारनेक लिए तथा अनिसार (अन्नप्रदाह) में प्रदाह को दूर कर अन्न के भीतर प्राहो असर पहुँचानेके लिये कषायरसप्रधान हरक, आम की गुठली, नागमोधा अम्बठा (पाठा) मूंग का मूय आदि स्पष्ट हैं।

रूपकास, राजयक्ष्मा, श्वास आदि रोग में जब कष दूषित हो जाता है, तब उसे बाहर निफालने और उत्पत्ति को रोकने के लिये खदिर, वहेका, आदि औषधिया का प्रयोग उपकारक माना जाता है।

मसूड़े जब शिथिल हो जाते हैं, तब उनको दृढ़ बनाने के लिये मा कधीस, हरद आदि कषायरसप्रधान औषधियों का मंजन बना कर उपयोग में जाता है। जा क्लेद का शोषण भी करता है।

ग्रन्थों का आकुचन करने तथा ग्रन्थों के क्लेद को सुसा कर शुद्ध लिये कषायरसप्रधान औषधियों का लेप हितकारक माना जाता है। कषायर द्रव्यों का लयना पर स्थानिक असर भी होता है। इस हेतु से ग्रन्थ के अतिरिक्त स्थानों पर भी लेप रूप में उपयोग किया जाता है।

पट्टरस

उक्त रसों के सम्यक् योग और अतियोग से ऊपर लिखे गुण-दोषों की होती है। इसलिये जिस गुण की आवश्यकता हो उसके अनुरूप रसप्रधान का सेवन करना चाहिये, तथा जिस रस के अति सेवन से रोगीरति हुई हो, परित्याग कर उसके विरोधी रस का उपयोग करना चाहिये।

उपयुक्त ६ रसों में अग्नि और वायु तत्त्वप्रधान रस प्रायः ऊर्ध्वगामी (नीचे की ओर गति करने वाले) होते हैं। जल और पृथ्वीतत्वप्रधान रस प्रायः अधो (नीचे की ओर गति करने वाले) होते हैं। परन्तु अग्नि, वायु, जल और इन सबों के मिश्रित हो जाने से रसों का न्यूनाधिकता के अनुसार श्रीपञ्च ऊर्ध्व अर्धगति मुक्त हो जाती हैं।

इन रसों के गुणों की न्यूनाधिकता (शरीर पर होने वाला प्रभाव) समझ में आने के लिये पुनः इसी बात को सक्षेप में लिखता हूँ।

- १ मधुर रस—वात-पित्त-नाशक और कफ-बद्धक है।
- २ अम्ल रस—वात-नाशक और पित्त-कफ-बद्धक है।
- ३ लवण रस—वात-नाशक और पित्त-कफ-बद्धक है।
- ४ तिक्त रस—वात-बद्धक और कफ-पित्त-नाशक है।
- ५ कटु रस—वात-पित्त-बद्धक और कफ-नाशक है।
- ६ कषाय रस—वात-बद्धक और कफ-पित्त-नाशक है।

उपयुक्त स्वभाव को दूसरी रीति से कहें, तो—

- १ वातबद्धक—कटु, तिक्त, कषाय रस।
- २ वातशामक—मधुर, अम्ल, लवण रस।
- ३ पित्तबद्धक—कटु, अम्ल, लवण रस,
- ४ पित्तनाशक—मधुर, तिक्त, कषाय रस।
- ५ कफबद्धक—मधुर, अम्ल, लवण रस।
- ६ कफशामक—कटु, तिक्त, कषाय रस।

जो रस वातवर्द्धक है, उस रस का अतियोग देने पर वातप्रकोप होता है। ऐसे समय पर वातशामक रस के उपचार से लाभ हो जाता है।

वृत् की उत्पत्ति वायु से, पित्त की उत्पत्ति अग्नि से तथा कफ की उत्पत्ति जल से होती है। अतः जो रस जित भूत की अधिकता से उत्पन्न होता है, वह स्वभाविक ही उस भूत से उत्पन्न दोष को बढ़ाता है तथा विपरीत भूत से उत्पन्न दोष को शान्त करता है। उदाहरणार्थ वायु में शैत्य, रीक्ष्य, लाघव, वैशद्य और वैट्म्य गुण हैं, उस के समान योनि और समान गुणवाला कफाय रस है। (यद्यपि चरक संहिता में कफाय को गुण कहा है, तथापि वह लघुपाकी होने से और वातघात में मोक्षदा होने से दोनों को हल्यता दर्शाया है) अतः कफाय रस का सेवन करने पर अपने शैत्य से वायु के शैत्य को, रीक्ष्य से रीक्ष्य को, लाघव से लाघव को, वैशद्य से वैशद्य को और वैट्म्य से विट्म्यता को बढ़ाता है, अर्थात् कफाय रस सब प्रकार से वातवर्द्धक है।

पित्त में औष्ण्य, तैक्ष्ण्य, रीक्ष्य, लाघव और वैशद्य गुण अवस्थित हैं। उस के समान योनि और समान गुणवाला कट्ट रस है। वह अपनी तप्यता से पित्त की तप्यता को, तीक्ष्णता से तीक्ष्णता को, रुद्धता से रुद्धता को और विशदता से विशदता को बढ़ाता है। इस तरह कट्ट रस सर्वभाष में पित्तवर्द्धक है।

कफ में माधुर्य, स्नेह, गौरव, शैत्य और पिच्छिल्य गुण रहते हैं। उस के समान योनि मधुर रस है। वह अपनी मधुरता से कफ की मधुरता को, स्निग्धता से स्नेह का, गुह्या से गौरव को, शीतलता से शैत्य को तथा पिच्छिलता से पिच्छिल्य को बढ़ाता है अर्थात् मधुर रस सर्वभाष से कफवर्द्धक है।

कफ से विपन्न योनि कट्ट रस है। क्योंकि कफवर्द्धक मधुर रस जल की अधिकता से और कट्ट रस अग्नि से उत्पन्न होता है। दोनों परस्पर विपरीत गुणवाले हैं। इस हेतु से वह कट्टता (चरपरेपन से मधुरता को, रुद्धता से स्नेह को, लघुता से गुह्यगुण को, तप्यता से शीतलता को तथा विशदता से पिच्छिलता को दबा देता है। इस तरह अन्य रस भी अपने विपरीत रस को दबा देते हैं। परिणाम में उस के अनुरूप मूल घात, वात, पित्त और कफ में वृद्धि हास हो जाता है।

कभी कभी ठोस नियम के अन्वये स्वल्प उदाहरण भी मिलते हैं। जैसे अम्ल वस्तु पित्तकर होती है किन्तु अनार और आवले नहीं। मधुर रस कफकर होता है किन्तु शहद, पुराने शाली-शुष्क चावल, जौ और गेहूँ (एय मूग, मिभी और जंगल प्राणियों के मांस आदि) नहीं। कड़ुषा रस प्रायः वातवर्द्धक और अशुष्क होते हैं, किन्तु बेंच के अन्नभाग, गिलोय, पटेलपत्र (कड़ुवे परवलकेमान), कुचिला आदि नहीं। चरपरा रस प्रायः वातवर्द्धक और अशुष्क होता है किन्तु शहदुन पिप्पली और सोंठ नहीं। लवण रस अशुष्क होते हैं किन्तु सेंधा नमक नहीं।

यदि पातहर पदार्थ म रुच, लघु और शीतल गुण मिश्रित हागा, तो वह वात को शमन नहीं कर सतागा । पित्तशामक पदार्थ में छात्रण, उष्ण और लघु गुण मिला हागा, तो वह पित्तशमन नहीं कर सकेगा । कफशामक पदार्थ में म्लिख, भारी और शीतल गुण हागा, तो वह कफ को दूर नहीं कर सकेगा ।

मधुर, तिक्त और कषाय रस प्राय शीतवीर्य तथा बद्ध, अग्ल और लक्ष्ण रस प्राय उष्णवीर्य है किन्तु किञ्चनीक औषधियां विरुद्ध स्वभाव वाली भी हैं । जैसे—कित्यादि वृहद् पंचमूल चरपरा और कौला होने पर भी किञ्चित् उष्ण है । सैबा नमक स्वाद होने पर भी उष्ण नहीं है । अनार और चाबला पट्टे होने पर भी उष्ण नहीं हैं । चाक, अगार, और गिलोय कटुये होने पर भी किञ्चित् उष्ण हैं । कुचिला कटुवा होने पर भी अति उष्ण है तथा हरक क्लीली होने पर भी किञ्चित् उष्ण है ।

बड़े रसवाली औषधि कई प्राई और कोई भेदन करनेवाली होती है । जैसे कैष (कपित्थ) प्राई और चाबला मल का भेदन करने वाला है ।

कमला रस प्राय स्रग्मन करता है परन्तु कभी कभी इस नियम का भी परिवर्तन हो जाता है । जैसे—हरक क्लीली होने पर भी मल को भेदन करती है । ऊपर लिखे नियमानुसार किञ्चनेक अपवाद भी पतित हाते हैं । अतः कैवल रस पर भी ही सब औषधियोंक गुणोद्देश निरूप्य नहीं हो सकना । गुण और प्रभावको समझनेके लिये विशेष शास्त्राभ्यास और अनुभवकी आवश्यकता रहती है ।

इनके अतिरिक्त अनेक रसोंवाले द्रव्योंमें तथा अनेक दोषयुक्त रोगोंमें प्रत्येक रस और रूप का जो भिन्न भिन्न प्रभाव कहा गया है, उन मयका विचार करके उस औषधि या रोगक प्रभावका निश्चय करना चाहिये । किन्तु यह नियम किम औषधि म रस समिलन और भिन्न रोगके भीतर दागोद्देश समिलन प्रकृति सम-समयत हो, उनका लागू होता है । विद्वानि नियम समयाय वालोंको नहीं ।

जो रस अथवा दोषोंका प्रकृति अनुगुण समयाय हाता है, उसे प्रकृति सम समयाय व । भिन्नका प्रकृति अनुगुण समयाय होता है, उसे विरुद्धनियम समयाय कहते हैं । जैसे तन्तु कपड़ेका समयाय कारण है (इसे वे रस मलमें उपादान कारण कहा है), पर कपड़ा एक ही प्रकार क तन्तुओंसे बना हुआ हो, ता उसक सभ पक्षे प्रकृति सम-समयाय और सम्बन्धवालीक प्रकृति सम समयत कहा जायगा । यदि उसमें दूसरे प्रकारके तन्तु मिलाये हो, तो उसे विरुद्धनियम समयाय कहेंगे । इस तरह समान प्रमाय वाले द्रव्योंका समूह हो, इन प्रकृति सम-समयाय और विरुद्ध (धरवाभा विक) प्रमाय वालेक विरुद्धनियम समयाय कहा है । रोगमें भी जो एक वायव्य है, उनमें कारण या लक्षणोंका प्रकृति-सम-समयाय हाता है; किन्तु इसके विपरीत परिणाम में विरुद्धनियम समयाय प्रतीत हाता है । जैसे "दृष्टि रस सप्त शोन्म्" आदिखण्ड ।

विकृति विषम-समवायमें प्रभावका ज्ञान करना कठिन होता है। विभिन्न प्रभाव वालाके सम्मिलनसे पृथक् प्रभाव उत्पन्न होता है। जैसे हल्दी और चूनेके मिलावसे लाल रंगकी उत्पत्ति होती है। यह लाल रंग हल्दी या चूना, इन दोनोंमेंसे किसीके भीतर नहीं है, यह लाल रंग सभागमन्य उत्पन्न हुआ है। हींग और कपूर तथा अजय वन पुष्प और कपूरके सम्मिलनसे द्रवता उत्पन्न होती है। कितनेक घातवर्द्धक या षष्ठानु या हींगके छोटके पित्तवर्द्धक बन जाते हैं।

प्रकृति सम-समवायमें आंशिक ज्ञान पर्याप्त है, क्योंकि, कारण गुण अनुसार कर्म गुण होते हैं तथा कर्म भी सजातीय परंपराका अनुकरण करते हैं। अतः उसनेसे ही उसके समुदायका ज्ञान हो जाता है, किन्तु विकृति विषम-समवायमें आंशिक ज्ञान पर्याप्त नहीं है। समुदायके प्रभावके ज्ञानकी आवश्यकता है। जैसे—मधुर आम्रावक (अंबाबा) के रसमें प्रकृतिका सम-समवाय होनेसे मधुर रसके गुणके समान वह घात पित्त शामक है, किन्तु वाताक (लुब्ध ट्यान्ट जैसे पल) में विकृति विषम-समवाय है अतः वह कटुविक होनेपर भी घात-कारक नहीं है। चरक संहिताकारने “घातघ्न दीपन चैव वार्ताक कटुतिककम्” इस वचनसे घातहर कहा है।

पारद-गंधकके सम्मिलनसे कश्मली बनने पर काला रंग आ जाता है, उसका अग्नि-संस्कार करने पर रक्तवर्णका रससिंदूर बन जाता है। क्रिया मेंसे इन दोनोंके गुण प्रभावमें विभिन्नता हो जाती है।

सामान्यतः पी-शब्द समभाग मिलानेका निषेध है (इस्लास उत्पन्न करता है), किन्तु यह विषम प्रभावयुक्त ओषधि सूर्यावर्तमें दाप महिमा और संयो-गमक्षिमाके द्रव्यसे लाभप्रद होती है। इस तरह आमलकी रसायनमें भी आवले, धो और शहदको सम भाग मिलाया जाता है, जो रसायन गुण दर्शाता है।

विकृति विषम समवाय असंख्य हो जाते हैं। द्रव्योंमें रसमें, वीर्यमें, क्रिया में अथवा कारणसे तथा रोगोंमें व्याधिबल, देहगत स्थानमें, दाप दूष्य भेद, कारण में, मात्रा भेद प्रकृति भेद, आहार विहार भेद आदि कारणोंसे नाना प्रकारके भेद हो जाते हैं। ज्ञानक उनके समुदायकी प्रामाणिक शक्तिका बाध न हो, स्वतंत्र इन विषम समवेतका निश्चय नहीं हो सकेगा।

परस्पर रस विरोध

- १ मधुर और अम्लरस, दोनोंके वीर्यमें विपरीतता है।
- २ मधुर और लवण रस एव मधुर और कटु रस, परस्पर विरोधी हैं।
- ३ मधुर और तिक्त रस, दोनोंके रस और विपाकमें विरोध है।
- ४ मधुर और कषाय तथा अम्ल और कटुरस, इनके रस और विपाकमें विरोध है।

५. अम्ल और तिक्त तथा अम्ल और कषाय, इन सबके रस, वीर्य और विपाकमें विरोध है।

६. लवण और कटु तथा लवण और कषाय, इन सबके रस, घाम और विपाकमें परस्पर विरोध है।

७. कटु और तिक्त रसके रस और वीर्यमें विरोध है।

८. कटु और कषाय रस तथा तिक्त और कषाय रस, इनके रसमें विरोध है।

इनमेंसे रस, वीर्य, विपाक, इन चीजोंमें जो विरुद्ध (Antagonists) हों, उन रसांशोंको भोजनका सेवन एक समयमें नहीं करना चाहिये। इसका विरोध विचार भगवान् चन्वन्तरिजीने नीचे लिखे अनुसार किया है।

हिताहितवीच्य द्रव्य—स्वस्थ मनुष्योंके लिये समस्त द्रव्य स्वभावसे अथवा संयोगसे सर्वदा हितकर, अहितकर या हिताहितकर होते हैं। जल, दूध, घृत, माष, गेहूँ मूंग आदि मनुष्यपात्रके लिये हितकारी होते हैं किन्तु ये ही अनेक रोगोंमें हानिकर हो जाते हैं। जलानेके लिये प्रवृत्त हुआ अग्नि, फरोखा उठानेमें अशुभ ह्यार, तथा मारनेमें प्रवृत्त हुआ विष सर्वदा अहितकर है, किन्तु ये ही अथवा विरोधमें लाभदायक होते हैं। कतिपय हितकर पदार्थ भी संयोगसे विपके हान्य हो जाते हैं। इस तरह कई पदार्थ प्रकृति भेदसे एकको पथ्य और दूसरेको अपथ्य हो जाते हैं। अथ प्रकृति, ऋतु, स्वभाव और संयोगका विचार कर द्रव्यका उपयोग करना चाहिये।

हितवर्ग—रसशाली, सब प्रकारके चावल, नीवार, कोदो, कूट, शामक, गहुँ, जौ, ज्वना, मूंग, मोठ, मसर, अरहर, मटर आदि धान्य विरोध हिरण्य, कषूत, लाषा, तितर, शतपत्र कुम्कुट, आदिका मांस, पशुआ, जीवन्तो, चीलार, पालक, सोबा, चीपतिया, सोरह, परवल आदि शाक, गोघृत, शह, सँधानमक, अनाद, चाबले आदि फल, नमकचय, निर्वात स्थानमें शयन, नियाये जलसे स्नान, रात्रिमें निद्रा और व्यायाम आदि आहार-विहार स्वस्थावस्थामें सबके लिये हितकर हैं।

स्वभावसे अहितवर्ग पदार्थ—जहाँ ऋतुमें नदीका जल, तथा मांस, रोगी पशुका मांस, विपसे मरे हुए पशुआका मांस, भेड़का दूध, कसूतका तैल, कटुहृत्के पक्के फल, पकी मोठी मूली, बासी उतरे हुए शाक और फल-फूल, गुहरी राव, गोमांस, कपोल मांस, बासी भोज्य, ये सब यद्यथा स्वस्थ प्रकृतिको भी हानि पहुँचाते हैं।

दुग्धविरोधी पदार्थ—यन्तलीफल, (तरोई आदि), छुप्राक, करीर, चापलेके अनिरिक्त नीपू आदि लड्डे फल, नमक, कुलपी, विष्पाक (विष्कुटी), दही, तैल, मड्डली, पिंडी, सन्ने साग, गाद, मुद्गर, बकरी और भेड़का मांस, शराब, जामुन, मूला, इनमेंसे किसीके साथ दूधका मेल नहीं है। इन पदार्थोंमेंसे करीरके साथ साथ दूध हानिकर हो जाता है।

दुग्धके मित्र—मिथी, शहद, घी, मक्खन, अदरक, पीपल, मुनक्का, सोंठ, कालीमिर्च, अदरक, हल्द और सेंधानमक, ये सब दूधके मित्र हैं। अम्लपदार्थमें आवला मधुर पदार्थोंमें मिथी, शाक वर्गमें परबल, चरपरे पदार्थोंमें अदरक, कसैले पदार्थोंमें जी और नमकमें सेंधानमकका उपयोग दूधके साथ किया जाता है।

दहीविरोधी पदार्थ—कोई भी प्रकारके गरम पदार्थ, कोमल फट्टल, दूध, तैल, केला, आसय अरिष्ट, मृग-मांस, ताबफल, ये सब दहीके विरोधी हैं। दहीके साथ इनका संयोग होनेपर विकार हो जाता है। इसी तरह रात्रिको भी दही नहीं खाना चाहिये। शरद ऋतु और ग्रीष्म ऋतुमें दहीसे पित्त-प्रकोप होता है, तथा रक्तविकार पित्त-प्रकोप और कफज व्याधियालोंको भी दही हानिकर होता है।

सकृद्विरोधी पदार्थ—वृत्त केले मतके खोल, दूध, सत्तु, इन सबके साथ मट्टेका विरोध है। इसी तरह क्षतपीडित, क्षीण मनुष्य, मूच्छा, भ्रम, दाह और रक्त-पित्त विकारवालाके मट्टा नहीं खाना चाहिये। एवं उष्णकाल (शरद और ग्रीष्मऋतु) में मो मट्टेका सेवन नहीं करना चाहिये।

शहदविरोधी पदार्थ—शहदके साथ उष्ण पदार्थ या गरम जल नहीं मिलाना चाहिये। शहद और घी समभाग नहीं मिलाना चाहिये। इसी तरह शहद, घी, मसा और जल इनमेंसे दो, तीन या चारोंका समभाग संयोग करना हानिकर है। शहदको गर्म करनेका भी शास्त्रकारोंने निषेध किया है। शहदके साथ सुधरके मांस और मूलीका भी विरोध है।

अफीमविरोधी पदार्थ—हींग, तैल या तैलमें घने हुए पदार्थ।

कट्टहलविरोधी पदार्थ—कट्टहले खानेपर नागरबेलका पान नहीं खाना चाहिये। दूध, दही, उबदकी दाह, शहद और घीके साथ कट्टहलका विरोध है। कट्टहल पचन हो जानेके पहिले या पीछे दूधका सेवन करनेसे परिणाममें हानि होती है।

स्त्रिचूड़ीविरोधी पदार्थ—दूध और खीर।

गुड़विरोधी पदार्थ—मकोय, मछली, सूअरका मांस, और दूध।

मांसविरोधी पदार्थ—विरुद्ध पान्य (जलमें मिगोकर अकुर निकले मूंगादि) खरजी, शहद, दूध गुड़ और उबद।

कुसुयीविरोधी पदार्थ—शुलेका मांस और मद्य।

मकोयविरोधी पदार्थ—पीपल और मिर्च।

नाडीशाकविरोधी पदार्थ—मुर्गेका मांस और दही।

पित्तविरोधी पदार्थ—मांस।

खीरविरोधी पदार्थ—शुष्य और कुशरा (तिल चावलकी स्त्रिचूड़ी)।

मद्धलीविरोधी पदार्थ—ईस, गुद, शकर और गुद वाले पदार्थ। इसी

तरह आम, जामुन, मेथ का मांस, सुअर मांस, और गाम्पासका भी विरोध है। मछलीका सबसे अधिक विरोध दूधके साथ है।

फेलाविरोधी पदार्थ—शालफल, दूध, दही और मद्य।

परस्परविरोधी पदार्थ—जलवासी प्राणियोंका मांस, उषद, शहद, दूध, अंडुर निकले मूग आदि धान्य, मूली, और गुड़, ये प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेके विरोधी हैं। इसी तरह अनेक प्रकारके मांसको एक साथ पकानेसे बिय सम घातक हो जाते हैं।

ऐसे ही कतिपय विपरीत पदार्थ रोग, देश, काल या प्रकृति मेंसे दितकर हो जाते हैं। जैसे अग्निगत शहदको बिय समान माना है। फिर भी अग्निगत (मस्तिष्कगत वातरोग) में अग्निपर पकाये हुए शहदके मालपुष्ट लिलानेसे, रोगभी निवृत्ति हो जाती है।

धर्मविरुद्ध पदार्थ—क्यूटरके मांसको सरसोंके तैलमें नही भूना चाहिये। चातक, मोर, सावा, वीतर, गौह, इनको पर्यहो तैलमें न पकायें, और न पर्यहोसी लकड़ीसे हा पकायें।

कौसेके बर्तनमें १० दिनधक भी रहनेसे दूधित हो जाता है।

शहद गरम पदार्थोंके साथ या उष्णशुद्धमें न खायें।

मछली या अदरक जिस पात्रमें पकाया हो, उसमें मद्यको न पकायें।

तिलके फलके साथ पकाया हुआ पोईका शाक न खायें।

सुअरको चरबीमें भूना हुआ घगुलेका मांस, नारियलकी गिरीके साथ न खायें।

छोटे गिद्धको लोह शलाकासे अग्निपर मूनकर न खायें।

मानविरुद्ध पदार्थ—शहद और जल या शहद और भी समभाग मिलाकर सेवन न करें। दो प्रकारके स्नेह (घी, तैल, चरबी या मज) को, स्नेह और शहदको या जल और स्नेहको समभाग मिलाकर सेवन न करें।

परस्परविरोधी श्रीपथ द्रव्य—उत्तेजक कफघ्न और कफशामक श्रीपथ। उदाहरणाय कटेली या यज्ञा मिश्रित श्रीपथि आसनसिका आदिमें स्फैपिक वृक्षानर उषेजना पहुँचा और काल साकर कफको घाहर निकालती है। इसके तिनहीन त्रिोपयोगि (घृत-शहद-मिश्रित), प्रयाल मिटी, मुष्ठा आदि उषेजना (काशवेग) का शान्त करके कफोत्पत्तिको रोकती है। इनका सेवन एक साथ नहीं करना चाहिये।

स्वेदा और स्वेदावरोधक श्रीपथ। स्वेदलाने वाले—घारा, नीयान्द, कपूद, सप्तपथ आदि, स्वेदायरोधक जसद मरम, पतूरा, यूसो पुनी आदि, इन दोनों विरुद्ध प्रकाराकी श्रीपथियोंका संमिश्रण नहीं करना चाहिये।

कनीनिका प्रसारक और कनीनिका आकुंचक श्रीपथि। प्रसारक-द्रव्य घुगी वृन्मत्त तथा आकुंचक द्रव्य अशरीम सत्व इन दोनोंको मिलाकर नेत्रमें नहीं डालना चाहिये।

इसी तरह अन्य विरुद्ध धर्मवाली औषधियाँको भी नहीं मिलाना चाहिये । और इसी प्रकार अति शुष्क और अति तिग्म, अति उष्ण और शीतल (चाय और आइस्कीम आदि) का उपयोग भी एक ही समयमें नहीं करना चाहिये ।

तरुण और बलवान तथा व्यायाम करने वाले मनुष्य को तो विरुद्ध भोजन भी प्रायः विशेष बाधा नहीं पहुँचा सकता । परन्तु सामान्य व्यक्तिका चाहिये कि, नियम भंग न करें ।

विरुद्ध पदार्थकी मात्रा योकी होनेपर बहुधा हानि नहीं पहुँचा सकती । फिर भी कदाचित् किसी विरुद्ध पदार्थके खानेसे कोई विकार हो जाय, तो यमन, विरेचन या शमन पदार्थका सेवन कर प्रकृतिको सत्पर स्वस्थ बना लेना चाहिये ।

विरुद्ध संयोग वाले या स्वभाविक दोषयुक्त एवं प्रकृतिविरुद्ध पदार्थोंके दोषोंसे बचनेके लिये दोषशामक औषधियाँके शानकी परमावश्यकता है, जिससे कि प्रत्येक मनुष्य भोजनके समय सावधानता रख सके और भूल हो खानेपर यहत जल्द दोषको दूर कर सके । जैसे केला दुर्जर है, किन्तु उसका उपयोग घी, मिर्ची और इलायचीको सम्मिलित करके किया जाय, तो उसको दुर्जरता दूर हो जाती है । एवं येलेका अजीर्ण भी इलायचीके सेवनसे शीघ्र ही मिट जाता है । सामान्यत मिठाई या फल आदिमें जिससे अजीर्ण हुआ हो, उसको खला, राख कर शहदके साथ सेवन करनेसे भी अजीर्णकी निवृत्ति हो जाती है ।

जैसे केलाके लिये घी, मिर्ची और इलायची दोषशामक औषधि है वैसे अनेक वस्तुओंके लिये पूषक-पूषक दोषशामक औषधियाँ कही गई हैं उनमेंसे कुछ नीचे औषधियोंके सूचो दी जाती है । इससे अनुरूप अन्यान्य दोषशामक औषधियोंकी योजना देशकालानुसार आवश्यकतापर कर लेनी चाहिये ।

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०	कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
अग्निरोट	अनारदाने	आम	साठ, नमक सिर्कअमीन
अगर	कपूर, गुलाबका फूल	आम पक्के	बूष
अदरक	कपूर, शहद	आमाइशी	नारंगी
अजनास	सौंफ, मिर्ची	आलुमुलारा	स्मोमरतगी
अध्रिम	केशर, दालचीनी, हींग	अंजीर	बादाम
अम्लवेत	लौंग, कालीमिर्च	इन्द्रजव	बनिया
अमली	बनियाँ, सिर्कअमीन	इमली	कौकी भस्म, यनकसा, नमक ।
अरंड ककड़ी (पपीता)	शफर	इलायची	गुलाब के फूल
असगन्ध	कतिला गोंद	कनेर	घी, मिर्ची मिर्चा बूष, शहद
आक	भूत		

कारण रूप औ० कपूर	दोषशामक औ० एलुमिना, बेसुर, कस्तूरी	कारण रूप औ० गूलर के फल गुंजा (चिरमी) पी	दोषशामक औ० संज्ञ का काप धनिया, दूध नींबू, कोकम, धनार, नमक, गरम जल, कांजी, निवाया मायड, काली मिर्च ।
करींदा कसास { कटहरके पकके फल कचूर	नमक दही नारियल, अनारदाने, पेसा । धनिया, छागर, दधेत चन्दन ।	चना चायल	दही, पी, गुलकंद त्रिकटु, दूध-शकर, नमक ।
कांदा (प्याज) काच	नमक और सिरका दही, गोपीचन्दन, पी, बड़ी धूरी	चिंटीकी गूना	हरद पी, पाणामका तैल मक्खन ।
किन्नारिन	दूध, प्यवन-माशा- यलोह, मुखस माहिक मसम, सितापलादि चूर्ण ।	असद भस्म (अशुद) जायफल	हरद और मिभी मिना दूध, कफ्या धनिया, फनरसा, शहद ।
कुचिला	बमन कराना, पी, मिभी मिला दूध ।	जाम (धमरुद)	नमक, सौंन, अदरक का मुरम्बा ।
कुटकी	पी, शहद-पीनल, जावित्री ।	जामुन जम जमालगोटा	नमक पी पी, काया, मिर्भा मिला दही, बमन कराना, गादा शर्बत विलाना ।
क्या कीच कैच केरोसीनतेल	पी, मिभी और इला यची संज्ञ और नमक । दही, पी नामकी निबोसिपी बगुलका गां, बिह दाना	अरार ठक	दही, पी, गुलकंद जमक, निवाया मायड ।
राशर (मुहाप)	संज्ञ, नागरमोया, दूध-मिभी, दही पी नीम की निबोसिपी नामियर पोहा सेप, मसपन, दही, चिरा बना गिस्तोप	ठमागू. ठामसमकी ठमठा	दूध, गुलकंद मोरीरिनी, गुचि- भसम, पानरका भोरा, मिर्भा मिला धनियादिदिम ।
रिरनी गुद			

कारण रूप औ० ताने का चहर	दायशामक औ० पी, विरेचन देना, नीबूका शर्बत ।	कारण रूप औ० माँग, गाँजा	दोषशामक औ० तेज खँपी, दही, पी, निद्रा, शराब ।
यूहर का दूध	घी, मक्खन, दही, शहद ।	मिल्लावा	नारियलकी गिरी, चिरींओ, यादाम ।
प्रावा न्ही	गुलकन्द । जोरा-नमक, शफर, सोठ	मैनफल मुरदासग	शहदमिभित दूध पी, यादामका तैल, बमन, अनारदानाका रस
दूध भनूरा	शफर घी, दही, मिभी मिला दघ	मंहर मसम (दूधित) मघ	कवीला, शहद, अरंडी का तैल मक्खन-मिभी, मुनका, मद्दा, फिटफ्टीका जल, मीठा अनार ।
नारंगो नारियल नीबू नीलायोया	मिभी, नमक शफर, गुक नमक नमक फत्या, शर्बत नीबू, शर्बत अनार, मिभी मिल्ला दूध, तिल तैल, धानके लावा का जल ।	मिर्च रसकपूर	घी नीबूका रस, मद्दा गन्धक, गायका दूध, चौलाई की जड़, घी, सोहागेका पूखा मिभी-शहद
पारद	शुद्ध गन्धक, चौलाई की माखी, घमासास्र काय दूध, पी, हरक ।	अशुद्ध रौप्य सहसुन लोहमसम (दोषवाली)	दही, घी, मद्दा अगस्तपत्रके रसके साथ धायमिडक, अमलातासकी फलीअ गूदा
बच बन्कनाग	सौंफ, सिर्कजडीन, पी । घी, दूध, हृदयपौष्टिक श्रीपभि ।	शवापरी सीसःमसम (अशुद्ध) शिलाओठ सिंदूर	शहद पीपल मुषणका बर्क, हरक-मिभी । पी, दूध, लस्ती । शर्बत-नीबू, चिरमीके पत्ते, मुलाहठी ।
भाजरा यादाम बासी	घी, शफर शफर फन्दन सफेद गुलाब जल ।	सिनाका मुवर्णमसम (अशुद्ध)	सोठ और नागरमोया । हरक और मिभी दूध के साथ ।
बेर बैंगन दूधित धंगमसम	गुलकन्द । घी मेपशृङ्गी का घूर्ण और मिभी दूध के साथ		

कारण रूप औ०	दोषशामक औ०	कारण रूप औ०	दोषशामक औ०
सोमल	घो, दूध मिथी, मलार्द्र, कल्या, सोहालोका पूला ।	दलदिया विप	भी पीकर पमन कर
सोपारी	दूध, मिथी, गुड	हरक	भी, शहद
दल्दी	बिर्जारेका रस, नीबूका रस ।	हींग	भीसा, धनारदान
		हीरा	घो पिलाकर पमन करावे, कतीरा गां, पनपत्रा जपत ।

(२) गुण ।

उपयुक्त ६ रस के न्यूनाधिक अंश से संयोग से नाना प्रकार के गुणों की उत्पत्ति होती है । इन गुणों के प्राचीन आचार्यों ने निम्नानुसार २० विभाग किये हैं:—गुड, मन्द, शीतल, स्निग्ध, प्लक्षण, सान्द्र, मृदु, स्थिर, यक्ष्म और विशद ; तथा इनके क्रमशः विरोधी लघु, तीक्ष्ण, उष्ण, रुच, खर, द्रव, कठिन, सर, सूक्ष्म और पिच्छिल । इन २० गुणोंमेंसे यात पातुमें रुच, लघु, शीत, खर, सूक्ष्म और चला, वे ६ गुण निच भागमें घस्नेद (किञ्चित् स्निग्ध), तीक्ष्ण (शीतकारी), उष्ण, लघु, विस्र (आम गन्धयुक्त), सर (व्याप्तिशील) और द्रव, ये ७ गुण कफ पातुमें स्निग्ध, शीत, गुड, मन्द, प्लक्षण, पिच्छिल, स्थिर (व्याप्तिशील) ये ७ गुण अवरिपत हैं ।

गुरु मन्द हिमस्निग्धरसदण सान्द्र मृदु स्थिरा ।

गुणा समूहमपिशदा विशति सयिपर्ययाः ॥

उत्र रुचो लघु शीत खर सूक्ष्मभ्रूलोडनिल ।

पित्त सस्नेहवीष्णोष्णं लघु विस्रं सरं द्रवम ॥

स्निग्ध शीतो गुडर्मन्द प्लक्षणो मूत्न स्थिर कफः ।

उपयुक्त गुणयुक्त औरधियोके फलमें कालभेदस विविधता हो जाती है । सत्वर फलदर्शक, पाककालमें परिष्कामदर्शक और कालान्तरमें प्रभावदर्शक । अथवा गुण, पिनाक और धोष प्रभावसे परिष्काममें भेद दर्शाया है । जैसा कि मगगान्धन्वन्तरिर्षाने निम्न पचनस बतलाया गया है ।

उद्रम्यमात्मना किञ्चित् किञ्चिद्दीर्येण मेवितम् ।

किञ्चिद्द्रमविपाकाभ्या दोषं हन्ति पत्रोति या ॥

(सु० सु० अ० ४० ११)

किन्नेही द्रव्य अपने आत्मबल (प्रामाणिक गुण) से कई धीरेधीरे, कई मा गुणम तथा किन्नेही विराकके अनुभूत दापका पढ़ाने हैं या कम करने हैं ।

सब द्रव्य केवल रस अनुसार या गुण अनुसार पक्ष नहीं दर्शा सकते। क्योंकि द्रव्यका सेवन करने पर उसके साय, लाला, आमाराय रस, मृत्पित्त, अग्न्याशयका रस, अन्तररस, अष्टा विधोपतः मिल जाते हैं, जिससे गुणमें बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। अनेक औषधियाँ घोरका शोषण रसमें होनेके पश्चात् उसके साथ अनेक अन्तःस्थानी प्रतियोगके रसका संमिलन होजाता है। जिससे वे कुछ कालके पश्चात् फल दशाती हैं। इस तरह केवल बाह्य प्रयोगों द्वारा औषधियाँके फलका निर्णय नहीं हो सकता।

अन्य रीतिसे मिस्र-मिस्र गुणोंके उत्तम, मध्यम और कनिष्ठ स्वविभाग होते हैं। कौन-कौनसे रस वाले पदार्थमें किस-किस रीतिसे उत्तम, मध्यम आदि विभाग होते हैं। यह चरक संहितामें नीचे लिखे अनुसार दिखाया है।

१ गुरु—सृष्टिकारी। अयसादपनक, उपशेषकारी (मलमर्दक), बल वृद्धि और पुष्टिकर। यह वातहर, वेदको पुष्ट बनानेवाला, कफहर और चिरपाकी है।

२ मद्—शामक। शिथिलताकारक या मंदतासे कार्य करनेवाला।

३ हिम—स्वप्नकारी। उष्णतासे पीड़ितोंको सुखदायी, स्वप्न और शीतल, मूर्च्छा, तृषा, स्वेद और दाहका नाशक।

४ स्निग्ध—श्लेदनकारी। स्नेह और मृदुता लानेवाला, बलवर्द्धक, वर्णप्रद। वातहर, श्लेष्मकर, वृष्य, वेदको चिकना बनानेवाला।

५ रसक्षय—स्नेहरहित, कठिन होते हुए भी चिकना (चिकण)। मयरोपण, तैजस।

६ सान्द्र—वेदको स्थूल और पुष्ट बनानेवाला। प्रसादन शक्ति वाला।

७ मृदु—शोथलता लानेवाला। दाह, पाक और सावक नाशक। धातुश और कलकी प्रधानतावाला।

८ स्थिर—पारस करनेकी शक्तिवाला। वात और मलका स्वप्नक।

९ सूक्ष्म—सूक्ष्म सूक्ष्म छोटोंमें प्रवेश करनेकी शक्तिवाला। छोटोंको खोलनेवाला।

१० विराद—श्लेदशोधक। झालन करनेवाला। मयरोपण। पार्थिवऔर वायव्य।

११ सधु—सहजकारी। गुह्यसे विपरीत अर्थात् उच्छेदना, मलक्षय, निर्मलता और कृशता लानेवाला तथा मयरोपण। यह परम पच्य, कफघ्न और शीघ्र पचनेवाला है।

१२ तीक्ष्ण—शोधक। दाहजनक, पाक और साव करनेवाला। यह पित्तकर खोलन, कृशता लानेवाला, कफघ्न और वातहर है।

१३ उष्ण—(स्वेदकारी) शक्तिगुणसे विपरीत अर्थात् गरम। शरीरको

देनेवाला, रस, रस आदिची प्रवृत्ति करनेवाला, मृच्छ, तृण, रस और दाह्य उत्पन्न करनेवाला । पाचन ।

१४ रूच—स्निग्धसे विपरीत । शोषणकारी । रुद्धता और कठिनता लानेवाला । बल और बलका दाम करनेवाला । इसमें यह गुण यातकर और परम रूपर है ।

१५. स्वर—स्वर (कर्कश) स्वशुक्ल । लेपनकार्य । पातगुणकी प्रपानकावाला ।

१६ द्रव—देहको आर्द्र (तर) बनानेवाला । प्रवाही, सर्वत्र ध्यात देनेको शक्तिवाला ।

१७ फटिन—द्रव्यको दृढ़ बनानेकी शक्तिवाला ।

१८ सर—अनुलोमन । प्रेरक शक्तिवाला । वायु और मलकी प्रवृत्ति करनेवाला ।

१९. स्थूष—देहमें स्थूलता लानेवाला । स्रोतावरोधक ।

२० पिच्छिल—लोपनकारी । जीवनप्रद, बन्ध, अस्मि-पानक, कष्टकर और गुह । लोसदार (विपश्चिन्ना) । आयु ।

इनके अतिरिक्त आयुर्वेद साहित्यमें प्रचलित पारिभाषिक

गुणदर्शक शब्द ।

१ दीपन—अठारग्निस्रोतक ।

२. पाचन—अम्बयजक ।

३ संशमन—म्यूनाधिक पात, वित्त, रूपको दक्षुवित न करते हुए स्वारित करनेवाला द्रव्य ।

४ अनुलोमन—अपस्व मलका पकाकर और मार्गमें उत्पन्न प्रतिक्रमण इगवर देहमेंसे अयोमार्ग द्वारा बाहर निकालनेवाला ।

५. स्रवान—कोष्ठमें विपके हुए पकाने योग्य अपस्व मल, कट, वित्त आदिना अपस्वावस्थामें ही नीचे गति करनेवाला ।

६ भेदन—पठले, गाढ़े और विविध (गाठ जैसे बंधे हुए) मलका नीचे नीचे गिरनेवाला ।

७ विरेचन—मल और अपस्व मल को प्रवाही बनाकर फेंकनेवाला ।

८. संशोधन—देहमें संशुद्ध मलको उनके स्थानमें लेश्वर रूप या अत्रामाग द्वारा बाहर निकालनेवाला ।

९. प्राही—दीन, पाचन, और प्रयोजक ।

१० स्तम्भन—रूच, शोथल, कटाप और पाठ में सज्जुगुणुक, पतनदक और सेहनेवाला, अथवा बाहर नि परखशोण, उत्तेजक मल आदि की र्ति का रोधक ।

घक्तव्य—माही औपधि धाम्नेय गुणयुक्त होने से जलीय अंश का शोषण करती है। फिर मलको धारण करती है। स्वप्न औपधि घातप्रधान और शीतल गुणयुक्त होनेसे वात की वृद्धि करके मल आग्नि को रोक देती है।

११ छेदन—चिपके हुए कृक आदिको वृक्षपूर्वक उखाड़कर निकालनेवाला।

१२. लेखन—घात और मलको सुखाकर बाहर निकालनेवाला।

१३ प्रमाथी—१ स्रोतोंके भीतर संगृहीत विषाकार को दूर करनेवाला। २ सूत्र, तीक्ष्ण और व्यापक गुणयुक्त। ३ सूत्र और तीक्ष्ण गुण के हेतु से स्रोतों में प्रवेश कर चिपके हुए दोषोंको उखाड़कर पृथक् करनेवाला।

१४ अभिष्यन्दि—रसवाहिनियों का अवरोधक और देह में मारीपन लानेवाला।

१५ आशु—जलमें गिरी हुई तैरुकी बुंदके सदृश देहमें सत्वर फैलानेवाला।

१६ व्यवायी—पहिले देहमें व्याप्त होकर फिर पचन होनेवाला। शराब, माँग, अफीम आदि।

१७ विकारी—अपकावस्थामें ही देहमें व्याप्त होकर घात को शिथिल बनानेवाला ओजशोषक। मुपारो, कोदो आदि।

१८. विष—व्याधी, बिकासी, कफनाशक, मादक, धाम्नेय गुणविशिष्ट, प्राणनाशक और योगवाही।

१९. मादक—(मदकारि)—बुद्धि का लोप करनेवाला। तमोगुणप्रधान द्रव्य।

२० विदाही—जिस द्रव्यके सेवनसे सखी सखी डकार आने लगे, तृपा उत्पन्न हो, हृदयमें दाह हो तथा भोजनका परिपाक देर से और कुशल पूर्वक हो।

२१ दारण—पकवण को फोड़नेवाला।

२२. पीडन—व्रण आदिका पाक (पचन) करानेवाला।

२३ यिन्लापन—क्षेप या अभ्यङ्ग करने पर अपक अणुरोयको फैलानेवाला या अंगुली आदिसे मर्दन करनेपर शोथको दूर करनेवाला द्रव्य।

२४ निर्वापण—पकते हुए व्रणकी दाह पीडा आदि का शानक।

२५. छत्सादन—शुष्क, अल्प मांसवाला तथा गहरे व्रणमें मांसकी वृद्धि करके ऊँचा लानेवाला द्रव्य।

२६ अवसादन—उमरे हुए कोमल मांसमय अणुको पैठाकर सम अस्थामें लानेवाला द्रव्य।

२७ रोमशातन—घालों पर लगानेसे उनको निकाल देनेवाला द्रव्य।

२८ संघान—कटे हुए अवयवोंका संयोजन करनेवाली औपधि।

२९. स्वेदन—स्वेद लाकर स्तम्भश, गुक्ता, और शीत का नाशक। स्निग्ध

या रुद्ध, द्रव या कठिन, किसी भी द्रव्य में उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, प्रसरणशील, सूक्ष्म और गुरुपाक, ये गुण हों, उससे प्रायः स्वेदन कार्य हो सकता है।

३० स्नेहोपग—स्नेहद्रव्योंकी स्नेहन क्रियामें सहायक।

३१ श्वेदोपग—स्वेदन क्रियामें सहायता पहुँचानेवाले द्रव्य।

३२ धमनोपग—धामक द्रव्यों की सहायता पहुँचानेवाले द्रव्य।

३३ शिरोविरेचनोपग—मस्तिष्क में जमे हुए दोषों की गिरानेवाला द्रव्य।

वक्तव्य—स्नेहोपग, श्वेदोपग, धमनोपग, विरेचनोपग (इस तरह आस्थापनोपग, अनुवासनोपग) गणों में जो द्रव्य हैं वे प्रधानतया स्नेहन, स्वेदन आदि कार्य नहीं करते; वे केवल स्नेहन आदि द्रव्योंकी शक्ति बढ़ानेका कार्य करते हैं। किन्तु शिरोविरेचनोपग गणक द्रव्य शिरोविरेचन में प्रधानकार्य करते हैं, ये सहायक मात्र ही द्रव्य नहीं हैं।

३४ पुरोपधिरजनीय—मलके दोषका वृद्ध कर स्वामानिक रंग लानेवाली औषधि।

३५ शोणिसंस्थापन—१ रक्तके दागका हरणकर रक्तका प्रकृतिस्थ बनानेवाली। २ रक्तके अतिस्त्रावका स्थानन करनेवाली औषधि। इसके ४ विभाग हैं। सघन, म्फंदन, पाचन और दहन।

३६ वेदनास्थापन—१ उत्पन्न हुई वेदनाका नाशकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनानेवाली। २ वेदनाघ्नो (वेग) के निवृत्त होने पर उत्पन्न विकृति का हटाकर पुनः वेदना उत्पादक औषधि।

३७ प्रजाम्थापन—संतान विनाशक दोषको वृद्ध कर संतानकी स्थापना करनेवाला द्रव्य।

३८ वयःस्थापन—युवावस्थाकी प्राप्ति करनेवाली औषधि, इसे रसावन भी कहते हैं।

३९ संज्ञास्थापन—संज्ञाहीन होने पर चेतना लानेवाला द्रव्य।

४० संज्ञाहर—मस्तिष्क और मनुष्यका मण्डल में स्थित नाडी तंत्रों पर अमर पहुँचाकर वेद्योय बनानेवाला द्रव्य। इसे रसापचनन भी कहते हैं।

४१ क्षेत्रीकरण धमन, विरेचन आदि पञ्चकर्मस विद्युत्की हुई वेद, जो रसावनने योग्य बनाई दे, वह।

४२ रसावन—१ इन्द्रात्म्या और व्यापिकाके आक्रमण से देहकी रक्षा करनेवाला। २ स्वयं मनुष्यके लिये आशुकर और शुष्क गुणकी प्राप्ति करनेवाला (दीक्षागुणी प्राप्ति करनेवाला) ३ अराम्थापिका नाशक।

४३ यात्रीकरण—सुरा शक्तिसे इन्द्रि करनेवाला। मनुष्यसंदितामें इसके ३ प्रकार बताये हैं। शुक्रजनक, शुक्रप्रयत्नक तथा शुक्रजनक अमरक।

४४ शुक्रल—(शुक्रजनक) बीजवृद्धक।

४५. शुक्रप्रवर्तक—शुक्रको उच्चैजित करनेवाला ।

इस सम्बन्धमें श्री शार्ङ्गधराचार्यने विशेष रूप से लिखा है कि—

प्रवर्तनी स्त्री शुक्रस्य रेचन वृहतीफलात् ।
जातीफलं स्तम्भकं च शोषणी च हरीतकी ॥

स्त्री वीर्यका प्रवर्तक । मही कटेसीके फल वीर्य विरेचक । जायफल वीर्यस्तम्भक । हरद वीर्यशोषक-वीर्यको हिन करानेवाली । मतान्तर में चतुर्पपाद—‘कालिङ्ग क्षयकारक च’ अर्थात् तरबूज वीर्यका क्षयकारक है ।

४६ जीवनीय—१ जीवनके लिये हितकर, २ सौम्य घातको वृद्धि करने वाली, ३ देहको सुदृढ़ अथवा निरोग बनानेवाली औषधि ।

४७ घृत्तिघ्न—मोजन न करने पर भी रक्षेष्म विकारसे तृप्तिके समान भास होता हो, उसे दूर करनेवाला ।

४८ रक्षपन—अनृप्य, मुरत समागमकी शक्तिका हास करानेवाला ।

४९ योगवाही—१ पञ्चमान अथव्यामें संसर्गी वस्तुके गुणको ग्रहण करने-वाला । २ अपना गुण परित्याग किये बिना अपनेमें रहे हुए गुणोंमें जो गुण समयी औषध सदृश हो, उसके द्वारा संयागी औषधको शक्तिको पूर्ण करनेवाला ।

वक्तव्य—अष्टांग-हृदयके टाकापर अरुणदन्ते योगवाहीकी निम्न लिखित ३ म्यास्त्राओंको अशुद्ध बतलाया है ।

“१ इतर द्रव्यके साथ मिलाने पर अपने स्वभावका परित्याग कर संयुक्त द्रव्यके स्वभावका अनुकरण करनेवाला । २ इतर द्रव्यके साथ मिलानेपर उसकी शक्तिमें वृद्धि करनेवाला । ३ द्रव्य गुण-मुक्त द्रव्यके साथ संयुक्त होकर दास सदृश गुणानुयायी वर्तन करते हुये उसके अविरोधी अपना कार्य भी कुछ अंशमें करनेवाला ।

५० तर्पण—१ तृप्तिकारक और रस आदिका वर्द्धक । २ दृष्टिप्रसादन क्रियाको नेत्रतर्पण कहा है ।

५१ मार्गविशोधन—मलमूत्रका अवरोध होनेपर उन मार्गोंका शोधन करना ।

५२. पुंसत्वोपधावि—शुक्रनाशक ।

५३ वृहृष्य—देहको मटा बनानेवाली औषधि । यह औषधि यक्षुधा गुहंपाकी शक्तिवीर्य, मृदु, स्निग्ध, घन, स्थूल, पिच्छिल, मंद, स्थिर श्लक्ष्ण गुणयुक्त होती है ।

५४ क्षपन—देहमें लघुता लानेवाली औषधि । यह औषधि प्राय लघुपाकी, उष्णवीर्य, तीक्ष्ण, विशद, रुक्ष, मर, सर और कठिन गुणयुक्त होती है ।

५५ हृद्य—हृदयके लिये हितकर । हृदयपीडिक ।

५६ उत्तेजक—देहमें उत्तेजना (तेजी) लानेवाली औषधि ।

५७ शामक—अपसादक, घैमित्यकर ।

५८ उग्रतासाधक—स्वभावर दाह उत्पन्नकर तथा रक्त संचालनमें उद्येसना लाकर घेदनाको दूर करनेवाली श्रीपथि ।

५९. प्रत्युग्रतासाधक—जिन उग्रतासाधक श्रीपथियोंकी क्रिया प्रतिश्लित हो अर्थात् एक स्थानपर प्रबोधित श्रीपथिका परिष्काम इतर सम्बन्धवाले स्थानपर प्रस्थित हो, ऐसी श्रीपथि ।

६०. रक्तप्रसादन रक्तमें उत्पन्न विकृतिको दूरकर पवित्र बनानेवाली श्रीपथि ।

६१. मेघाकर—संघावादी नादियों और मस्तिष्कको पुष्ट बनाकर धारणाशक्तिही बृद्धि करानेवाली श्रीपथियां ।

६२. रुजाश्रीपथन—न्यायिक व्याक कारण रुद्धोप या निर्बलताघ्न दूर करनेवाली श्रीपथि ।

६३. रजोनि-सारक—श्रावणजनक लुप्त, रुद्ध और अनियमित मासिक धर्मको पुनः स्वामासिक नियमानुसार स्थापन करनेवाली श्रीपथि ।

६४. फोटागुनाशक—रक्त, लघ्वा, शरीरमिच्छा, लसीकाप्रतियवो आदिमें उत्पन्न या बाहरसे प्रविष्ट सूक्ष्म कोयला और उनसे उत्पन्न विषको नष्ट करनेवाली श्रीपथि ।

६५. पेन्नीभवन—किसी भी मनुके मूल द्रव्योंकी रक्षापथिक या प्राकृतिक रचना विकृति होना, समीर बनना । निहितकर पदार्थके प्रभावसे भिन्न परमाणुओंका विगलन ।

गुण	उच्च गुणयुक्त रस	मध्यम गुणयुक्त रस	कनिष्ठ गुणयुक्त रस
रस	कर्मला	चरपरा	कडुवा
उष्ण	पारा	मदा	चरपरा
निग्ध	मधुर	"	पारा
शोथल	"	कर्मला	कडुवा
गुरु	"	"	पारा
सुषु	कडुवा	चरपरा	मदा

श्रेष्ठ उपयुक्त कोरके छार मध्ये रस गुण है, वह कर्मले पदार्थोंमें उपयुक्त पाराका, चरपरे पदार्थोंमें मध्यम प्रकारका, और कडुके पदार्थोंमें कनिष्ठ प्रकारका दिखाया है । श्रेष्ठ दो अल्प गुणोंके उच्च, मध्यम और कनिष्ठ प्रकारको भी समझ लें ।

रूढ़, शीत, लघु, सूक्ष्म, पल, विशद, सर इन गुणोंसे वातवृद्धि और इनसे विपरीत गुणोंसे वात-शमन होता है।

स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, द्रव, अम्ल, सर, कटु (परपरा), इन गुणों वाली औषधियाँसे पित्त क्षयता है और इनसे विपरीत गुणयुक्त औषधियोंसे पित्त शमन होता है।

गुरु शीत, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर, पिच्छिल, ये गुण कफकारक और इनसे विपरीत गुण कफनाशक हैं।

वात, पित्त, कफ, इन घातुओंके गुणानेसे क्विचने ही गुण परस्पर विपरीत हैं। परमात्माने इन विपरीत गुणोंको मर्यादामें रखकर इनसे शरीर-सधारण और शरीर पोषण रूप कार्य किया है। परन्तु जब प्रमाण या भूलके हेतुसे विषमताकी प्राप्ति होती है तब सूक्ष्मतर त्रिघातु या उनमें रही हुई रोग निरोधक शक्ति साम्यता स्थापित करनेके लिये विविध व्यापार करने लगती है। उस समय पर औषध आदि द्वारा रोग निरोधक शक्तिको सहायता दी जाय, तो शीघ्र लाभ पहुँच जाता है।

यदि वातके रूढ़ गुण की वृद्धि होने पर कफ में स्निग्ध गुण बढ़ाया जाय, तो वातप्रकाप शमन हो जाता है। पित्तके तीक्ष्ण गुण की वृद्धि होने पर इसके विरोधी कफ व गुरु, मंद आदि गुणोंकी वृद्धि कराई जाय, तो तीक्ष्णत्वका हास हो जाता है। इसी तरह अन्य गुणोंकी वृद्धि होने पर उनके प्रतिकूल गुणकी वृद्धि कराई जाती है।

उपसृक्त २० गुण-विभागके अतिरिक्त रोगशमन या देहमें होनेवाले विविध गुण प्राप्तिके दृष्टिसे औषधियोंके अनेक गुण विभाग-वर्गीकरण (Classification) किये हैं। इनमेंसे यहाँ १०० विभाग वर्ग (groups) लिखे हैं।

आयुर्वेद और एलोपैथीने औषधियोंके गुणोंके अनुरूप नाना-विभाग किये हैं। इनमें से अनेकोंकी परिभाषा उभय शास्त्रमें समान है। इन विभागोंका आन्तरिक शैली अनुसार विवेचन भी उपादेय है। यह आयुर्वेदक विचारधाराके लिये उपयोगी प्रतीत हुआ है। अतः इनकी विचारणा इस ग्रन्थमें वैज्ञानिक शैलीसे शास्त्रानुसूल सुक्तिपूर्वककी गई है।

डाक्टरोंकी मतानुसार गुणविभाग।

(१) सार्वदैहिक-Systematic अर्थात् जिनका फल शारीरिक आशयाकी क्रिया पर हो।

(२) परंपरा सार्वदैहिक-Nonsystematic अर्थात् जिनका फल अवयवों के भीतर रहे हुये अपर पदार्थ (कृमि, मल आदि) पर प्रकाशित हो।

(?) सार्वदैहिक फलदर्शक।

(अ) व्यापक (General) फलदर्शक-रक्तप्रित्तरण संस्था, वातसंस्था, रस संस्था आदि सब पर परिणाम कारक।

(आ) स्थानिक (Local) स्थानविशेष या यन्त्रविशेष पर परिणामी।

१ अ व्यापक फलदाशक ।

इस भेषीकी औषधियों शारीरिक क्रिया पर उत्तेजना, अनशादन या परिवर्तन द्वारा कार्य करती हैं। अतः इनके क्रियानुरूप निम्नलिखित तीन विभाग होते हैं।

A उत्तेजक—शामक Stimulants.

B शमक - Sedatives.

C परिवर्तक—शोषक—Alteratives.

A. उत्तेजक औषध ।

सब उत्तेजक औषधियोंकी क्रियाका अनुपेक्ष करने पर विदित होता है कि इनमें कतिपय औषधियोंकी क्रिया शनैः शनैः क्रमशः प्रकाशित होती है और कुछ काल तक स्थिर रहती है। एवं कितनीही औषधियोंकी क्रिया तीव्र वेगसे सहसा प्रकाशित होकर अल्प समयमें ही पर्यवसित हो जाती है। इस हेतुसे उत्तेजक औषधियोंमें स्थायी (Permanent) और प्रसार्यशील किन्तु अस्थायी (Diffusible) ऐसे दो विभाग हो जाते हैं।

स्थायी उत्तेजक औषधिया—इनमें कतिपय औषधियों द्वारा शारीरिक आकुम्बन शक्तिकी वृद्धि होती है, इनका संकोचकारी—मादी (Astringents) संज्ञा दी है। कतिपय औषधियों औन्नत्य क्रिया से उत्तेजित और सफल बनाती हैं, इनका मलदायक-पीटिक (Tonic) संज्ञा दी है।

धम्यायी उत्तेजक—इस प्रकार में उष्ण, विद्युत् (Electricity) प्रगति की क्रिया समग्र शरीरमें प्रकाशित होती है। इनका ध्यायक (General) उत्तेजक संज्ञा दी है। इसके अतिरिक्त इस विभागकी कतिपय औषधियोंकी क्रिया एकसंघातन यन्त्र शय्या वातवहा नाडीमण्डलका उत्तेजित करती है। अतः इनमें तीन विभाग होते हैं। १ धामनिक उत्तेजक—Arterial stimulants २ मस्तिष्क उत्तेजक—Cerebral stimulants; ३ सुषुम्ना उत्तेजक—Spinal stimulants ।

(१) धामनिक उत्तेजक औषध द्वारा रक्तमिसरक क्रियाका वेग, हृत्प-स्पन्दन और धमनी स्पन्दन, इन सबमें वृद्धि होती है और सञ्चलित शारीरिक उष्णता भी बढ़ जाती है।

(२) मस्तिष्क उत्तेजकमें निम्नानुसार दो उपविभाग हैं—

(अ) यातनादी उत्तेजक (Nervous stimulants)—अर्थात् किन्नीही औषधियोंकी क्रिया समग्र वातवहा नाडीमण्डल समान रूपसे उत्तेजना होती है और किसी विशेष यातनादी मूत्रा आमन नहीं करती। यह बात नाडियोंकी नियन्त्राका दमन कर आँसू निवारण करती है। इस हेतुसे इन भेषीकी औषधियोंको पाशावेग्न या आघेऽनिपारक (Antispasmodics) संज्ञा दी है।

(अ) मस्तिष्क उत्तेजक (Cerebral stimulants)—फ़ितनीक औषधियोंकी क्रिया विशेषतः मस्तिष्कके ऊपर प्रकाशित होती है। यदि इसकी क्रिया अधिक होती है, तो मस्तिष्कक्रिया विफ़ल होकर बेहोशी ला देती है। अतः ऐसी औषधियोंको स्वापजनक (Narcotics) संज्ञा दी है।

(इ) सुपुम्णा उत्तेजक (Spinal stimulants)—फ़ितनी ही औषधियाँ का प्रभाव सुपुम्णाकी प्रत्यावर्चन क्रिया (Reflex) पर पड़ता है, उनका सुपुम्णा उत्तेजक संज्ञा दी है।

B अवसादक औषध।

इन औषधियोंकी क्रिया जीवनीय शक्तिको अवसन्न करती है।

१ व्यापक अवसादक (General Sedatives)—इस भेदकी औषधियोंकी क्रिया समस्त शरीर पर प्रकाशित होती है। जैसे—जल, दैत्य, दोहन आदि।

२. धामनिक अवसादक (Arterial Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ हृदय और सब धमनियोंके स्पन्दनका ह्रास कराती हैं रक्ताभिसरण गतिमन्द और शारीरिक उष्णता न्यून कराती हैं। इस विभागमें फ़ितनीक शीतल औषधियोंको दैत्यकारकद्रुपारामक (Refrigerants) संज्ञा दी है।

३ घातनाडी अवसादक (Nervous Sedatives)—इस भेदकी औषधियाँ वातवहा नाडियोंकी क्रियाका ह्रास कराती हैं। परन्तु मस्तिष्ककेन्द्र पर कोई बिरोध प्रकाश नहीं डालती। अतः ये औषधियाँ परस्पर धामनिक अवसादकके समान फल प्राप्त कराती हैं।

४ मस्तिष्क अवसादक (Cerebral Sedatives)—इस भेदकी औषधियोंकी क्रिया विशेषतः मस्तिष्क पर प्रकाशित होती है। इस हेतुसे अधिक मात्रा खेने पर बेहोशी आगती है। अतः इस प्रकारकी औषधियोंको अवसादक स्वापजनक (Sedative Narcotics) संज्ञा दी है।

५. सुपुम्णा अवसादक (Spinal Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियाँ सुपुम्णाकी प्रत्यावर्चन क्रियाको अवसन्न करती हैं।

C परिवर्तक औषध।

इस प्रकार की औषधियाँ समस्त शरीरमें शनैः शनैः परिवर्तन कराती हैं। इन औषधियोंका फल जल्दी नहीं मिलता। कुछ काल तक सेवन करने पर इनके चया अपचय (Metabolism) क्रियामें सुधार होता है, निर वेदपूर्व स्थितिको प्राप्त करती है अर्थात् स्वास्थ्यकी प्राप्ति कराती हैं। इसका निवेचन आगे रक्षोषक और रसायन गुण वाली औषधियोंमें किया जायगा।

१ अथ स्यान्निक फलदर्शक औषध ।

इस प्रकारके औषध देहके क्विसा विरोध स्यान् या विरोध मात्र पर प्रभा दशाती हैं । इनमें मुख्य ३ विभाग हैं ।

(A) सशोधक—अर्थात् देहका शोधनकर शारीरिक क्रियासे शैतल्य उत्पन्नक औषधियाँ । इनमें अनेक उप विभाग हैं ।

- १ वमनकारक—एमेटिक्स—Emetics
- २ विरेचक—कैथार्टिक्स—Cathartics
- ३ मूत्रल—डाइयूरेटिक्स—Diuretics
- ४ स्वदल—डाफोरोटिक्स—Diaphoretics
- ५ शिरोविरेचक—एरिक्स—Errhines
- ६ कफनिःसारक—एक्स्पेक्टोरण्ट्स—Expectorants
- ७ पिचनि सारक—क्योलोगोग्स—Cholagogues
- ८ रज्जोनि सारक—एमेनागोग्स—Emmenagogues
- ९ गर्भाशय आकुचक—एस्बोसिक्स—Ecboics
- १० झालानि सारक—स्योलोगोग्स—Salagogues

(H) चोमउत्पाक—Irritants

- १ रक्त प्रदाहक—रुफसिफेण्ट्स—Rubeifcients
- २ स्नेहनादक—एपिस्पेस्टिक्स—Epispastics
- ३ पूयत्पाक—पुस्त्युलण्ट्स—Pustulants
- ४ क्षीयदाहक—एस्काराटिक्स—Escharotics

(C) प्राकृतिक नियमानुसार कार्यकारी

- १ स्निग्धकारक—डेमुलसेण्ट्स—Demulcents
- २ मादयकारक—एमोलियेण्ट्स—Emollients
- ३ तरलकारक—डिलुएण्ट्स—Diluent
- ४ संरक्षक आन्धाहक—प्रोटेक्टिवस्—Protectives

(२) परम्परा सायदैहिक फलदर्शक ।

- अ अम्लतानाशक—एन्ट एसिड्स—Antacid
- आ क्षारनाशक एन्टाएल्कलिक—Ant-alkales
- इ परापञ्जीन बीजारु नाशक—परेमार्टिमाइड्स—Parasitocides

अर्थात् शारीरिक मत्प शोधण करने वाले शत्रु क्षयकर शारीरिक पात्रुता से पूरा होने पाये, वृत्ति कीशण, चारिका नष्ट करने वाली औषधियाँ । इनमें ३३ उपविभाग हैं ।

A उदर-कृमिघ्न—एन्थेलमिन्टिक्स—Anthelmintics.

B सेन्द्रिय विषघ्न एन्टिज़ाइमोटिक्स—Antizymotics

अर्थात् दूषित आम और उससे उत्पन्न विषका नष्ट करने वाली औषधियाँ।

इनका विवेचन आगे किया जायगा।

(१) घातदोषघ्न।

शरीरके भीतर व्यापक घातवाहिनियोंमें उत्पन्न घातप्रकोपको शमन करनेवाली औषधियाँ। इस विषयमें चरकसंहितामें लिखा है कि—

रूक्षं शीतो लघुं सूक्ष्मश्चलोऽथ विशदं खरं ।

विपरीतगुणोर्द्रव्यैर्माहृत सप्रशाम्भति ॥

वायुमें रुक्ष, शीतल, लघु, सूक्ष्म, चल, विशद और खर, ये गुण मुख्य हैं। इन गुणोंसे विपरीत गुण—स्निग्ध, उष्ण, गुरु, स्थूल, मृदु, पिन्धिल और श्लेष्म, इन गुणों और कर्मों द्वारा उपचार करने पर वायु शमन हो जाता है।

यद्यपि वायु शीतल या उष्ण स्पर्शवाला नहीं है तथापि शीत लगने या शीतल द्रव्यका सेवन करने पर वायुकी वृद्धि होती है तथा उष्ण उपचारसे शान्ति होती है। इस हेतुसे चिकित्सा शास्त्रमें वायुको शीतल माना गया है।

वायुके आचार पर आरोग्य अवलम्बित है। वायुकी विहृतिसे विविध रोग उत्पन्न होते हैं। इस सम्बन्धमें चरकसंहितामें लिखा है कि—

सर्वा हि चेष्टा घातेन स प्राण प्राणिना स्मृतः ।

सेनेय रोगा जायन्ते तेन चैवोपरुच्यते ॥

देहमें सब प्रकारकी चेष्टा वातवाह्य द्वारा होती है। यह सब प्राणियोंका प्राण है। जब यह विकृत होता है, तब रोग उत्पन्न होते हैं और यहाँ तक कि मृत्यु भी हो जाती है।

यदि वायुमें विकृति होती है, तो जितना हासके ठसना उन्नत उपचार करना चाहिये। देर होने पर रोग दृढ़ बन जाता है।

घात शमन वर्ग—सुभुत संहितामें देवदारु, कूठ, हल्दी, वरना, मेघशृंगी (अक्रवासिगी), खरंटी, असिहला (कंपह), आर्तगल (कसरीया-पियावांसा), कौंच बीज, शल्लकी (शालमेद), कुबराची (पाटला), वीरतरु, कसरीया, रक्षी अरनी, गिलाय, परद, पापाणमेद, श्वेताक, आक, शतावरी, पुननवा, घसुक (मंदार, कसिर (अपमार्ग), धतूरा, मारंगी, बनकपास, हृत्चिकाली (मेघशृंगीमेद या विधुआ वृटी), पतंग, येर, जौ, बड़े येर, कुसुयी आदि तथा विशदीर्गघादि गन्ध और द्रव्य, ये सब घातशमनकारी औषधियाँ कही हैं।

विदारोगधादि गण—विगारंगेष (शालस्त्री), विगारोकर, महेश्वरी, गंतम, गाम्बर, पूरनपर्णी, शतावरी, सारिया श्वेत, मारिया श्याम, जीरक, श्लशमक, मायपर्णी, मुष्पर्णी छोटी काली, पकी कटली पुननपा, परद, इंसरी; इरिचकाली (मेगशृंगी मेद), कीच, ये २० औषधियां। यह गण विच पातशामक है शोर, गुस्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वदवाघ और कासको नष्ट करता है।

इनके अतिरिक्त पातहर औषधियां—मुषण मम, रोच्य मम, पुष्पराग, मात्स्यक, सोमल शिलाजील, दशमूल, बाही, रास्ना, गूगल, जगमाही, भिलाषा, लोंदान, परद विल, लक्ष्युन, पच, मधुनाग, बादाम, पिस्ते, पीरलानूल कापरल, गुरामानो, अजपायन, गोमखमुषडी, शंसाहूली, घी, ठक, नारियल, मालमजनी, बद्रास, हाली, प्रमारणी, उसरद, विषाण, कुचिला, कार्पिन-वैल, नीलागिरी-वैल, इत्यादि।

आचार्य चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि :—

स्निग्धोष्ण मासुते शस्ते पित्ते मधुरशीतलम् ।

कफऽनुपान रूक्षोष्ण क्षये मांसरसः पयः ॥

पातप्रक्षोभमें स्निग्ध उष्ण, विचप्रक्षोभमें मधुरशीतल, कफमें रुद्ध उष्ण तथा क्षयरोगमें मांसरस और दूध हितकारक हैं।

बाक्सी पातघटा नाडीवैदिक (Volatile tonic) औषधियां की हैं; उनका समावेश इस पातदोषजन विभागमें हो जाना है। इनमें पातवादिनिषेधक प्रमापोत्पादक, मस्तिष्क और मुष्मूषा पर उत्तेजक (Stimulant) शामक (Sedative), मादक, वेदनानिवारक, चेतनाहर और आश्लेषनिवारक आदि विभाग हैं। इन सबका अंतमार्ग इस आयुर्वेदीय पातशामन विभागमें हो जाना है। इन सबका विवेचन आगे पृथक् पृथक् विभागोंमें यथा स्थान किया जाएगा।

आयुर्वेदी दृष्टिसे यात पातुके स्थान मेंसे ५ विभाग, अर्थात् पात पातुके क्षय, पात विरुद्ध द्रव्य, पातने क्षय, वृद्धि और प्रक्षेपके लक्षण, पातशामक उपाय, इन सबका यणन 'चिकित्सातत्त्वशास्त्र' ग्रन्थ के प्रथम पट्टिके उद्देशानमें पृष्ठ २५ से ३१ के मंतर किया है।

पातशामन प्रकृतिके लिये पथ्य—मधुर, प्रमल, उच्च रस, गू, जी, चागल, उदक, दूध, घी, वैल, मांसरस, दही, मधुर पान, परास, शमीपार, मय, पुशागाण्ड, परवल, वेगन, मुदिषनेकी पत्ती, नर, काकम (हृत्पान), पाणिना, सप्त धनिना, अरुण, सोड, कलाभित्त, पीत मय गी, अररोगी, गोवा, जन्तारा, लक्षुन, शिम, मुनना किशमित, अंगू, आदना, जन्तारविष, मोठे आम, जनाद, बादाम, पिस्ते, चाणुद, वाण, विजनेप, गुणानी, विरिची, नीच, काला अंघ, गाम्बूल, वैजमर्दन, विषाणे अजत रतन, मान, शीश, गंगा,

बनाना आदि आहार विहार पथ्य हैं और ये ही (आहार-विहार) यातप्रकोप होनेपर शमन करनेके लिये भी हितावह हैं ।

यातप्रकोपक आहार-विहार—बलवानसे लज्जना, अतिव्यायाम, अति मैथुन, अति अभ्ययन, अग्नि और सूर्यसे तापका अधिक सेवन, उछलना, नूदना, अति दीर्घना, वेहको अति कष्ट पहुँचाना, जस्म होना, चोट लगना, लंपन, अत्यन्त सैरना, रात्रिको जागरण, अति शोफ उठाना, दायी, घोडा, रथपर या पैदल अति प्रयास करना, अति वमन, अति विरेचन, अधिक रुधिर निकालना, चरपरे, कसैले और कठुवे रसवाले पदार्थ ज्यादा खाना, शुष्क, लघु और शीतवीर्य गुणवाले पदार्थका अति सेवन, शुष्क शाक, सूखामांस, चीना, कोदों और शामक आदि कुष्ठान्य, मूंग, मसूर, धरहर, काला मटर, सफेद मटर, निम्बास (रोम), लाल, घोला, चना, भाजरा, ज्वार, मोठ, उपवास, स्वल्प भोजन, विरुद्ध भोजन (जैसे दूध और मूली एक साथ खाना), अभ्यसन (भोजन पर भोजन), अघोवायु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, ह्रीरु, डकार, और अभ्रपात आदि वेगोंको रोकना, ताजपत्र, कषा कन्हल, गेंधार पत्ती इत्यादिके सेवनसे वायु प्रकुपित होता है ।

इसी प्रकार मैसका वृक्ष, मकई, मैदा ठण्डके आटेका पदार्थ, कुलयी, कन्दूरी, आलू, रतालु, शकरकन्द, फूलगोभी, पानगोभी, वारह, लौकी, ककड़ी, धरबृज, मूँगफली, फेला, अमरुद, सांताफल, रामफल, ये सब यातवृद्धिकर पदार्थ हैं ।

वायु शीतकालमें यादल जानेपर, धपा होनेपर और प्रीप्प ऋतुके अन्तमें विशेषतः कुपित होता है । एवं सूतयसे पहिले और सायंकालसे पहिले भी यातका प्रकोप हो जाता है ।

सुवर्ण—शीतल, वृष्य, बह्य, गुरु, रसायन, मधुर, तिक्त, (कठुवा), कसैला, पाक कालमें मधुर, पिच्छिल, शुद्धिकर, बृहत्, नेत्रको हितकर, मेघा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ानेवाला, हृदयपौष्टिक, आयु-वद्धक, भ्रान्तिप्रद, बालीको विग्रह और स्थिरताकारक, दोनो प्रकारके विष, ध्वय, उन्माद, त्रिशेष ज्वर और शोथको दूर करनेवाला है । इसके गुणोंका विशेष विवेचन 'रसत-प्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' नामक ग्रन्थ के मस्र प्रकरणमें किया गया है ।

रौप्य—शीतल, कषाय, अम्ल, मधुर पिपाकी, सर, स्निग्ध, लेखन, वात पित्तमित और रसायन ।

पुष्पराग अम्ल, शीतल, भातपन और दीपन ।

माणिक्य—मधुर, स्निग्ध, वात पित्तघ्न और रसायन ।

सोमल—रूच, बण्य, पल्प, वष्यकर और पुष्टिकारक । ज्वर, वमन, श्यास, कास, प्रदर और वात रोगोंका नाशक है ।

विद्यारोगघाति गण्य—विदारोगंध (शालपर्णी), विदारोकंद, सहदेवी, गंगेरु, गाखर, पृथ्वीपर्णी, शतावरी, सारिका श्वेत, सारिका श्याम, शोषक, अयस्क, मागपर्णी, मुद्गपर्णी छापी कौली, पपी कटौली पुननवा, एरंड, हंसपदी वृश्चिकासो (मेपशुंगी मेद), फौंच, ये २० श्रीपथिया । यह गण्य पित्त-वातशामक है, शोथ, गुग्म, अंगमर्द, ऊर्ध्वश्वास और फासको नष्ट करता है ।

इनके अतिरिक्त घातहर श्रीपथिया—सुवर्ष्य मरु, रोष्य मरु, पुष्यराग, माखिन, सोमल शिलाजीव, दशमूल, ब्राह्मी, रास्ना, गुग्गु, ज्यामांसी, मिलावा, शोभान, एरंड वैज, लहसुन, बच, बन्धनाग, बादाम, पिस्ते, पोपलामूल कायकल, सुरासानी, अश्वनाभन, गोरखमुण्डी, शशाङ्गुली, भी, उदर, नारियल, मालकांगनी, र्द्राक, हालो, प्रसारणी, उठरक, विषाय, कुचिला, वापिन-वैज, नीलगिरी-वैज, इत्यादि ।

आचार्य चक्रपाणिदत्त लिखते हैं कि —

स्निग्धोष्णं मादते शस्तं पित्ते मधुरशीतलम् ।

कफे ऽनुपानं रूक्षोष्णं क्षये मांसरसं पय ॥

वातप्रकापमें स्निग्ध-उष्ण, पित्तप्रकोपमें मधुरशीतल, कफमें रूक्ष-उष्ण तथा क्षयरोगमें मांसरस और दूध हितकारक हैं ।

दान्द्रीः वातवहा नाडीपौष्टिक (Nervine tonic) श्रीपथिया कही हैं उनका समावेश इस वातदोषघ्न विभागमें हो सकता है । इनमें वातवहिनियोंपर प्रभावेत्पादक, मस्तिष्क और सुषुम्ना पर उत्तेजक (Stimulant) शामक (Sedative), मादक, वेदनानिवारक, चेतनाहर और आक्षेपनिवारक आदि विभाग हैं । इन सफा अंतर्भाव इस आयुर्वेदीय वातदोषघ्न विभागमें हो जाय है । इन सफा विवेचन आगे पूयक पूयक विभागमें यथा न्यान क्रिया जायगा ।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे वात वातुके स्वान भेदसे ५ विभाग, अविद्धत वात वातुके कार्य, वात विद्धत हेतु, वातुके क्षय, वृद्धि और प्रकोपके लक्षण, वातशामक उपान्य, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थ के प्रथम खण्डक उपोद्घातमें पृष्ठ २५ से ३१ के मीतर किया है ।

वातप्रधान प्रकृतिके लिये पर्य—मधुर, अम्ल, लज्ज रज, गेहू, जी, चावल, उदक, दूध, भी, तैल, मांसरस, दही, मधुर पदार्थ, पन्नाभ, मन्त्रीसार, मधु, पुगनागुड, परबल, बैंगन, सुहिचनेकी पत्ती, नाबू, कोरुम (इक्ष्मा), पोदीना, सन्धा पनियां, अदरक, सोंठ, अस्त्रामिर्च, पीपल मेथो, लीं, अगदीस तैल, सोया, अश्वनाभन, लहसुन, हींग, मुनका किरामिस, अंगूर, आंबसा, कच्चानारियल, मोठे आम, अनार, बादाम, पिस्ते, अलरोट, काजू, चिह्नगोत्रे, सुरासानी, चिरींजी, पीप, काळा जीय, ताम्बूल, वैकर्मर्दन, निषाये जलसे स्नान, आमोद, क्रीना, गाना,

ब्रजाना आदि आहार-विहार पण्य हैं और ये ही (आहार-विहार) वातप्रकोप होनेपर शमन करनेके लिये भी हितावह हैं ।

वातप्रकोपक आहार-विहार—ब्रह्मघानसे लक्ष्ना, अतिव्यायाम, अति मैथुन, अति अप्ययन, अग्नि और सूर्यके तापका अधिक सेवन, उल्लूना, वृन्दना, अति दीवना, वेहको अति कष्ट पहुँचाना, जख्म होना, घाट लगना, लंपन, अत्यन्त सैरना, रात्रिको जागरण, अति बोझ उठाना, हाथी, घोडा, रथपर या पैदल अति प्रवास करना, अति वमन, अति धिरेचन, अधिक बधिर निकालना, चरपरे, कसैले और कबुठे रसवाले पदार्थ ज्यादा खाना, शुष्क, लघु और शीतवीर्य गुणवाले पदार्थका अति सेवन, शुष्क शाक, सूयामांस, चीना, कोदो और शामक आदि कुधान्य, मूंग, मसूर, अरहर, काला मटर, सफेद मटर, निष्याथ (शिम), लाल, चोला, चना, बाजरा, ज्वार, मोठ, उपवास, स्वल्प भोजन, विरुद्ध भोजन (जैसे दूध और मूली एक साथ खाना), अच्ययन (भोजन पर भोजन), अघोवासु, मूत्र, मल, शुक्र, वमन, छीरु, बफार, और अभपात आदि वेगोंको रोकना, ताकपल, कषा फट्टल, गँवार फली इत्यादिके सेवनसे वायु प्रकुपित होता है ।

इसी प्रकार मैसका वृध, मकरं, मैदा उबदके आटेका पदार्थ, कुलथी, कन्दूरी, आलू, रतालू, शकरकन्द, फूलगोमी, पानगोमी, तोरई, लौकी, ककड़ी, खरबूज, मूँगफली, केला, अमरुत, साताफल, रामफल, ये सब वातवृद्धिकर पदार्थ हैं ।

वायु शीतकालमें बादल खानेपर, वर्षा होनेपर और भीष्म शत्रुके अन्तमें विशेषतः कुपित होता है । एषं सूर्योदयसे पहिले और सायंकालसे पहिले भी वातका प्रकोप हो जाता है ।

सुषुप्ति—शीतल, वृष्य, वृह्य, गुफ, रसायन, मधुर, सिक, (कबुठ्ठा), फसैला, पाक कालमें मधुर, पिण्डिल, शुद्धिकर, वृहण, नेत्रको हितकर, मेघा, स्मृति और बुद्धिको बढ़ानेवाला, हृदयपौष्टिक, आयु-वृद्धक, कान्तिप्रद, वाणीको विशुद्ध और स्थिरताकारक, दोनों प्रकारके सिप, क्षय, उन्माद, विशेष ज्वर और शोषको दूर करनेवाला है । इसके गुणोंका विशेष विवेचन 'रसतत्रसार व सिद्धयोगसंग्रह' नामक ग्रन्थ के मस्र प्रकरणमें किया गया है ।

रौप्य—शीतल, कषाम, अम्ल, मधुर-विपाकी, सर, स्निग्ध, लेसन, वात विचरित और रसायन ।

पुष्पराम अम्ल, शीतल, वातघ्न और दीपन ।

माणिक्य—मधुर, स्निग्ध, वात-पित्तघ्न और रसायन ।

सोमल—रूध, अप्य, वृह्य, वष्यकर और पुष्टिकारक । ज्वर, वमन, रवात, कास, प्रदर और वात रोगोंका नाशक है ।

शिलाजीत—इसमें सब प्रकारके रोगोंके नाश करनेके विविध गुण अवस्थित हैं। इसमें वात रोगोंके नाशके लिये रस्ना, दशमूल, बला, पुननवा, परंङ, सोठ, मुलाहठी, आदिके न्वायकी भाषना देनी चाहिये।

काठादि औषधियोंमें रस्ना, गुग्गुलु, लहशुन, परंङ तैल, कुचिला, बच्छनाग दशमूल आदिमें वातनाशक गुण अधिक होता है। बलामें वात-पित्तनाशक गुण है। मालकांगनीमें वात-कफनाशक गुण अधिक है।

परंङको संस्कृत भाषामें वातारि रुसा दी गई है। आम्रदापसहित वातविकार परंङ तैल और होनेपर परंङ तैलप्रधान औषधि सत्वर लाभ पहुँचाती है। अनुपान रूपमें अदरकका रस या दशमूल-न्वाय देना चाहिये।

बच्छनाग—कटु, तिक्त, कषाय, अर्ति मधुर, मादक, उष्ण, वात-कफनाशक, रसायन और शल्य है। ज्वर, कण्ठविकार, शिरोध, आदिको नाश करता है। पात्रचात्य विचारवालांत भी इसे ज्वरके लिये उपयोगी माना है।

लहशुन—हृमि-कुष्ठ, क्लिप्त, वातरोग और गुह्य आदिके नाशक, स्निग्ध, उष्ण, शूल, कटु और गुरु है। यह हृदय, क्षीर्ण ज्वर, कुक्षिशूल, कम्ब, फास, शोक, अश, श्वास और कफ रोगका नाश करता है। राजपदमा और रक्तमार धृष्टिमें अति हितकारक है। वास्तवीमें भी लहशुनके तैल और अर्कका उपयोग होता है।

कुचिला—कटु, तिक्त, लघु और उष्ण है। यह कुष्ठ, रक्तविकार, विष प्रकोप, कण्ठ, कफ, वातरोग, मण, अर्श, ज्वर आदिका नाश करता है। वास्तवी मतानुसार कुचिला वातवादिनियोंको उच्छेजना देता है। अतः पञ्चापातमें विशेष लाभदायक है। शीशा वास्तुके विपरीत उल्बम पञ्चापातमें तो अत्यधिक हितकारक है। अपतन्त्रक (डिस्टरिया), अपस्मार, कम्बवात, आघाशोष्ठी, धीर्यसाय आदिमें लाभ पहुँचाता है। इनके अतिरिक्त इसमें दीपन-पाचक (आम्राशयपीठिक) और यात्री कण्य गुण भी हैं।

सुरासानो अजवायन—का निपण्डुरलाकरमें कटु, रुच्य पाचक, आशी, उष्ण, मादक, गुरु और वातकारक कहा है। मदनपालनिपण्डु और मायप्रकाशमें भी वातनाशक नहीं माना। परन्तु वास्तवीमें इसे अजसादक कहा है, वाताक्षेपन, उल्लेख तथा क्लीनिका प्रसारक माना है। मानसिक उच्छेजना, उन्मा, हृदय-वेग वृद्धि, निर्मलता, अपतन्त्रक आदिमें उपयोगी है। मूषेन्द्रिय रुस्यापर अपसादक गुण पहुँचाता है। अतः मूत्राशयप्रदाह (Cystitis) में अति लाभदायक है।

यह औषधि, निद्राप्रद गुण होनेसे, ५ रसी भाषामें हिन्दिरिया रोमिणीको दी जाती है। अधिक मात्रा देनेपर विषप्रकार होता है।

गोरखमुण्डी—को बन्वतरी निषण्णमें कटु, तिक्त, यावतक, आम, अरुचि, अपस्मार, गण्डमाला और श्लीषद रोगोंकी नाशक कहा है। राजनिषण्णमें कफ-पित्तनाशक माना है भावप्रकाशकारने अपस्मार, प्लीहा, मेद और गुदाके रोगोंको नाश करनेवाली कहा है और आमघातपर सोंठ और मुण्डीके कल्कका उपयोग करनेको भी सिखा है। इस तरह नाना प्रकारके मतमेद हैं।

डायरी मतानुसार गोरखमुण्डी रक्तशोषक है। अतः यह उपद्रवविकार, चम रोग और आमघातका नाश करती है। इसमें स्निग्ध गुण होनेसे मूत्रप्रलेकप्रदाह (Urethritis) और बहुमूत्र या पेशाब करनेकी इच्छा बनी रहना (Frequent Micturition) में हितकारक है। एवं अर्श और प्रन्थिशोषपर लेप करनेमें उपयोगी मानी है।

मिलावा—कटु, तिक्त, उष्ण, मधुर और हृमिनाशक है। गुल्म, अशा, अहृणी, कुष्ठ और घात-कफप्रधान रोगोंका नाश करता है। इनके अतिरिक्त स्वास, आनाह, कन्ध, शूल अपाण, शोथ, अरुचि, अग्निमान्द्य, गुल्म कुष्ठ, चित्र और मूष आदि रोगोंमें हितकारक है। चरक संहितामें इसे मेघा और अग्निको बढ़ानेवाला और ७ पूर्ण प्रकारके कफ रोगोंका नाशक कहा है।

यच—तिक्त, कटु उष्ण और वृष्य है। कफ, कफकास, आमवृद्धि, प्रन्थिशोष, वात, अर, अतिसार, अपस्मार आदिको नाश करता है। वमनकारक है। अग्नि, मति, मेघा और आयुको बढ़ाता है और मल-मूत्रका शोषन करता है।

यचके सस्कृतमें घचा, उग्रगन्धा, पद्मन्थी, तीक्ष्णा, गालोमी, शतपर्षिका, खोमशा, हेमवती, जटिला, मगल्या, विजया, उर्मा, रघोष्नी, धन्या, छुद्रपत्री, गालिनी, भद्रा आदि अनेक नाम दिये हैं। इसका उपयोग सब प्राचीन ग्रन्थकारोंने आत्यधिक किया है।

चरक संहिताकारने अर, अर्श, अतिसार, अहृणी, गुल्म, वृषा, क्षय, कास, हिंसका, स्वास, उदररोग, उदावर्त, उन्माद, अपस्मार, कुष्ठ, वाक्प्याभि, विषप्रकोप योनिरोग ऊर्ध्वतम, अदमरी, हृद्रोग, पौनस, मुखरोग, वमन, विरेचन, नस्य, अंजन, प्रसवार्यं नस्य, विषशमनार्थं अणुद, पूत, अंजन आदि प्रयोगोंमें यचका उपयोग किया है। इस तरह सुभुत संहिताकारने भी अनेक रूपमें उपयोग किया है। यचका उल्लेख वाससशमन धर्मोंमें किया गया है, और इसे ऊर्ध्वदोषहर कहा है।

नय्यमतमें सिंकोना छाल (Cinchona bark) का प्रयोग सविराम अरों, (Intermittant fevers) में काम निष्फल हो जाता है, तब यचको उसके साथ मिला कर प्रयोगमें लेते हैं। एव मालाकोके पेचिश और कासरोगमें कफ्य रूपसे भी यह उत्तम औषधि सिद्ध हुई है। प्रतिष्ठाधमें यचका चूर्ण ५५ रती इनिषाये वृषके साथ दिनमें दो बार सेवन करनेसे त्रासदात्मक कफप्रदाहकी निवृत्ति हो

जाती है। बालकोके शूलको नष्ट करनेके लिये १॥ रत्नी मात्रा दी जाती है। ज्वालामुखीका विषम अक्षर शमन करनेके लिये बच्चके काबलोका घृण ५ से १० रत्नी जेलके साथ दिया जाता है। यह ज्वालामुखीके विषपर महीपत्रि है।

इसका उपयोग उत्तेजक घेतनाप्रद श्रीपत्र रूपसे आघसे ३ रघी तक और घमनार्थ १० से २० रघी तक किया जाता है। शिर पर लगानेसे शिरदर्द निवृत्त होता है। प्रतिश्याय, प्रतिश्यायज कास और इन्फ्लूएन्जामें इसका लेप नासिका पर किया जाता है।

गूगल—के गुण मगधान् धन्वन्तरिणीने क्षु, सुगन्धयुक्त, सूक्ष्म, तीक्ष्ण, कटु, कटुपाकी, सर, हृद्य, स्निग्ध, पिच्छिल आदि कहे हैं। नये गूगलको बृहथ और वृष्य तथा पुरानेको अपकपक माना है। यह तीक्ष्ण प्रप्य होनेसे कफ-बातज, सर होनेसे मल और पिग्नाशक सुगन्धयुक्त होनेसे उदरकी दुर्गन्धनाशक और सूक्ष्म होनेसे अग्निप्रदीपक है।

इसके अतिरिक्त धन्वन्तरि निषयदुकारन वर्य्य स्पर्श, भिराद और मेदक गुण कहा है। श्रीपत्रि पुरानी हानेपर अति लेखन होती है। इस आघ्रिमें मधु-सधानकारक, हृद्य तथा मेद, कृण, मेह, शोथ और मूत्रविकारनाशक गुण भी हैं। राजनिषयदुकारने इसे कृमि, अश और प्लीहानाशक एवं मेधावहक कहा है। इस तरह गूगलके अनेक गुण अनुभवमें आये हैं।

माचीन आचार्योंने इसका उपयोग सर्वाङ्गवात, घमसी, कोष्ठकशीपक, आमघात, उदर, ऊर्ध्वगम, शोथ, कणपाक, र्वास, कष, विद्रधि, मगन्दर, गण्डमाल, अस्त्वित्त, प्रमेह और मूत्रराग आदि पर किया है।

रस्ता और गूगलप्रधानश्रीपत्रि या गूगलप्रधानश्रीपत्रिका रस्ताके क्वाथके साथ सेवन करनेसे नूतन वातरोगमें सत्वर लाभ पहुँचता है।

गूगलका प्रयोग विशेषतः नूतन वातविकारोंमें अधिक होता है। यह आम-विपको जलाकर वातको शमन कर देता है। शीर्ष्य रोगोंपर कुचिला शिक्कारक है।

गूगलका बाह्य प्रयोग प्वर, मांसगत आमविकार (Muscular Rheumatism) और शूल न्यानपर होता है। एवं अस्थिभग, वृणणहृदि, दह्र और मल-शोथपर भी किया जाता है।

दशमूलको सुभुठ संहितामें वर्षासहर, त्रिदोषज, आमपाचक और सब म्परहर कहा है। इस दशमूलकी गणना अष्टाङ्ग हृदयकारने म्त्र दास्ताणके भीतर वातज रूपसे की है। माषककारने भिदाय, र्वास, कास, शिरदद, उन्ना, शोथ, ज्वर, आनाह, पार्श्वपीडा और अरुचिका नाशक कहा है।-

दशमूलका उपयोग 'सतत-अक्षर व सिद्धप्रयोगसंग्रह' क क्वाथ प्रकरशमें वातश्लेष्म म्बर, सभिपातके वातप्रधान उपद्रव, हृदयविकार, हृदयारोघ क्पटावरोध,

तन्द्रा, घात, कफ, स्वास, पार्श्वपीडा, प्रसूताके मुखशोथ, शीत, भ्रम, स्वेद, फास, स्वास आदि उपद्रव, गृध्रसी, आमदृदि, अपस्मार, घातज मूत्रापात, विस्फोटक आदि रोगों पर किया है।

घक्तव्य—घातविकारके साथ यदि पित्तप्रकोपके लक्षण-मुखपाक, गरम गरम पतले दस्त दाना, स्वेदबृद्धि, व्याकुलता, निद्रानाश आदि हों, तो वृश्मूलका प्रयोग नहीं करना चाहिये।

धत्ता—को धन्वन्तरि निषण्णकारने स्निग्ध, शीतल, मधुर, वृष्य और बह्य माना है। यह विदोषण है। रक्त, पित्त, और क्षयको नष्ट करती है, तथा बल और भोजनका बढ़ाती है। रात्र्यल्लसकारने इसे घ्राही और घात-विचक्षित कहा है। जब घात और पित्त प्रकोपहो तब धत्ताका सेवन अति लाभदायक प्रतीत हुआ है।

वृश्मनेने इसका उपयोग विविध घातविकार, उन्माद और उरोग्रह पर किया है। मावप्रकाशकारने अर्धित रोगमें धत्ताचीरका प्रयोग किया है। चक्रदत्तने इसके योग, ध्वजाहुक, धन्वबृद्धि और प्रदर रोग पर लिखे हैं। इनके अतिरिक्त यह औषध बृद्धययीमें रक्तपित्त, रक्तार्श, कफविसर्प, मदात्ययज तथा, वृश्मशोषन, घातरक्त, स्वरमेद, राजयक्ष्मा रोगोंमें प्रयोजित हुआ है। एयं रसायन रूपसे इसका प्रयोग लिखा है। वर्तमानमें प्रमेह और कीर्यकी उष्णताके शमनार्थ भी सेवन करनेका रिवाज है।

हालो (चन्द्रशूर)—घातविकार, घातराज और गुल्मनाशक है, इसमें उष्ण, तिप्त, बह्य, स्थान्यपुष्टिकर और त्वचादोषहर गुण भी हैं। नव्य मतयाज्ञानि इसे पौष्टिक, रक्तशोधक (दोषघ्न), स्निग्ध और उत्तेजक माना है।

फाली खाँसीमें इसका शीतकपाय गोद मिलाकर देते हैं। आमघातजन्य राज और प्रदाहजन्य वेदनाके निवारणार्थ इसका पाण्ड लेप किया जाता है। जिन स्थानों पर यह बाह्य उपयोगमें ली जाती है वहाँ पर इस औषधिका भी लेप होता है। निमल स्त्रियाँको और प्रदर रोगिणियोंको इस औषधिका मुरम्बा घनाकर दिया जाता है।

मालाफागनी—रूक्ष, निम्बित कट्ट, तिक्त, सर, वास-कफनाशक, अति उष्ण, वमनकारक, तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक, बुद्धिवर्द्धक और स्मृतिप्रद है। प्राचीन आचार्योंने इसका शिरोविरेचनमें भी उपयोग किया है।

मालाफागनी बुद्धिवर्द्धक और घातहर होनेसे अनेक मनुष्य इसके बीजका सेवन करते हैं और क्रमशः ५० तक पकाते हैं। फिर सख्या पनाते हैं। इसका तैल उत्तेजक है इसमें प्रस्वेद और पेशाव बनानेका गुण है। इस हेतुसे यह तैल उदररोग और शोथरोगोंमें लाभदायक है।

किन्तुनेक चिकित्सक इसका उन्माद और अपस्मार रोगोंमें उपयोग करते हैं। मिलाके पालिश किये चावलसे उष्ण न्याभि बेरीबेरी (Beri Beri) में मालाका

गनीका तेल मद्य के चिकित्सक उपयोग करते हैं। उनके मद्यमें यह बेरीबरी उपाधि सफल श्रीपथि है।

वेवदारु—लघु, तिक्त, लिम्ब, उष्ण, कटुपाकी, श्लेष्म-वातजित है। ज्वर, कास, आमदोष, विषन्ध, शिखा, तन्द्रा, शोथ, आप्मान, प्रमेह, पीनस, कण्डू, कृमि, कुष्ठ आदिका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका अनेक रोगों पर उपयोग किया है। इस वेवदारुमें से तार्पिन तैल निकलता है। इसमें भी वेवदारुके गुणकी प्रतीति होती है।

नव्य विचारवालावे वेवदारुको उदरवातघ्न, स्वेदक और मूत्रल माना है। वे इसका ज्वर, अपारा (Flatulence), शोथ, असोदर, विविध मूत्ररोग और अश्वरीमें उपयोग करते हैं। यह सुभाक, सफदश, आमवात और त्वचा रोगमें सामदायक है। इसका कुष्ठ रोगोंमें बाह्य उपयोग होता है।

शुद्धदारु (समुद्रशोष)—कटु, तिक्त, उष्ण और कफ-वातजित है। यह शोथ, कृमि, प्रमेह, वातरक्त, उदररोग, आमशूलि, कास आदिको दूर करता है। इसका विविध प्रकारके वातरोगों पर प्राचीन आचार्योंने उपयोग किया है। इसका प्रयोग रक्तप्रसादन रुमसे उपदर्शक सविमलमें किया जाता है।

जटामांसी—तिक्त, कषाय, स्वादु शीतल, मेधावद्धक, कान्तिवद्धक, यक्षप्रद है। यह वातरोग, रक्तदोष, शोफ, नख, दाह, मिसप, कुष्ठ आदिका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग, प्यास, कास, विषप्रकोपमें धूम्रवर्तिके मीठर म किया है।

नव्य विचारानुसार जटामांसी पौष्टिक, वातघ्न नाशिकोंके लिये उत्तमक और आक्षेपघ्न है। हिस्टेरिया अपस्मार सन्निपात और आक्षेपक वातमें सामदायक है।

लोमान—वातघ्न, कफनाशक वर्षप्रसादक कण्डू और कुष्ठनाशक है। शस्त्री मतमें इसे उत्तमक माना है। यह जीर्णकासमें स्वासनलिकाके मीठर रहे हुए कठोर वा र निकलानेके लिये और प्रतिश्याय शमनार्थ प्रयोजित होता है। आशुकारी वातरोगके शमनार्थ और मूत्रल गुणकी प्राप्ति (मूत्रयन्त्रको उत्तमना देने) के लिये व्यवहृत होता है। लोमान सेवनसे मूत्रमें रहे हुए धारकी मात्रा कम हो जाती है। कासी खाँसी, कण्डूनाशक, कण्डोरिणी रक्त-ज्वर और कुष्ठिकके आक्षेपमें या यह उपकारक है।

इसका रस ५ ७ बूँद नित्यप्रति दिनमें दो समय सेवन करते रहने से तीव्र यक्षरी घावमें अच्छा लाभ होता है। कपालपर लगानेसे शिर दर्द शमन होता है। एवं मूत्र निरूपण पर लगानेसे मिविलता नष्ट होकर उत्तमना की प्राप्ति होती है।

लोमान और गुक समभाग मिला शरापमें भर सम्पुट करे फिर मम्म कर एक एक रसी पयटे-भरतेपर मुलमें बालते रहनेसे मुलपाक शमन हो जाता है।

(२) वाताक्षेपज्ज ।

एष्टिस्पास्मोडिक्स और ए एटस्पेस्टिक्स एण्ड एष्टिक्न्वलासिप्स ।

Antispasmodics or Antispastics and Anticonvulsives

वायु प्रकोपजनित आक्षेप और सकाष नाशक औषधियाँ । हींग, कस्तूरी, जगमांसी, एरंडतैल, कपूर गोंजाकी कली पन्नास, तमाखू, कुटकी, देवनल, बिकामाली, हुलहुल अइश, राहिशका तैल अजवायनका तैल तगर नीलगिरितैल, सोहागा, घटूरा, अफौम, इतर वातहर तैल तथा किन्नेक मुग-घयुक पदार्थ आदि । इन औषधियोंसे आक्षेपका दमन होता है, अथात् ऐच्छिक और अनैच्छिक मांसपेशियों का अनुचित आकुञ्चन दूर होता है । जब अन्त्रस्य मांसपेशियाँ इस विकार से आक्रमित हो जाती हैं, तब उदर वातघ्न औषधियाँ भिलाई जाती हैं ।

उपप्रकार—

१ तीव्र साधारणिक आक्षेपशामक—अपतत्रक । (हिस्टीरिया) में उपयोगी—हींग, कस्तूरी, जगमांसो आदि ।

२ सार्वाङ्गिक अवसादक—इच्छनाग, तमाखू, पद्मकाष्ठ, कुटकी, देवनल आदि ।

३ बालकाके स्वरक्त्र आक्षेप और धनुवात पर—सोमल, बासी, वूठ, सोहागा, रीप्यलवण, प्याज आदि ।

४ बालकोकी नृत्यवात (Choria) पर—सोमल, गोंजा, यशदक्षार, ताम्र प्रषान औषधियाँ आदि ।

५ तमक-श्वाशज आक्षेप (Bronchial Antispasmodics) पर सोम, घुचीघुटी, घटूरा, खोरहानी अजवायन आदि ।

६ अन्त्रस्य वातवाहिनीमौष्टिक—अपान वायुको निकाल कर उदरशूलको शमन करनेवाली औषधियाँ । इसका वर्धन उदर वातघ्नमें किया जायगा ।

७ चमनियोंके आक्षेपमें अन्नक मसम, गृह्ण मसम, धवदार और कलमी शोरा आदि ।

हींग—का उपयोग हिस्टीरिया की सध अस्वस्थाना में होता है । यह उदराग्मान, उदरशूल हृस्वन्दन, बालकाके दांत आनेके समय द्रुत आक्षेप,, काली लसि, उदर हृमि आदि रोगोंमें उपकारक है ।

कस्तूरी—उत्तेजक, वातहर, आक्षेपघ्न, स्वेदजनक, मूत्रल और कामोद्दीपक अधिक मात्रामें कुछ स्वापजनक ।

सोहागा—कटु, उष्ण, तिग्ध, कफघ्न, स्यावर आदि विपनाशक, कासहर, प्यासशामक, स्वरनाशक, वात-कफनाशक, आमपाचक और अग्निवर्द्धक । डाक्टरीमें

इसे गलन-विकारनिवारक (Antiseptics), और संक्रमणपह (कीटाणुनाशक—Disinfectants) माना है सोहागोमें विशेषता यह है कि यह वास्तव प्रयोग करने पर उभ्रता नहीं लाता । इसका उपयोग विविध चर्म रोगोंमें किया जाता है । मुक्तके भीतर फाला होने पर इसका स्थानिक प्रयोग होता है ।

घतूरा—घासहर होनेसे अपरमार, उमाद, कम्प, आक्षेप आदि घातप्रधान रोगोंमें हितकारक है । श्वास, फास और पुम्फुस-कोपकिष्कारण (Emphysema) रोगमें श्लेष्माको बाहर निकालनेके लिये इसका घूँघ्रपान कराया जाता है । वातराज आदि रोगोंमें इसका ध्याम्यन्तरिक और बाह्य-मयाग किया जाता है । विविध चट्ट रोगोंमें कनीनिका प्रसारणाय और वेदनानिवारणाय इसका छेप नेत्रके चारों ओर किया जाता है । यिपम अवर, उदररोग और हृमिरोगोंमें भी यह लाभदायक है ।

डाक्टरों मतानुसार दो प्रकार

(१) घातवहा नासियोंकी निर्बलताके हेतुसे घातनाशियोंकी क्रियामें वैयम्य होकर आक्षेप उपस्थित होने पर हीना, कस्तुरी, परंठ तैल, जयमांसी आदिका उपयोग किया जाता है । इसको विशुद्ध या विशेष (Specific) आक्षेपनिवारक संज्ञा दी है ।

जसदपटित औपधियां, रौप्यपटित औपधियां, लोह मस्म, नोलायोधा, घातपटित औपधियां आदि यलकरक (Tonic), आक्षेपनिवारक कहलाती हैं ।

अफीम, सूचीवृषी (Belladonna), घतूरा आदि मस्तिष्क उत्तेजक औपधियोंका चापजनक (Narcotic) आक्षेप निवारक कहते हैं ।

(२) घातवहा नासियोंकी उभ्रताके हेतुसे घातवहा नासियोंकी क्रियामें वैयम्य होकर आक्षेप उपस्थित होने पर घातवहानाकी अन्नसादक और मस्तिष्क अन्नसादक औपधियां—तम्बाकू, क्लोरोफार्म, हाइड्रोस्फानिक-रसिद्ध आदिका व्यवहारमें लाया जाता है ।

बहुधा आक्षेप-निवारक सब औपधियाँ पहिले घातवहा नासियों और मस्तिष्क पर अन्नसादक अन्नर पहुँचा कर आक्षेपका निवारण करती हैं । इनके अतिरिक्त रक्तमोक्षक, शीतलता और अन्नसादक औपधियां भी आक्षेपकी निवृत्ति करती हैं । प्रदाहजन्य आक्षेप में इनके विशेष उपयोग होता है ।

(३) उदरघातजन

कार्मिनेटिक्स Carminatives उदर (आमाशय और अंत्र) में उत्पन्न वातका शमन करनेवाली औपधियाँ—संक्षिया, तात्र, शंस, कीकी, गंधक, नमक, मजजीकार, अन्नवायन, अदरल, विप्रकमूल, कुचिसा, दासचीनी, सोंठ, मिर्च, पीपल, गजपीपल, मेथी, लौंग, अरपडी, बापधिर्ग, साया, हींग, कस्तूरी, इलायची, शीतल मिर्च, कस्तूरी, तगर, सरसी, जीरा, अन्नमोद, हाइशुन आदि ।

इस प्रकारको औपधियासे आमाशय और अन्नकी पुर सरण तथा (Peristalsis) में वृद्धि होती है तथा आमाशयके उभय ओरकी मांसपेशियाँका अवरोध दूर हो जाता है। फलतः वायुका निर्गमन सरलतापूर्वक हो जाता है। इनके अतिरिक्त कुचिला, पीपल, पोपलामूल आदि चरपरो औपधियासे आमाशयकी गति सरल बनती है।

सोमल और साम्र—उम्र है। इनसे पाचक रसकी वृद्धि होती है और उदर-वातका शमन होता है। इन दोनोंके गुणोंका विस्तार "रसतन्त्रसार" के भूम प्रकरणमें किया है।

मुष्ठा, प्रवाल, शंख, शुक्ति, वराणिका, ये सब आमाशय रसकी उम्रताको शमन कर उदरस्थित दाह और वायुको दूर करते हैं। विशेष गुण वर्णन "रसतन्त्रसार" में लिखा है।

चित्रकमूलका—उपयोग प्राचीन ग्रन्थोंमें अत्यधिक किया है। चरक संहितामें लेसनो, मेदनीय, दोपनीय, वृक्षिण, अशोष, शूलप्रशमन आदि दोषोन्निर्मुक्तिके इसका उल्लेख किया है। प्रसूताको इसका चूर्ण जल्दी प्रसवार्थ सुँपाया जाता है। यमनोपग और कटुस्फुटनमें भी इसकी गणना की है। सुभ्रुत-सहिताकारने आरम्भधानि, वरुणादि, मुष्कानि, पिप्पल्यादि, गुस्तादि, आमलन्यादि और धोतवादि गण्यमें चित्रककी योजना की है।

चित्रकमूल दापन, पाचन, गुदशोषहर, कटु, लघु और विपाकमें कटु है। कफ, वातोदर, अशु, ग्रहणी, कृमि, कण्डू आदि रोगोंका नाश करती है। प्राचीन आचार्योंने इसका उपयोग अतिसार, अशु, उदररोग, ग्रहणी, मेदोरोग, पाण्डू, शोथ, गुल्म, कुष्ठ, चित्र, क्षीपद, अक्षयशोथ, विक्रामेह, कृमिरोग आदिके प्रयोगोंमें किया है। वाग्महाचार्योंने इसका प्रयोग रसायन रूपसे भी लिखा है।

नव्य चिकित्सक त्रय, चिकित्सिकों पद्धतार को करनेके लिए इसके मूलका लेप करते हैं। चित्रकमूल सज्जमात्राओं उच्छेक है और अधिक मात्राओं दाहक और स्वापकनक असर उत्पन्न करती है। इसमें स्वेदल गुण होनेसे नूतन खरोंमें लाभदायक है।

गन्धक—स्वेदल, शोषक, कफनिःसारक पित्तनासारक, ज्वरघ्न, कुष्ठघ्न, विरेचक, दाहशामक है। आमाशयकी श्लैष्मिक कला पर किसी भी प्रकारका असर नहीं पहुँचाती। अंतोंमें पहुँचने पर अन्नस्य श्लैष्मिक कला और दोषागमें उठेना लाकर विरेचन करती है तथा अन्नकी पुरःसरण क्रियामें वृद्धि कराती है।

गन्धकका विशेष उपयोग कम्ज, अतिसार, अशु, रक्तविकार, कटु आदि खचा रोग, ज्वर, उदरवात, दाह, अपचन, विसूचिका, उपश, क्षीण-वातविकार,

शीघ्र वायुजनित विपश्चिकार, पारद विष आदि रोगोंमें किया गया है। आयुर्वेद और एलायियो दोनों शास्त्रोंमें इसका उपयोग विशेष रूपसे होता है।

गन्धका तैल घनाकर कृष्णपाकमें और त्वचारोगोंमें माखिरा आदिके लिये उपयोग में लिया जाता है।

इसके अतिरिक्त बास्त्ररामें सुगन्धित द्रव्य (Aromatics) विमायमें क्लिष्टनोशी औषधियाँ हैं। इसमें उदरदातनाशक गुण रहता है। इनके सेवनसे अन्व-शक्ति सफल होती है अपान वायु सरता है इक्रान आने लगती है तथा उदरगुण शमन हो जाता है। ये सब कृष्णस्वात् और सद्गन्ध युक्त हैं। सबके स्वाद और सुगन्धक हेतु इनमें रहा हुआ उड्डयनशील तैल (Volatile oil) है। इन सबके तैलमें विभिन्नता है।

सौंफ, सेन्पा, सन्तरेकी छाल, अम्राओ नीबूकी छाल, छोटी इलायची, केशर, लौंग, दालचीनी, घनिया, जोरा, शीतल मिच, बिजौरकी छाल, पीपरमेष्ट (Nea-
tha Piperita), पादीना, जायफल, काली मिर्च, पोफ़ल, अजवायन, सोंठ, अनीसल (सौंफ मेद), ताजी चाय, रोहिपपास, यूकेलिप्टस आदिके तैलमें उदर-चातहर गुण हैं।

इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे उदरमें उष्णताका भास होता है धमनीओ गति दृढ होती है और समस्त शरीर उष्ण हो जाता है। आमाशयकी श्लैष्मिक फला उचेचित होनेसे पाक्क रस विशेष परिमाणमें निकलता है इस हेतुसे पचन शक्तिमें वृद्धि हो जाती है। अतः इन औषधियोंकी गखना आमाशय पीडिक औषधियों में की है। आमाशय अथवा अत्रमें वायु उत्पन्न होने पर ये वायुको नष्ट करती हैं। अतः इनको उदरदातन भी कहते हैं। यदि इन औषधियोंका सेवन अधिक मात्रामें किया जाय, तो आमाशयमें प्रदाह उत्पन्न हो जाता है।

यदि इन औषधियोंका धात्र उपचार किया जाय, तो त्यागिक उग्रता उत्पन्न करती है। एवं अधिक काल तक रखने पर प्रदाह उपरिपठ होता है। ये औषधियाँ चातयाहा नाशियों पर विशेष प्रभाव नहीं दर्शाती।

इन औषधियों के प्रयोगके हेतु —

१. अपचन आमाशयकी निर्मलताके हेतुसे वेदना आघेन या मारोशन और आमाशय या अन्त्रमें वायुकी उत्पत्तिको दूर करने के लिये।

२. दुर्गन्धियुक्त और केम्बाडु औषधिके गन्ध और स्वादका परिप्लान करानेके लिये।

३. विरेचक औषधिके साथ उग्रताका शमन करानेके लिये। इसे मिलाने पर उदरमें वेदना नहीं होती।

४ आमाशयपौष्टिक औषधियोंके साथ मिलानेसे आग्नेय गुणकी वृद्धि होती है और वह आमाशयसे सहज हो जाती है।

५. भोजनके साथ मिलानेसे भोजनका पचन सत्वर होता है। इसलिये इसका भोजनके साथ व्यवहार हो सकता है।

सूचना—मात्रा अधिक होने पर विविध रोगोंकी उत्पत्ति हो जाती है।
 यथा—आमाशयका चिरकारी प्रदाह, बारम्बार उत्तेजनायुक्त आमाशयकी निर्बलता, देहके अधिक पोषणसे रक्ताधिक्य और इस हेतुसे यातरक्तकी उत्पत्ति मूत्रमें चार (यूरिक एसिड URIC ACID) जाना और अक्ष्मी आदि रोग हो जाते हैं।

इन औषधियोंके तैलका बाह्य प्रयोग करने पर चममें उत्तेजना होती है फिर त्वचा लाक्ष हो जाती है। स्वचित् स्थानिक स्नायुकी भी उत्पत्ति होती है। उदरमें सेवन करने पर आमाशय और अन्त्र उत्तेजित होते हैं। फिर रक्तावेगकी वृद्धि होती है। लाला, आमाशय रस, और आन्त्रिक रस ये सब अधिक निकलते हैं। इस हेतु से अन्ननलिकामें उधेजना आ जाती है।

योग्य मात्रामें ये अग्निप्रदोषक और वातहर हैं। अधिक मात्रामें आमाशय और अन्त्रमें उत्तेजना लाते हैं। आमाशयमें क्षोभ होने पर प्रतिफलित रूपसे हृदय और केन्द्रीय वातवशा नाभियोंमें उत्तेजना आती है।

इस प्रकारके तैल त्वचा द्वारा शोषित होने हैं, और त्वचा द्वारा ही बाहर भी निकलते हैं। इसी हेतुसे ये चमपर उम्रता उत्पादन करते हैं। इसके अतिरिक्त श्वासन शिफाकी श्लैष्मिक कला द्वारा निन्दवासके साथ बाहर निकल जाता है। इस हेतुसे श्वासनशिफाकी श्लैष्मिक कला उत्तेजित होती है। फिर सावण, रक्तावेग और सब मांसपेशियोंकी निष्काशन शक्ति बढ़ जाती है एवं उम्रताके हेतुमें प्रसिन्धित रूपमें कासकी वृद्धि होती है। इस हेतुसे ये औषधियाँ कफनि सारक रूपसे कार्य करती हैं।

ये तैल प्रचुर परिमाणमें वृक्ष द्वारा मूत्रके साथ बाहर निकलते हैं। इस हेतुसे मूत्रप्रणियों उत्तेजित होकर क्षोभ पीकित हो जाती हैं। किन्तु ये तैल अभिकांश स्थलमें मूत्रल रूपसे कार्य करते हैं। इसके अतिरिक्त ये मूत्राशय और जननेन्द्रियकी श्लैष्मिक कला पर सतेजना लाते हैं। कचित् यह उत्तेजना इतनी अधिक होती है, कि श्लैष्मिक कला प्रदाहमय हो जाती है।

इन तैलोंमें किसी-किसीके क्रिया सब प्रकारसे प्रबल रूपमें प्रकाशित होती है और किसी-किसीकी क्रिया किसी-किसी आशय या यन्त्रपर अधिकतर प्रतीत होती है। ये सब शारीर विधानपर जिस तरह कार्य करते हैं तदनुसार उनका व्यवहार किया जाता है। अतः इनके निम्नानुसार विभाग किये हैं। -

(१) त्वचा पर प्रधानतः कार्य करनेवाले—तार्पिन तैल, नीलगिरि (मूकेलिप्लस) तैल, राई और सरसोंका तैल, रोममरीका तैल, कागुपू तैल आदि। ये सब त्वचा पर उठेजना साते हैं।

(२) ग्रामाशय और अन्तःपर कार्यकारी उदरवातहर—खोंग, पीपल, पिपरमेंट, जायफल दाखचीनी, सांड, लाल मिर्च काली मिर्च इलायची, सोंफ, सोया, नीलगिरि कपूर, लघ्वेयदर, पनिया, खीर आदिके तैल। ये सब पचनेन्द्रिय संस्थामें उठेजना लानेके लिये प्रयोगमें लिये जाते हैं।

(३) ग्रामाशयपर कार्यकारी और प्रतिफलित रूपसे हृदय और केन्द्रीय वातविधानमें उठेजना जाने वाले—जयामांसी, हींग, बाल (Myrrh) और गालबेनम गोंद (Galbanum) आदि। इनका मिश्रण उठने वाले तैल में होनेपर या इनका तैल बनाने पर ये प्रतिफलित रूपसे हृदय और समस्त वातविधानपर अंतर पहुँचाते हैं।

(४) श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कलापर कार्यकारी लक्ष्मण और प्याजका तैल फरशुल तैल (Fir Wool Oil), लोधानका तैल आदि। ये सब उठेजना साते हैं।

(५) वृक्क मूत्रमाग और जनेन्द्रियपर कार्यकारी—शीतल मिर्च, गंधाविरोधा अन्दन, धुनिपर आदिके तैल। ये सब उठेजक हैं।

(६) स्त्रियोके जननेन्द्रियपर कामकारी—कस्तूरी, हींग, खीर, शीतल मिर्च, कपूर आदि। ये सब उठेजना साते हैं।

(४) वातशूलघ्न

एन्टिनर्विन्स और एन्टिन्यूरलजिक्स।

(Antinervins or Antineuralgics)।

यात कुपित होनेसे या वातवाहिनियाँकी विकृति होनेसे उत्पन्न शूलको शमन करनेवाली औषधियाँ—ताम्रमस, लौहमस पट्टि औषधियाँ, कासीस मस, गृगमस, रौप्यमस, गन्धक, सोमल, पारदपट्टि औषधियाँ, शिलाजीत, अरुनी, आरुका, अरुंडी, करंज, जायफल, गुंजा, प्याज, लक्ष्मण, दशमूल त्रिगुण्ठी, बच्छनाग, कालीमिर्च, लौंग, सांड, खीर, अजीम, कपूर, पापल अजवायन, अजमोद, कूठ, पुष्करमूल, धोपलामूल, चित्रकमूल अथ मन्थन, चोपचीनी और पौष्टिक पदार्थ आदि।

उदरमें शूल होनेपर—ताम्रपट्टि औषधियाँ और हींग, अजवायन आदि।

ग्रामाशयमें विच वृद्धि उत्पन्न, पर—शंखमस, बरुणिका मस।

पाशुवातान्य शूलमें—लोहमस, मखूर, अजक मस आदि।

पारद, शीशा और ताम्रपिपत्र शूलमें—गन्धक। बलाप्रधान या वात-विचप्रधान उदरशूल यदि रंग अथवा शीशाजनित है, तो—कस्तूरी, नागमस द्वितकर होती है।

सन्धि स्थानोंके घातज शूलमें—लहशुन, एरंड तैल आदि औषधियाँ ।
 निर्बलवाजन्य शूलमें—अन्नक भस्म और रस सिंदूर आदि पौष्टिक औषधियाँ ।
 विपमन्यरजन्य शूलमें—सोमल, हरताल और ह्वरप्न औषधियाँ ।
 उपदंशविषज शूलमें—सोमल, हरताल, चोपचीनी, पारद भस्म रक्तकपूर आदि ।
 मस्तिष्क शूल और नेत्र शूलमें—रौप्य भस्म, ककषी जरी, विरेचन आदि ।
 हिस्टीरियाजनित शूलमें—गौंजा, खुरासानी अजयापन, ङीग आदि ।
 आमवातिक शूलमें—लहशुन, पलुआ, तारपिन तैल, कपूर आदि ।
 वस्तिशूलमें—ज्वालार, शिलाजीत आदि ।
 गर्माशय शूलमें—अशोक, फासीस आदि ।
 हृदय और फुफ्फुनके शूलमें—शुद्ध भस्म, (मृग या बाराहसिंगेके सींगकी
 मरम) उपकारक है ।

तीस पीका दमनार्थ—अफीम आदि ।

रौप्य भस्मका उपयोग मस्तिष्ककी शक्तिका क्षय होकर उत्पन्न शिरःशूल, अग्रस्मार, उमाद, भूतोन्मा, रक्तवादिनीमें घातप्रकोपज शूल, रक्षार्थमें शूल घात या घात पित्तज नेत्रशूल और घातवाहिनियोंमें विकृति होकर इतर स्थानमें चलनेवाले शूल, सन पर होता है । विशेष विवेचन 'रसतन्त्रसार' में किया गया है ।

फासीस भस्मका प्रयोग आमामिक म्याधियों, गर्माशय शूल, अस्त्रोंमें सेन्द्रिय विषज शूल आदिमें होता है और यह रक्तवर्द्धक भी है ।

शुद्ध भस्मका उपयोग पाण्डशूल, हृन्शूल, कफकास, पूगोनिया, प्रतिक्ष्वाय, क्षयज्वर, फालो खांसी, दन्तशूल, शुकवण आदिमें होता है ।

कपूरमें तीक्ष्ण, उष्ण, कटु, ईषत् शीत, कफनाशक, कण्ठदोषघ्न, मेघाकृ, पाचन, कुमिनाशक, वायविकार, चक्षुष्म, निश्चामक, विषघ्न, शर, तुषा, मुष्यदोष, मेद और बुगन्धको नाश करना आदि गुण हैं ।

नभ्यमतानुसार कपूर हृदयकी गति, स्वासोच्छ्वास और रक्तामिसरण क्रियाको उभेजित करता है । कपूरमें कामोत्तेजक गुण भी है । दीपकाल तक सेवन करने पर अबसादक असर पहुँचाता है । इसके संवनसे गर्माशय उत्तेजित होता है और रक्त क्षाय बंद जाता है । कपूरमें वेदनाहर गुण होनेसे बाहर लेप लगाने पर स्वचाको लाल बनाता है । एवं शोषही निवृत्ति करता है ।

कपूर सेवन करने पर त्वचा, मूत्रपिण्ड और श्वासनजिका द्वारा प्रसवेद मूत्र और कफ बनकर बाहर आ जाता है । कमी-कमी कपूर शुकस्थान और मूत्राशयमें प्रशाहनी उत्पत्ति कराकर मूत्रकृच्छ्र भी करता है । अधिक मात्रामें सेवन करने पर अन्नप्रशाह और विपकबन्ध प्रकथित होते हैं । फिर हृदयमें अबसाद, शारीरिक

उष्णतामें न्यूनता, श्वाप-पैरमें शक्तिता, बहारी धीर आक्षेप आदि उपद्रवोंकी उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

कपूर दन्द्शूल, प्रतिश्याय, नासास्राव, पस्त्रिगत कृमि, आममण्डिक शूल, भूतमार, ब्रथ आदि रोगोंमें बाह्य प्रयोगकर से प्रयोजित होता है। आन्तरिकमें कपूरका मस्तिष्क उच्चैर्जक, मादक, आक्षेप निवारक, वेदनाहर, स्वेदजनक और जननेन्द्रियकी उग्रता नाशक लिला है। कपूरका बाह्य प्रयोग प्रत्युपतासाधक रूपसे मा होता है। सेवन करने पर धमनियों में स्पन्दनकी वृद्धि होता है। नाभियों प्रसरित होती हैं। देहमें स्फूर्ति आती है। यह मात्रा भेदसे कभी उच्चैर्जक होता है, और कभी उग्रता-शामक घनता है। द्रव्यधिक मात्रामें सेवन करने पर धमन न हो जाय, तो स्वापजनक असर दर्शाता है। मस्तिष्कमें मारीपन, चक्रर, शानेन्द्रियामें विकृति, प्रलाप, आक्षेप, अचेतना, सुषुप्ति आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। यह अवस्था कई पद्यों तक रहती है।

श्वर, निर्दोषता, अस्त्रिगता, निन्द्रानाश, मृदुप्रलाप, आक्षेप आदि उपद्रव होने पर मस्तिष्कमें रक्तानिबन्ध या प्रदाह न हो, तो कपूरका सेवन करनेसे घातकता नाभियाँ उच्चैर्जित होकर उपकार दर्शाती हैं। इस तरह विद्युच्छिका राममें इसका उपकार प्रत्यक्ष प्रतीत होता है। इनके अतिरिक्त अनेक रोगोंमें बाह्य प्रयोग रूपसे कपूर प्रयोजित होता है।

अफीम—विदोषघ्न, हृष्य, बन्ध और मोहजनन है। माद्यप्रकाशकारके मत्तानुसार शोषक, प्राही, श्लेष्मघ्न, घातक और पित्तकर है। किर भा माद्यप्रकाशमें अतिसार, सप्रहृषी आदिकी चिकित्सामें अफीमकी योजना नही की है अतः प्राचीन ग्रन्थकारोंने इसको उपयोगमें नहीं लिया है।

नम्यमत्तानुसार अफीम—मस्तिष्क उच्चैर्जक, मोहजनक, स्वापजनन, वेदना निवारक, आक्षेपघ्न, श्वापहारक, क्षाम्मक, स्वेदजनक और दापघ्न है। अल्प मात्रा सेवन करने पर प्रारम्भमें उत्तेजना आती है। किर मोहजनक और अन्वसादक अवस्थाकी प्राप्ति होती है। प्रकृति भेदसे इसका फल भेद हो जाता है। किसीको उत्तेजना अधिक होती है और किसी को मोहकता की प्राप्ति अधिक होती है। अफीम की क्रिया प्रधानतः मस्तिष्क और घातनाभियाँके सुषुम्न्याकेन्द्र पर होती है। अफीमके सेवन से कर्मीनिका आकुचित होती है।

अफीमका उपयोग वेदनाशामन, आक्षेपनिवारण, निद्राप्राप्ति और स्तम्भन क्रिया (मसन्तम्भन, बीयस्तम्भन)के दृष्टसे होता है। एवं विविध अकिराम श्वर, क्षुब्ध उन्माद, शिराशोभों रक्तसंग्रह हानक मन्द शिरदर्द, मदात्यय, निद्रानाश, विविध कास, काशी खाँसी, तमकम्बाल, श्वास-कृच्छ्रता, प्रतिश्याय, अशान्त श्वापदाह (Peritonitis), अश्रुप्रदाह, आमारापदाह, अतिसार, प्रवाहिका, अन्वशाण,

आमाशयस्य फर्कस्कोट, यिसुचिका, अत्रान्द्रप्रवेश (Intussusception) दुर्निवार काष्ठबद्धता, इन्फ्लुएन्जा, शीशाघातजनित आक्षेप, वृक्षमण्डाह, आमाशयस्य वातवहा नाभियोंकी ठप्पताजनित यमन और दिक्का, पित्ताशयस्य अश्मरी, मूत्राशयमें अश्मरी, मूत्राशयप्रशह मूत्रप्रसेक नलिक्राके आक्षेपज मूत्राशयरोष, अमिषातज्य गर्भसाव या गर्भपात, गमाशयमेंसे रक्तसाव, इतर प्रकारके रक्तसाव, मांसपेशीरुज, घातरुज, पार्श्वरुज, मधुमेहाके मूत्रमें शकटाट्टि इत्यादि रोगोंमें प्रयोजित होती है तथा रुज आदि वाधिमोमें स्थानिक बाह्य प्रयोग रूपसे उपयोगमें ली जाती है।

आयुर्वेदकी अपेक्षा एलोपेथिमें अफीमका उपयोग अत्यधिक परिमाणमें और विविध प्रकारसे किया गया है।

(५) पित्तदोषघ्न

पित्तके प्रकोपको दूरकर सम अवस्थामें खानेवाली औषधियाँ। इस सम्बन्धमें परक संहितामें लिखा है कि—

सन्नेहमुष्ण तीक्ष्ण च ब्रधमम्ल सरं फटु ।

विपरीत गुणै पित्त द्रव्यैराशु प्रशान्यति ॥

पित्तमें किञ्चित् स्नेह, उष्ण, तीक्ष्ण, ब्रध, अम्ल, सर और फटु, ये मुख्य गुण अवस्थित हैं। इन गुणोंसे विपरीत स्निग्ध, शीतल, मृदु, सान्द्र, कषाय, तिक्त या मधुर, इन गुणों आर कर्मों द्वारा पित्तका शमन होता है।

पित्त स्वमायसे कटु है और विदग्ध होनेपर अम्ल, कटु बन जाता है, ऐसा सुभूत सद्भित्तमें कहा गया है।

शामे सर गुण भी कहा है। उस के विरुद्ध स्तिर गुण है किन्तु उसका उपयोग नहीं होता। क्योंकि, शमन क्रियाके लिये उसकी आवश्यकता नहीं है। स्वम्भन औषधिका प्रयोग पित्ताशमनाय नहीं होता। आचार्योंने विरेचनसे बहकर पित्ताशमक अन्न औषधि नहीं कही।

सुभ्रुवाचार्यने इस सम्बन्धमें कहा है कि—

ययोदकानामुदकेऽपनीते

चरस्तिराणां भयति प्रयाशः ।

पित्ते हृते त्वेषमुपद्रवाणां

पित्तात्मकानां भयति प्रयाशः ॥

पित्त प्रकार—

- १ पाचक—आमाशय और पक्वाशयके बीचमें। अन्न पाचक।
- २ रंजक—यकृतप्लीहामें। रक्तको रंजित करता है।
- ३ साधक—हृदय (मस्तिष्क) में। बुद्धिकी पोषक अग्नि।

४ आलोचक—नेत्रमें। रूप प्रदय करनेवाला अग्नि।

५ आजक—स्वचामें। अम्बग आदिकी छाया की प्रकाशक।

आयुर्वेदके दृष्टिसे पित्त घातुके रयान मेदसे ५ विभाग, अविद्रुत त्रिषातुने कार्य, पित्तविकृति हेतु, त्रिषाके क्षय-वृद्धि प्रकारके लक्षण, पित्तशामक उपाय, इन सबका वर्णन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थमें लक्षणके पृष्ठ २५ से ३२ तक में किया है।

घातुओंकी गति दो प्रकारकी होती है। प्राकृत (Physiological) और विकृत (रोगसंप्राप्तिकर Pathological) इन घातुओंके पोषणका आधार भिन्न है। त्रिष अग्निमय है, जो नाना प्रकारके आहार सत्वोंको पकाकर घातुओंके लिये आवश्यक सत्व प्रदान करता है। यदि यह विकृत हो जाय, तो घातुओंको पोषण नहीं मिलता। फिर बहुतसे विकारोंकी उत्पत्ति हो जाती है। यह भाव सुमुनाचार्यने निम्न श्लोकमें दर्शाया है।

पित्तादेवोष्मण पक्तिर्नराणामुपजायते।

सद्य पित्त प्रकृपित्त विकारान्कुरुते बहून् ॥

देहकी रस रक्त आदि सब घातुओंमें रासायनिक परिवर्तन (Chemical Changes) सवदा सतत जाता रहता है। यह सब कार्य पित्त (घातुओंके मीनर अवस्थित पित्त) द्वारा होता रहता है। इन सब पित्तको पाचक पित्तका आधार मिलता है। पाचक पित्त विकृत होने पर ये क्रियाएँ सम्यक् प्रकारसे सिद्ध नहीं होतीं। फिर अनेक रोगोंकी सृष्टि होती है।

पित्तप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—मधुर, कषुवा और कटौला रस, शीतल जलसे स्नान, शीतल जलपान, शीतलवायु सेवन, प्राणमश्वासमें रात्रिको धौंढनीमें बैठना, मोती या पुष्पकी माखा धारण करना, शय्यापर कमल, गुलाब, मोतिया, मक्षिका, चमेली आदिके पुष्प डालना, चन्दनका लेप, स्वसके पंखेकी वायु, गेहूँ, जी, भात, चने, मूँग, मधुर, मिर्ची, शकर, लीला सत्तु, खनेका सत्तु, पी, वृष, सैभानमक, परबल, करेले, काशीफल, गुणर, आलू, गोभी, चोलाई, पोई, पालक, ब्युआ, चीपटिया, अण्डलेके शूत, कभी कभी, जीरा, अजिमा, अण्डले, अण्डला, नीबू, पक्कल डैय, अंगूर, मुनकल, किसमिन, सेब, अंबीर, फालसा, परके केले, संतप (नारगी), मोठा नीबू, सिंघाई, कमलगट्टे, खीरके बीज, खिरनी, नारियलका जल, खट्ट, ताकल, सब प्रकारके शीतल फल-मूल आदि, जलाशयमें स्नान, प्रातः शयं धूमना, यात्री-यात्री सवारी करना इत्यादि आहार विहार पथ्य हैं और पित्त प्रकोप होनेपर शमनार्थ भी उपयोग में आते हैं।

पित्तप्रकोपक आहार विहार—काष, शोक, मय, परिमम, उपवास, जल द्रव्य पदार्थ खाना, अधिक भोजन, दीर्घना, अधिक धौंढनी सवारी, चरपदे, लट्टे, ममकेन, पीकल, उष्ण लघु और बिदाही गुणवाले पदार्थ, तिल वैन, खली, उबर,

खुलसी, सरसो, अलसी, ताजे शाक, गोह, मङ्गली, बकरे और मेहका मांस, खट्टा दही, खट्टा मछा, कूर्चिका (दही या छाछके साथ झीठाने हुए दूधको मिलाना) मख (दहीका जल), कौची, सिरका, वाचीका रस (यासो), शराब, खट्टे फल, दहीकी मसलाई, सूर्यका ताप, सरसोका तैल, तैलमें तले हुये पदार्थ, नया गुड़, हींग, मेथी, कच्ची इमली, ताजीनूंगफली, शरदमखनका नया अम, सेम, चाय, काफी, तम्बाकू, गाँजा, चरस, ज्यादा नमक, कच्चा फालसा, पुराना तरबूज, पुराना नारियल आदि आहार विहारके सेवनसे पित्त प्रकुपित होता है ।

इसी प्रकार उष्ण पदार्थसे तथा उष्णकृत्, शरदमख, मयान, काल, अर्धरात्रि और मोहन पचनेके समय बहुधा पित्त प्रकोप होता है । लूषण-तृयाके वेगको रोकनेसे भी पित्त प्रकुपित हो जाता है ।

सूचना—यदि खवण द्रावक, फारीश द्रावक आदि अम्ल पदार्थ या अम्ल फलोंके रसका सेवन आयुर्वेदीय मात्रामें किया जाय, तो आमाराशमेंसे अम्ल रसका उत्पत्ति कम होती है फिर क्षाररस बढ़ जाता है, इसके विपरीत क्षारप्रधान द्रव्यका सेवन आयुर्वेदीय मात्रामें होनेपर क्षार रसकी उत्पत्ति कम होती है परिष्काममें अम्ल रसकी वृद्धि होती है, अर्थात् क्षारोंके सेवनसे आमाराशपरस पाचक रसका क्षाघ बढ़ जाता है परन्तु क्षानानि शरणमें हास होता है । इसके विपरीत अम्लरसके सेवनसे क्षाक्षाक्षाय बढ़ जाता है किन्तु आमाराश रसका क्षाय न्यून हो जाता है । अतः इस नियमको लक्ष्ममें रसकर औपधिकी योजना करनी चाहिये ।

पित्त सशामन वर्ग—पित्तकी तीक्ष्णता और वृद्धिको न्यून करनेवाली औषधियाँ—चन्दन, कुचन्द (लाल चन्दन), नेत्रवाला खस, मजीठ, पयस्या (क्षीरका-कोली), विदारीकन्द, सतावरी, गौदनी, शैवाल (काई), कस्तूर (श्वेत कमल), कुसुद, उत्पल (नीलकमल), केला, कदली (कमलगट्टे), दूध, मुर्वा आदि, काकोल्यादि गण, न्यत्रावादि गण तथा तृण पंचमूल, ये सब पित्तशामक औषधियाँ हैं ।

काकोल्यादि गण—काकोली, क्षीरकाकोली, जीवक, कृपयक, मुन्दपर्णी, मापपर्णी, मेदा, महामेदा, गिलोय, काकवासिगो, वंशलोचन, पद्मस, प्रपौष्टरिक, (पुंथेरीक) , ऋद्धि, वृद्धि, मुनका, जीवती, मुलाहठी, ये १८ औषधियाँ कही हैं । यह गण विच, रक्त और वायुकी विकृष्टिका नाशक तथा जीवनीय वृद्धि, शून्य, स्तन्यवर्द्धक और कफघटक है ।

न्यत्रोघादि गण—बक, गुलार, पीपल, पिल्लान, महुवा, आमका, अजुन, आम, आममेद (कोयल), चोरक पत्र (लासका वृक्ष), दोनों प्रकारका आम्रान, चिरोबी, मुलाहठी, रोहिणी (कारमरी), बज्रुल (बैत) कदम्ब, भेर, तेंदू, शल्ठकी (शाकमेद), लोष, पठानी लोष, भिलाया, पलाश, पाख पीपल, ये २५ वृक्ष

कहे हैं। यह गण ब्रह्ममें हितकारी, संप्राप्ती, मग्नसधानकारी, रक्तपित्तशामक, दूर नाशक, मेदोहर और यानि दोषको हरनेवाला है।

पञ्च पृथामूल—कुश, काश, नरसल, दम और इल, इनके मूल-द्वारा, दाह, रक्त और मूत्रविचार तथा मूत्रावरोधके नाशक हैं। विशेषतः इनका प्रयोग दूधके साथ किया जाता है।

इनके अतिरिक्त सुकर्ष, रीप्य, पद्मा, मोती, लघल, वैदूर्य, अफोक, अल्य, सुषर्णामाक्षिक, सफेद चंदन, रक्तचन्दन, विरायता, विद्यपापका, घनिया, मंजिष्ठा, पिशोदाना, पावल, कटु पटोल, वनगोमो, गौलरु, कुष्माण्ड, फलला, मोठे अन्नर अगूर, मोसम्बी, सन्तप, नीपू इत्यादि विना शमन करते हैं।

आयुर्वेदमें आमाराशिक रस (Gastric juice) और यकृतसे निकलने वाला रस (Bile) दोनोंको 'पित्त' संज्ञा दी है। आमाराशिक रस अम्ल और उष्ण है। पित्ताशयसे निकलने वाला पित्त नमकीन है।

पाचक पित्त (आमाराशिक रस) पर कार्यकारी —

(१) आमाराशय क्षीण होने पर (अजीर्ण और अग्निमान्द्यमें) भोजनके प्रारम्भमें तरुण पदार्थका सेवन नहीं करना चाहिये। कठिन (शुष्क) पदार्थका सेवन करनेपर आमाराशय-रसका अधिक होता है।

(२) भोजनके पहिले सादा आदि दारको अलमें मिलाकर सेवन करनेपर आमाराशिक रस अधिक तथा होता है।

(३) नमकीन और स्यादिष्ट भोजनका मुँहमें उल्लस रूपसे चर्चक होनेपर मुँहमेंसे लालास्राव अधिक होता है। फिर आमाराशयमें असेजना आकर आमाराशयसे अधिक निकलता है; धीरे-धीरे तरह-तरीके भोजनके परिपाक भी उत्तर हो जाता है।

(४) भोजनके साथ अलमिष्ठि योको शराव लेनेसे आमाराशय उत्तेजित होकर रस विःसरण अधिक होता है जब यकृतके पित्त सावका हास हो गया हो, तब पित्त सावका अधिक औषधियाँ सेवन कराई जाती हैं। इसका ध्यान आगे न० ८ में करेंगे।

आन्तरिक मृदानुसार अम्लतानाशक (Antacids) यकृतसदाशक (Hepatic Sedatives) और विचित्रिरेचक औषधियोंसे विचशमन हो जाता है। अम्लतानाशक औषधियोंसे आमाराशय, अन्न, मूत्राशयकी अम्लताका हास होता है। इस प्रकारकी औषधियोंमें दो विभाग हैं। सादात् और पूरवर्षी फलदायक।

सादात् फलदायक—भोजनके पहिले शीतल अलपान, नीसाण्ड, सञ्जीवार, मौक्तिक, प्रवाल, शुक्ति, बरायिका, शल, मिथी मिष्ठि चूनेका अल चाकमिटी आदि औषधियोंकी प्रत्यक्ष क्रिया आमाराशयकी अम्लता पर प्रतीत होती है।

दूरयर्त्ती फलदायक—जवाहार, शिलाजीत, मौक्तिक, प्रवाल, वराटिका आदि। इस प्रकारकी औषधियोंसे पेशाबकी अम्लताका नाश होता है, और परम्परागत पचन-संस्था पर खाम पहुँचता है। प्रवाल, मौक्तिक आदि कतिपय औषधियोंमें उभय प्रकारके गुण अर्थात् सादात् और दूरयर्त्ती गुण भी हैं। इन औषधियोंके गुणका विनोद विवेचन 'रसतत्रसार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' में किया गया है।

आमाशयिक पित्तशामक—अम्लतानाशक (Antacids or Alkalies) खिन चारोंका अम्लद्रावके साथ मिलाने पर रासायनिक सम्मिलन द्वारा अम्लताका नाश हो और दोनोंके संयोगसे एक नूतन पदार्थकी उत्पत्ति हो, ऐसे पदार्थको डाक्टरीमें लवण संज्ञा दी है। चार और अम्लके तात्त्विकके हेतुसे लवणके तीन प्रकार होते हैं।

१ चाराधिक लवण—आल्कलाइन सॉल्ट (Alkaline Salt)।

२ अम्लाधिक लवण—एसिड सॉल्ट (Acid Salt)।

३ समचारात्मक लवण—न्यूट्रल सॉल्ट (Neutral Salt)।

चारके अतिरिक्त ऑक्सिजनसंयुक्त धातुओंका अम्लद्राव से सहयोग होने पर लवण प्रस्तुत होता है। यथा कासीस (Sulphate of Iron) का निर्माण गन्धकअम्ल और ऑक्सिजन पट्टि लोहेके मिश्रणसे होता है। एवं गन्धक द्रावक और ऑक्सिजन पट्टि ताँबेके मिश्रणसे नीलाधोषा (Sulphate of Copper) की उत्पत्ति होती है। इनके अतिरिक्त विविध वनीषधिवत् और अम्लके सहयोगसे भी विविध लवणोंकी उत्पत्ति होती है। यथा फिनाइन और गंधकाम्ल मिलाकर फिनाइन सल्फास, अफीमसत्व (Morphine) के साथ सिरका (Acid Acetic) मिलानेपर सिरका प्रधान अहिफेन लवण (Acetate of Morphine) और गन्धकका तेजाब मिलानेपर गन्धकाम्लप्रधान अहिफेन लवण (Sulphate of Morphine) तैयार होता है। इस तरह डाक्टरीमें अनेक लवणोंकी रचना की है।

चारका द्वितीय लक्षण यह है, कि वनीषधिजन्य पीतवर्णको रफ बना देता है। जैसे इस्त्रीके घूर्णके साथ समीकारका जल मिलानेसे लोहितवर्णकी प्राप्ति होती है।

नीलाधोषा, कासीस आदि अनेक उपधातुओंका डाक्टरीमें लवण वर्गमें आउर्भाव किया है।

चार सेवनसे वसायुक्त पदार्थ सत्वर द्रव्यमूत होता है। इस हेतुसे सद्योपन और मेदोवृद्धिमें चारका उपयोग होता है। चारमिश्रित जलका उपयोग कुस्तो करनेके लिए भी किया जाता है। कुस्तो करनेसे मुष्ममें रशो हुई अम्लताका शमन होता है। तथा मनुष्यके पासमें घावनाशकी उम्रताके हेतुसे दंतशुद्धि चलती हो, तो वह शमन हो जाती है। आमाशयमें अम्लरसका परिमाण अधिक संग्रहित होनेपर अम्लनाशाय चारका सेवन किया जाता है।

यदि भोजनके एक या आध घण्टे पहिले चार उपयोगमें लिया जायगा, तो आमाशयमें भोजनके साथ अम्ल रसका त्वाव अधिक हो जायगा। इस क्षुब्ध रस आमाशयमें साध कम होता हो, पेटमें मारीयना हो जाता हो, तब भोजनके साथ य भोजनके आध घण्टे पहिले चारका सेवन हितकारक होता है।

इसके विपरीत भोजनके साथ अम्लरस त्वाव अधिक होता हो, तब भोजनके आध घण्टे पहिले थोड़े जल (१० २० तोले) में एक पके नींबूका रस निचोड़ १४ म से रसकर मिलाकर पिला देनेसे अम्लरसकी उत्पत्ति कम होती है।

तेजाब, घातव-स्रवण (नीलापोषा, फावीस आदि) या लपटार द्वारा विपाक अस्तर पहुँचने या पित्त प्रक्षोभ होनेपर विपश्मनाथ चार व्ययद्धत होता है। तेजाबमें चार मिला जोसे समझाचमत्ता प्राप्त होती है। घातव-स्रवण अद्रव्यधीय ऑक्साइड (Oxide) रूपसे अत्र स्थ हो जाता है। एवं लपटारका तेजाब नष्ट होकर वह अपघातक द्रव्यधीय बन जाता है।

आमाशयमेंसे अर्धपक्क द्रव्य अत्रमें आता है, यह अम्लगुणयुक्त होता है। इस अम्लताके हेतुसे आन्त्रिक क्रिया उत्तेजित होती है, किन्तु भोजनके १२ घण्टे बाद चार प्रयत्ना द्वारा इस अम्लताको नष्ट किया जाय, ता अत्र त्वाव योग्य नहीं होता। फिर परिपाक विकार या अजीर्णकी उत्पत्ति होती है। अत आमाशयमें अधिक अम्लता हो, तब ही चारका उपयोग करना चाहिये।

चार सेवनसे रक्त धनु (Fibrin) प्रवीयत होते हैं, इस हेतुसे आमवातमें हृदयके भीतर संग्रहित रक्तधनुआके निवारणार्थ चार प्रयोक्त होता है। यदि नमकका गावत्रव कांटा, दूध, श्लैथिक कला, मांसपेशी या घातवहा नाकी आदि पर लगाया जाय, तो अति ठमटा ठमटा होती है। नमकका भोजनमें अधिक उपयोग किया जाय, तो आमाशयमें ठमटा उत्पन्न होती है। जलमें मिलाकर पान किया जाय, ता कमन होती है। नमक शरीरमें सत्वर शोषित हाता है और सत्वर ही शरीरमेंसे बाहर निकल जाता है। अधिक नमक सेवन करनेपर विपासा भी अधिक लगती है। अत्यधिक सेवन करनेपर अचित् प्रलाप भी हो जाता है।

सूचना—(१) चार सेवन करनेपर आमाशयकी अम्लता नाश होती है परन्तु अम्लनाशका तथा प्रतिहार नहीं होता। इससे केवल तात्कालिक अम्लता दूर हो जाती है। इस हेतुसे अम्लता घुटि होनेपर होनेवाला वेदना श्रुन्त निवृत्त हो जाती है। परन्तु अम्लताइदिका मूल कारण र्हा जानेसे कुछ समयके पश्चात् पुन पूषक्त अम्लता उपस्थित होती है। अत चार द्वारा अम्लरस (अम्लपित्त आदि) धारिके प्रतिकार करनेकी चेष्टा निष्फल होती है।

(२) बारम्बार चारका सेवन करनेपर मयानक अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। कारण, अधिक परिमाणमें चार सेवन करनेपर चारके नाशक लिये आमाशयको

दुर्गन्त अधिक पाचक रस निकालना पड़ता है। इस तरह धार धार प्रयोग करते रहनेसे आमाराशयकी शक्तिमें पुन पुन उठेजना आते रहनेसे अन्तमें क्षीणता आ जाती है। फिर पाचक रस यथेष्ट परिमात्रमें निर्गत नहीं होता। इस हेतुसे मयानक अजीर्ण रोग उपस्थित होता है। (ऐसी अवस्था शयश्याम्स द्रव उपकारक है)।

(३) आमाराशयकी अम्लत्वानाशाय धारप्रयोग करना हो, तो मोजन कर लेने पर तुरन्त व्यवस्था नहीं करनी चाहिये। कारण, इससे पाचक रसकी अम्लता नष्ट होकर परिपाक क्रियामें व्याघात पहुँचता है। अतः मोजनके १४ घण्टे बाद (अन्नमें आहाररस चले जाने पर) प्रयोग करना चाहिये। अन्नमें अम्लता रहनेपर देरसे द्रवण्योय मेगनेशिया, घूना, बराटिका मूत्र आदिका प्रयोग करना चाहिये। कारण, ऐसा होनेपर औषध, रोगस्थान पर्यन्त जाकर कार्य कर सके।

(४) आमाराशयमें यदि अम्लता वायु रूपसे हो, तो उसके निवारणाय शंखबटी, नौसादर आदि औषधिका प्रयोग करना चाहिये। यदि अम्लरोगके साथ आप्मान हा, तो हींगप्रधान औषधि (शिवाधार पाचन) देनी चाहिये।

(५) अथ विषुचिका आदि रोगोंमें रक्तमेंसे जलीय अंश अधिक निकल जाय, तब रक्तमें स्वामाषिक धार कम हो जाता है। ऐसे समय पर धार उपकारक है। धारका कम मात्रा में अधिक जलके साथ मिलाकर देना चाहिये।

जिस तरह तैलके साथ धार मिश्रित होनेपर साधुन बन प्यता है, उसी तरह आमाराशय आदिमें रहा हुआ तैल प्रधान द्रव्य धार सेवनसे पचन होता है अतः मेशोद्धिमें धार सेवन (गोमूत्र, गोमूत्र धार, अपामार्गधार, शिलाजीत आदि) सामदायक होते हैं। एक जब पित्त और आमनेय रसकी मात्रा कम हो, तब धारका उपयोग किया जाता है।

स्वचित् स्वर आदि रोगोंमें तृषा बढ़ जाती है। उसे आयुषेदमें पित्त प्रकोपका लक्षण माना है। ऐसे समय पर मुँहमें अम्ल मधुर द्रव्य शालुमुन्वार आदि रखने या अम्ल द्रव्यका जलके साथ सेवन करनेपर मुँहके भीतर लाला नि सरणमें वृद्धि होती है। फिर तालु आर्द्र होता और तृषा शमन होती है। किन्तु तेज खट्याईका उपयोग किया जायगा, तो दाँतोंको हानि पहुँचिगी।

यकृद्दोषसादक (Anticholagogues)—मौक्तिक, शुक्ति, बराटिका तथा अप्तोम, पारद वटित औषधि (फेलोमल), मेगनेशिया, परद तैल आदि औषधियाँ यकृत्के पित्तसावका ह्रास करती हैं। इनमेंसे मौक्तिक आदिका पित्त शामकमें अंतर्भाव किया जाता है किन्तु अप्तोम आदिका प्रयोग इस अमिप्रायसे नहीं किया जाता।

पित्तनि-सारक (Cholagogues)—पारदवटित औषधियाँ, रेवन्दचीनी, निसेम, एलबा आदि औषधियोंका सेवन करने पर पित्तका अन्नमें पुन शोषण

होकर रक्तमें मिश्रित होनेके पहिले ही, वे उसे शरीरसे बाहर निकाल देती हैं। वे श्रीपथिका अत्रका पुर सरण्यगति और आन्तरिक रससाधने वृद्धि कर तिष्ठनि धारक क्रिया करती हैं। इसी हेतुसे पिचका नाश होनेसे परम्परागत शमन गुण प्रतीत होता है।

पित्तपापका—शीतल, तिक्त, पित्तश्लेष्महर हैं तथा क्वर, रक्तप्रक्षेप, दाह, अरुचि ग्लानि, मद, भ्रम आदिको नाश करता है। यह मूत्रल और सारक गुण भी दर्शाता है। एवं रक्तकी उष्णताका ह्रास करता है। प्राचीन आचमनें रक्तपित्त पित्तभ्रम, सर्व प्रकारके ज्वर, अतिसार मदास्यय, सूर्दि आदि रोगोंमें इसका उपयोग किया है। इन्स्फूप नामे भी इस श्रीपथिके क्यायसे सत्यर लाभ पहुँचा है। नभ्यमत वाले इसके पतोंके स्वसरका अभिष्यन्द (तीक्ष्ण नेत्रप्रदाह— (Ophthalmia) रोगमें उपयोग करते हैं।

श्वेत चन्दन—शीतल, दाह-पित्तशामक, कषय, कण्डूहम, शिपनाशक, स्मरर और तिक्त है। घमन, मोह, मृगा, कुष्ठ, विमिर, कास, रक्तप्रकप आदका शमन करता है। चन्दनके तैलमें ग्राही, कफम, मूत्रल और उरोजक गुण है। इसका प्रयोग वंशलोचनके साथ सुजाकजनित तीव्र मूत्रदाहमें किया जाता है।

नन्मामतानुसार चन्दनके पूर्ण और क्वापके सेवनसे किञ्चित् उरोजना और परम्परागत रक्तसंचालन यन्त्र पर अक्षयदाहकता पहुँचती है। इसके सेवनसे हृदयक्रिया मन्द होती और श्वनित् घमन होती है। शिपमज्वरमें यह प्रस्वेद लाकर उष्णताका ह्रास करता है।

गिल्लोय—तिक्त, कट्ट और क्वाय स्वमुक्त है। इनमें तिक्तरस प्रधान है। त्रिाक मधुर और धीर्य मन्द उष्ण है। यह संशमन गुण तानों दोषापर दर्शाती है। रक्तके भीतर रित्त या क्रीनाणुश्लिषज्जन्म उष्णता यकी हो, तो उसे दूर करती है।

गिल्लोय रसप्रधान श्रीपथि है (धीर्य—Activeprinciple प्रधान नहीं) इस हेतुसे इसका उपयोग आर्द्राश्लेष्मामें करनेका विधान किया है। मूत्रल क्वर, जोर्य क्वर, आमाराय और यकृतकी निर्मलता, रक्तमें क्लियप्रकोप और अरुचिपर हितकारक है। अन्त्रमें कुष्ठ ग्राही अक्षर दर्शाती है। यह रसरक्त आरि सर्व पातुओंके लिये बल्य होनेसे पातुओंके भीतर खोलें हुए क्लियोको दूर करनेमें उत्तम कार्य करती है। इसका विशेष विचार आगे 'संशमन' विषयमें वर्णन किया जायगा।

(६) पित्तशामक और सारक

कुटकी, आमस्ता, इमली, योग्यार, अजोय, इन्द्रायन, पदसोद, मिफला, पुनर्नभा, अम्लतासकी कलीका गूदा, प्राया, मुलहठी, इक्षाम्ब, (अक्षम), आमचूर आदि।

जो पित्तविवेचक द्रव्यपथियाँ हैं, उनमें पित्तशामक और सारक गुण अवस्थित हैं। इनका वर्णन आगे विवेचन नं० १७ में किया जाएगा। कुछ वर्णन पहिले "पित्तशामक" नं० ५ में आ गया है।

आमलकी (आंवला)—यह दिव्य रसायन है। इसमें कषाय, अम्ल और मधुर रस हैं। यह शीतल और लघु है। दाह, पित्त, घमन, प्रमेह, शोक, कफ पित्त, रक्तप्रकोप धम, विबन्ध, आध्मान आदिको नष्ट करता है। इसमें अम्ल रस होनेसे वातशमन, मधुर रस होनेसे पित्तशमन और रुद्ध-कषाय रस होनेसे कफ का नाश होता है। इस तरह यह त्रिदोषजित है।

प्राचीन ग्रन्थोंमें आंवलेका उपयोग ज्वर, अरि, प्रदर, रक्तपित्त, हिजा, क्षीमिर, रक्तामिष्यन्द, मूत्रविकार, प्रमेह, वातरक्त, विसर्प, पाण्डु, उदावर्त, मूर्च्छा, मूत्रकृच्छ्र, शीतपित्त, नासिकासे रक्तस्राव स्पर्शग, नेत्र रोग, सोम, पित्तशोक, पित्तशूल, यानिदाह, कास, निर्बलता, स्मृतिलाभ आदि व्याधियोंमें रसायन रूपसे किया है।

पित्तशमनाय आंवलेका चूर्ण १ १ तोला या इसका हिम घना कर दिया जाता है। जिससे विवेचन होकर दूषित पित्त निकल जाता है। फिर पित्तप्रकोप का लक्षण दूर हो जाता है।

नव्य विचारवाले इसका उपयोग अतिसार और पेचिशमें प्राचीन रूपसे करते हैं। धूममें रक्त आना (Hemoptysis), रक्तघमन (Hematemesis) और रक्तातिसार आदि रोगोंमें यह लाभदायक है। इसके चूर्णका शर्कराके साथ सेवन करनेसे बुधा प्रदीप्त होती है। इस चूर्णमें शीतल, वातहर, संकोचक और रक्षाधिक गुण रहता है। मूत्राशयकी उग्रता और मूत्रस्तम्भ होने पर इसका स्थानिक प्रयोग (लेप रूप से उपयोग) किया जाता है। रक्तस्राव अधिक होने पर गन्धक को इसके साथ या पाँच से घोसा जाता है, रक्तपित्त (scurvy) में यह सत्वर ठण्कार दशाता है।

(७) पित्तशामक और ग्राही।

ज्वरमोहरा स्वार्द, केहरयापिष्टी कैय (अपित्त्य), अनार, कुङ्की छाल, बेलगिरी, दाहहृदी, रसांजन, बिजारा आमून सेव, गंगरेनके फल, कमल, कमल बीज, पटोलपत्र पित्तपापका आदि।

अनार—जो मधुर स्वाद वाला है, यह पित्तशामक और हितकर माना गया है तथा जो लक्ष्ण है उसे चरक संहिताकारने वातपित्त प्रकोपक कहा है। सुभुव संदित्तमें मठि अनारका त्रिदोषघ्न और लष्टिका वात-कफनाशक कहा है। अनार प्राणी, दीन लघु शीतल रुचिहर, कासघ्न हृद्य और भ्रमनाशक है। वृद्धके मूलकी छालमें इमिष गुण होनेसे उदरवेष्टा-कृमि कटु दाना कृमि (Tape worms) के

नारामें यह ठण्डा और निर्विघ्न औषधि है। इसका उपयोग क्वाथस्मृत किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मूलकी छालमें ईपत् संकाचक गुण होनेसे प्रदर आदि रोगोंमें इसके क्वाथका पिचकारी रूप से उपयोग किया जाता है।

कुटजत्वक्—(फुड़े की छाल) कटु, तिक्त उष्ण, रुच, दीपन, कषा, लघु, पित्तनाशक, प्राणी, और कफनाशक है। यह अतिसार, राजमद्मा रोगीके अतिसार, रक्तातिसार, रक्तार्श, रचपित्त, प्रमेह, शुक्राश्रुती, मिस्रोपक, कुष्ठ आदि रोगोंमें लाभदायक है। न्यममतानुसार भी इसमें ज्वरप्र, कुमिह, रक्तस्वप्नक और गरी गुण माने गये हैं। पेशिशमें यह अच्छा काम देती है। बालकोंकी पेशिशमें म्हे रत औषधिका निर्भयतापूर्वक उपयोग हो सकता है।

कपित्थके पत्तेके फलमें मधुराम्ल, कषाय, तिक्त, शीतल, वृष्य, गुरु, संग्राही, पित्तन, नातनाशक और क्वाथनाशक गुण हैं। कषा फल कफनाशक, प्राणी, वातहर, कण्डूह, विपन्न और कण्डूदोषहर है।

न्यममतानुसार कैपके कोमल पत्ते पाचक, आप्मानहर और क्षमरीनाशक हैं। अजीर्ण, ग्रहणी, अतिसार, मूत्रमें शकटा या रक्त जाना, श्वसादि रोगों पर दिये जाते हैं। कषा कैप प्राणी होनेसे बेलफलके समान अतिसार और ग्रहणी रोगमें प्रयोज्य होता है। पत्ता फल वृषिकर, पाचक, पौष्टिक और रचपित्तनाशक (स्वर्दिनाशक Antisoorbatio) है। इसका शर्षत लालासाव और कष्टपाकके शमनार्थ कषा मधुको सखल बनाने के लिये उपयोगी है। इसका गोद शहदके साथ अतिसार, पेशिश और ग्रहणी रोगमें दिया जाता है। इसके मूलका धूर्य या स्वरस श्वात रोगीके लिये हितकर माना गया है।

विल्व (बेलफल)—में चन्मन्तरि निमग्नकारने अम्ल, स्निग्ध, संग्राही, दीपन, कटु, तिक्त, कषाय, उष्ण, तीक्ष्ण और वातरलेपहर गुण कहे हैं। फल पक जाने पर मधुर, गुरु, विदाही, विपन्नकारक और दोषप्र यनता है। परन्तु राजनिमग्नकार ने मधुर, हृद्य, कषाय, पित्तशामक, गुरु, कफप्र, ज्वरनाशक, प्राणी, रुचिकर और दीपन सिन्हा है। मायप्रकाशकारने भी इसे वातरलेपहर और पित्तशामक कहा है। वरक संहितामें पके बेलको दुर्जर, दोषघ्नक दुर्गन्धमय मल वातहरक कहा है। कषा स्निग्ध, उष्ण तीक्ष्ण, अग्निप्रदीपक और कषा वातमित है। बेलके ये गुण प्रपञ्च अनुमत्रमें आते हैं।

न्यम विचारयाले बेलको तोड़ण और चिरकारी, दोनों प्रकारक पेशिशमें उपयोगी मानते हैं। कषा फलोंको मूत्र, किर शकर मिलाकर स्थितानेसे पेशिश दूर हो जाती है।

बेलफलमें मृदु विरेचक सकाचक और शोषक गुण उत्तम प्रकारका होनेसे आमातिसारमें निर्मयतापूर्वक दिया जाता है। कषा फलमें संकोचक और दीपन पाचन गुण हैं, और पक फलमें मृदुविरेचक गुण अत्यन्त है।

बीजपूरक (त्रिघोरा) लड्डु उष्ण, दीपन और हृद्य है। श्वास, कास अथवा
तृषा आदिसे नष्ट करता और कण्ठका शोधन करता है। इसका रस अति मधुर
और हृद्य है। वीर्य, पित्त तथा घातका हरता है। कर्णकर, रचिकर, रक्त, मांस और
मलको पकानेवाला तथा शूल, अजीर्ण, विषघ्न, मन्दाग्नि, कफघात वृद्धि अपचो
श्वास, कास आदि रोगोंमें उपयोगी है। इसके केसरमें दीपन लघु, माही गुल्म
नाशक और अर्शाभि गुण हैं। इस तरह इस वृद्धिसे सब अंगोंका औषधि रूपसे
उपयोग किया जाता है।

प्राचीन आचार्योंने गुल्म, आनाह, पित्तबिकार, रक्तपित्त, कर्षशूल, पित्तज्वरमें
पिपासा, पित्तज शिरोरोग शूल (पार्वं हृदय और वस्ति प्रदेशमें), वमन, हिक्का मूत्र
में शर्करा (रेत) आना, दाँतोंमें कृमि, वातज विसर्प सगर्भाकी अथवा इत्यादि रोगोंमें
विजीराको उपयोगमें लिया है।

नव्यमतानुसार रक्तपित्त (Sourvy), अजीर्ण, वातज गुल्म (आमाशयमें
गैस भर जाना (Flatulance) ज्वर रोगमें तृषा और अतिसार आदिमें अति
हितकर है। विजीरेमें रक्तके भीतर अम्ल प्रतियोगी तत्व (Alkalies) की वृद्धि
करानेका गुण होनेसे आमवात, गृध्सी कट्टिशूल और इतर वातरोगमें विशेष लाभ
पहुँचाता है। लू लगनेसे उत्पन्न त्वचाकी शुष्कता और क्यूरु रोगमें इसके रसकी
मालिश की जाती है। एवं यह रस प्रसवके पश्चात् होने वाले रक्तसाधको भी बन्द
करता है। इसके वैलकी मालिश करनेसे आमवातज शूलका सत्वर शमन होता है।

(८) पित्तनिःसारक ।

पित्तसाध यद्वैक— यद्दुतेक— कोलेगोगस— कोले रेपिस ।

Hepatic Stimulants Cholagogues-Choleretics

यद्दुते को उत्तेजित करके अधिक पित्तसाध करने वाली औषधियाँ— ताप
मस्य पारदचटित औषधियाँ, नीसादर, मल्लमस्य कोकम आमघूर, एलुआ सञ्जीवार
धीषार, मिच, सनाय, निसेठ, रेबन्दचीनी आदि। इस प्रकार की औषधियोंके सेवन
से यद्दुतेकी क्रिया बढ़ती है और पित्तसाध अधिक परिमाणमें होता है। आमाशय
में अहार होने पर यद्दुतेस्वामाधिक ही उत्तेजित होजाता है अत इन औषधियोंका
सेवन मौखिकके पश्चात् करनेसे पित्तसाधमें सद्बृद्धि हा जाती है।

इन्तरोमें पोटासियम लवणका पित्तनिःसारक कहा है। अधिक प्रथिनमय
आहार पित्तसाधकी वृद्धि कराता है क्योंकि नहीं, तथा मद्य और स्वापजनक द्रव्य
(Narootics) पित्तसाध को नष्ट कर देते हैं।

आकरीमें पित्तनिःरेचन (Cholagogue purgatives) द्रव्य हैं उनका
अधिक पित्तसाधनी नहीं माना किन्तु ये पित्तमेंसे मलत्यागकी वृद्धि कराते हैं और
पित्तका पुन शोधन होनेमें प्रतिबन्ध करते हैं। इनके अतिरिक्त प्रसवता (आनन्द)

आर मयवृत्ति होने पर पिताशयमेंसे पित्तलाव अधिक होता है। क्रोध होनेपर त्रिभ्या स्तम्भित होता है। यदि क्राधावेशमें भोजन किया जायगा, तो उसका पचन योग्य नहीं होगा।

उपर्युक्त श्रौषधियोंमेंसे कतिपय प्लुष्टा रवन्दचीनी, तिलोत्त आदि अन्धरी पुर. सरस्य क्रिया और धान्त्रिक रस निःसरस्यकी वृद्धि करा पिचकी वानर कौन्नेमें महाप्रतापी पहुँचाता है। अतः इन श्रौषधियोंमें यकृत और अन्ध दोनोछे उच्येना देनेका गुण अवस्थित है।

नरसार (नीसादर) — अति उग्र, र्धक्ष, सारक और नेत्रोंको शिवाकर है। गुल्म, उदररोग, विर्यम, शूल, शोष, मांसाभीर्षा, प्रिदोष, यकृत विकार, मीठा विकृति, ज्वर, शिरःशूल, धमुद, स्तनरोग, रक्तित, काष्ठ, अस्थिमग, योनिरोग आदिमें शिवाकरक है।

नश्यमठानुसार यह दोषघ्न, शोषक, साबध क्रियापदक (पित्तनिःसारक, कफनिःसारक), प्रत्येदकारक, मूत्रल और रजोनिःसारक है। स्थानिक प्रयोग करने पर यह तमतासाधक शैत्यकारक और शोषक है। विविध स्वरमें शीतलता स्तानेके लिए प्रयोजित होता है। प्रदाहका हास करनेके लिये स्थानिक प्रयोग रूपसे उपयोग लिया जाता है। स्वरयन्त्रप्रदाहज स्वरमग होने पर इसके धूम्रपान कराया जाता है। शीत लगकर स्वरमग होने पर नीसादरकी जल १ निलाकर उष्णकी वाष्पक सेवन द्वारा कराया जाता है। भोजनके अग्रानसे या अधिक परिश्रमसे मांसपेशियोंमें शूल (Myoneuralgia), विविध वाक्वाहिनियोंकी विकृतिजन्य कामला, यकृतवृद्धि, मीठावृद्धि, गर्माशयको क्रिया क्षीण होकर रजोलेप, शिरकायी वाक्करक, रक्तोच्छ्रास, रक्त-यमन इन सबमें शिवाकरक है। स्तन प्रदाह और योनिःशयमें इसके जलक प्रयोग, योनेके लिये किया जाता है। नेत्रका श्वेतवर्ण मन्त्रिन होने पर इसके पुँद डाँजे काते हैं। यदि नीसादरकी अपेक्षा नीसादरके पुष्पको काममें लिया जाय, तो यह मत्वर पक्ष दर्शाता है।

आयुर्वेदकी अपेक्षा डाक्टरीमें नासादरके अधिकतर प्रयोग मनाये हैं और यह अत्यधिक परिमाणमें ब्यवहृत होता है।

यकृत के कार्य - यकृत शरीरके भीतर अत्यधिक परिमाणमें बनी मन्त्रि है। यह सार्वभौमिक अपाचयकी क्रियामें महत्वका भाग लेता है। इसकी क्रियामें कुछ भी विरुद्धलता होनेपर सध अपाचयप क्रियामें विरुद्धि हो जाती है, फिर विभिन्न लक्षण उत्पन्न होते हैं। यकृतके मुख्य कथ निम्नानुसार ७ हैं।

(१) पित्त का निमाण — इसमें कुछ अंग प्राण (Secretary) और कुछ मन्त्ररूप पित्त (Excretory) होता है। जो अनुपयोगी रक्त-रजकमेंसे मन्त्र ७ यह विकृत राय है और इस साधकार्यमें कुछ प्रतिपन्थ होनेपर पित्तास्थ (Bili

rubin) के त्याग में रुकावट आकर कामला की संप्राप्ति हो जाती है। ये रज्ज्वर द्रव्य पचनसंरथा में कुछ भी भाग नहीं लेता। किन्तु आहार रसके साथ अन्त्रके भीतरी मार्गमें मिश्रित हो जाता है। फिर उद्भिद् कोटाणुओंके उद्याग से नष्ट हो जाता है।

विविध पिताम्ल (Bile acids) प्राकृतस्त्राव हैं, जो वसाके शोषणमें सहायता पहुँचाते हैं। ये अम्ल या इनके विनाशसे उत्पन्न द्रव्य अन्त्रके भीतरसे कुछ अंशमें शोषित हो जाते हैं और यकृत द्वारा पुन मलरूप निकाल दिये जाते हैं। वे यकृत के भीतर प्राकृत खावकारी घटकोंको उच्चैजित करते हैं और स्यामाविक पित्त नि सारक क्रिया कराते हैं।

(२) लोहद्रव्यका चयापचय—यकृत अणयवोंके लोहद्रव्यकी रक्षा और रक्षरजनकी रचनामें मुख्य भाग लेता है। यह पाण्डुयिरोधी प्रतिनिधिका संग्रह करता है। उस प्रतिनिधिकी उत्पत्ति आभास्यिक स्त्रावमें रहे हुए मण्डयत् विशेष द्रव्य (Intrinsic factor) और प्रथिनमय आहारमें अवस्थित पाण्डुनाशक द्रव्य (Extrinsic factor), इन दोनोंके सपपने होती है जो मज्जाके भीतर जीवकेन्द्र मय बृहद् रक्ताणुओं (Megakoblasts) मेंसे सामान्यरुदके जीवकेन्द्रमय रक्ताणु (Normoblasts) और आलदार रक्ताणु (Reticulocytes) बनाने का मुख्य कार्य करता है। एव यह रक्तन्दुजन (Fibrinogen) की रचनाद्वारा रक्त के सामान्य जमावमें भी सहायता पहुँचाता है।

(३) कर्बोदकके चयापचयका नियमन—प्रतिहरिखी शिरासंस्थामेंसे अधिक शर्कराको निकाल देता है और अधिक हो उसका मधुजन (Glycoogen) के रूपमें संग्रह करता है जो सामान्यत ०.१२ प्रतिशत मात्रामें रक्तके मात्र शर्करके केन्द्रीकरखका पोषण करता है। इस क्रियामें अग्न्याशय अक्षिपृक्के भीतरके अक प्रवेयक प्रन्थि और पोषणिका प्रन्थिके विशेष रासायनिक स्त्राव सहायता पहुँचाते हैं।

(४) प्रथिन के चयापचय का नियमन—अमिनां अम्ल (Amino-acids) जो प्रथिनोंके मुख्य अम्ल विपाक रूप हैं, उनके चयापचयमें यकृत सहायता पहुँचाता है। उनका शोषण विशेषत अन्त्रमें होता है।

(५) द्रव्योंका निर्विपकरण—यह क्रिया चयापचय के कालमें उत्पन्न या अन्त्रमें शोषित विपके प्रभावसे देहका रक्षक करती है। अनेक पदार्थ पित्तमें मलरूप से निकाल दिये जाते हैं, जो उन द्रव्योंकी व्यवस्थाको परिष्कृत करते हैं किन्तु यकृत का महत्वपूर्ण कार्य तो अनेक शरीरघातों निर्विप करना है। यह निर्विपकरण इनके निर्दोष मिश्रणका रूप धारण करने तक मेदन या निष्क्रिय मिश्रणकी रचना अथवा शनै शनै मलरूपमें निकल जाने के लिये अणयवके भीतर संपत्ति संग्रह होकर हस्ता

है। इस क्रिया द्वारा अमोनिया मूत्रीकार्बममें परिवर्तित होता है। जो स्वयंभक्त अम्लके लक्षणोंको निष्क्रिय मिश्रण रूपसे नष्ट कर देता है। रग रहित स्तोरस कैब यूरोनलोरसिक अम्ल बनकर ग्लायकुरोनिक् अम्लके साथ संमिश्रित होता है। सल्फोनमाइड यथा-रहितथायु (एसिटीसाइन) रूपमें रूपान्तरित होता है। फिर आने मारी बाहु जो विदीप्त नहीं हो सकती या किसी निर्दोष मिश्रणके रूपमें संयोजित नहीं हो सकती, उसको रक्तसे मुक्त और यकृतमें संग्रहीत की जाती है। फिर धीरे धीरे उनका मूल रूपसे त्याग किया जाता है।

(६) घसाके अयापचयका नियमन—अन्वमेसे घसाका शोषण विस्ती उपस्थितसे होता है। इस घसा का रूपान्तर यकृतके भीतर लेसिथिन (Lecithin) रूपसे होता है, जो तन्तुओंके पास भेज दिया जाता है। कितनीही अफस्याओंमें बहा यकृतके भीतर रहती और बहती जाती है। उदाहरण-स्वरूप उपवास, मधुमेह, फोस्फोरस और सोमलका विष प्रकोप तथा कोलिन (Choline) द्वारा विशेष होनेपर।

(७) मूत्रीयाके अयापचयका नियमन—यह मनुष्योंके शिथे विशेष महत्वका नहीं है।

इनके अतिरिक्त विचरंगका नाश और हेपेरिन (Heparin) को उत्पत्ति आदि कतिपय कार्य भी यकृतमें होते हैं।

यकृतमेंसे जो पित्तस्राव होता है, उस क्रियाके अनेक श्रीपथियों उल्लेख करती हैं। तथा अनेक उत्तेजनाका हान करती हैं। उत्तमना देने वाली श्रीपथियोंसे पित्तस्रावमें वृद्धि और अयसायक श्रीपथियोंसे निगसायका ह्रास होता है। इनमें उत्तेजक श्रीपथियोंमें दो प्रकार हैं—साक्षात् पित्तनि सारक और परम्परागत नि सारक।

साक्षात् पित्तनि सारक (Direct Cholagogues)—ताम्रमस, पीन्ना, नौसादर, पलुआ, फलमीशोरेका वेजाव (Acid Nitro), रेकन्धीनी आदि। इन श्रीपथियों द्वारा पित्तस्राव क्रिया उत्तेजित होती है।

परम्परागत पित्तनि सारक (Indirect Cholagogues)—इस प्रकार की श्रीपथियोंसे सक्रित पित्तका परिमाण नहीं बढ़ता। ये प्रकृष्टीके निम्नांश और शोषामफ (Ileum) के मध्यमें रहे हुए लघु अन्त्रके मध्य भाग (Jejunum) में उत्तेजना पहुँचाते हैं। तथा अन्त्रमेंसे पुनः शोषण करनेके लिये निगरो नाच गमन कराते हैं। इस श्रेणीमें पारम्पर्यित श्रीपथियों, सब विरेचन औषधियाँ और यमनकारक श्रीपथियाँ, इन सबका समावेश होता है। इस प्रकारकी श्रीपथियोंके सेवनसे मलमें पित्त अधिक प्रतीत होती है।

निचनि सारक श्रीपथि सब विरेचक होकर कार्य करती हैं। परन्तु, पित्तसे अत्यन्त पुनःस्राव क्रिया उत्तेजित होती है। अतः इस श्रेणीकी श्रीपथियाँ यकृतकी विविध अथियाँ—यकृतविकारज अजीर्ण (Hepatic Dyspepsia), कामला,

पित्ताशय, अक्षरों आदिमें विरोध उपयोगी होती है। इन रागोंमें साक्षात् और परम्परा काय करने वाली, दोनों प्रकारकी औषधियोंकी योजना की जाती है।

यकृतके विकार जनित अजीर्ण^१ रोगमें औषधि प्रयोगके अतिरिक्त पप्य और व्यायामकी भी व्यवस्था करनी चाहिये। पप्य और व्यायामसे पित्ताशय और पित्तनलिका मेंसे पित्त निर्गमन होनेमें सहायता मिल जाती है।

पित्ताशयमें ताम्रमस, निहोत, जैतूनका तैल आदि औषधियोंका व्यवहार होता है। तीव्र वेदनामें आघर्षकता पर अफीम आदि मादक औषधि दी जाती है। परन्तु अफीम पित्तलापका हास करती है।

यकृतकी मधुरक क्रिया वृद्धि होने पर लोणिया सत्री (सोडा वाई काय), क्लोमी शोरा और नमकके तेजाबका मिश्रण (Acid Nitro Hydrochloric) आदि उत्तेजक औषधियाँ दी जाती हैं। एवं निर्मांश क्रियाका हास या उसे स्थगित करानेके लिए सोमलाघटित औषधियाँ, नागमस, फॉस्फोरस आदि भी दिये जाते हैं। इस प्रकारकी औषधियोंको मधुरक दमनकारी (Glycogenic Depressants) कहा है। यदि मधुमेहमें मूत्रके साथ शर्करा अधिक जाती हो, तो उसका हास करने के लिये अफीम प्रधान औषधि दी जाती है।

पित्तनिःसारक औषधियोंसे पित्त अधिक निकलने पर मलमं पित्त अधिक प्रतीत होता है। परन्तु मलके घेसने मात्रसे अधिक पित्तलाप हुआ है ऐसा निश्चय नहीं हो सकेगा। कारण, कमी पित्ताशयमें संचित पित्त एक साथ अत्रमें चला जाता है कमी प्रणालीमें जा पित्त आया है यह स्वाभाविक क्रिया द्वारा अत्रमें शोषित होने के पहिले किसी कारणवश सत्वर नीचे चला जाता है, इन दो हेतुओंको लक्ष्यमें रखकर निश्चय करना चाहिये।

(९) कफ दोषघ्न

कफ घातके प्रदोषको दूर कर सम अस्थानमें लाने वाली औषधियाँ, चरक संहितामें सिखा है कि —

गुरु-शीत-मृदु-स्निग्ध-मधुर-स्थिर पिच्छिला ।

श्लेष्मण्यं प्रशमं यान्ति विपरीतगुणैर्गुणा ॥

कफके मुख्य गुण गुरु, शीतल, मृदु, स्निग्ध, मधुर, स्थिर पिच्छिल हैं इन गुणोंसे विपरीत गुणों (लघु, उष्ण, तीक्ष्ण रुद्ध, कट्ट आदि रस, सर और विशद) द्वारा यह शान्त होता है।

कफ घात सम अवस्थामें होने पर वल और विकृत होने पर मल कहलाता है। प्राकृत कफको ओज रूप और विकृत कफको रोग रूप निम्न श्लोकमें चरकसंहिताकारने दर्शाया है।

प्राकृतस्तु यत् श्लेष्मा विकृतो मल उच्यते ।

स चैषौजः स्मृतः काये स च पाप्मोपदिश्यते ॥

श्लेष्मसशामन वर्ग—कालेयक (पीत चन्दन), अमर, तिलपर्णी (दुसदुस),
 मूत्र, हल्दी, शातशिव (कपूर), सोवा, सरला (निसोप), रात्ना, प्रमेही
 (कटेली) उर्कोपा (करंज) हिगाट, चमेली, काकाशनी (कंभारी), अक्षिरायी,
 इस्तिष्ण (पलाश) मुंजातक (अमावसे ताक्षपला), खस, कटु, तिक्त, क्वाथ
 युक्त कफप्र श्रौषधियाँ, वल्लीपत्रमूल, कण्टक पत्रमूल, पित्तप्ल्यादिगण, बृहत्यादिगण,
 मुष्ककादिगण, घचादिगण, सुरसादिगण और आरग्वपादिगण, ये सब श्लेष्मसशामन
 कारी हैं ।

यल्लीपत्रमूल—विदारीकन्द, अनन्तमूल, हल्दी, गिलोय और नेटासिंगे,
 ये सब रक्षपित्त वातज, पित्तज और कफज, ये तीनों प्रकारके शोथ सब प्रकारके प्रमेह
 और शुक्रदोषको दूर करता है ।

कण्टक पत्रमूल—क्रींदा, गोलरु, काला कसरैया, शतावरी, और
 श्वनस्त्री (कंभारी) इनमें वल्लीपत्रमूलके समान गुण हैं ।

पित्तप्ल्यादिगण—पीपल, पीपलामूल, चन्म, विप्रकमूल, सोंठ, मिर्च,
 गजपोपल, रेणुकात्रय, इलायची, अजबायन, इन्द्रजो, पाठा, जीरा, सरसों, बन्धयनका
 फल हींग, मारंगी, मूवाँ, अतीस, यक्ष, वापविटंग और कुन्की । इस गणका यथा
 विधि व्यवहार करनेसे कफ, कुकाम, वायु, अरुचि, गुरुम और शूल नष्ट होते हैं ।
 यह आम परिपाचक और अग्निदीप्तक है ।

बृहत्यादिगण—बकी कटेली, छोटी कटेली, इन्द्रजो, पाठा और मुसहटो । यह
 पित्त, वायु, कफ, अरुचि, बमन (मतान्तरमें हृद्रोग) और मूत्रपृच्छको शामन करता
 तथा पचन करता है ।

मुष्ककादिगण—मोवाँ, पलाश, पाय के फूल, विप्रकमूल, मैनफल, सीसम,
 मेहुँडा और मिफला । यह मेद रोग, शुक्र दोष, प्रमेह, पायडु, शर्करा और अक्षमरीका
 नाशक है ।

सुरसादिगण—तुलसी, रामतुलसी (छूटे फले वाली तुलसी) बनतुलसी
 (मरवा), आञ्जनला, रोहिणदुष, सुगन्धदुष सुमुष (नगइ पायची) बकी पापची, कर्सीदी,
 नरुद्धिनी, अरुपुष्पाह (नरुद्धिनी मेद), वापविटङ्ग, कल्पल, मुरली (सफेद
 निगुपची), सम्भलू (कात्री निर्गुणदी), गोरखमुण्डो, मूसाकानी, मारंगी, पाकजंघा
 मकोय और विषमुष्टि (यकायन) । यह गण कफ, कृमि, प्रनिश्याय, अरुचि, श्वास
 और कासका नाशक और प्रखशोषक है ।

इनके अतिरिक्त अमरक मरम, श्व गमरम, वैक्रान्त भरम, शिस्ताजीव, ताप मरम,
 मल भ्रम, ताल भरम, मन-शिला, यक्षेवा, सोंठ, पीपरमेठ, मधु आदि कफ रोपण हैं ।

मुष्कक (मोवा) कटु, तिक्त, प्राही और कफघातक है। विप, मेद, गुस्म क्यङ्क, वस्तिपीडा, कृमि और शुक्रका नाश करता है। प्राचीन कालमें इस वृक्षकी लकड़ी जलाकर चार बनाया जाता था। इस हेतुसे संस्कृतमें इसे "चार भेष्य" सजा, मो दी है। प्रमेह और वातरक्तकी औषधि (पत्रलवण) में इसका प्रयोग किया है।

कुष्ठ (कूठ) कटु, उष्ण और तिक्त है यह कफ वात, और रक्तविकार, विदोष, विन, विसर्प, दहू, खर्जू (स्युचो), क्यङ्क और कुष्ठरोगका नाश करता है। कूठ काश्मीर और हिमालयके पहाड़ोंमें अधिक होता है। इसमें एक प्रकारकी सुगन्ध होती है। प्राचीन आचार्योंने इस औषधिकी अनेक रोगोंपर प्रयोग किया है।

नव्यमतानुसार कुष्ठ उद्वेगक होनेसे आद्वेषक व्याधियाँ—कफ, श्वास, विष्यचिका आदिमें और अपचनमें लाभ पहुँचाता है। दोषमें होनेसे जीर्ण त्वचा विकार और आमवातमें उपयोगी है। हाय-पैरके प्रदाह, मेदोवृद्धिजन्य उदर-स्त्रोति मूत्रमार और शिरदर्द आदिमें शीतोपचार रूपसे इसका लेप गुलायजलमें घिसकर किया जाता है। इस तरह बसोंके मलहममें भी यह रोपण रूपसे लाभ पहुँचाता है।

आयुर्वेद में स्थान मेद से वात, पित्त, कफ, तीनों के ५-५ मेद किये हैं। इन मेदों में अखलम्भक, श्लेदक, घोषक, तर्पक और श्लेष्मक, ये पाँचों प्रकारके कफ अविह्वल भाव रूप होने पर इनका कार्य एवं कफविकृति हेतु, कफके क्षय, वृद्धि और प्रक्षोपके लक्षण, कफशामक उपाम इत्यादि बातोंका वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ २५ से ३२ तक में किया गया है।

जो कफ मुख और नासिकासे बाहर निकलता रहता है, वह विकृष्ट-वृषित श्लेष्मा है। प्रकृतिके लिये हानिकर है। इस हेतुसे आन्तरिक शक्ति उसे जलाती और बाहर निकालती रहती है। डाकरीने इस वृषित कफके निम्नानुसार अनेक विभाग किये हैं—

केवल कफ, रक्तमिश्रित कफ पूयमिश्रित कफ केवल रक्तमय कफ, रक्तस, मिश्रित कफ, केवल पूयमय कफ, सौथिक तन्तुमय कफ ये सब विकृति अनुसार उत्पन्न होकर बाहर निकलते रहते हैं।

कुष्ठकुष्ठ संन्यास, हृदयके द्विपत्र कपाट का अयरोध, श्वासनलिकाविस्तार और वायुकोपविस्तार आदि रोगोंमें केवल रक्त गिरता है, तथा रक्तपिण्ड, पित्त च्वर, श्वासनलिकाप्रदाह और घमनी-विस्तारमें बहुधा कास आकर पूनाधिक रक्त गिरता है।

कफप्रधान प्रकृतिके लिये पथ्य—कड़वा, चरपरा और कटैला रस, चार परिभ्रम, व्यायाम, मार्गगमन, कुन्ती, हाथी-मोक्षेपर सवारी, समुद्रतटकी वायु, रात्रिका अमारण्ड, अल-कीडा, उसके ठाणका सेवन, अग्नि सेवन, पुराने खावल, चना, मूँग, कुलमो, औषध सत्, चनेका सत्, लुपार, बाजरा, सरसोका तैल, शुष्क मोहन, तेज नमक, हरदी, खालामिर्च, पोदीना, गरम मसाक्षा, बैंगन, मटर, ककोडा, करेला,

चीलाई, लाशिका (अम्फोनिया), अदरक, सोंठ, सूना घनिया, क्रीर, पंतु, बायविडंग, सुपायी, ज्यपफल, जावित्री, कंडोल, लौंग, कपूर, जीय, कालाश्री, कालीमिर्च, पीपल, राहद, लहसुन, प्याज, राई, मेयो, केलेका फूल, शगस्तरे फूल, कन्चे बेलफल, कंदूरी, मुद्दिना, ठाम्बूल, मूली और गरमखल आदि आहार-विहार पथ्य हैं, तथा कफका प्रकोप होने पर उसे दूर करनेमें भी सहायक हैं।

कफ प्रकोपक आहार-विहार—दिनमें सोना, शारीरिक क्रम न करना, बैठे रहना, आलस्य करना, मधुर, खट्टे, नमकीन, शीतल, स्निग्ध, गुरु, पिण्डित (विकने रेसादार और गुरु), अमिष्यन्दी (रसवहानाबियोंके मतोंको रोकनेवाले दही आदि), शालि भाबल, जौ, उबद, नया ज्यपल, जंगली घान्य, उबद, बने उबद, गेहूँ, तिल, मैदाके पदार्थ, खोबरेके पदार्थ, दही, ब्यादा दूध, खिचड़ी, मीर, ईसके पदार्थ, अनूप देशके पशु और जलचरोका मांस, चरबी, कमलाफ्री नख, फसेरु सिपाहे, बादाम पिस्ता आदि मधुरपक्ष, आम्रुन, पकके केले, खट्टे आम, खट्टे भर, कर्पूदा, बरुलीपक्ष, (बेलामें होनेवाले पक्ष), अधिक मोचन, मोचन पर मोचन, तुलसी की म्यायी हुई गाय और मैसका दूध, चन्दन आदि शीतललेप, शीतल जलसे स्नान और नारियलकी जल इत्यादि आहार-विहारसे कफ प्रकुपित होता है।

इसी प्रकार बहुधा शीतल पदार्थका सेवन, शीतसमय, पसन्तकाल, सूर्योदय, संध्यासमय और मोचनके प्रारम्भमें कफ कुपित होता है।

आशुकारी कुम्भुसप्रशाहका प्रारम्भ होनेपर कफमें कुछ अंशमें रक्त निकलता है। कुम्भुसक कर्कशरो (Cancer) में रक्तमिश्रित, विपचिपा कफ गिरता है।

न्यूमोनियामें पूर हो जाने पर कफ पीला या हरा हो जाता है।

श्लैष्मिक कफमें बायुके वृद्धदे देते हैं ; और पूयमय कफमें वायु नहीं रहती। पूयमय कफ जलमें डालने पर डूब जाता है।

कमी-कमी कफ केवल रक्तस्वरूप निकलता है। फेफल रक्तस होनेपर यह भाग सदृश प्रतीत होता है।

स्वरयंत्र और श्वासनलिकाकी श्लैष्मिक कफके प्रशाहमें तथा कस्तुरीषीममें शीघ्रिक तन्तुमिश्रित कफ निकलता है।

राम्यवस्त्रामें बतारो सदृश गोन येंधा हुआ कफ आता है। कश्चित् तालु मन्थियोंके कोषोंमें से भी इसी प्रकारकी कफकी छोटी छोटी गोलियां निकलती रहती हैं।

इनके अतिरिक्त स्वरयंत्रके चिरकारी प्रशाहमें कफके साथ तद्वत् अस्थिके टुकड़े निकलते रहते हैं। एवं कमी-कमी कृष्ण आदिके कृमि (Hydatid) जन्मि पत्ताप मो देखनेमें आते हैं। इन सबका विशेष विवेचन 'भिक्षित्सातत्त्वदीप' द्वितीय अध्यायमें श्वासन-व्याधिषीमें किया गया है।

(१०) कफघ्न ।

कफनि सारक छेदन एकसपेक्नोरन्टस्-एपोफ्लेग मेडिसि ।

(Expectorants-Apophlegmatics), ।

खिल्टाम् कफादिकाम् दोपानुन्मूलयति यद्ब्रह्मत्

छेदनं सद्यया चारा मरिचानि शिलाजतु ॥

स्वासनलिका और फुफ्फुस काप आदिमें चिपके हुए दूधित कफको यत्नपूर्वक उखाड़कर निकाल देनेवाली औषधियां चार, कालीमिर्च, शिलाजतु ताम्रपट्टि औषधियां, शिला नमक, सोहागा, जवासार, अयामार्गक्ष चार, नीसादर, सत्रीसार, अहूसा, अरनी, आकशका मूल, सोपारीके फूल, बरेका, इल्दी, अमाहल्दी, काकवासिंगो, कायफल, मुलहठी, भिलावा, तुलसी, देवदारु, कटेसी, बच, निगुंण्डो, स्नासबोल, शहद, बनफसा, लोबानके फूल, कुंदरु, कुचिला, तार्पिन तैल, गन्धक, लौंग, पीपल, प्याज, लहसुन, बच, कपूर, मिर्ची आदि ।

उत्तेजक कफघ्नावी औषधियाँ—ये सब उत्तेजनाको वृद्धि करा कफको पतला करती हैं। चिपचिपापन कम होनेसे खांसने पर कफ सरलतासे बाहर आ जाता है। अन्नक मसम, मृगमसम, वासा, गघाविरोधा, जंगली प्याज, शिलारस, सवभा, हिंगु, नीसादर, कंदल गोंद, (*Dorema Ammoniacum*) कपूर, खोद्यान, क्यन्कारी, परण्डमूल, तार्पिन तैल आदि ।

इनके अतिरिक्त म्बस्य मात्रामें धामक औषधियाँ, उष्ण द्रव वायुका स्वसन, ऊनी वस्त्रधारण, फुफ्फुसोंपर निषाये तैलकी मालिश, पुल्टिस, सेक आदि क्रिया, ये सब कफको बाहर निकालनेमें सहायक हैं ।

ताम्रपट्टि औषधियां (कफ कुटार आदि) कफको निकाल देनेमें अत्यन्त काम देती हैं। एवं येदनाशामक और आक्षेपहर गुण भी दर्शाते हैं ।

जब कफका परिमाण कम हो, तब कुचिला, नीसादर, पीपल, आदि औषधियां देनेसे स्वासप्रश्वासी मातवाहिनियोंके अन्त मांसको क्रिया उत्तेजित होकर कफ निकालनेमें सहायता पहुँचाती है ।

कफनि-सारक औषधियाँ स्वासनलिकामें रसलाय बढ़ती और दूधित प्लेफ्मा को बाहर निकालनेमें सहायता देती हैं। इस क्रियाकी वृद्धि करने और वायुमार्गका संरक्षण करने के लिये नैसर्गिक यन्त्रियाओं (Mechanisms) को समझनेकी आवश्यकता है। वे संचालक (Motor) और साव करानेवाली (Secretory) हैं। संचालक यन्त्रिया स्रस्रम प्रवर्धन (Cilia) ये—१ श्लैष्मिक कसामें अवस्थित संचलन-स्रस्र गति, २ कास की कफ नि सारक प्रतिपलित क्रिया, ३ छोटी भास नलिकाओंकी मांसपेशियोंकी पुरःसरणवत् गति, इन तीनों को धारण करती है ।

भाव करानेवाली यन्त्रिया भासनलिकाकी सतह का भारं रखती और घूम करने वाले पदार्थको द्रव्यमूत बनाती हैं, जो श्लैष्मिककला बहुसंख्यक ग्रन्थियों द्वारा पूरा करती है। ये दोनों (संचालन और भाव) क्रिया प्रायदा (Vagus) अर स्वतन्त्र (Sympathetic) नाभियों द्वारा नियमित होती रहती हैं। प्रायदानाभियोंके केन्द्रगामी तन्तु (Afferent Fibres) श्लैष्मिक कलामेंसे प्रभावको धरन करते हैं, जब यहिर्गामी (Efferent) तन्तु मांसपेशियां और सावकारी ग्रन्थियोंमें शक्ति प्रदान करते हैं। मांसपेशियोंको स्वतंत्र नाभियोंके यहिर्गामी तन्तु भी प्रभावित करते रहते हैं। ये दोनों प्रकारके तन्तुओंका अंतर कल्पित अरकेन्द्र (Hypothetical Cough Centre), जो धसन और वमन केन्द्रसे सम्बन्धवाली है, पर अभिमुखी होता है,

उत्तरगण का वर्गीकरण —

- १ प्रतिफलित कफ निःसारक (Reflex expectorants)
- २ केन्द्रीय कफ निःसारक (Central expectorants),
- ३ सावकारी नाडीतन्तुओंके सिरेकी उत्तेजना द्वारा कार्यकारी।
- ४ भासनलिकाकी ग्रन्थियोंकी उत्तेजना द्वारा कार्यकारी

१ प्रतिफलित कफ निःसारक — कफ निःसारक वर्ग की अत्यधिक ओपथियाँ इस वर्ग में आ जाती हैं। ये प्रायदा नाभियों के अन्तिम संवेदक भाग पर उत्तेजना पहुँचाती हैं। इस भागमें टॉनर इमेटिक (सुरमें से बना हुआ श्वेत दानेदार चूस), कपूर, नीलादर, जगली प्याज, चार, अपोमोर्फिन (Apomorphine), बर्फ आदि अंतर पहुँचाते हैं।

इस प्रकारकी उत्तेजना, जो भासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामें प्रायदानाभियोंके संवेदक अन्तिम सिरे पर होती है, यह भी भासनलिकाके भावकी वृद्धि करती है। इस प्रकारके उत्तेजनशील कैल, कैली गोद आदि द्रव्य हैं, जो भासनलिकाकी श्लैष्मिक कलामेंसे कफ लाय करनेमें मूढ घोष करते हैं।

२. केन्द्रीय कफ निःसारक—इस वर्गके द्रव्योंसे केन्द्रस्थान उत्तेजित होकर भावको बड़ा वेता है। इस वर्गमें अपोमोर्फिन मुख्य ओपथि है। टॉनर इमेटिक और बर्फ भी केन्द्रस्थानपर अंतर पहुँचाता है। श्वासनलिकासे लाय करनेवाला केन्द्रस्थान सुपुम्फास्य वमनकेन्द्र के साथ सम्बन्धवाला है। इन हेतुसे यामक ओपथियाँ एतस्य मात्रामें कफ निःसारक गुण दर्शाती हैं।

३ सावकारी नाडी तन्तुओंके सिरेपर उत्तेजना द्वारा कार्यकारी—इस वर्गकी ओपथियाँ परिस्वतम्भ नाभियों के अन्तिमभागपर अंतर पहुँचाती हैं। पारल-कार्पिन (Pilocarpine) की पत्ती और चार इस वर्गकी ओपथि हैं।

४ श्वासनलिकाकी प्रणियोंको उत्तेजित करके कार्य करनेवाली—आ योदाहृ कफसाव करानेमें सावकारी घटकोंपर क्रिया करके श्वासनलिकाके कफघ्न स्वाथ भया देता है। पहिले यह माना जाता था कि —

अत्यन्त कफनिः सरय और श्वासनलिका की प्रणियों के साथ को बवाने देने चाले द्रव्योंमें नौसादर मिश्रित लवण और चार विशेष औषधि हैं।

कफनि सारक औषधियों के नियमन का आधार रोगी की स्थितिके सन्चे गुणधम, कासप्रकार, श्लेष्माका स्वम ध, रोग की अवस्थाओं (Stages) से सम्बन्ध और कायोत्पादक रोगका परीचार्मक विशेष लक्ष्य इन पर रहा है।

औषध गुण धर्म विज्ञान द्रष्टि से वर्गीकरण—

१ उत्तेजक कफः निसारक Stimulant expectorants.

२ अवसादक कफःनिसारक Sedative expectorants

३ आघेपहर कफःनिस रक Antispasmodic expectorants.

१ उत्तेजक कफःनिसारक—इस प्रकार की औषधियां श्वासनलिका की श्लैष्मिक कक्षा द्वारा निःसरण कराती है। ये मृदु क्षोम कराती और श्वासनलिकामें साव की वृद्धि कराती हैं। यह मृदु क्षोम कार्य करनेमें सहायक होता है। इस वर्ग में मुख्यत उद्ब्यनशील तैल और सुगन्धमय द्रव्य हैं। उद्ब्यनशील तैल, तार्विन, कपूर, लोहमान क्रियासोट और ग्वायाकोल आदि हैं।

इस वर्ग की औषधियों में से कितनी ही मस्तिष्क गत केन्द्र स्थान को उत्तेजित कराती हैं, वे श्वासोच्छ्वासक्रियाको सकल बनाती हैं। इस हेतु से कफ्युक्त कास, पुष्पकुसुमस्यन्दप्रदाह, पद्मा, अफीम का विपप्रक्षोप आदि में श्वासाशरोवके निवारणार्थ व्यवहृत होती हैं। वे औषधियां तार्विन तैल, लोहमान, नौसादर आदि हैं।

२. अवसादक कफः निसारक—इस वर्ग में कफ वृद्धि का हास कराने वाली या कास के वेग को शमन करने वाली विशेष औषधियां चुनी हुई हैं। इस वर्ग की औषधियां सार्वाङ्गिक रक संचालन का अवसादन कराती हैं या श्वासकेन्द्रकी उग्रता का शमन कराती हैं या केन्द्राभिमुखी (Affluent) उत्तेजना का हास कराती हैं। इसमें निम्नलिखित ३ प्रकार होते हैं।

अ. हृजासकर कफनिःसारक—(Nauseant expectorants) आशुकारी प्रदाह या क्षोमको शमन कराने के साथ श्वासनलिका में सरक्षक कफ का साव कराने वाली औषधियां, जो श्लैष्मिक कक्षा पर साक्षात् क्षोम नहीं लाती (पहिले प्रतिफलित कफनिःसारकमें दर्शायी हैं) इस वर्ग को प्रदाहहर कफनिःसारक (Antiphlogistic expectorants) संज्ञा मी दी है। इस वर्गमें यर्नर हेमेटिक, अफीमघार तथा क्वा आदि वामक औषधियां हैं। इनके अतिरिक्त तिग्मकारक औषधियोंमें गोंद, ग्लिसरीन, लेसेवा, मुलाइटी आदि हैं।

आ सावणिक कफनि-सारक—(Saline expectorants) लेसगर भेदे कफ को द्रवीभूत करके निकालने वाली श्रीपथियां—इस वर्गमें पोपस प्रायोहार, नोसादर, खबख, चार, सोडा, पोपस आदि हैं।

इ शूलज कफनि-सारक—(Sedative expectorants) यह कास रुद्धि को प्रतिफलित कियाको नियन्त्रणकारी हैं। इस उपवर्ग में विशेषतः सूखी भूयं, धस्य, अफीम और अनेक चार हैं। ये मांस का हास कराते हैं। इस हेतुसे अब अत्यधिक साव होता हो, तब इन श्रीपथियों का उपयोग नहीं होता।

यत्कथ्य—इन अफीम आदि श्रीपथियों में कफ शौरक (Anti expectorants) गुण रहा है। इस गुणके लिये ये बहुधा म्यकहत नहीं जाती। स्वर्कि राज्यक्ष्मा में शान्त निद्रा खाने के लिये प्रयोजित होती है। इसका वर्णन कफनि-सारक के भागे किया जायगा।

जब अत्यन्त प्रासदायक शुष्क कास उपस्थित होती है, कफ नहीं गिरख, अग्नि प्रास होता है, तब म्निग्धकारक श्रीपथियां दी जाती हैं इनके अतिरिक्त प्रबालसिरी, मुकापिषी, यंशलोचन, अमृतासत्व, सितोपलादि (पूत-मधुसह), सेलसर्पी, कष्या, मुलहठी सत्व, मधुख छासका म्वाय आदि सौम्य शानक श्रीपथियां भी दी जाती हैं। ये सब निमयतापूर्वक उपयोगमें ली जाती हैं।

श्वासोन्मुख वासक वातनाशी मूलाफी क्रियाको अवसादन करने वाली श्रीपथियों प्रतिफलित कासके उपशमनार्थ भी प्रयोजित होती हैं। पुष्पुस, आमाशय, मरुत, प्लोहा, कुसुमवावरख, बृहद् श्वासनलिका, स्वरयन्त्र, नासिका, प्रसनिका और अन्न-नलिकामें से किसीको ठमठा की प्राप्ति होने पर कास मारम्भ होती है। इस कासमें बहुधा कफ नहीं निकलता। ऐसे समय पर अवसादक कफनि सारक श्रीपथियोंके अतिरिक्त मुखमें रख कर चूसने वाली शानक श्रीपथियां भी दी जाती हैं।

३ आशोपहर कफनि-सारक—यद्यपि इस उपवर्ग की श्रीपथियां सन्धो कफनि सारक क्रिया नहीं करती। ये कफका खाव नहीं पढ़ाती और न चिपकिपेरनको कम करती हैं। ये श्वासनलिकाकी अस्थिमिक कम्पाको अवसन्न कर कफको बाहर निकालनेमें सहायता देती हैं। ये श्वासनलिकाके तिरकारीप्रदाह और ठमक श्वासमें द्यधिक उपयोगी हैं। सूखी बूरी, घट्टा, लोभेसिमा, सोरा, सोम (Ephedrine), एड्रिनलोन आदि।

कफरोपक (एन्टिएक्सपेक्टेरेन्ट्स Anti-expectorants) इस प्रकारके श्रीपथियों द्वारा श्लेष्मके अस्थिमिक अंशका परिभाष कम होता है। इस हेतुसे श्वासनलीमें खापिन रस शुष्क हो जाता है। सब प्रकार के तजाव, अफीम, अन्नारदाने और अन्न रस प्रधान श्रीपथियां इत्यादि।

चार सेवन करने पर कफ अपेक्षा कृत ठगल हो जाता है और कफके परिमाणकी वृद्धि होती है। परन्तु अन्न रस प्रधान श्रीपथियोंके सेवनसे कफके

तरलताका हास होता है। इस हेतुसे कफको बाहर निकालनेमें अधिक कष्ट होता है। एवं कासके वेगकी भी वृद्धि होती है।

अम्ल रस—अम्ल रस या अम्लरसका सेवन करने पर कर्षणमूलिका ग्रन्थियों (Parotid glands) मेंसे लालालावकी वृद्धि होती है। एवं हृन्वचरिया ग्रन्थियों (Submaxillary glands) मेंसे भी लाला रस निकलता है। इस हेतुसे ज्वर रोगमें पिपासा शमनार्थ अम्ल पदार्थ (आलुबुखारा आदि) प्रयोजित होते हैं। इन पदार्थों से मुँह और तालु आदिमें लाला रससे आद्रता रहती है।

यदि किसी प्रकारके लठ्ठे रसको चारके साथ मिला दिया जाय, तो उसका चारत्व शुद्ध नष्ट होजाता है। एवं उन दोनोंके संयोगसे लवणोत्पत्ति होती है।

अम्ल रस दाँत पर लगाने पर दन्तहर्षण हो जाता है। अधिक अम्लता दाँतोंको लगती रहने पर दाँत क्षय प्रस्य हो जाते हैं।

तेजाव - वास्तवमें तेजावके दो प्रकार हैं उद्विज (बनीपभिजन्य) और पार्थिव (सनिज)। इनमें सनिज तेजाव (गन्धक, नमक, नीलाधोया, फास्परस आदिका तेजाव) उद्विज तेजावकी अपेक्षा अधिक उग्र है।

सनिज तेजाव चारनाशक, शोथक, संकोचक और पलकारक है। ये अधिक दिना तक सेवन करते रहनेसे पचन क्रियाका हास कराते और शरीरको दुर्बल बनाते हैं।

उद्विज तेजाव (जम्बीर, नीबू, इमली, द्राक्षमूल, ईश, खोधान आदिका) कम उग्र है। ये तेज शोथलता खानेके लिये प्रयोजित होते हैं।

ये रक्तपित्त (Scurvy) रोगमें विशेष लाभदायक हैं। इस हेतुसे इन उद्विज तेजावोंको रक्तपित्तघ्न (Antiscorbutic) कहा दी है।

तेजावका सेवन करने पर लालारस और अम्लरस उच्चोक्ति होते हैं तथा पित्ताशयमेंसे पित्तलाव अधिक होता है। सामान्यतः जिन ग्रन्थियोंका रस चारगुण विधिष्ट है, वे सभी तेजावके सेवनसे उच्चोक्ति होती हैं।

यदि अम्ल रस या तेजावका सेवन भोजनके पहिले किया जायगा, तो आमाशयिक रसलाव कम मात्रामें होता है। यदि आमाशयिक रसमें अम्लता और उग्रताकी वृद्धि हो गई हो, तो भोजन के पहिले तेजावके सेवनसे लाभ होता है।

दीर्घ काल तक तेजावका सेवन करते रहनेसे आमाशयिक रसलाव कम हो जाता है। एवं आमाशयकी श्लैष्मिक कलामें प्रतिश्यायावस्था उपस्थित होती है। इसलिये अधिक काल तक सेवन करना ही, तो इसे बन्ध-बाध में कुछ दिनोंके लिये बन्द करते रहना चाहिये।

तेजावका सेवन अधिक मात्रामें करने पर आमाशय और अत्रमें प्रबल दाह, ज्वाला, अतिसार, वमन अतिशय निर्यालता आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। फिर मूर्च्छा या बेहोशी होकर मृत्यु हो जाती है।

मूत्रमें धारकी शक्ति होनेपर उसके संशोधनार्थ कड़वी श्रीपथियोंके साथ तेजाबका सेवन कराया जाता है।

धिरकारी यकृत व्याधिसे छोट नमकका तेजाब सेवन करनेसे यह दोषप्रस और पिथनि-सारक गुण दर्शाता है। इस तरह मोतीभक्त आदि त्रिप्रकोप न्यरोंमें तेजाबसे अच्छा लाभ पहुँचता है।

तेजाबको जिस स्थान पर प्रयोजित किया है, उस स्थानके बटका मेदन करके फैलता है। फिर घटकोंमेंसे जलमय अंशका शोषण कर उनको नष्ट कर देता है। इस तरह स्थानिक क्रिया द्वारा जो विषान प्लस प्राप्त होता है, उसके धारों और प्रशारकी उत्पत्ति होती है और दग्ध स्थान पुनर्हो जाता है। यदि तेजाबके स्थान पर क्षीण द्रव्यका प्रयोग किया जाय, तो उसके बल अनुसार स्वयंमें उष्ण उत्पन्न होती है, और समीपकी रक्त प्रवाहियाँ आकुञ्चित हो जाती हैं।

स्थानिक-रक्तसाधी (Topical exsiccants) कृत्रिम कृत्रिम सारक श्रीपथियोंके धूलपान कराया जाता है या उनकी धूल आपसा वाष्प वास द्वारा प्रथम फराई जाती है, ऐसी सब श्रीपथियोंको स्थानिक कृत्रिम-सारक श्रीपथि कहते हैं। इनमें दो विभाग हैं—उरीजक और शामक, मन्सिल, कोलरार (Tar), लोबानना पुष्प आदि उरीजक हैं। एवं भसूर तथा ठण्डककी वाष्प आदि शामक हैं; इस श्रेणीकी श्रीपथियों द्वारा कासकी उग्रता का ह्रास होता है जिससे कफ-सञ्चलता पूर्वक बाहर निकल जाता है।

चार्षिक तैल की वाष्प (वायुमिश्रित) श्वास मार्गसे ग्रहण करने पर श्लेष्मा निःसरण क्रिया सरलतापूर्वक होती है। अतः कासरोगमें कफ अत्यधिक बंध जाने पर यह क्रिया उपकारक मानी गई है।

सूचना—विरेचक और मूत्रल श्रीपथियों द्वारा कृत्रिम-सरणमें व्यापार पहुँचता है। एवं अफीम और शीतलताका सेवन भी कफ-साय करानेमें प्रसिद्ध करता है। बमनकारक श्रीपथि और उष्ण जल कृत्रिम-सरण क्रिया उत्तम प्रकारमें करते हैं।

ज्वर कास रोगमें श्वास प्रणालिकाधीकी इतिमिक कालमें रक्तसंचय होता रहता है। पुष्पसोमें रक्तसंचालन क्रिया मन्द हो, और शिराधर्मोंमें रक्तकी गति स्थगित हो, तो हृदयपौष्टिक श्रीपथियाँ—रससिन्दूर, लोहमस्य आदिको कास श्रीपथियोंके साथ मिला देनेसे हृदय उत्तेजित होता है जिससे पुष्पसस्य विवृति रक्तसंचालन क्रिया प्रवृत्तिय यन्तरी है और कफ भी सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है। इस तरह हृदयकी क्रिया द्वारा परम्परया लाभ पहुँच जाता है।

कफूर—उष्णक, आक्षेपनिवारक, वायुनाशक और कृत्रिम-सारक है। कफूरमें वातहर गुणके साथ गहन विपनाशक (Antireptics) गुण भी है। अतः

यह अतिवार और विस्फिकामें दिया जाता है। इनके अतिरिक्त श्वास यन्त्रकी श्लैष्मिक कलामेंसे प्रसेकत्र रसनाय (Catarrh of the Respiratory) होने पर कफूर का धूम विशेष उपकार दर्शाता है। वृद्ध मनुष्य आदिका चिरकारी कास होने पर कफूर औषधिके साथ कफूर मिला दिया जाता है। स्थानिक वातरोगमें कफूरको तैलमें मिलाकर मास्त्रिश की जाती है। दाँतोंमें कृमि होने पर कफूर अर्कका पोहा रखा जाता है।

जननेन्द्रियके समीप म्युची होने पर कफूर और असदच्चार मिश्रित मलाहम लगाया जाता है। हिस्टोरिया, नष्टार्थ, कष्टार्थ और इतर आक्षेपयुक्त रोगोंमें कफूर विशेष लाभदायक है। स्त्रियोंके स्तनका दुग्ध सुखानेमें कफूर महीपधि मानी गई है।

न्युमोनिया रोगमें कफूरको चार गुने कैरूनके तैलमें गलाकर ३० बूँद माषा-का इन्फेन्शन करनेसे हृदयको उत्तेजना मिलती है।

सामान्य मंदस्वरमें दुग्धके मीसर आठमाँ हिस्सा कफूरको गलाकर ११ ड्राम माषा ३३ भरटे पर देते रहनेसे उत्तेजना पहुँचकर ज्वरकी निवृत्ति हो जाती है। सामान्यतः कफूरकी मात्रा १ से ३ रसी तक है।

फंटेकारी (कटेली) कफनिःसारक, मूत्रल, तिक्त, बल्य और घातहर है। श्वास, कास, वक्षमें वेदना आदि कफनिःसारक सरस्वार्थं ब्यवहृत होती है। मूत्रमें स्वरूपता, अशुभरी और कोष्ठप्रदतामें हितकारक है। विविध स्फोटको पर इसका बीजोंका क्षेप करनेसे सत्वर पाक होकर पूषोष्पधि हो जाती है। मस्त्वनमें मिलाकर फलोंका धुआँ देनेसे दाँतोंके कृमि मरकर गिर जाते हैं। इसका तैल बनाकर चर्मरोगोंमें मास्त्रिश की जाती है।

अङ्गुसा कफनिःसारक, आक्षेपघ्न और रक्तपिशनाराक है। इस हेतुसे काली लाँसी, उरःक्षत, यक्ष्मा, ज्वरसहित कास और आक्षेपयुक्त तमक-श्वास आदिमें लाभदायक है। एवं रक्तपित्तके लिये तो यह अत्युत्तम औषधि ही है।

घत्तूरा अवसारक कफनिःसारक, मादक और वेदनाहर है। संज्ञावाही और घेष्टावाहि नाशियों पर अधिक प्रभाव नहीं पहुँचता। परन्तु इन्डार्पिंगला नाशी पथ (Sympathetic Nerve System) पर अश्ला गुण्य पहुँचता है। अधिक माषामें सेवन करने पर हृदय-कार्य अनियमित हो जाता है। एवं रोगी मरकर प्रज्ञाप करने लगता।

घत्तूराके रक्षा अंजन करनेपर कनीनिका विलुप्त होती है।।

यकृत शल्ल, स्वरमंत्रमें कफसंग्रह, नृत्यघात (Chorea), गद्गद् वाक आदि विकारोंमें घत्तूरा आक्षेपनिवारक रूपसे ब्यवहृत होता है।

रजःकृन्तू, ग्मसी आदि विविध वातरोगोंमें यह लाभदायक है। अमोन्मार और अपघातकी इन्डाके लक्ष्ययुक्त स्रुतिका के उन्माद रोगोंमें यह फलप्रद औषधि है। तमकश्वासका दौरा होनेपर इसका धूमपान कराया जाता है। घत्तूराका

ऊपर जो दोष शब्द कहा गया है वह वातादि दोष तथा उनसे उत्पन्न व्यर्थत्व, इन दोनोंके वाचक हैं। वात आदि विकृतिके लिये संशमनका धर्म ऊपर बतसाया गया है। व्याधि पक्षमें उत्पन्न व्याधिकी शान्त करना और अनुत्पन्न व्याधिकी उत्पत्तिके रोक देना, ऐसा धर्म लेना चाहिये।

अष्टाङ्ग हृदयकारने इसके ७ भेद किये हैं। पाचन, दीपन, अक्षय्य, क्लृप्ताग, व्यायाम, सूर्यका स्नान और वायु। पाचन और दीपनका विचार करने प्रथम गुणधर्म रूपसे किया जायगा। अन्न-जलत्याग धर्मोंत् उपवास, व्यायाम आदिके सुक्तिपूर्वक सेवनसे भी प्रबुद्ध दोषोंका शमन हो जाता है।

सुभुव संहिता और अष्टाङ्ग संप्रहकारने संशमनके वातसंशमन, पित्तसंशमन और कफसंशमन, ऐसे ३ विभाग किये हैं। उसके अनुक्रम अतिक्रम वातप्रतिघातुओंके गुण, घातुष्य लक्षण, घातुप्रकीर्ण-लक्षण तथा शामक उपाय, ये सब चिकित्सासत्यमदीप प्रथम मण्डलके पृष्ठ २५ से ३२ तक लिखे हैं। इनके अतिरिक्त रक्त, रक्त आदि घातुओंके वृद्धि-क्षय और उनके मानस लक्षण भी दर्शाये हैं।

सुभुव संहितामें संशमन द्रव्योंको आक्षरगुणधर्मविवेचन कहा है; किन्तु रसवैज्यिक सूत्रके माप्याकारने इनको वायु, जल और पृथ्वी, प्रबलन कहा है।

शामक श्रीपथियाँ—गिलोय, पाटल, स्योनाक-छाल, छावला शिसाभी आदि।

गुडूची (गिलोय) का उपयोग प्राचीन ग्रन्थकारोंने अत्यधिक किया है। इसकी महिमा भी बहुत कुछ गई हुई है। इसका संज्ञित वर्णन पित्तसंशमनमें किया है। गिलोय लघु (मत्वास्तरमें गुड), तिक्त, कषाय, टण्डुल और स्वादुपात्रि है। भिद्योग्य विचर (पातज, पिराज, कफज), रक्षाश, कुष्ठ, म्लर, प्रमेह, पाण्डु, भ्रम, दाह, तथा, स्वास, फास, कामला, कुष्ठ, वातरक्त, कुमि, घमन और इत्रोण आदिको दूर करती है। इसमें संग्राही, बन्ध, अग्निप्रदीपक और रक्षावन गुण भी अवस्थित हैं।

प्राचीन आचार्योंने गिलोयको जीर्णस्वर, पिराज घमन स्वल्प-विकृति, निघ-प्रधान वातरक्त, श्लेष्मिद, कुष्ठ, पाण्डु हस्तीमक, कामला, प्लीहोदर, हृदयगत घन, प्रमेह और वातप्रधान रक्तप्रदर आदि रोगोंमें प्रयोजित किया है। एवं रक्षावन रूपमें भी इसका उपयोग किया जाता है।

नम्ममत्तानुमार गिलोय, क्लृप्ता (Columba) की प्रतिनिधि श्रीपथि है। गिलोय पाचक, तिक्त, पीडिक, दोगम बाजीकरय, नियत प्वरंस्वधि रोषक (Anti-periodic) और स्निग्ध है। यह प्लीहाशुद्धिनाटक और म्लर होनेसे जीर्ण स्वर और उससे उत्पन्न निघसता दूर करनेमें अति हितकर श्रीपथि है, दोगम गुण होनेसे काम मात, उपदंश की द्वितीयाकरय, कुष्ठ, रक्तविचार और कामला रोगमें उपयोगमें आती

है। मूत्रल और श्लेष्मिन् गुणयुक्त होनेसे मूत्रकृच्छ्र, मूत्राशय प्र.राहजन्य बहुमूत्र (बूँद बूँद पेशाब आना) में अति हितकर मानी गई है। एष विविध प्रमेह रोगोंमें इसके स्वरसका उपयोग करने से लाभ पहुँच जाता है।

ग्लोयोगेसे निकाला हुआ सत्व, पित्त प्रधान मंदाग्नि, पित्तातिवार, दाह, भ्रम, तृषा, घमन, निर्मलता, घट्टक्षय और मूत्ररोग आदिमें अच्छा गुणकारी है।

(१३) पुरीय वर्णकारक

पुरीय विरजनीय अर्थात् मलका स्वामाषिक वर्ण लाने वाली औषधियाँ—
जामुन की छाल, कौंच, मुलाहठी, मोचरस, भीषेष्ठक (गन्वाबिरोडा), दग्ध मूषिका, विदारिकन्द, नीलोफर, मूसारहित तिल, ये १० मलको स्वामाषिक वर्णकारक बनाती हैं।

जब यकृतका पिचलाय कम होनेसे मल सफेद हो जाता है, तब पिचलाय बढक औषधियोंका सेवन करानेसे मलका वर्ण पीला हो जाता है। इसका विवेचन पहिले पिचलाय बढक औषधियोंमें किया जा चुका है।

यकृत निरल हो जाने पर या पिचलाय या पित्तानलिकाके पिचलायमें प्रतिबन्ध होने पर अन्त्रमें पित्त नहीं जाता, जिससे मलका वर्ण सफेद हो जाता है, अतः उसमें दुर्गन्ध आने लगती है और छोटे छोटे कृमियों की उत्पत्ति भी हो जाती है। ऐसे समय पर पित्त विरोधी मोजन—पूत, शकर आदि का सेवन भितनाहो सके उतना कम कर देना चाहिए और पिचलायबढक द्रव्य सात्र मसम, पारद, अतीस, चित्रक मूल, नौसादर आदि का सेवन करना चाहिये।

(१४) सारक - अनुलोमन

अनुलोमनो वातमलप्रवर्तन' । (इन्द्रयाचार्थ)

कृत्वा पाकं मलाना यद्वित्वा बन्धमघो नयेत् ।

सच्छानुलोमन ज्ञेय यथा प्रोक्ता हरीसकी ॥ (चारंगधर संहिता)

जो द्रव्य वायु और मलका प्रवर्तन करे, उसे अनुलोमन, सर और सारक कहते हैं।

जो द्रव्य मलों और दोषों को पकाकर तथा ठनक विषयों (वायु और मल मूत्रकी अप्रवृत्ति) का भेदन कर अघोमार्ग द्वारा बाहर निकालता है, उसे अनुलोमन कहते हैं। जैसे हरण ।

इस प्रकारकी औषधियाँ अन्त्रकी पुर.सरस्य क्रियाको बढाती और मूत्र उच्येजना देती हैं। इनको आन्त्रियोंमें मूत्र विरेचन (Laxatives or Aponents) संज्ञा दी है। इसका विवेचन आगे 'विरेचन' प्रकरण में किया जायगा।

अनुलोमन औषधियाँ—गुलाब के फूल, आंबला, हरद, मांगय, कालदेव, गणक, चंदलोई, ठठरण, मुलहठी, नुदांसंग, बरना, प्रायमाण, चूत, भस्मरतन, यीरुव, मुनक्का, एलुआ, विविध घार, यक्ष, घावविषक, अंजीर, बादाय, आलुजुलाना, रस्के आदि, मधुराम्ल फल, कित्त्वफला पलाय शीश, शहद, गुड़ आदि ।

(१५) छसन

पक्कल्य यद्पक्कवैष रिज्जट कोटे मलादिक्मम् ।

नयस्यच्च' छसन तद्यथा स्यात् कृत्वमालकम् ॥

जो द्रव्य काष्ठके भीतर चिपके हुए पच्यमान मल आदिको किना पकान ही साहर निकाल देते हैं, उन्हें छसन कहते हैं । उदाहरणार्थ अमलतासकी फलीका गुत्ता ।

चरफ संहिताकारने तथा टीकाकार योगीन्द्रनाथजीने विरेचन द्रव्यके लिये ही छसन शब्दका प्रयोग किया है ।

इस प्रकारकी औषधियामें बहुतसी पिच्छिल गुण युक्त हैं वे अन्त्रमें अधिक उच्चोचना नहीं पहुँचाती । जिससे इन औषधियोंका उपयोग अन्त्र-द्वारमें मल शुद्धिके लिये निर्ममतापूर्वक होता है । यद्योके लिये ही वे व्यवहृत होती हैं । डाक्टरी मतानुसार इनको स्निग्ध या सीम्य विरेचन (Lubricant laxatives) or Simple Purgatives) कह सकते हैं ।

औषधियाँ—अमलतास, पेरफिन, एरंड-सील, सनाय, गोकर्षी (कोमल), गुलफद, आंबलोका मुरम्बा और एलुआ आदि ।

अमलतास इसकी फलीके गमका उपयोग औषध रूपसे होता है । यह पित्तशामक और सारक है और यह कफ और पके आम को भी मलके साथ हँक देता है । इस हेतु से स्वरमें मलाशरोध होने पर इसका प्रयोग होता है । आमभावक गुण न होनेसे आम-द्वारमें इसे नहीं देना चाहिये । यह आम्र के भीतर बाहर नहीं करता । एवं बलहानि भी नहीं करता है । अतः यह अति सीम्य विरेचन है ।

इसका शोषन कार्य, कफघात और मांसघात (यक्ष्म आदि) के भीतर भी होता है । इस लिये यह मृच्छू दोष मुक्त होता है ।

कपट्टि, रक्तान्त, शूल, उदासर्त, गीण-मुष्ट, त्वचा-पिका, घामवाल, कृदयशूल आदिमें पित्तघमन, रक्तप्रसादन, कफशामन, आमनाश और कीमलु निपटने नष्ट करनेके लिये इसका प्रयोग किया जाता है ।

(१६) मेदन ।

मलादिक्मवर्तं च बद्ध वा पिच्छितं मले ।

भित्वाऽथ पातयति तद्देदन कटुकी यथा ॥

जो द्रव्य अथवा पचाही मल और दोषों, दोषोंके द्वारा अमे हुए या गांठदार बने हुए मल्लोका भेदन कर अघोमार्गसे बाहर निकालता है, उसे भेदन कहते हैं, जैसे कुटकी।

सखन और सारक औषधियोंकी अपेक्षा भेदनकी क्रिया अधिक प्रबल होती है। इस वर्गकी औषधियां अन्त्रमें घुस कराती हैं। अनेक औषधियां श्लैष्मिक स्थाय्य बनाती हैं और कई यक्षुत्विका स्थाय भी अधिकतर कराती हैं। परिणाममें रस, रक्त आदिमेंसे अधिक जलांश अन्त्रके भीतर मिश्रित हो जाने पर भेदन क्रिया होती है।

कुटकी—स्वादमें तिक्त, विपाक में कटु, शीतल, धीर्य एवं रुद्ध और क्षुद्र है। यह आंवला और अमलतासको अपेक्षा विशेष बलवान विरेचक है। मूत्रके पित्त और अग्रस्थ मलको सत्वर फेक देती है। साथमें यक्षु, स्तन्य और रक्तका शोषन भी करती है, दूषित कफको निकालकर कफ बाहुको शुद्ध करती है, तप्यता, दाह और ज्वरका नाश करती है एवं तिक्तस और कटु विपाकके कारणसे अग्निको प्रदीप्त करती है। रक्तपर इसकी क्रिया होनेसे परम्परागत मूत्रको भी लाम पहुँचता है तथा मूत्र कुट्टि हो तो उसकी निवृत्ति हा जाता है।

यह प्वर (पित्तज्वर, कफज्वर विषमज्वर), कफप्रकोपतह ध्यात, अणविकार, स्वचारोग, गौण कुष्ठ, शोथ, पाश्वरोग और विरगप्रकोपज विविध विकारोंको शमन करनेके लिये व्यवहृत होती है।

भेदनीय गण—चरक संहितामें निम्नोक्त, आक, परब के बीज, अमिमुली (क्लिहायी), चित्रा (दन्तीमूल) चित्रकमूल, करंज, शक्तिनी (यवतिका), कुटकी और सत्वानाशी ये १० औषधियाँ कही हैं।

श्यामादि गणी—श्यामा (काली निम्बेय) महारयामा (विभारा), सपैद निम्बेय, दन्तीमूल, शक्तिनी (यवतिका), तिलक (लोथमेद), कपिला, अकापन, सुपायी, पुत्रभेखी (मूसाकानी), इन्द्रायण्य, अमलतास, करबुवा, कर्करजा, गिलोय, सावला, बूर, छगलान्त्री (विषादमेद), सुभा (पूर), सुषर्णकीरी (चोक) इन १९ औषधियोंको सुभुत संहितामें श्यामादि गण कहा गया है। यह गण गुस्म, विषदोष, अनाह त्वर रोग और तदापर्वत्र नाशक और विशेषतः मलमेदक है।

इनके अतिरिक्त कुटकी, सत्वानाशी, रेवन्दचीनी, कन्दुपी-शुम्बी, कटेलीकी जब आक छाल, परब आदिमें भेदन गुण अवस्थित है।

चरक संहितामें थियाकडु, चिर्मटी (ककवा-शू), खरबूजा, अमलपेठस् आदिको भी भेदन गुण-मुक्त कहा गया है।

भेदनका डाक्टरोंके विवेचन विरेचन प्रकरणमें देखें।

(१७) विरेचन

केपर्टिक्स-पगेटिन्स एपेरिपयट्स इवान्गुपरल्स ।

Cathartics-Purgatives Aperients-Evacuants ।

विषकष्व यक्षकष्व वा मलादि द्रवतां नयेत् ।

रेचयत्यपि सन्धेय रेचनं त्रिवृता यथा ॥

जो द्रव्य पक्व और अपक्व मल, आम आदिको द्रवमूत करके अघोनाले बाहर निकाल देता है, वह रेचन या विरेचन कहलाता है, जैसे निशोत ।

चरक संहितामें लिखा है कि जो द्रव्य दोगोंको हरणकर ऊर्ध्व भाग (मुत्र) में निकालता है । उसे बमन और वा अघो भाग (गुदा) से निकालता है उसे विरेचन तथा उभय भागसे निकालने वालेको भी विरेचन (शोधन Evacuants) ही दी है । ये सब द्रव्य ठण्ड, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, ज्ववायी, विकारी आदि गुणयुक्त होनेसे अपने धीरेसे हृदय (मस्तिष्क स्थित केन्द्रस्थान) को प्राप्त होकर घमनी (घनान्धियों) का अनुसरण करके फिर स्थूल और सूक्ष्म स्रोतोंमेंसे वेहमें स्थित संज्ञ दोग संघात (मलसमूह)को आग्नेय गुणके हेतुसे पिघलाती और तीक्ष्ण गुणके हेतुसे भेदन करती हैं । तब वह मल क्षिप्त-स्मिन्न और पतला होकर इधर उधर फिरता है ।

पहिले स्नेहन द्रव्यसे देहको स्निग्ध कर लिया जाता है जिससे मन, चिकने धर्म शहदके समान कहीं भी इधर उधर न चिपककर या रुककर सूक्ष्म मार्गोंमें संसर करनेवाला होनेसे आमारायमें आ जाता है (जिन द्रव्योंमें बमन करानेका गुण है, यह बमन ठनके लिये ही है), पश्चात् उक्त द्रव्य उदान यासुसे प्रेरित होकर अपने अग्निवाय्वात्मक धीरेसे (बमन द्रव्योंमें अग्नि-वायुको प्रघनता होनेसे) दोगको ऊपर और उछाल कर मुँहसे निकाल देता है । इसके अतिरिक्त जिन द्रव्योंमें तलित पृथिव्यात्मक धीरे है, उनमें अघो भाग प्रभावी गुण है अतः वे मलका नीचेकी ओर प्रवृत्ति करते हैं, फिर अपान वायु द्वारा प्रेरित होने पर पच्यमान दोगोंको नीचेकी ओरसे बाहर निकाल देते हैं । जिन द्रव्योंमें दोनों प्रकारके धीरे अवस्थित हैं, वे दोनों ओर गति करके मूल और गुदा मार्गसे मलको बाहर निकालते हैं ।

सुभ्रत संहिताकार भी कहते हैं कि, विरेचन द्रव्य स्थिर, शुद्ध, पृथिवी और कृत्त गुण भूषित होनेसे पच्यमान मलोंका अघो मार्गसे बाहर निकाल देते तथा बमन (बमन कारक) द्रव्य, वायु अग्निसे प्रघनतावाले होनेसे, अपक्व दोगोंको ऊर्ध्व भागमें ले जाकर मुग्धसे बाहर निकाल देते हैं ।

चरक संहिता फथित विरेच औषधियाँ—सफर और काली निशोत, जिहला (इरक, घदेवा, आपला), दन्ती, योलनी (फाला दाना), छत्रा (चात्रा

शूरमेद), घच, कपीला, इन्द्रायन, क्षीरिणी (दूधो या चोक) उदकीर्यका (वृद्धकरंज), पीलू, अमलतास, मुनका, द्रवन्ती, (दन्तीमेद), नीजुल (समुदर फल), ये औषधियाँ पक्वाणयमें दोष होनेपर विरेचनार्थ दी जाती हैं।

चरक संहिता विमान स्थानमें कहे हुए विरेचन द्रव्य—काली निसेल, रक्त-मूलवाली निसेल, चतुरंगुल (अमलतास), तिल्वक (शोध विरोध), महाहृच्च, (सेहूँक), सतला (सातला, शंखिनी कालमेघ या श्वेत अपरागिता), दन्ती (जमालगोटा), द्रवन्ता (बकी दन्ती), इनके दूध, मूल, छाल, पान, फूल और पलक उपयोग योगके अनुसार करना चाहिये। इनका ही केवल प्रयोग करें या निम्नानुसार द्रव्य संयोग कर लें। यदि द्रव्य मिलाना हो, तो निम्न कषाय आदि द्वारा निम्नलिखित विधानसे तैयार करके व्यवहृत करना चाहिये।

अरुगन्धा (जंगलो तुलसी), अदबगन्धा (असगन्ध), मेंदासिंगो, क्षीरिणी (दूधो), नीखनी (कालादाना), नलोतक (मुलहठी), इनमेंसे जो मिले उनके कषायोंके साथ या प्रक्षीर्ण (पूतिकरंज), उदकीर्य (करंज), मसूरविदला, श्यामलता (काली सारिवा) कपीला, घायविदल, गवाक्षी (इन्द्रायन), इनके कषायों के साथ या—

पीलू, पियाल (चिरीजी), मुनका, गंमारीफल, फालसा, बेर, अनार, आंखो, हरक, बहेवा, श्वेत पुनर्नया, साल पुननवा, विदारीगंध, (शालपर्णी या लघु-पञ्चमूल अथवा दशमूल) इनके कषायोंके साथ या—

सीधु, मुरा, सौबीर, तुपोदक मीरेय, मेदक, मदिरा, मधु मधूलक (मधुघ्रा मत्तान्तरमें मधुदक-शहदका जल), काजी, कुवल (भई बेर), वेर, खदर, मल बेरके बेर, इनसे तैयार किये हुए सीधुओं (गुक्की शराब) के साथ या दही, दहीका जल, अद जलवाला मद्य, इनके साथ उपयोग करें।

गौ, मैस, बकरी, मेक, इनके दूध या मूत्रोंसे संस्कार (माक्ना या पाक क्रिया) करके गोखी, चूर्ण, आसव, सोह, स्नेह (पूत), कषाय, मांसरस, पूष, काम्बिक (अम्ल यूप, यवागू, सीर (या दूध) रूपमें या मोदक, अन्य मद्य पदार्थ और विविध प्रयोग तैयार करके विरेचन देने योग्य अधिकारी को विरेचन दें।

विरेचनोपग—चरक संहिता कथित विरेचन क्रिया में सहायक औषधियाँ मुनका, गंमारो फालसा, हरक, बहेवा, आंधला बड़े बेर, बेर और मलबेर हैं।

चरक संहिता में ५० महाकषाय बतलाये हैं, उनमें मेदनीय कषाय कदा है, किन्तु उसका शाक्तपाराचाय कथित अनुज्ञोमन, रसस्र और विरेचन मेद नहीं किया। इसी तरह सुभुत संहिता और अष्टाङ्ग समुह में भी उक्त विभागों को पृथक नहीं बताया गया। केवल पलमेद से तीक्ष्ण मध्यम और मृदु प्रयोग करने का विधान किया है।

सुभ्रत संहिता में चरक संहिता लिखित श्रीपत्रियों के अतिरिक्त निम्न लिखित श्रीपत्रियों भी कही हैं। छनालान्त्री (बृहदार), सुवर्णचीरी (सम्पानारी या रेन्दनसी), विप्रक, फिखिरी (कट्नी), कुरा, कांठ, तिल्वक (लोष), बघायन, पाख, सुपारी, एरयड, घाक और मालकांगनी।

सुभ्रत संहिताकारने लिखा है कि, उक्त श्रीपत्रियों में से निसेत, देवी, ब्रह्म सावला, कालमेष, मेंदासिगी, इन्द्रायण, बृहदारक, सेहुँक, सुवर्णचीरी, विप्रक, फिखिरी, कुरा और काश इनकी मूल लेवें। तिल्वक, बकावन, पाखा, इनका छाल लेवें। कपोला फूलों के रज्जुसे उपयोग में लिया जाता है। सुगरी, रस, पहेजा, धावला, नीलिनी (काला दाना), अमलतास, एरयड इनका पत्र लेवें। पूतिकरज और आरगध के पत्र लेवें। आरगध की पत्ती लेनेका ही रियाज है। पूतिकरज की छाल को चरक संहिता में प्रधान माना है। महादृष्ट (मूर), सप्तवर्ण (सतीना), मालकांगनी (ज्योतिष्मती), इनका दूध विरेचनार्थ लन चाहिये।

कोशाक्री (तरोई) सतला (सातला), शंखिनी, देवदासी, आरखेरस (करेला), इनका स्वरस घमन-विरेचन करावा है।

उक्त मूल, छाल आदि में उच्चम विरेचन द्रव्य भगवान् बन्कटरीय ने निम्नानुसार दशाये हैं।

अरुणामं त्रिवृन्मूलं श्रेष्ठं मूलं विरेचनम् ।
 प्रधानं तिल्वकस्त्यज्जु फलेष्वपि हरीतकी ॥
 सैलेप्पेरयडजं तैलं स्वरसे कारवेक्षिका ।
 सुधापयं पयसूक्तमित्तं प्राधान्यसंग्रहम् ॥

मूल विरेचनों में ईपत् रफाम निसेत छाला में तिल्वक, पत्तों में हर, तीला में एरयड तैल, स्वरस में करेले का रस तथा दूधों में सेहुँकका दूध, ये सब प्रधान विरेचन माने जाते हैं।

मालक आर छोटी घायु (१२ वर्ष तक) बालों को अमलतास की पत्ती का जलाव देवे। अमलतास की पत्तीको पहिले ७ दिन धूपमें यासुकामें रन दें। शुष्क हो जाने पर उसकी मध्या निम्नलेख लेवें तत्पश्चात् उसे अन्नमें भिजाकर बगवत या तैलमें उबाल लेवें या सैममें भिगोकर कोन्हूमें तिलवा कर तीन निकलवा लेवे फिर उसका उडपाग करें। अथवा कुछ और त्रिकुट्टका एरयड तैलके साथ भिजा चढ़ाकर निवाया जल पिला देवें।

अथवा मालक, बृह, सुवर्णचीरी और मुकुमारोका तीन गुने चिरला करके साथ परसत तैल देवें। ऊपर दूध और मोठरस पिलावें। विरोक्त एरयड तैल ४ घण्टे साथ देनेका रियाज है।

प्रबल श्रेणोंमें और सबल व्यक्तियोंको सेहूँट आदिका दूष देवें। यह तीक्ष्ण विरेचन है। यदि अनधिकारीको लिया जायगा या क्रियामें भूल होगी, तो विषप्रमाथ न्यायगा।

विरेचन फल—चरक संहिताकार लिखते हैं कि—

स्रोतो विशुद्धिन्द्रिय सप्रसादो
लघुत्वमूर्जोद्धिनरनामयत्वम् ।
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां
सम्यग्बिरिक्तस्य भवेन्क्रमेण ॥

स्रोतोंकी शुद्धि, इन्द्रियोंको प्रसन्नता, लघुता, उत्साहशुद्धि, अग्निकी शक्ति, नीरोगता तथा मल पित्त, कफ (ग्राम) और वायुका क्रमशः निकलना, ये लक्षण सम्यक् विरेचन होनेपर उपस्थित होने हैं।

योग्य विरेचन न होनेपर कफ, पित्त और वातका प्रकोप, अग्निमान्द, देहमें भारीपन, प्रतिश्याय, सन्ना, घान्ति, अरुचि तथा वायुकी अनुलोम गतिमें प्रतिबन्ध होना आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

यदि विरेचनका अतिमात्र हो जाय तो कफक्षय, रक्तक्षय, पित्तक्षय, फिर उनके क्षयसे वात प्रकोप होकर शून्यता, हाथ पैर टूटना, कृजान्ति, कम्प, निद्रानाश, निर्मलता, चकर आना, उन्मा और हिका आदि विकार उत्पन्न होते हैं।

डाक्टरोंकी धर्षण

विरेचन द्रव्यों द्वारा अन्त्रशोधन क्रिया होनेमें गुदनलिफाकी पुर सरण क्रियाके दबावकी वृद्धि होती है तथा ग्राम्यन्तरीय गुनसंकोचनीपेशी सुल जाती है। इस बातका ठीक निर्णय नहीं हो सकता कि, गुदनलिफामें से मल त्यागाथ कितना वेग प्राथमिक प्रतिफलितक्रिया उत्पन्न कराता है। औपचिषी मात्रा और उसके द्रव्योंकी दृक्ताके मेन्से भी आवश्यक उद्येजनामें भेद हो जाता है।

विरेचन द्रव्योंकी क्रिया—

- १ शोषित न होने योग्य द्रव्योंके आपतनकी वृद्धि।
- २ जलका शोषण होनेसे संरक्षय।
- ३ लघु और वृद्ध अन्त्रम क्षोम लाकर प्रतिफलित रूपसे पुर सरण क्रियाकी वृद्धि करना।
- ४ मांसपेशियों और उनकी घातनाशियोंकी यन्त्रणा पर प्रत्यक्ष उद्येजना पहुँचाना।

इनमें से एक या अधिक क्रिया विरेचन द्रव्योंकी शक्ति अनुसार होती है।

सामान्यतः लघु अन्त्र में रहे हुए द्रव्य सदृश कपाटिका (ileo-caec valve) में से प्रवाहित होते हैं, जो प्रायः प्रवाही स्थिति में रहते हैं। वृहदन्त्र के भीतर जाने के पश्चात् उनमें से शनैः शनैः द्रव्य का शोषण हो है और शेष द्रव्य का गाढ़ा मल बन जाता है। इस हेतु से विरेचन द्रव्य अन्त्र की पुरःसरण क्रिया को बढ़ा देता है। जिससे शोषण का प्रक्रम मिलती है और जल सदृश अधिक मल द्रव्य सत्वर गुदमल्लिख में पहुँच कर दूसरी ओर अन्त्र के भीतर तरल बर्फी मात्रा में संप्रहीत हो जाता है। प्रतिफलित अस्तर भी पुरःसरण क्रिया को उत्तेजित करता है।

अनेक द्रव्य अन्त्र को शिथिल बनाते हैं, किन्तु फिर वे प्रबल चोम करते हैं। अतः उनका उपयोग विरेचनरूप से नहीं किया जाता। या भेद विरेचन द्रव्य उसे कहा जायगा कि, जो अन्त्रके अतिरिक्त अन्त्र भी अस्तर न पहुँचावे वह आमाशयमें चोम नहीं करता तथा अन्त्र में पहुँचने प्रबल अस्तर पहुँचाता है। इसका शोषण सरलतासे नहीं होता, उतना शनैः शनैः होता है, कि वह अन्त्रके भीतर अपना कार्य कर सकता है।

अनेक मृदुविरेचन द्रव्य उनके विशेष अंश द्वारा भासिक अस्तर और अन्त्रको स्थीत करते हैं तथा प्रतिकूलित क्रियात्मक से मल त्याग कर देते हैं। ये हानि रहित हैं और क्षाम नहीं कराते। एवं उनका सेवन समय तक कुछ भी हानि न पहुँचते हुए हो सकता है। ये म त्वरोबकी लिए उपयोगी हैं तथा जिन रोगियोंकी वेदमें मल पित्तके आकारके अनुसूत न हो, उन रोगियोंके लिए मृदुविरेचन—अर्गर (Agar), लिनिवर्ग आदि दिवकर हैं।

विरेचन तैल, पर्यङ्क तैल या जमासगोटे का तैल, ये तब काय करते जब उनमें रहा हुआ बमाम्ल मुक्त हो जाता है।

एन्थ्रेसिन विरेचन द्रव्य (पल्लावा, रेकन्दचीनी, सनाम, चेस्केट्ट आदि, काय करते हैं, जब इनका मियोजन होकर मधुजन (Glyco sudal) उपस्थिति होती है।

रालमय विरेचन द्रव्य तप फलोत्पत्ति कर सकते हैं, जब राल और घार और विषा द्वारा नियुक्त हो जाय। इस हेतु से रालप्रधान विरेचन (निलाम, जेजप आदि) के लिये विशेषरूपिण की आवश्यकता है।

तीव्र विरेचन लघु और वृहत्, दोनों अन्त्र की पुरःसरण क्रिया बढ़ा दे। एवं बर्फी मात्रा में देने पर अन्त्रके भीतर द्रव्यका संप्रद कर देते हैं।

मेगनेसियम सल्फेट लघु अन्त्रमें से जानेवाले मागम त्वरा कराता है, नदी होने देता और वृहदन्त्रमें द्रव्योका संप्रद होने में सहायता पहुँचाता

केस्रोमल दोनों अन्नकी पुरःसरण गतिको उरोजित करता है।

विरेचनका सेवन अत्यधिक करते रहने पर मलावरोधके पश्चात् आनुपंगिक अन्नकी मांसपेशियोंमें आक्षेप उत्पन्न होता है। यह असर एरएडतैल और रेकन्दचीनी, जिसमें रेकन्दचीनी प्रधान कपायाम्ल (Rheo tannic Acid) रहता है, इनका सेवन करने पर अधिक प्रतीत होता है।

कृत्रिय विरेचन स्वचा मार्गसे वेनेपर, मल-न्याग कराते हैं, जमालगोटेका तैल स्वचापर रगड़ने मात्रसे विरेचन क्रिया कराता है। सनाय, एलषा और इन्द्र वाफ्सी उसी समूहके द्रव्य हैं किन्तु इनका असर अन्नपर विशेष प्रभाव नहीं पहुँचाता। अति उभयत अन्नमें उनके मल त्यागसे असर पहुँचता है।

अनेक औषधियाँ, जो सामान्यत विरेचन रूपसे प्रयुक्त नहीं होती, बात शक्तिनिर्वा अथवा मांस-पेशियोंपर विशेष प्रकारका असर पहुँचानेके लिये जस त्यचा मागसे दी जाती हैं तब ठोक वैसा ही परिष्कार लाती हैं। इस कगकी औषधियाँ— पाइलोकैरपिन (जेकपसिडके पानका छार), एसिटील कोलिन प्रोस्टिग्मिन आदि प्राणदा-नाशियोंके सिरेपर फलोत्पत्ति करते हैं। एपोकोडीन (३ ग्रैन) और अर्ग-यामिन (३-५ ग्रैन) महती आशयिकी नाशी (Nerve Splachnic) या अवयवकी उरोजनाका हास करानेवाली नाशी (Nerve Inhibitory) के सिरेपर अवसादक असर पहुँचाकर फल दर्शाते हैं। पोषिका (Nutritary) अन्विका सत्य मांस-पेशियोंपर प्रत्यक्ष फलोत्पत्ति कराता है और अन्नकी गतिकी स्पन्दन संख्या और प्रसारणकी वृद्धि कराता है किन्तु दबावमें अधिक वृद्धि नहीं कराता।

चिकित्सार्थ औषध प्रयोगके हेतु—

- १ मलावरोधके रोगियोंमें मल संग्रहको दूर करनेके लिये, (बहुधा मृदु विरेचन)।
- २ हृदय, शुक और यकृत, इनकी विकृतिसे उत्पन्न जलोदरके रोगियोंमें रक्तमेंसे रक्त-कारिका आकष्य करनेके लिये (बहुधा लघु विरेचन और जलवत् मेदन करानेवाला विरेचन)।
- ३ प्वरमें उचापका हास करानेके लिये (बहुधा मेगसल्य या निसेल)।
- ४ सन्यास (Apoplexy) और मस्तिष्कमें रक्तसंग्रह होनेपर रक्त दबाव कम करनेके लिये (बहुधा जलवत् मेदन करानेवाली औषधि)।
- ५ अर्श, बमन्यबुद्द और अत्राक्तरणसे पीडित व्यक्तियोंको मलत्यागमें प्रवाहक (हूँयन) न होनेके लिये (मृदुविरेचन)।
- ६ पित्तामरीको निष्कलनेके उद्देश्यसे उसके मार्गमें पित्तमात्र करानेके लिये (पित्त निसारक विरेचन)।

७ रक्तमसे कितनेक मल सक्रान्त द्रव्य मूत्रीया, मूत्राण आदिको निकल देनेके लिये (लक्ष्य विरेचन) ।

८ क्षीणशोथ शमन करने अथवा हानिकर द्रव्योंको निकाल देनेके लिये, जैसे अपाचित आहार द्रव्यसे उत्पन्न अन्वपे भीतर पूतिमन्त्र (Putrefaction) और अतिसार होनेपर सेन्द्रिय विपत्ती उत्पत्ति होती है, तब उसे दूर करनेके लिये (अमलतास, पररुद्ध रील आदि स्निग्ध मृदु विरेचन) इनके अतिरिक्त जीव्य वास्तिका अपरोध करानेके लिये कमी कमी मर्म विरेचन भी दिया जाता है ।

आयुर्वेदमें पचन संस्थामें सङ्घटित मल, आम, विष, कृमिको बाहर निकल देनेके लिये विरेचन देनेका विधान किया है । इनके अतिरिक्त शोथके प्रदाहक विपरीत गतिसे उत्पन्न कुष्ठ, प्रमेह, त्वचा-विकार, अतिस्वेद आदि व्याधियोंमें एत प्रदाहका घटन सम्यक् मार्गपर करने या आनुसाम्य स्थापित करनेके लिये बड़े शुद्धि करायी जाती है । एवं श्वास, कास, शिवा, यमन, उन्माद, विसर्प, स्तन्यतेरुद, चाठरुद, कुष्ठ, भेदोद्विदि आदि रोगामें नाडीके भीतर जमे हुए मल, मेद, आम, कफ आदिको हटाने (शोथोत्पाद दूर करने) के लिये भी विरेचन दिया जाता है ।

सूचना—निम्न अवस्थाओंमें विरेचन नहीं दिया जाता या अतिसम्यक्पूर्वक व्यवहृत होता है ।

- १ उदरक अधपयोक्षी प्रादादिक अवस्था, उदर्याकला प्रदाह, या अत्र प्रदाह होनेपर ।
- २ सगर्भाश्रवा और मासिकवम स्वात्क समय प्रसव विरेचन देनेमें निषेध है ।
- ३ अन्वमसे रक्तलाव, मलहात और अकिपाठ होनेपर ।
- ४ अन्वक भीतर अत्राव और अन्वन्त्र प्रपथ (Intussusception) होनेपर ।

धर्माकरण—

अ—आपेक्षिक गुरुत्ववर्द्धक—अत्रके भीतर शोषण न देने योग्य द्रव्योंके भारकी वृद्धि करनेवाली औषधियाँ ।

- १ लक्ष्य विरेचन (Saline Purgatives)—ये शोषण विपत्तियोंके हस्तक्षेप करके परिशाम लाती हैं । सादा सफ्यात, सोडा पोन्फ, एसिड टार्ट्रेट आर फोस्फोरियम, मैग्नेसिया क्लो, मैग्नेसियम आक्साइड, नमक, शूहरभा घार, अथवाग आदिक घार और गेन्स आदि ।
- २ सब आहार द्रव्य—रोटी, फल, अरौर, परेचन आदि ।

आ—होमोत्पादक वर्ग—

- १ मृदु विरेचन (Laxative)—इमली, केसिया, माना (शारेखिस्त), एरण्ड तैल, गंधक आदि ।
- २ गन्धेसिनसत्व प्रधान—(Anthracene) हाइड्रोकार्बोन ($C_{16}H_{10}$) विद्यमानता वाले द्रव्य । एलघा, रेबन्दचीनी, सनाय, केरकेरा आदि ।
- ३ तीव्रविरेचक (Drastic Purgatives)—स्केमोनी, जैलप, जमाल, गोटा, इन्द्रबाखरी, कालादाना, निशोय आदि ।
- ४ पित्तविरेचक (Cholagogue purgatives)—ये औषधियाँ बहुधा पित्तसाधकी वृद्धि नहीं करती किन्तु अत्रकी पुरःसरण क्रियाकी वृद्धि द्वारा अत्रके द्रव्योंकी गतिको बढ़ाकर पित्तमेंसे मल त्यागकी वृद्धि करती हैं तथा पुनः शोषण होनेसे रक्षक करती हैं । पोडोफिलम, पारद प्रधान औषधियाँ आदि ।
- ५—अन्तःशोषण योम्य विरेचन—इन औषधियोंका अन्तःशोषण करनेपर ये जेठ्यावादिना नाभियों या मांसपेशियोंको उचेधित करती हैं । ये सामान्यत विरेचन रूपसे प्रयुक्त नहीं होती किन्तु अन्त्रके पक्षयपके अन्नचिकित्साके पश्चात् संरक्षणार्थ व्यवहृत होती हैं । पाइलोकार्पिन आदि औषधियाँ परिस्वन्न नाभियों (Parasympathetic nerves) के सिरेको उचेधित करके अन्त्रकी गतिको बढ़ाती हैं । पश्चिम पोषणिका ग्रन्थि प्रत्यक्ष मांसपेशियोंको उठेधित करती हैं ।

इनके अतिरिक्त जो औषधि जलावत् भेदन करती हैं उसे डाक्टरीमें हाइड्रोग (Hydragogue) संज्ञा दी है । ये औषधियाँ अन्त्रकी इलेक्ट्रिक कलामेंसे अत्यधिक रससाध कराती हैं । इस हेतुसे जल सहस्र पतले विरेचन होकर देहमेंसे जलका विशेष परिमाण निकल जाता है । कालादाना, जमालगोटेका ऊँटनीके वृषके साथ सेवन, इन्द्रायन सत्व, मेगनेशिया, जैलप आदि ।

लवण विरेचनमें अधिक जल मिलाकर प्रयोग करनेपर मूत्रल गुण भी बढ़ता है, जिससे बल्लोदरमें सत्वर क्षाम पहुँचता है । जल कम मिलानेपर केवल विरेचन गुणकी प्राप्ति कराता है । किन्तु लवण विरेचनकी उपकारिता कितनीक विशेष अवस्थापर निर्भर है । आमाशय और अन्त्रमें कोई मुक्त द्रव्य, विशेषतः तरल द्रव्य न होना चाहिये । इस हेतुसे आमाशय रिक्त होनेपर प्रातःकालको इसका प्रयोग करना चाहिये । डाक्टरीमें सामान्यतः मेगनेशिया सहस्रस समान जलके साथ मिलाकर दिया जाता है ।

कतिपय लक्षण विरेचन अत्रको शैफिफ क्लामसे रससाय अधिक परती है किन्तु अत्र की संचालन क्रिया उभयनिष्ठ न होनेसे निवृत्त रसका देहमें पुनः शोषण हो जाता है। फलतः मेघ उपस्थित नहीं होता। अतः उनके साथ अत्रकी गति-वर्तक विरेचनका मिश्रण करके प्रयोगमें लाना चाहिये।

अन्यमेंसे उमताजनक त्याग्य पदापको दूर करने और कोष्ठवृद्धताम्य शिरर्द्ध, प्याकुलता आदिको नष्ट करनेके लिये मृदु विरेचन देना चाहिये। इन श्रीपथियोंका साथ अत्र शारीरिक इतर विधानमें प्रतीत नहीं होता।

एग्मेसिन विरेचन और तीव्र विरेचनकी अपभार साक्षात् क्रिया इन्निगोचर होती है। ये श्रीपथियाँ परम्परा रूपसे रक्तपर कायकर प्रचुर परिमाणमें रक्त-रसका ह्रास कर लेती हैं। अतः इन दोनों प्रकारकी श्रीपथिबासे कतिपय अंशमें दाहन (अपतपण) क्रियाकी सिद्धि होती है।

आयुर्वेद मर्मांदा अनुसार विरेचन देनेके पहिलेके कसम्य, विरेचनको विधि, अधिकारी, काल फल और अनधिकारी, विरेचनके अतिशय और हीन-योगमें कर्तव्य विरेचनके पर्याप्त कम, इन सब बातोंका मलीमांति जानकर विरेचन देना चाहिये। इन सबका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्डके पृष्ठ ६० से ६९ तक किया है।

क्रियोको मासिक धर्मके चार दिनोंमें विरेचन श्रीपथि नहीं देनी चाहिये। एवं गर्भावस्थामें अति सम्हालपूर्वक (आपस्यकता होनेपर) मुनकका, गुलकण्ठ, आदि सौम्य श्रीपथि देनी चाहिये। एलुआकी क्रिया क्षुद्र अत्रपर होती है अतः एलुआ भी नहीं देना चाहिये।

बार बार विरेचन लेते रहनेसे अजीर्ण अविहार, अधप्रदाह आदि विविध रोग उपस्थित होते हैं।

विरेचन द्वारा काष्ठशुद्धि कर लेनेपर दूसरे दिन बहुधा योग्य मलशुद्धि नहीं होती; परन्तु छठनेसे मग मानकर पुनः विरेचन श्रीपथि नहीं लेनी चाहिये।

विरेचन श्रीपथियोंमेंसे कितनीक अन्दी फल प्रदर्शित करती हैं; और कतिपय देरसे अत्र पहुँचाती हैं। जमालगोटेका वृत्त १२ घण्टेमें काय करता है। लपल विरन्तन १४ घण्टेमें, निसीय, रेफदधानी, परण्ड वृत्त आदि ४-५ घण्टेमें और एलुआ आदि ८-१० घण्टेमें विरेचन करते हैं। देरसे विरेचन करानेवाली एलुआ आदि श्रीपथियोंको राधिमों और शेर श्रीपथियोंको मातःफल उपन करना चाहिये।

इन्द्रबाण्ठी विरेचनार्थ देना हो, तो कपूर मित्रा लेनेसे क्रिया वृद्धि होती है। एवं एलुआके साथ भी कपूर मित्रा लेनेसे एलुआकी उमताया हाम दोष परण्ड वैलने साथ शौडका क्वाग और तनापके साथ शहद मित्रानेसे अत्रमें पोषा

नहीं होती। एवं अधिक उम्र औपधिके साथ सुरासानी अजघानन मिला देनेसे उम्रताका हास हो जाता है।

अन्वप्रदाहके रोगी अति दुर्बल, हृद और बालकोंको मृदु विरेचन देना चाहिये। [

औपधिकोंके अतिरिक्त मोटे आटे या मूसी मिले आटेकी रोटी, राहद गुब, फल (अमूर, किरामिश पपीता, अंजीर आदि), राक माकी आदि पदार्थ, ध्यायाम और उष्य खलपान आदि मल शुद्धिमें सहायक होते हैं।

औस मन्नायरोषके रोगीको विरेचन नहीं देना चाहिये। कुचिला, नागमत्स, चन्द्रप्रमावनी आदि औपधिकोंके सेवन द्वारा अत्रको सबल बनानेका प्रयत्न करना चाहिये।

ब्रह्मप्रदाह (Bright's Disease) के रोगीको बहुधा विरेचन औपधिक बलवत् मेदेस्पाइक कालादाना प्रयोजित होती है। इसके अतिरिक्त दुर्दम कोष्ठ यक्षतामें भी यह उपयोगी है।

वातरक्तके रोगीको विशेषतः लवण विरेचन, कुन्की, मजोठ आदि हितकारक हैं।

यदि विरेचन औपधिके सेवनसे ठणक या कै होती हो, तो डाक्टरी नियम अनुसार गुदा द्वारा बिच्छावे दी जाती है अथवा बस्ति कराई जाती है।

निसोत्—इसकी अरुण और द्याम दो जाति हैं। चरक संहिताकारने श्यामा त्रिवृत् कल्पमें अरुण निसोत्को श्रेष्ठ विरेचन कहा है। टीकार अरुदसाचाय सुखविरेचनके हेतुसे इसे प्रधान कहते हैं। इसमें रस कषाय-मधुर, गुण रुच, विपाक कटु और धीर्य उष्ण है यह कफ पिचरामक तथा रीक्ष्य गुणके हेतुसे वातप्रकोपक है। सुकुमार शिशु वृद्ध और मृदु कोष्ठवालोंको दे सकते हैं।

काली निसोत् मोह करती तथा तोषण होनेसे हृदय और कण्ठको कुछ नीचती है, यह क्रूर कोष्ठवालोंको दी जाती है।

डाक्टरीमें इसे तीव्र विरेचन (Drastic purgative) कहा जाता है। इसके मूलमें टर्पेथिन (Turpethin) नामक रस ५ से १० प्रतिशत रखी है। इसके अतिरिक्त बसा द्रव्य, उड्डयनशील तैल, शुम्भधिन, श्वेतसार, पीला रंग द्रव्य, सार और लोहद्रव्य आदि मिलते हैं।

यह खडु और वृहदन्त्र, दोनोंकी पुनःसंरक्षण क्रिया बढ़ाती है। अत्रमें खोमोत्पत्ति करती है। जिससे अत्रकी श्लैथिक कलामेंसे अधिक परिमाणमें रस साव होता है और पुनः शोषण नहीं हो सकता। इसी हेतुसे शोच पतला होता है। इसमें वातप्रकोप दोष है। इसलिये अन्त्रमें शूल खलता है। इसे कम करनेके लिये खोंठ, पीपल, सैधानमक आदि शूलपन औपधि मिला देनी चाहिये।

पञ्चभ्रममें मलावरोधका दूर करने, माताको शुद्ध करने तथा उष्णता कम करनेके लिये यह व्यवहृत होती है। एवं मस्तिष्कमें रक्त-दबाव बढ़ गया हो, तो उसे भी कम करता है, यह पल्ला शीघ्र लाती है, इस द्रव्यमें शीघ्र और जलोद्धारणमें भी मुकुमारोके लिये उपयोगमें आती है।

इन्द्रायण—इसके फल और मूल, दोनोंका उपयोग दत्ता है। फल अग्नि विरेचन करता है। फलोंको सुखा, बीजोंको निकालकर केवल गर्भका उपयोगमें लेना चाहिये।

फलमें रस तिक्त, गुण विरेचक, लघु, विषाक कटु और वीर्य उष्ण है। जम्बूरीमें इसे तीव्र विरेचक माना है। इसका वीर्यको दान्तरामें कालोसिन्धिन (Colocynthin) संज्ञा दी है। कालोसिन्धिन रस रूममें और उदासीन प्रसिद्ध क्रियावाले द्रव्य रूपमें मिलता है। इससे अतिरिक्त कुछ गौंमय द्रव्य मिलता है।

आसुषेद को दृष्टिसे यह कफनाशक और वातघ्नक है। इसमें पित्तलाप करानेका गुण देनेसे यह विरेचन द्वारा पित्तका निकाल देता है। इस द्रव्यमें पित्तप्रदायमें नाम पहुँच जाता है।

जम्बूरी दृष्टिसे यह आमाराधमें भी घ्नोम करता है। इस द्रव्यमें हस्ताम उत्पन्न होती है। सामान्य मांसमें अत्रकी प्रतियोका उत्तेजित करता है तथा पुटसरण क्रिया बढ़ा देता है। फिर उत्तरमें वेदनासहित जल जैसे फले शीघ्र करता है। पर अमर सुख दाय अथवा त्वचा या रक्तमें अन्त घेपस्य करने का होता है।

बही मात्रा देनेपर आमाराध और अन्त्रमें घ्नोमके अतिरिक्त उसकी प्रतिरक्षित क्रिया द्वारा उदर और अण्डगुहाक अयसवीर्य भी अमर पहुँचाता है। इसी द्रव्यसे सगम्य स्त्रीको इसका विरेचन देनेपर गर्भपात हो जाता है।

जम्बूरीमें यकृतको विट्टि दानेपर फन पाणको पल्ला और पारदक गंध देते हैं। प्रविष्टारिणो शिरासंध्यामें उत्पन्न रक्त संघट्टका शमन करनेके लिये इसे भेद औषधि मानी है। इस औषधिमें वेदना कथनका दाय है इस द्रव्यमें जम्बूरीमें सुगन्धामी अजवायन अथवा बलादाना (एसीयूरी मिला देते हैं)।

यह अन्नक दार जलो र, शीघ्र और अतिरिक्त रक्त संघट्ट पर भी व्याहृत होता है, किन्तु इन रोगोंमें (जम्बूरी में) शीघ्ररिक्त और पेलस्य अर्थात् प्रभापराशा माने गये हैं।

आसुषेदके इत्रापणका उपयोग काल्पना रगापर किया गया है। विगायन या विगायनिकामें प्रतिषेध होनेपर अतिरिक्त विगायन दाय उक्त दूर का जाननामें शमन करता है। फलामें इसका मध्य देनेपर नाकमें अतिशय पीना व्याप करता है। किन्तु रक्त शुद्ध हो जाता है।

श्रीहावृद्धिगं कफ बुधि, अन्त्रमें मलसंग्रह और मंद मंद ज्वर बार बार आना आदि लक्षण होनेपर इसका अञ्छा उपयोग होता है।

(१८) संशोधन।

चरक संहितामें संशोधनके ४ प्रकार कहे हैं। वमन, विरेचन, आस्थापन वस्ति और शिरोविरेचन। इनमेंसे विरेचनका विवेचन नं० १७ में किया है। मस्तिष्क शोधन नं० २० में तथा वमनका नं० २१ में किया जायगा। यहाँ केवल आस्थापन वस्तिका वर्णन करेंगे।

महर्षि आश्रय कहते हैं कि, शास्त्रागत, कोष्ठगत और मर्मगत रोग अर्थात् त्रिविध मार्गोंमें आश्रित रोग, जो देहके ऊर्ध्वभागमें हुए हों, सम्पूर्ण देहमें फैल गये हों या किसी अवयव विशेषमें आश्रित हों, उन सबका इतु वायुसे सफल और कोई नहीं है। अष्टाङ्ग संग्रहकारने भी वायुको पित्त और कफ दोषोंका नेता कहा है।

अथपि पित्त और कफ प्रकोप भी रोगात्पत्तिमें कारण होते हैं, तथापि वे पङ्क हैं, वायु ही उनको इधर उधर फैलाकर रोगोंकी समाप्ति कराती है। इस तरह वायुका अग्नि प्रवृद्ध होनेपर उसके शमनार्थ वस्तिके अतिरिक्त और कोई औषध नहीं है। कई चिकित्सक इसे आभी चिकित्सा मानते हैं और कई पूर्ण चिकित्सा।

वस्तिका प्रवेश नाभिस्थान, कमर, पाश्र्व और कुक्षिमें होता है, यहाँ पहुँच कर पुरीष और संश्लिप्त दासोंको क्षुमित (मथित) कर स्वशक्तिसे देहनं व्याप्त होकर देहका सिंग्र वना, मलको लेकर बिना कष्ट पहुँचाये बाहर आ जाती है।

वस्ति के तीन प्रकार हैं। १ आस्थापन (निरूद्ध) २ अनुवासन स्नेह) और ३ उत्तर वस्ति। इनमें आस्थापन और अनुवासन वस्ति गुदाद्वारासे तथा उत्तर वस्ति मूत्रमार्गसे मूत्राशय और गर्भाशयके शोधनार्थ दी जाती है। आस्थापन वस्ति जल और कषाय प्रधान होता है। शीघ्र दोनों स्नेह प्रधान हैं।

आस्थापन वस्तिमें अन्त्रस्त मलमूत्र आदि दोषों का शोधन करनेके लिये शोधन, दोषप्रकोपको शमन करने के लिये संशमन मेदकफ, आदि को सुखान के लिये लेखन, पाचन और शोधन कार्यके लिये मापन, आदि मेदसे अनेक प्रकार होते हैं।

मिन्न मिन्न व्याधियों के लिये मिन्न मिन्न औषधियों प्राय तैयार की हुई बहुसंख्यक वस्ति प्रयोग प्राचीन संहिता ग्रन्थोंमें लिखे हैं और इस वस्तिईर्माकी अत्यधिक महिमा गाई गई है। जब अन्य औषधचिकित्सा असफल हो जाती है, तब उस समय भी वस्ति चिकित्सासे सफलता मिल सकती है। फिर भी वर्तमानमें इस वस्ति चिकित्सा का आश्रय कोई चिकित्सक क्वचित् ही लेते हैं। वैद्योंने इस आश्रय अति दुर्लभ किया है।

टाक्टरीमें जलवस्ति देते हैं। ताजुन, एरण्ड तैल या मिशसरोन मिश्राते हैं या केकल मिशसरीन या एरण्डतैल की वस्ति कराते हैं। वह भी अन्त्रशोधनमें उपकारक

होती है। यदि प्राचीन दस्ति विधि का उपयोग किया जाए, तो अक्षय्य कहकर खाद हुए अनेक व्याधि पीड़ितों को भी लाभ पहुंचा सकता है।

आस्यापन दस्तिके निम्न, मात्रा अपिघरी आदिका पवन तथा कई अतिप्रकार चिकित्सा तत्वप्रदोष प्रयत्नरूप के पृष्ठ ७८ से ८४ में तब दिये हैं। इस आस्यापन दस्तिमें सब रसोंका उपयोग होता है। मात्रा मेरसे उनके निम्न अंतर्गत हो सकते हैं। उनसे भीतर उपयोगमें आनेवाले अल्प भी अत्यधिक है, अतः उनका विभाग चरक संहिताकारने रस भेद के अनुसार प्रकार के नीचे मिले आस्यापनस्कंधों में किया है।

१ मधुरस्कंध, २ अमृतस्कंध, ३ लघुस्कंध, ४ कटुस्कंध, ५ तिक्त स्कंध, ६ कषायस्कंध,

उक्तस्कंध प्रायः अधिक द्रव्य निहित होने से अनेक रसोंवाले ही हैं। अतः उनमें जो रसप्रधान हो, उसे उस रसप्रधान स्कंध में कहेंगे। जैसे मधुर, प्रायः मधुर रस, मधुरविषाक और मधुर प्रभाव वाले द्रव्यों को मधुरस्कंधमें कहा जायगा। इस तरह अन्य रसों के लिये समझ लें।

मधुर स्कंध—जीरक, श्यामक, ओष्ठी घीघ (महाशतावरी), मुँह आमला, काकोली, क्षीरकाकोला, मीरु (शतावरी भेद), मुद्गापर्णी, मापरणी, शालपर्णी, पूरनपर्णी, असनपर्णी (अपरागिता), मधुरणी (विकट-कंदार), मेदा, महामेदा, काकशा सिंगा, सिंघावा गिलोय, क्षत्रा (साङ्गमाना), अतिक्षत्रा (लाल लालमसाना), भावशो (सफेद मुएटा), महाभाषणी (लाल मुएटा), अलम्बुपा (महा भावशोका विशेषण है या मुएटा भेद), सहदेवी, नागबला, शकर, सफेद निमोत, लट्टी, ककदिया (अनिबला), चिदातीकर, क्षीरविशती, क्षुप्रसहा (गुलाबके फूल), महासहा (महाबला), क्षण्यगधा (पत्राभेद या विषादा), अक्षयगन्धा, पयस्या (अकपुष्पी) सफेद पुननवा लाल पुननवा, क्षोण कट्टेली, बसो कट्टेली, एरण्ड, मोर (मूला), गोमरु कन्धक, शतावरी, सौर मधुकपुष्पी, (मुनहट्टी पेठ), मुद्गद्वी, मधुलिका (द्राक्षा), क्षिप्रिण, लघु, कसता, कौंड, कमलके घोंज, कसेरु, बड़े कसेरु, मिरनी, कज (निमनोके पत्त), गम्भीरी, शोषणाक्षी, (नील अरुगिता), ताडरस, गन्ध, नामरनोषा, ईश, इक्षुशामिका (ईश भेद), दर्भ, कुश, काष्ठ, शाकिनी जड़, गुंदा (मोरनी-मोदर), इक्षु (एक प्रकारका क्षुप), सरण्डेक्षी जड़, शकचक (शकताम्री), क्षण्यगन्धा (पत्राभेद), दारदा (शाकतक-शकुल), भारद्वाजी (पनकताक, पन प्रपुरी (पन काकरी), अमीरग्री (शतावरी भेद), ईशक, काटनासिका, शोभाडाली, " (उज्ज्वल), क्षीरकन्ती (क्षीर विगरी भेद) क्षीरकन्ती (क्षीर इलानची), " (सोमलता) गौरपन्ती (अन्तप्रय), मधुकन्ती (मुहट्टी भेद)

आदि । इन मधुर स्कन्ध और अन्य मधुर वर्गकी ओषधियों मेंसे, जो छेदन या टुकड़ करमे योग्य हों, उनके छोटे छोटे टुकड़े करें । मेदनयोग्य हों, उनका सूक्ष्म मेदन करके स्वच्छ जलसे धो लें । फिर घोट हुई हाथी में (या क्लार्कदार बत्तन में) डाल, आधे पलमिभित्त दूध (ओषधिसे घाठ गुने) से सींचकर मन्द अग्नि पर सिद्ध करें और कबड्डी से सतत चलाते रहें । जब चतुर्थांश जल शेष रहे, दूध न जले और ओषधियोंका सत्व दूध-जलमें मिल जाय तब हाथीको नीचे उतारकर पालीमें उठेल दें और उसकी उप्युता क्रम होने पर छान लें । फिर घी, तेल मज्जा, लवण, फाखिल (ईंद्रु रसकी राय) यथाविधि मिलाकर किञ्चित् निवाये द्रवकी वस्ति वात विकारवाले को दें । यदि पित्त विकारवालेको देनी हो तो शहद-भी मिलाकर शीतल द्रवकी वस्ति दें । यह वस्ति शास्त्रविधि अनुसार देनी चाहिये ।

यद्यपि पित्तमें विरेचनको प्रशस्त कहा गया है, तथापि यहाँ पर जो वस्ति-विधान किया है, यह पक्वाशयगत पित्त या कफपित्त (आम मिभित्त पित्त) को मलके साथ बाहर निकालनेके लिये है ।

अम्ल स्कन्ध—कच्चे आम, अम्बाडा, लकुच (बडहर), फरौदा, वृद्धाम्ल (कोकम), अम्लवेतस, बड़े-बेर, बेर, अनारदाने, भिजौरा, गयबीर (खट्टायाक), आंवला, नन्दीक (कर्परनन्दी-पानी आंवला), शीतक (लकुच मेद), इमली, दन्तशठ (जम्बीर), ऐरावत (संतरा), को घात्र (जंगली छोटे आम) और घामन के फल । अम्बाडा, अम्लमूक (काविदार या चूका) और चांगीरीके पान, चारों प्रकारकी इमलीके पत्ते, दोनों प्रकारके बेरके कच्चे या शुष्क पान, जंगली और आम्र दोनों प्रकारकी इमलीके पान । आसब द्रव्य तथा सुरा, सौबीर, तुषोदक, मैरिय, मेदक, मदिरा, मधु (मुनक्काकी शरब), सीधु, सिरका, दही, दही का सोडा, छाछ, कांजी आदि, ये और इसी प्रकार अन्य अम्लकाकी ओषधियां जो छेदनयोग्य हों, उनका छेदन कर और मेदन योग्य हों उनका मेदन करें । फिर स्थिर द्रव्योंको सुप आदि द्रवा से मिश्रकर सिद्ध करें । पश्चात् छान कर यथा विधि तैल, वसा, मसू, मज्जा, लवण और फाखिल मिलाकर वातरोगी को विधिवत् निवायी वस्ति दें ।

लवणस्कन्ध—सैंधव, सौंवल, कालानमक, विषनमक, पान्य (सारा), अगूप (आन्प देशमें तैयार किया हुआ लवण), नूप्य (सलाहमें तैयार किया धार) बालुक (बालुकासे तैयार किया हुआ), ऐल (लूखार धार), मीलिक (समुद्र किनारे जमा हुआ लवण), समुद्रनमक, रोमक (सामर लवण), उद्भिन्न और झीपर (ये दोनों ठपर मूँसे तैयार होते हैं), पाट्यक (सन्नीचर), पांशु (ऊपर भूमिका धार), इन सब लवणोंको तथा लवण वर्गके अन्य द्रव्योंको कांजी आदि अम्ल द्रव या निवाये जलमें मिला, विधिवत् तैल आदि मिभित कर वातरोगीको निवायी वस्ति दें ।

कटुम्फन्ध—विप्लवी, पिप्लीमूल, गजपोरन, चम्प, चिपक सोट, काली-
मिच, अजमाद, अदरक, वायविकङ्क, नेपाली पनिया, पोल्लूरल, तेजोवती (विचरल),
छोगे इलायचा, कूठमाठा, मिलावेकी गिरी (गाडम्भी), हींग, किलिम (सल
देवदाह), मूली, सरसा, लहसुन, करंज, जंगली मुद्दिना, पाग का मुद्दिना
(मीठा), सरपुण्या (मरुना), मस्तूण (रोहित पास), मुसुस, मुस, कुटेरक,
अजरक, गस्टीर, कालमालक, पणास, क्षपक, पण्डिञ्जक, (मुसुस से पण्डिञ्जक तक
ये • तुलसा के भेद है), चार, मूत्र, पित तथा इस प्रकार के द्रव्य, जो फट्टवर्ग के हों,
उनमें से टुकड़े करने योग्य के टुकड़े करार चूर्ण योग्य का चूर्ण करे फिर उसे गाम्भी में
सिद्ध कर स्वच्छ यस्त्र से छान लें पश्चात् शहद, तैल, लवण आदि यथाविधि
मिलाकर का पीठित का निषाधी यस्त्र देवें ।

सिक्तकन्ध—चंदन, नलद (उशीर भेद) कूठमाल (कश्मिर-सुजा
अमलताम), नकमाल (वृहत् करंज), नीम, मुम्बर (नेपाली पनिया, कुडा,
इलाही, दाहइली नागरमोया, मूर्त्ता, चिरायवा, कुटकी, धापमाण्ड, करेली, करोर,
करवीर (करे), केतुक (कडू), फटिल्लक (पुनर्नया), अहसा, मण्डूकायौ,
कड़ोदा, बैंगन, कर्कश (कर्मीही), मञ्जेष, काठगूलर, तुपती (कड़ुवी जीरी),
अतिविषा, पगवल के पान, कुलक (पटोकम), पाठा, मिलोप, बेंग, बेंग का राम
भाग, विरडूत (धुवा वृक्ष), मौलसरी, सोमरुक (सफेद खैर), सनीना, पनेली,
आक, अयल गुज (यक्षी वाली) अच, अगर, अग्र, नेत्रवाला श्रीर गत तथा
तिमवर्ग के अन्य द्रव्यों में से टुकड़े करने योग्यके टुकड़े करें तथा भस्न करने याम्य द्रव्यों
का भस्न करके धो डालें, फिर जल में मिलाकर मन्दाग्नि पर सिद्ध करें, पश्चात् छानकर
यथाविधि शहद, तैल लवण आदि मिलाकर स्तोत्रमाके रोगी को निवाधी यस्त्र देवें ।
अदि पित्तप्रणयानोंको यस्त्र देनी हो ता पी शहद मिश्रई हुई शक्ति यस्त्र देनी
श्यादिये ।

फणायरकन्ध—पियसु, अनन्तमूल आमरी गुल्ली, पाठा, कर्पूर
(अरलू), लोष, मोघस मनी, धावये पुन, पद्मा (स्यलकदल मनाग्रमें पद्य
अर्थात् कमल), फमन केसर, जासुन, आम पिसागन यह का वृक्ष फपीतन
(पारसवीरल), गूलर, पीरन मिलावा, अमभक (का विरार या पापाद्य भेद)
किरस, शायम सफेद गैर, तेदू, रियाल (विरीनी का वृक्ष), बेर, गोट, मग्गा,
प्रार्यव्य (शालभेद), मिनिश, अजुन, असन, सुग पशाना (र, एम्बानुक
(मुर्गपशाना द्रव्य), परिवेलार (केली भागा), कटर, शल्की (शालभेद),
तिङ्गिनी (कृष्ण शारमनी), वाया कम्क, दके फलेद, कटरम, मीम, पधान अशीद,
धानवा, राज का वृक्ष, मौदर्य, जनपुषा, शमा, मापी (कटमाची-मञ्जेष), परक
(खीना-मरुभन्ध), तुंग (पुन्नाग) अज्यर्ण (शालभेद) अज्यर्ण (रीतायाच),

स्फुमक (लेंडू मेठ) महेका, कुम्भोक (पाटलावृद्ध), पुष्करबीज (कमलगट्टे), कमल की जड़, कमलनाल, ताड़के कच्चे फल, खनूरके कच्चे फल, इनके और इसी प्रकारके कषामर्कके अन्य द्रव्योंमें से टुकड़े करने योग्य हो उनके टुकड़े करें, छाल निकालने योग्य हों, उनकी छाल निकालें फिर जलसे धो, जल मिलाकर मंदाग्नि पर सिद्ध करें। परचाट्ट छान शहद, तैल लवण आदि मिला कर पीबितको विभिवत् नियायो बस्ति देवें। पिच विकारयालाको बस्ति देनी हो तो घृत मधु मिलाकर शीतल बस्ति देनी चाहिये।

उक्त ६ स्कन्धा परसे रोगानुरूप विचार करके आस्थापन बस्तिकी योजना करनी चाहिये। उक्त रसोंके गुण और फल का विस्तारसे विवेचन पहिले रसविवेचनमें किया गया है।

इस आस्थापन बस्तिमें गुणघटक सहायक औषधियां कितनी ही हैं, जिनके मिला देने पर तुरन्त प्रभाव प्रतीत होता है। उन औषधियों को कुछ मादी चरक-सहितामें निम्नानुसार आस्थापनोपग नामसे दी है।

आस्थापनोपग—निसोत, बेल, पीतल, कूठ, सरसों, बच, इन्द्रजी, सोया, मुलहठी और मैतफल, ये १० औषधियां आस्थापन क्रियामें सहायक है।

(१९) घृहण ।

नुट्रिशियसिस Nutritiouses

घृहत्त्व यच्छरीरस्य जनयेत्तच्च घृहणाम् ।
गुरुशीतस्रुवस्निग्ध बहलं स्थूल पिच्छिलाम् ।
प्रायो मन्दं स्थिर श्लक्ष्ण द्रव्यं घृहणमुच्यते ॥

जो द्रव्य शरीरमें मागपन ला देता है (स्थूल बना देता है), वह घृहण कहता है। जो द्रव्य गुरु शीत, मूढ, स्निग्ध, बहल (गाढापन), स्थूल (संवृत अवयव युक्त), पिच्छिल, मंद (चिरकारी), स्थिर और श्लक्ष्ण गुणयुक्त हो, वह प्राय घृहण होता है। प्रायः करनेका वात्पर्य यह है कि, कोई कोई द्रव्यमाक आदि शीतल द्रव्य लंबन भी होते हैं।

घृहण द्रव्य पृष्ठीमज्ज मूषिष्ठ और कषघट्टवदक हाते हैं। मधुर रसप्रधान अनेक द्रव्य घृहण हाते हैं। रस रक्त आदि पातुआको पोषक (Nutritious) आहार आवश्यकता अनुरूप मिलते रहनेपर सब पातुआकी वृद्धि होकर देह मोटी हो जाती है। इन पातुआमें मांसकी वृद्धि और पुष्टि यथोक्ति हो, तो घृहण गुण दीर्घ कालन्यन्त टिक जाता है। मांस बद्धक दृष्टिसे भी धारमहाचार्यजी लिखते हैं कि —

न हि माससम किञ्चिदन्यद्देहं बृहत्पुत्रम्
मासा द्मांस मासेन समृत्तत्वाद्भिरोपत ॥

मांसके समान देहको बृहण करनेवाला कोई भी द्रव्य नहीं है। मांसके पुत्र होनेपर वेह और देहकी अन्य धातुएँ भी पुत्र बन जाती हैं।

महर्षि अत्रेय भी कहते हैं कि 'प्रोक्थनं सवधानानां द्वयो मांसरसः परम्' मांसरस संपूर्ण धातुशोभी मूल्यताको पूरा करता है। यह हृदयके लिये स्तिष्ठत है। ध्याभियोति आई हुई शुष्कता, कृशता और वीर्य क्षीणताको पूरा करता है। पल और वर्षाको बढ़ाता है, बुद्धि, इन्द्रिय और आयुमें वृद्धि करता है।

इनके अतिरिक्त योगपूर्ण पच्य आहार, नियमित दिनचर्या, तीलाम्यंग, चिन्ताका अभाव, शुद्ध वायुका सेवन, आवश्यक भ्रम, प्रकृतिके अनुकूल जलवायुमें निवास आदि कारण भी देहको बृहण करनेमें सहायक होते हैं।

बृहण चिकित्साके अधिकारी—भ्याधि, श्रीपथसेवन, मद्यपान, स्त्रीसेवन, चिन्ता, मार-अहन, प्रवास और उरःक्षतसे चौख द्रुप म्यक्ति, रूच, अराक, काठ प्रकृतिवाले, सगर्मा, प्रसूता, बालक और वृद्ध, ये सब बृहण चिकित्साके अधिकारी हैं। इनके अतिरिक्त द्रोष्प शत्रुमें प्रायः सब रोगियोंकी चिकित्सा बृहणकी जाती है।

कदाच इन अभिकारियोंमेंसे किसीको लंघनसाध्य स्वर आदि रोग हो जाय, तो उस समय मृदु लंघन चिकित्सा करनी चाहिये।

बृहणाय फयाय—वरक संहिता कथित कयापमें श्रीरिषो (सिरनी या श्रीरधिदारी), राजयषक (दूधी), पला (लरैदी), काकोला, घोरकक्रेला, वाय्यापनी (सफेद फूलवाली लरैदी), मज्रीदनी (पीले फूलकी लरैदी) भारद्वाजी (बनकमासके कच्चे पल), विदारीकंद और विभाय, ये १० श्रीपथियों बृहण करी हैं।

फाकोल्यादि गण—गुभुत संहिताकथित काकोला आदि १८ श्रीरथियों बृहण हैं। इसका यथेन पहिले विस्त संशमन रूपत किया है।

और बृहण श्रीपथियों मुख, लोह, सुवर्णमाक्षिक, जमर, अमरक, शिलाजीत मुक्ता, प्रवाल, अठगन्ध, मिश्री, दूध, घृत, मधुर और तिन्त्र श्रीपथियों तथा अनुवासन बस्ति आदि।

फसामें घाम, आवातक, नारियल, केला, राजतु, पनत, पालाग, ठासास, गंमारोडल, सिरनी, मद्रुपा, दई मधुर बंद, बेगनल, गुलर-पत्र, द्विस्ताडा, वागम, पिन्ना, अमरोट, मोजे, चिन्नागोवा, उदमाथ (तैलप्रधानमधुर पल), बिरौजी, फालु श्यामिमें मूनाधिक अंशमें बृहण गुण अवस्थित हैं।

अनुवासन परित—यद स्नेह प्रपान है। स्नेहमें या सेवन, यत्ता और मन्ना, ये ४ हैं। इनमें तैल मुख्य है। उनमें भी तिन्त्रसेन प्रपान है। यान और

कफप्रकोपके रोगियोंके लिये तैल, वसा मज्जा और घी इन चारोंमें यथापूर्व भेद हैं अर्थात् सबसे तैल भेद है, किन्तु पित्तविकारोंमें यथोत्तर भेद हैं अर्थात् सबसे पीको विशेष हिलावह माना है।

अनुवासन यस्त्रिका उपयोग—

देहे निस्त्रेण विशुद्धमार्गे सस्नेह वर्णाधनप्रद च ।

न तैलवानात् परमस्ति किञ्चिद् द्रव्यं विशेषेण समीरणार्त ॥

निरूह यस्त्रि द्वारा मार्गकी सम्पक् शुद्धि हो जाने अर्थात् अनुवासन यस्त्रिका प्रयोग करनेपर बर्ष और बलकी वृद्धि होती है। वात-पीडिताके लिये बहुधा इस यस्त्रिसे भेद कोई उपाय नहीं है।

वेहमें तैलका शोषण हो जानेसे कृशता, रूक्षता, क्षुधा और शीतलताका नाश होता है। मनकी प्रसन्नता तथा बल, वीर्य वर्ण और अग्निकी पुष्टि होती है। फिर आगे लिखते हैं कि—

मूले निपिके हि यथा द्रुम' स्यात्रीसच्छद' कोमल पल्लवाप' ।

काले महान् पुष्पफलप्रदश्च तथा नर' स्यादनुवासनेन ॥

जिस तरह मूलमें अक्षका सिंचन करनेसे वृक्ष, कोमल हरे पत्रवाला (हरा मरा) बन जाता है, शाखा नयी नयी फूटती जाती हैं और कुछ समयमें वृक्ष बरा होकर फूलों और फलासे सुशोभित मालूम देता है, उसी तरह अनुवासन यस्त्रिका योग्य संवन करनेपर मनुष्य भी कुछ समयमें देहसे मोटा, सुदृढ़, अनेक संतान युक्त बरास्त्री और कीर्तिमान हो जाता है।

अनुवासन यस्त्रि कितनी देना, इस विषयमें मतभेद है। सामान्यतः देह पुष्ट हो और सहन हो सके उतनी देनी चाहिये। अनुवासन यस्त्रिके अभिकारी, समय, अनधिकारी यस्त्रि मर्यादा, अपप्य आदिका विचार त्रिक्रिस्तातत्वप्रदीप प्रथम पत्रके पृष्ठ ६९ से ८३ के मीतर किया गया है।

अनुवासनोपग—अनुवासन यस्त्रिमें सहायता देनेवाली औषधियां—रास्ता, देवदारु, विस्व, मैनफल, सोया, श्वेत पुनर्नवा, रक्तपुनर्नवा, गोखरू, अरुणी और शबोनाक, ये १० कही गई हैं।

(२०) शिरोविरेचन ।

मस्तिष्क्यापन-यर्हिन्स-स्तनु टेटोरिक्त ।

Errhines-Sternutatories.

नस्य दूरने पर मस्तिष्कके दोष को नाकसे गिरानेवाली औषधियां। [इनमें अनेक औषधियां छीके लाती हैं और कितनी ही नहीं लाती। छीके न लानेवाली

अनेक उग्र आपथिया सूखने मात्रसे नामिकाही शैथिल्य कलामें प्रदायी उदरति करता हैं, फिर यही से रसस्त्राय होने लगता है।

शिराविरेचनोपग—मालकांगनी, नक्षत्रिकनी, कालोमिर्च, पीपल, बाब-निडंग, सहजने के बीज, सरसों, अपामार्ग के बीज, श्वेत अपराजिता, (गोक्षुरी) और कृष्ण अपराजिता, ये १० श्रीपथियों चरकसंहिताकार ने तस्य क्रमके लिये उपयोगी लिखी हैं।

अष्टाङ्ग हृदयकार क्षिप्रित शिरोविरेचन—गणपिष्टक, अपामार्ग के बीज, साठ, मिर्च, पीपल, दाहहृदी, गुलाबा (भेठ सजरस), किरसके बीज, बड़ी कटेलीके फल, सुदिजनेके बीज, महुएके फूलका रस, संधानमक, गसोंठ, छोटी इलायची बरी इलायची और काला जीरा।

इनके अतिरिक्त छीके लानबा नी रामाय, फायरस, लोबान, बकुल, मेनक, बच, बिरस, सरसों का तैल, घृत, शिकटु, कुलिजन, इलायची, द्रोणपुष्पी, कूड, दन्द्रजी, अर्ध-सुग्ध-मिश्रित भस्म आदि श्रीपथियां।

शैथिल्यक कलामें उमता उत्पादक—तीव्रतर पूनेका मिश्रण, किरसके वाष्प, यदाल (देवदाली), नीलगिरी-तैल पीपरमेखन तैल, मिर्च आदि।

इस प्रकार की श्रीपथियों का नम्य रूप से उपयोग करने से मस्तिष्कसे संचित दोष बाहर निकल जाता है। इस वगैरे श्रीपथियोंस रक्त-भार की वृद्धि होती और मस्तिष्कस्य शिरासमूह परम्परागत प्रसारित होकर मस्तिष्कमें उद्वेगना उपस्थित होती है।

शिरोविरेचन के लिये जो नम्य श्रीपथियां प्रयोगित जाती हैं, उनके बृहत्, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अयपीड और प्रथमन, ये ५ भेद हैं। इन सबकी विधि, अधिकारी, फल, नस्यके परचात् कर्तव्य, अयम्य आदि का विस्तृत विवेचन 'चिकित्सा सत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ८९ से १४ तक किया गया है।

शिरोविरेचन हेतु—

(१) नासाग्रप्रती शैथिल्यक कला भोग होने पर उसे प्रायः कृष्ण और प्राणशक्तिका हाम होने पर उसे उत्तमिद करना।

(२) अधिक श्लेष्मा नि सरस्य हाय दोहन (अनराध) और श्यानिष्पातदा नाथियोंका उद्वेगना हाय मशुमना सावन करके शिरस, दिहा नेत्रराग, कर्णरोग कर्णनयने शोष (यूटेकिपन स्पूरे Fustichian Tubor) आदि पर लाभ पहुँचता है।

(३) प्रथम नेत्रना कालमें प्रथम पथमें कोई व्यापार न हा, तो सन्ध्याय या भूय को बाहर निकालनमें सहायता पहुँचायी है।

(५) नाधारन्त्रस्य घातनाकियांकी उत्तेजना मस्तिष्कमें जाती है, फिर तत्काल घट, मोवा और मुलकी भासपेशियामे प्रत्यावर्तन होकर उसको एक कालीन क्रिया द्वारा छींक उत्पन्न होती है। उसी समय समग्र घात-बहा-मण्डल उत्तेजित हो जाता है इस हेतु से मूर्च्छावस्था (बेहोशी) में प्रयाग करने पर चेतना आ जाती है। इसके अतिरिक्त नासिका या श्वासनलिकामें किसी द्रव्यका प्रवेश हुआ हो, तो यह निकल जाता है। मस्तिष्कमें भारीपन रहता हो तो मस्तिष्कमसे दूषित मलका साथ हाफर यह श्मन हो जाता है। फिर स्मरण-शक्तिको भी क्षाम पहुँच जाता है।

सूचना—स्वासमार्ग या कुपकुपमेंसे रक्तसाव, मूर्च्छा, रक्त-वाहिनियांकी दीवारकी अपक्रांति (Atheroma), अन्त्रावतरण या गर्माशय निर्गमन आदि विकारसे पीडित या उनके अनुकूल प्रवृत्तियों को नस्य करनेको औषधि नहीं देनी चाहिये।

(२१) धमन ।

घान्तिकर-इमेटिक्स—Emetics

अपन्यपित्तश्लेष्माण्यौ बलादूर्ध्वं नयेत् यत् ।

धमनं तद्धि विद्येयं मदनस्य फलं यथा ॥

जो द्रव्य अपन्य केवल पित्त अथवा केवल कफको या दोनों का (अपन्य अन्नको और आमाशयमें विप हो तो। विपको भी) बलात्कारसे ऊपर उछालकर मुख द्वारा बाहर निकाल देवे, उसे धमन कहते हैं। जैसे मैनफल ।

यद्यपि आचार्योंने कफ शोषणार्थं धमन तथा पित्तनिर्हरणार्थं विरेचन कहा है, तथापि आमाशयस्य विकृत तम अपन्य पित्तका निर्हरण धमनसे करना विशेष दिता यह माना गया है। इसी हेतुसे अम्लपित्त चिकित्साके प्रारम्भमें धमन प्राय शोषन करनेकी आज्ञा-धी गई है।

इस सम्बन्धमें भीवाग्मशाचार्यजी कहते हैं —

अपन्यं धमने दोषान् पच्यमानं विरेचनम् ।

निर्हेद्मनस्याऽथ पाकं न प्रति पालयेत् ॥

अपन्य दोषों को दूर करनेके लिये धमन और पच्यमान दोषोंके लिये विरेचन व्यवहृत होता है।

धमनोपग—चरक संहिताकारने धमन करनेमें सहायक औषधियाँ—सहद, गुलाहठी, लास क नार, सफेद कचनार, कदम्ब, जलबैत, सिन्धी (कन्दुवी), अण्डुणी, आक, अपामार्ग आदि करी हैं।

चरक संहिता कथित धमन औषधियाँ—मैनफल, गुलाहठी, नीम, देव अण्णो, कन्दुवी तुर्क, पीपल, कुबे धी छाल, कन्दुनी तुम्बी, छोटी इलायची, पिया तुर्क

अनेक उग्र श्लेष्मिकों सूखने मात्रसे नासिकाही रक्तमय कक्षामें प्रदाहकी उत्पत्ति करती हैं किंतु यहां से रससाव होने लगता है।

शिरःधिरेश्वनोपग—मालकागनी, नफडिकनी, कालीमिर्च, पीपल, शय-विडंग, सहजने के बीज, सरसों, अपामार्ग के बीज, श्वेत अपरुमिता, (गोकर्षी) और कृष्ण अपरुमिता, ये १० औषधियां चरकसंहिताकार ने नस्य कर्मके लिये उपयुगी लिखी हैं।

अष्टाङ्ग हृदयकार क्षिप्र शिरोविरेचन—नामविबल, अपामार्ग के बीज, साठ, मिर्च, पीपल, दाहहृदी, सुयक्षा (भ्रष्ट सर्जस), तिरसके बीज, बकी फटेसीके फल, सुदिजनेके बीज, महुएके फूलका रस, सैधानमक, रसोत, छोटी इलायची बड़ी इलायची और काला बीरा।

इनके अतिरिक्त छींके जानवाजी तमाखू, कायफल, लोबान, बकुल, मेनफल, बज्र, तिरस, सरसों का तैल, घृत, भिन्दू, कुलिजन, इलायची, द्रोणपुष्पी, कूठ, इन्द्रबी, अर्क-युग्म-मिश्र मस्य आदि औषधियां।

श्लैष्मिक कक्षामें उपरता उत्पादक—तीक्ष्ण शूनैका मिश्रण, तिरहेमनी वाष्प, पंदास (देवदाली), नोसगिरो-तैल पीपरमेयका तैल, मिर्च आदि।

इस प्रकार की औषधियों का नस्य रूप से उपयोग करने से मस्तिष्कसे सञ्चित दोष बाहर निकल जाता है। इस वगकी औषधियोंसे रक्त-मार्ग की वृद्धि होती और मस्तिष्कस्थ शिरासमूह परम्भरागत प्रसारित होकर मस्तिष्कमें उत्तेजना उपस्थित होती है।

शिरोविरेचन के लिये जो नस्य औषधियां प्रयोजित होती हैं, उनके सूक्ष्म, शिरोविरेचन, प्रतिमर्श, अशपीक और प्रघमन, ये ५ भेद हैं। इन सबकी विधि, अधिकारी, फल, नस्यके पश्चात् कर्तव्य, अपरुष आदि का विस्तृत विवेचन 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ ८९ से ९४ तक किया गया है।

शिरोविरेचन हेतु—

(१) नासारन्ध्रकी श्लैष्मिक कक्षा नीरस होने पर उसे आर्द्र करना और प्राणशक्तिका हास होने पर उसे उत्तेजित करना।

(२) अचिक श्लेष्मा निःसरण द्वारा दोहन (अग्रतर्पण) और स्थानिक वातवहा नाभियोंकी उत्तेजना द्वारा प्रत्युपवा साधन करके शिरःदर्द, हिक्का; नेत्ररोग, कर्णरोग कर्ण-पथमें शोथ (यूस्टेकियन ट्यूबर Eustachian Tuber) आदि पर काम पहुँचता है।

(३) प्रत्युपवा कालमें प्रथम पथमें कोई व्यापार न हो, तो सन्तान या मूत्र को बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचादी है।

(४) नासारन्त्रस्थ घातनाशियोंकी उत्तेजना मस्तिष्कमें जाती है, फिर तत्काल बच्च, प्रोषा और मुखका मासपेशियोंमें प्रत्यावतन होकर उसकी एक कालीन क्रिया द्वारा छीक उत्पन्न होती है। उसी समय समग्र घात-बहा-भण्डल उत्तेजित हो जाता है इस हेतु से मूर्च्छावस्था (वेहोमी) में प्रयोग करने पर चेतना आ जाती है। इसके अतिरिक्त नासिका या स्वासनलिकामें किसी द्रव्यका प्रवेश हुआ हो, तो यह निकल आता है। मस्तिष्कमें मारीपन रहता है तो मस्तिष्कमेंसे दूषित मलका स्राव होकर वह श्मन हो जाता है। फिर स्मरण-शक्तिको भी क्षाम पहुँच जाता है।

सूचना—स्वासमार्ग या फुफ्फुसमेंसे रक्तस्राव, मूर्च्छा, रक्त-वाहिनियोंकी दीवार की अपक्रांति (Atheroma), अन्त्रावतरण या गर्माशय निर्गमन आदि विकारसे मीषित या उनके अनुकूल प्रकृतियालों को नस्य करनेकी औपधि नहीं देनी चाहिये।

(२१) धमन ।

धान्तिफर-इमेटिक्स—Emetics

अपक्वपित्तश्लेष्माणौ बलादूर्ध्वं नयेत् यत् ।

धमनं तद्धि विज्ञेयं मदनस्य फलं यथा ॥

जो द्रव्य अपक्व केवल पित्त अथवा केवल कफको या दोनों को (अपक्व अन्नको और आमाशयमें विप हो तो (विपको भी) बलात्कारसे ऊपर उछालकर मुख द्वारा बाहर निकाल देवे, उस धमन कहते हैं। जैसे मैनफल ।

यद्यपि आचार्योंने कफ शोषनार्थं धमन तथा पित्तनिर्हरणार्थं विरेचन कहा है, तथापि आमाशयस्य विकृत उग्र अपक्व पित्तका निर्हरण धमनसे करना विशेष दिता यह माना गया है। इसी हेतुसे अम्लपित्त चिकित्साके प्रारम्भमें धमन द्वारा शोषन करनेकी आज्ञा-दी गई है।

इस सम्बन्धमें श्रीवाग्महाचार्यजी कहते हैं—

अपक्व धमनं दोषान् पच्यमानं विरेचनम् ।

निर्हेतुधमनस्याऽऽ पाकं न प्रति पातयेत् ॥

अपक्व दोषों को दूर करनेके लिये धमन और पच्यमान दोषोंके लिये विरेचन व्यवहृत होना है।

धमनोपग—चरक संहिताकारने धमन करनेमें सहायक औषधियाँ—शहद, मुलहठी, लाल क-नार, सफेद कचनार, कदम्ब, प्लवत, विम्बी (कन्दुरी), अणुपुष्पी, आक, आमार्ग आदि करी हैं।

चरक संहिता कथित धमन औषधियाँ—मैनफल, मुलहठी, नीम, देव भ्दासी, कडुवी तुर्क, पीपल, कुन्ने की छाल, कडुवी तुम्बी, छोटी इलायची, भिया तुर्क

इत्यादि श्रीपत्रियों आमाशयगत श्लेष्म विताधिकार उपस्थित होने पर देह को कष्ट न पहुँचे उस रीति से बचन कराती हैं।

विमान स्थानमें लिखि हुई श्रीपत्रियों—मदनफल, देवदाली, कड़वी तुम्बी, पीतपुष्पा कारावका, इन्द्रजौ, कड़वी तुम्ही इन सबके फल। इनमें मैनफल, देवदाली, कड़वी तुम्बी और कड़वी तुम्हीके पत्ते और फूल भी। अमलठास, इत्रक (मोठे इन्द्रजय), मैनफल, स्वातुकयटक (छोटे गांवरु), पाठा पाठल, गुञ्जा (मत्तान्तरमें कौआटोरी), मूला, सतौना, करंजवृक्ष, नीम, परवल कड़वा, करेला, गिलोय, सोमयज्ञक (सफेद खैर), विप्रक (सफेद परपटकी जड़), द्रोपि (छोटी कटेछी), सुहिसनेकी जड़, इनके कपायोंसे मुलाहठी (मत्तान्तरमें राहद), महुआ, सफेद कचनार, कजुवार (साल कचनार), नीप (कदम्ब), अलपैत, बिन्धी (कंदूरी), शण्णुष्पी, सदापुष्पी (लाल आक), मत्स्यक पुष्पी (श्रीपा-मूली, मत्तान्तरमें आपामाग) इनके कपायासे। छोटी इलायची, रेणुका, पिपयु, बकी इलायची, नेपाली घनिया, तगर नलद (जयामोसी), ठसीर, तालीसपत्र, लस, गोपी (सारिवा), इनके कपायोंसे। ईल, कापडेडु (ईलमेद), इन्डुवालिफा (ईलमेद), दम, पोटगल (नल), कालंकुत (कसीदी), इनके कपायोंसे। सुगना (चमेली), जाबित्रो इस्दी, दावइस्दी, श्वेत पुनर्नवा, महावहा (मापपर्वी), कुवसहा (मुद्गपर्वी), इनके कपायोंसे। शास्मली (सेमल), शास्मलक (रोहितक), भद्रपर्वी (गम्मारो या प्रतारखी), एलापर्वी (रास्ना), पौई शाक, उहालक (बनकोदा), घामन, स्तिरनी, ठपत्रिआ (ठ बरकानी-मुवाकानी), गोपी (सारिवा), गृंगाटिका (जीबन्ती), इनके कपायोंसे। पिप्पली, पिप्पलीमूल, चम्प, विप्रक, सोंठ, सरसों, गुबकी राव, वृष, धार, नमक, इनके हिम या अलोते। जो श्रीपत्रियाँ मिल सकें उनसे इन्डुवागुण्य सस्कार कर वर्ति, पूर्ण, अयलोह घृत, कपाय, मांसरस, यवागू, मूय, काम्बलिक (कांजी विशेष) तथा वृष रूपमें प्रयोग किये जानेवाले योग, मोदक अथवा अन्य प्रकारके प्रयोग तैवार कर रोगीका विधिपुष्क बचन देवें।

मदनफल आदि मुख्य बचन द्रव्योंको आरग्वध आदिके कपायसे मायना देकर या पाक करके वर्ति आदि प्रयोग बना लें।

इनके अतिरिक्त इत्तीशुयडी, कड़वी कड़वी, राई, पच, पाठा, नीलाधोया, गरम जल आदि श्रीपत्रियों से भी बचन होती है।

बान्धक श्रीपत्र सेवन करने पर कुछ समयके पश्चात् ग्लानि होने लगती है, मुखमण्डल रक्तहीन शरीर शीतल, मन्वेदसे भीगा हुआ, बचनकी गति निरलेज और चंचल, मुँहमेंसे लालास्राव, नासपेशियोंमें थिल्लता, हर्बलता और अत्यन्त व्याकुलता आदि लक्षण होकर फिर बचन होती है। उस समय नाबा, अनियमित

वृत्तन मुक्तमण्डल लाल हो जाना, मुख, कपाल और कण्ठ देशकी सभ शिराएँ शिथिल हो जाना, मस्तिष्कमें रक्तकी वृद्धि और भारोपन आदि लक्षण प्रतीत होते हैं।

पिर हार्दिक क्वापिका (Cardiac Sphincter) खुल जाती है और आमाशय प्रणलिका प्रवेश (Pyloric Vestibule) दृढ़ बन जाता है। पिर आमाशयमें रहे हुए द्रव्य उदरपेशियों और महा प्राचीय पेशीके समन्वयन आनुचन द्वारा बाहर आ जाते हैं। यदि पुनः पुनः घमन होती रहे, तो उदर गह्वरस्य सभ प्रन्थियाँ पर अधिक दबाव पड़ता है। परन्तु सभ प्रन्थियोंसे रक्तस्राव अधिक मात्रामें होता है और बाहर निकलता रहता है। एवं पित्ताशयका पिरा और अम्नाशयका अम्नेव रस भी निगत होने लगता है।

घमन प्रकार—१. स्थानिक २. सामाजिक।

जो स्थानिक कार्यकारी औपधियाँ हैं, वे प्रसनिफा, अन्ननलिका और आमाशय पर कार्यकर अर्थात् प्राणदा नाभियों के सिरे पर घूम उत्पन्न कराके घमन कराती हैं और सर्वाङ्गिक कार्यकारी औपधियोंकी मौलिक क्रिया सुपुष्पा (Medula) में अवस्थित घमन करने वाले वातनाडी केन्द्रके अधीन है। जब वातवाहनाडियाँ अथवा विविध स्थान—मस्तिष्क, नेत्र, नासिका, कण्ठ, अन्न-नलिका, कृष्ण, हृदय, आमाशय, अत्र, पित्ताशय, वृक्क, उदरपेशिका, गर्भाशय आदि पर औपध क्रिया होकर वातनाडियाँ द्वारा केन्द्रामिमुख प्रतिफलित होती है, तब केन्द्र स्थान उधेजित होता है। पिर घमन कराती हैं।

स्थानिक कार्यकारी—अप्रत्यक्ष या प्रतिफलित क्रिया द्वारा कार्यकारी)—विट्करी, नीलापोषा नमक, नालुनाक गरम पाँट, जंगली प्याज, बावा, अधिक परिमाणमें टण्डुल जलपान, मेनफल और राई आदि। इन औपधियोंकी क्रिया अल्पक्षय स्याती होती है। बहुधा आमाशय शून्य होनेपर क्रिया निवृत्त हो जाती है। इन स्थानिक कार्यकारी औपधियाँसे अधिक क्षीणता नहीं आती अतः व्याख्येयता पर उचित मात्रामें निर्भयतापूर्वक दी जा सकती है। जितना इन सभमें नमक मिश्रित नियाया जलपान विशेष सौम्य है। उकड़ू पैठाकर हो सके उतना अधिक परिमाणमें जलपान करनेसे तत्काल बिना प्रास कै हो जाती है।

सामाजिक कार्यकारी—(प्रत्यक्ष कार्यकारी) रक्त संचालनमें मिला होनेसे घमन केन्द्र उधेजित होनेपर कार्य करनेवाली औपधियाँ—रीठा, सत्यानार श्रीजका ठैल, हस्तिशुपडी, बच, मन्दास, अक-मूल-खकू, समाजू, अघ्रोमधार (एषा मोर्दाइन), डिबिटलिस आदि। इत प्रकारकी औपधियोंसे अधिक काल-पर्यन्त घमन, उबाक, चीन्हा अङ्गोंमें शिथिलता और रक्त संचालनमें मन्दता होती है। तथा लाला, मस्वेद और कफ (स्वासनलिका और आमाशयमेंसे श्लेष्म) का स्राव अधिक होता है।

धमन प्रयोग हेतु—

१ आम्लाशयमें अपचन शीघ्र होनेपर शुक्रद्रव्य, पित्त, श्लेष्मा, सेन्द्रियविष, या इतर विष हो, उन सबको निकाल आम्लाशयका शून्य करना ।

२ अन्न-नलिका या असासनलिकामें बाह्य पदार्थका प्रवेश हो जानेपर उसे बाहर निकालना ।

३ धमनीकी पुष्टि और गतिका हास कराना तथा मांसपेशियोंको शिथिल कराना ।

४ कष्ट और वृद्ध श्वासनलिकामें श्लेष्मा संचित हो या कृत्रिम त्वचा बचमान हो, तो अति सूक्ष्म मात्रामें उस बाहर निकालना ।

५. पित्ताशयमेंसे पित्तामरी और पित्तका निःसरण करना ।

६ रक्त रक्कर आनेपासे विषम ज्वर-नाशक श्रीपथिके गुणमें वृद्धि करना ।

७ विरेचन-अन्य शीघ्र बन्ध न होनेपर उस बन्ध करना ।

८ आम्यास्वरिक रक्तसाव होनेपर रक्त संग्रहका निवारण करना ।

• प्रसव वेदना होनेपर गर्भाशय प्रीवाकी कठोरताका दूरीकरण ।

१० स्वेदोत्पत्ति कर रक्तमें लान विषको बाहर निकाल देना ।

यदि आम्लाशयस्थ आहार द्रव्य पचन न हुआ हो वह परिवर्तित होकर अम्ल और उग्र रस युक्त हो गया हो, फिर मस्तिष्क आदि इतर यंत्रोंमें वेदना उत्पन्न करता हो, तो उसे धमनकारक श्रीपथि देकर सत्वर बाहर निकाल देना चाहिये ।

यदि आम्लाशय शूल और अपचन-जनित शिरदद हो रहा हो, उपाक आती हो तथा व्याकुलता प्रवीत होती हो तो योषा नमक मिखा हुआ निवासा जल लगभग १ २ पाँच या अधिक परिमाथमें पिशाकर धमन कर देना चाहिये । यदि जल कम पिशाया जाय, तो आम्लाशयके उत्तेजक पदार्थ द्रवीभूत होकर ज्ञान पहुँच जाता है परन्तु धमन नहीं होती ।

मेवित विषको बाहर निकालनेके लिये नीलायथा, राई आदि श्रीपथिको जलमें मिलाकर पिशाया जाता है । (केवल अधीमके विषमें घामक श्रीपथि नहीं दी जाती ; किन्तु लम्बक पत्र द्वारा विषको बाहर निकाल लिया जाता है) अनेक बार सर्पविष आदिमें आम्लाशयका शून्य करनेके लिए रीटा, नीलायोषा, पीनेडी तेज समालू आदि श्रीपथियों अत्यधिक मात्रामें प्रयोजित होती हैं ।

सूक्ष्म पित्तामरी-जनित शूलमें पित्तमात्र अधिक कर पित्तनलिकामेंसे अमरीको निकाल देनेके लिये घामक श्रीपथका सेवन कराना जाता है ; परन्तु साय-साय धमन कालमें उदरस्थ मांसपेशियोंको और बहुरूपी दवाते रहना चाहिये । इनको दवानेसे पित्तसावमें वृद्धि होकर अधमरी और श्लेष्मा-जनित पित्त-मार्गावरोध दूर हो जाता है ।

पित्त क्षर, अम्लपित्त आदि रोगोंमें वमन करनेपर क्षरोत्पादक विष, दूषित पित्त और हानिकर द्रव्य बाहर निकल जाता है।

कण्ठरोहिणी (Diphtheria) और स्वर-यन्त्रका आक्षेप-गलीष (Croup) इन रोगोंमें अधिक श्लेष्म साव होकर स्वाभावरोध होनेपर वामक औषधिका सेवन कराया जाता है। स्वरयन्त्रकी विकृतिमें नीलायोषा फिट्करी आदि तथा कण्ठरोहिणीमें मैनफल, हस्तिशुषि आदिका उपयोग होता है (कण्ठमें परण्ड काकलीका दूष भी लगाया जाता है)।

सपत्रिप, पागल कुत्ता आदि णीषोंका विष और जीर्ण उपद्रवयुक्त उपदंश न्याधियोंमें नीलायाषा, रीठा, सत्यानाशीका विल, पीनेकी तमाप् आदि औषधियाँ उपकार दर्शाती हैं।

सूचना—१ हृदय रोग, शिरोरोग, संन्यासके वशावर्ती, भ्रमनी विस्तार या धमनीकी शीतारथी विकृति, तथा कुम्भक, आमाराय और गर्भशय आदिसे रक्तसावके वशावर्ती आमाराय प्रदाह, अन्त्र-प्रदाह, उदर्याकना प्रदाह, पूष गर्भावस्था और अति दुर्बल स्फियोंको वामक औषधि नहीं देनी चाहिये।

२ यदि अन्त्रावतरण और गमाशय निर्गमन बालोंको वामक औषधि देनी हो, ता अति सम्हालपूर्वक देनी चाहिये।

३ सर्गा स्त्रीको गमपात प्रवणता हो, तो वमनकारक औषधि नहीं देनी चाहिये।

४ उष्ण जलका सेवन करने और कण्ठप्रदेशमें अँगुली डालनेपर धान्तिकर औषधिका क्रिया होनेमें सहायता मिलती है।

५ शीतलता और अक्षीमका सेवन वमन होनेमें प्रतिबन्धक है।

६ वाह्यावस्थामें वमनकारक औषधिसे अधिक क्लेश नहीं होता। औषधि सरलतापूर्वक सहन हो जाती है परन्तु सौम्य औषधि देनी चाहिये।

७ विषप्रकोपमें नीलायोषा उत्तम औषधि है। इसकी क्रिया सत्वर होती है तथा अधिक ग्लानि और दुर्बलता नहीं आती। इस तरह गर्दसे भी ग्लानि कम होती है परन्तु राईका कार्य सत्वर प्रकाशित नहीं होता।

८ श्लेष्म पित्तको निकालनेके लिये मैनफल नियम और हितकर औषधि मानो गई है, तथा आमाराय और अन्त्रमें अपचन जनित आमके संशोधनार्थ खच बल श्रेष्ठ है।

९ वमनकारक औषधि सेवन करनेपर आमारायकी धारण शक्ति कम हो जाती है अत धार-धार वामक औषधिका सेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा अजीर्ण रोग उपस्थित होता है।

१० यदि वमन अधिक हो तो उदर पर राक्षा पत्रस्तर लगाना चाहिए, अथवा अफीमका सेवन करना चाहिये ।

वामक औषधि सेवनमें उपद्रव वमन करनेवाली औषधियोंके प्रयोगमें गर्भपात, अन्त्रवृद्धि, अ-प्राणवरण, संन्यास, रक्तोत्सव, श्वासावरोध, गर्भाशय निर्गमन, उर प्रदेशकी मांसपेशियोंका विदारण आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं, किन्तु सब उपद्रव अति विरल होते हैं ।

विकृत कफ-पित्तको निम्नलनेके लिये वमन देनेमें आसुर्वेदने विधि, अधिकारी, फल, वमनके पश्चात् कर्म, अवियोगमें प्रतिकार वमनक अनधिकारी इन सबका विचार किया है । इन सबको मलोमोक्षि जानकर छर्दि-कारक औषधि देनी चाहिये । इसका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप" प्रथम खण्ड पृष्ठ ५६ से ६७ तक देखें ।

(२२) छर्दि-निग्रहण ।

वान्तिहर-वमन निवारक-घण्टिहमेटिक्स ।

(Antiemetics)

यो द्रव्य है और उबाकको बन्द करे तथा कारणभूत दोषको दूर करे, उसे छर्दि-निग्रहण संज्ञा दी है ।

छर्दि निग्रहणार्थ—आमुनके पान, आमके पान, बिजौरा, लड़े बेर, अनार गाने, जौ, सांठी चावल, सस, गोपीचन्दन और लाज्य (धानका छावा) ये १० औषधियाँ चरक संहितामें लिखी हैं ।

सुभूत संहितामें आरव्यवादि, पटोलादि तथा शुद्ध्यादि गणको वमन-निवारक कहा है । इनमेंसे आरव्यवादिका वर्णन नं० १७ कण्डूधनमें तथा रोप दोनोंका नं० १० अरघ्यमें वर्णन किया जायगा ।

शेष वान्तिहर औषधियाँ—संवय मोंसम्बी, अंगुर, आमला, धनिया, सौंफ, फिन्करी जीण, नागकेसर, इलायची केला, नमरमोया, पित्तशपका, पत्रकाष्ठ, पीपल-शुद्धकी राखका बल, रक्तचन्दन, लोहमान, गिलोय, बर्ध, अदरक, दालचीनी, खैर, मयूरशिला मसम, शुक्ति मसम, बरगिका मसम, राज्यामर्च पिष्टी, हुसली, दरक, शठी, वंशलोचन, पटोलपत्र, कुन्की, मूर्धा, पाठा और मूहु विरेचन आदि ।

डाक्टरी मतानुसार वमन-निवारक औषधियोंके दो प्रकार हैं । १ अमाशयके जोमसे उत्पन्न वमनको शान्त करनेवाली औषधियाँ, उनको स्पानिक या प्रत्यक्ष वान्तिहर (Direct antiemetics) संज्ञा दी है ।

२ सुपुष्पास्य वमन केन्द्रपर कार्यकारी औषधियाँ, उनको परम्परगत कार्यकारी कहा है ।

जब यमन केन्द्र उद्वेगित होकर यमन काने लगता है, तब सत्वर लाम नहीं पहुँच सकता। उदाहरण के लिये परिवर्तित यमन (Cyclic vomiting) समुद्र पर्यटनजन्य विकृति (Sea sickness), सर्माकी यमन, पित्तनलिका या गभीनी, (Ureter) में अस्मरीका फंस जाना और विविध विष या कीटाणुविपज प्रभावसे यमन केन्द्र उद्वेगित होता है, यह यमन सरलतासे निवृत्त नहीं होती।

स्थानिक यमननिवारक—बर्फ, शराब, अफीम, मौक्तिक, शुक्ति, प्रवाल, राजावर्च, फिट्फरी, स्वल्पमात्रमें सोमल, लोबान, शठी, इलायची, व श्लौचन, नागरमोया चाँगेरी, बिबीरा, मधुरअम्ल रसयुक्तफल, जीरा, मुनका आदि सारक औषधियाँ, घानका लावा, मिभी मिला चूनेका जल आदि।

स्थानिक उपचारमें बर्फ उतूछ औषधि है। दुर्दमन यमनमें बर्फ मिला घूष या इतर पेय पदार्थ पीने और बर्फके टुकड़ोंको मुँहमें रखकर चूसते रहनेसे यमनकी निवृत्ति हो जाती है।

पीपल (अश्वत्थ) वृक्षकी छालकी रासको १६ गुने जलमें मिगोकर नितरा हुआ जल योका-योका पिलाते रहनेसे या शठीका सेवन करनेसे भी तत्काल गुण प्रतीत होता है।

राजयक्षा रागीकी यमनमें गोपीचन्दन और फिट्फरी तथा सुरापानजनित यमनमें राजावर्च लामदायक है।

यमन केन्द्र और वातवहानादियोंपर कार्यकारी औषधियाँ—अफीम रौप्यमस, गिलोय सत्व, मिभी मिला आवलेका रस, स्वल्प मात्रामें सुरा सत्व (Alcohol), राईका प्लास्टर आदि।

ये औषधियाँ आमाशयस्य वातनाशिकाँ और यमन उत्पादक वातनाकी केन्द्रकी उग्रताका ह्रास करा यमनका निवारण करती हैं। इनके अतिरिक्त विविध यन्त्रोंकी उग्रताका भी शमन कराती हैं।

आमाशयमें उग्र तरल पदार्थ होनेपर अधिक परिमाणमें निशया जल पिला, के करा देनेसे उष्ण और वेदनाकी निवृत्ति हो जाती है। फिर प्रवाल पिष्टी, शुक्ति मस्र धराटिका मस्र, सोडा या इतर क्षार आदि औषधि देनेसे स्थिर लाम पहुँच जाता है।

आमाशयमें वेदना होती हो, तो आमाशय अवसादक रूपसे अफीम या सोमल हितकर हैं।

आमाशयकी श्लैष्मिक कक्षामें तीव्र उग्रता हो जानेसे छर्दि होती हो, तो बर्फ, शुक्ति मस्र, गिलोय, सत्व आदि तथा चिरकारी मन्द उग्रता और रक्तसमूह अन्य यमन होनेपर मधुर अम्ल फलाका रस; आवला, लोबान, फिट्फरी आदि उपकारक हैं।

अप्रायवर्ण, पिच्छाशय शूल, हृत्कण्ठ, अन्तर्विद्रधि आदि विकारोंमें बदन रूप उपद्रव होनासे मूल कारणको दूर करना चाहिये।

सर्गमार्के बमनमें फलोंके रस और आमाराय अवसादके औषधियाँ भी आती हैं।

इन बमन-निवारक औषधियोंके विशेष विवेचन छुट्टि चिकित्सामें 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया है।

मोफिमाके प्रकोप या आमारायके मुद्रिक्त (Pyloric) द्वारके आक्षेपजन्य बमनपर सूची बूटी सत्व (Atropine) का प्रयोग उपकारक है।

डाक्टरीमें बमन केन्द्रपर शामक अक्षर पहुँचानेके लिये निद्रामद औषधियाँ—ब्रोमाइड और क्लोरल हाइड्रेटका प्रयोग बड़ी मात्रामें करते हैं। कमी अमिल नाइट्रिट और नाइट्रोग्लिसिरीन भी उपयोगी होती हैं।

आमाराय अवसादके हाइड्रोस्येनिक एसिड, फोस्फिन, टिन्चर आयोडीनकी कुछ बूँदें, विम्वय लवण आदिका उपयोग भी किया जाता है।

(२१) वृष्या-निग्रहण ।

शुपाशामक-पिपासाहर-रेफ्रिजरन्ट्स ।

(Refrigerants)

जो औषधियाँ प्यासको रोकें तथा उसके कारण रूप दायको दूर करें, उनको वृष्या-निग्रहण कहते हैं।

वृष्या-निग्रहण वर्ग—सोठ, बमसा, नागरमोषा, पिचपासका, रक्त (और श्वेत) चन्दन, चिरापता, गिलोय, नेत्रपाला, घनिना और पटोल, ये १० औषधियाँ वृष्या शामक हैं।

सुमुत्त संदितामें सारिबादि, परुषाकादि, उत्पलादि, गुह्य्यादि और त्र्य्यादि गणको वृष्या-शामक लिखा है। इन से सारिबादि, परुषाकादि तथा उत्पलादि, इन गणोंका वर्णन नं० ५१ दाह-शामक वर्गमें, त्र्य्यादि गणका वर्णन नं० ३९ विपशामक वर्गमें तथा गुह्य्यादि गणका वर्णन अररपन नं० १० में किया जायगा।

और वृष्याशामक औषधियाँ—बंशलोचन, आषला, लौंग, बड़ा इलायची, जौ, घानक शाका, गन्ना, मोठा दही, नीबूका रस, सन्तरा, मोसम्बी, पकी इमली, मधुराम्बल, अनारदाने, खंगूर, मुलहठी, असीस, इन्सपगोल आदि।

डाक्टरी मतानुसार २ विभाग—१ स्थानिक, २ सार्वांगिक। मुत्र, वायु, कृष्य आदि शुष्क होनेपर पिपासाका बोध हो, उसे स्थानिक; और रक्तमें द्रवस्थाय पदार्थ (विशेषतः चार) के परिमाणकी वृद्धि होने या रक्तमें जलका परिमाण म्यून होनेपर पिपासाकी उत्पत्ति होवे, उसे सार्वांगिक पिपासा कहते हैं।

स्थानिक पिपासानिवारक औषधियाँ जलपान, अत्यधिक जल मिला हुआ उद्भिद् अम्ल, सुपारी, लौंग, घनियाँ, इलायची, मधुराम्ल पत्थोंका रस, चावल, आदिक्र मुखमें धारण कर रस निगलना ।

सार्वाङ्गिक पिपासानिवारक औषधियाँ—जलपान, धशलोचन, अफीम पिचपापका, भमासा, चिरायता, कड़ुबी नाई, गुडमार, वेलपत्र आदि । इनमें अफीम वातवहा नाबियोंके पिपासोत्पादक केन्द्रकी उग्रताका हास करकर प्यासका दमन करती है ।

तृपानिदान और तृपाचिकित्सा सम्बन्धी विशेष विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है ।

(२४) स्वेदन ।

स्वेदजनक धर्मकारक-हायाफोरेटिक्स-स्यूडो-रिफिक्स ।

(Diaboretic—Sudorifics) ।

जो द्रव्य स्वप्न (अर्गाका जकड़ना), मारीम्न और शीतको बूर करे तथा पसीना ला देवे, उसे स्वेदन कहते हैं । स्वेदन द्रव्योंमें उष्ण, तीक्ष्ण, सर (या स्थिर) लिम्ब (या रुच), सूक्ष्म, द्रव्य और गुण गुण प्रायः होते हैं ।

ईश्वर रक्षित इन शरीरमें विविध यंत्रोंका व्यापार नित्य निरन्तर होता रहता है । साय-साय आहार आदिसे पोषक सत्वका सारम्यकरण तथा विहृत हुए और हानिकर तत्वका प्रयकरण भी यथा नियम होता रहता है ।

विहृत तत्त्वरूप मलमें कुछ भाग स्थूल और कुछ सूक्ष्म है । जो भाग स्थूल है, वह विशेषतः बृहदन्त्रमें आकर गुदा द्वारसे बाहर निकलता है ; तथा जो सूक्ष्म अणु है वह रक्तमें आकर फिर मूत्रके साथ और प्रस्वेद रूपसे बहिर्गमन करता रहता है । यदि इस शारीरिक विप निकलनेकी क्रियामें व्यानात हो जाय, तो स्वास्थ्यको हानि पहुँचती है । इस हेतुसे सप्त क्रिया सतत होती रहती है । इनमें प्रस्वेद लानेकी क्रिया भी दिन और रात, शीतकाल और उष्णकाल, में सयदा होती रहती है । शीत कालमें प्रतिक्रिया होकर शरीरिक उत्पापकी वृद्धि होती है फिर रक्षाभिसरण क्रिया उद्येधित होकर प्रस्वेद निकलनेमें सहायता पहुँचाती है । उष्णकालमें शरीरिक उत्पाप न्यून हो जाता है फिर धर्मस्य शिराएँ और धर्मियों विपिल होकर स्वेद रूप विपको निकाल देती है । शीतकालमें धर्मको मात्रा न्यून होनेसे बाहर निकलनेका बोध नहीं होता और उष्ण कालमें स्वेद अधिक हानेसे स्पष्टतया जाना जाता है ।

यदि किसी कारणवश आभक शीत लग जाय, तो शारीरिक उत्पाप बहुत कम हो जाता है रक्षाभिसरण क्रिया मंद हो जाती है स्वेदायरोध हो जाता है एवं पचन क्रिया विहृत होकर आमवृद्धि भी हो जाती है । फिर स्वेद लानेकी क्रिया

यथाचित नहीं हो सकती। इस तरह स्वेदाबरोध होनेपर औषधि सेवन वा इतर चिकित्सा करके इस क्रियाको नियमित बनानेका प्रयत्न किया जाता है। अन्वया अनेक व्याधियोंकी उत्पत्ति हो जाती है। इसके अतिरिक्त अन्वित आहार-विहारमें भूल होनेपर रक्तमें विष वृद्धि हो जाती है, तब रक्तमेंसे विषको बाहर निकालने वा मूत्रपिण्डोंकी विकृतिमें मूत्रपिण्डोंको शान्ति देनेके लिये भी स्वेद लानेकी क्रिया उचित करवाई जाती है।

यह स्वेद चर्ममें रही हुई धर्मग्रन्थियों द्वारा बाहर आता है। त्वचामें सब अत्यधिक संख्यामें धर्मग्रन्थियाँ रहती हैं। जिस तरह पृष्ठमें रहनेवाले अनेक कोप सर्वथा त्याज्य पदार्थको पृथक् कर मूत्र द्वारा बाहर निकालते रहते हैं उसी तरह त्वचामें रहनेवाले अनेक सावक कोप रक्तमेंसे स्वेद द्वारा विषका बाहर निकालते रहते हैं। ये सावक कोप साव कल्पनेवासी यातयहा नाभियों (Secretory Nerves) के अधीन हैं और वातवाहिनियोंका केन्द्रस्थान मुष्णामें अवस्थित है।

स्वेदस्राव अतना अधिक होता है, ठठनी ही जल, नमक नभजनविष्टि मलके परिस्वांगमें सहायता मिलती है। एवं यह जलन से वाष्प बनाकर शारीरिक उष्णताके नियमित रखता है, २४ घण्टमें विशेष अनुकूल परिस्थिति होने पर ५०० से ७०० सी० सी० (लगभग १७ से २४ औंस) अथवा इससे भी अधिक जल स्वेद मार्गसे बाहर निकल जाता है।

स्वेदकी प्रतिफलित क्रिया अम्ल होती है, कारण, घसा ग्रन्थियोंमें से घसाम्लका स्राव मिल जाता है। यह स्वेद वातनाभियों और रक्तवाहक प्रभाव से मूत्रमें से वा सार्वाङ्गिक अमिसरणमें से पृथक् हो जाता है।

यदि त्वचाकी अमिसरण क्रिया विस्तृत न होती हो और स्वेदसाव प्रचुर हो रहा हो, तो यह स्वेद शीतल वा मृत होता है। रक्तमिसरणकी आह्वति प्रचुर जलपान करने पर बेसी होती है, बेसी अन्तर स्थिति होने पर ही प्रचुर स्वेदसाव हो सकता है।

धर्मग्रन्थियोंका स्वतन्त्र (इन्डिपेण्डेन्ट) नाडीके तन्तु मिलते हैं, जो केन्द्रीय नाडी संस्थाके नियन्त्रणमें हैं। यदि देहगत आपत्ते क्रिया विज्ञान दृष्टिसे (Pharmacologically) विचार किया जाय, तो परिस्वतन्त्रनाभियों (Parasympathetic nerves) द्वारा स्वतन्त्र नाभियोंको शक्ति मिलती है अर्थात् नाभियोंके तन्तु द्वारा लबयोत्पन्न अम्ल (Acetylcholine) का प्रतिपादन होता है।

एड्रेनलिन, जो स्वतन्त्र नाभियोंको उत्तेजित करता है, यह स्वेदसाव पर कुछ भी असर नहीं पहुँचाता।

स्वेदोपग धर्म—स्वेदन द्रव्योंके साथ मिलाने पर उनकी शक्ति वृद्धि करानेवाले द्रव्य-सुद्विजना, एररुड, आक, श्वेत पुनर्नभा, रक्त पुनर्नभा, जी, तिल, सुलभी, ठण्ड और नेद, ये १० औषधियाँ।

स्वेदजनक औषधियाँ—प्रवाल मस, कलमी सोरा, नौसादर, जवाखार, सप्तपत्र, सहदेवोमूल, कुलयी, आक की जड़, मुहियने की छाल, द्रोणपुष्पी, एरंड की जड़, बच्छनाग, फिट्फरी, अनन्तमूल, कपूर, बनफसा, अंकोल, यत्र, देवदारु, श्वेत पुनर्नवा, रक्त पुनर्नवा, नागरमोया, अतीस, मालकांगनी, कुन्फो, मरुआ, सन्धा, तुलसी, रोहिणिस, सोठ, दालचीनी, कुसुम्भ, विशल्यकरणी, चाय, गरम जल, सौंफ, शित्तलमिर्च, गन्धक, तार्पिन तैल बेर, उकद, जी, तिल, कुलयी, आदि औषधियों में प्रस्वेदवृद्धि करानेका गुण है। इनके अतिरिक्त परिभ्रम मागगमन, व्यायाम, सूर्यके ताप और अग्निसेवन आदि भी वर्मवृद्धि करते हैं।

इन औषधियोंका प्रयोग तीव्र प्रतिश्याय, च्चर, जलोदर, चिरकारी प्रवाहिका, अतिघार और कतिपय जातिके चर्मरोगोंमें होता है। इनके अतिरिक्त जब मूत्रके साथ लसीका (शुभ्रप्रथिन एल्ब्युमिन) जाती हो, वृक्कप्रवाह की प्राप्ति हुई हो, या वृक्कमें अरमरी आ जानेसे या इतर हेतुसे उठ पर शल चिकित्साकी हो, तब वृक्कोको शान्ति पहुँचाने (वृक्क क्रिया कम कराने) के लिये भी वर्मकारक औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

गरम जल, चाय, कपूर, सोठ, दालचीनी, मुराबीर्य आदि अनेक औषधियोंमें उष्णजक वर्मकारक गुण रहता है और कतिपय औषधियोंमें श्रवसादक गुण न्यूनाधिक अंशमें रहता है। शारीरिक उष्ण कम करने और चर्मकी क्रियामें वृद्धि करनेके लिये श्रवसादक और स्वेदल गुणयुक्त बच्छनाग आदि विशेष द्रवावह मानी जाती हैं।

विभिन्न जीव चर्मरोगोंमें चिरकारी पिप्पिका अदृश्य होने पर आम्ब्यान्तरिक कन्त्रोंमें प्रदाह हो जानेकी संभावना है। ऐसी स्थितिमें चर्मके रक्तसंचालनकी वृद्धि करानेके उद्देश्यसे स्वेदल औषधि व्यवहारमें आई जाती है।

जलोदर रोगमें मूत्रल आप्तिके साथ स्वेदल औषधि देनेसे उदर्या-कलामेंसे जलका अधिक शोषण हो जाता है।

आयुर्वेदमें अनेक रोगोंमें बाष्प द्वारा प्रस्वेद लानेका रिवाज है। परन्तु यह स्वेद वातप्रकृतिके लिये स्निग्ध, कफ प्रकृतिके लिये रूच और वात-विमिश्रित प्रकृति-वालांको रूच-स्निग्ध दिया जाता है।

स्वेदन क्रियामें सार्वाङ्गिक और स्थानिक ऐसे दो भेद हैं। रोग भेद और प्रकृति भेदसे सार्वाङ्गिक स्वेदमें औषधि और क्रियामें भेद किया जाता है। स्थानिक स्वेदन (सेक) क्रियामें भी आमाशय, अत्र, हृदय आदि स्थानभेद से अन्तर हो जाता है।

इस स्वेदन क्रियाके अधिकारी, विधि, फल, आन्तिका विस्तृत वर्णन "चिकित्सा-सत्त्व प्रदीप" के प्रथम खण्ड पृष्ठ ४७ से ५६ तक में किया गया है।

स्वेदवर्द्धक औपचियों की क्रिया—

१ केन्द्रको मत्स्य उच्चोत्तेजित करनेवाली औपचिया—कपूर, अम्लप्रधान नौसादर (एमोनिया एसिडेट) आदि, यह शिराओंके रक्तकी उष्णता वृद्धि द्वारा उत्तेजित होता है ।

२ नाडीतन्तुओंके सिरे द्वारा उत्तेजित करनेवाली—पाइरोकार्बिन, फाइसोलिम्माइन, एन्टिडिलकोलिन आदि ।

३ स्वचागत रक्तवाहिनियों के प्रसारण द्वारा—सूर्यका ताप, उष्णता, उष्ण स्वेद, अर्कशा वायु, गरम पेय, स्वचागत रक्तवाहिनी प्रसारक विशेष औपचियां मर्फाई, अफीम, (डावर्स पाउडर अफीम, नीलायोया, इन्फान्सु आना मिमण), स्कॉरल, हाइड्रेट, सेलिसिलेट आदि ।

४ केन्द्र की प्रतिक्रियित उत्तेजना—कल्प आमाशय की उत्तेजना द्वारा जैसे गले पर गुलगुली करने और वमन औपच-अर्कमूलत्वक, सुरमा, इन्फान्सुआना आदिका सेवन करने पर प्रतिक्रियित क्रिया द्वारा स्वेद लाता है । इस तरह हृत्प्राय आने पर और मज उद्वेग आदि मानस उत्तेजना द्वारा भी स्वेद आ जाता है ।

इनके अतिरिक्त कृष्णनाग प्रोणपुष्पी, सहदेवी, सारिबा, शीतल मिर्च और अनेक मृत्तल औपचियां भी स्वेद लाती हैं परन्तु उनकी क्रिया किस नियमानुसार होती है, यह निर्णीत नहीं हुआ है ।

दुष्प्रणवस्थामें प्रस्वेद आता है, यह चर्मस्थ शिराएँ शिथिल होने पर आता है । एवं जब वमन होने लगती है, तभी प्रस्वेद आ जाता है । वमन भी दुर्बलता और शिथिलता लाता है । इस हेतुसे वमनकारक और अवसादक औपचियोंमें वमकारक गुण अभिव्यक्त है ।

चर्मस्थ शिराएँ अधिक परिमाणमें रक्त संचालन करके स्वेद लाती हैं । परिभ्रम, व्यायाम उष्ण प्लासे स्नान, गात्रमर्दन, उष्ण जलपान आदि । इनके अतिरिक्त स्वेदन क्रिया आदिस् भी चर्मस्थ शिराओंमें रक्तसंचालन अधिक वेगपूर्वक होने लगता है । कठिण औपचियां और क्रिया अनेक प्रकारसे वर्ण लाती हैं, एवं उत्तेजना, रक्ता मिश्रण क्रिया वृद्धि आदि गुण भी दर्शाती हैं ।

वमकारक औपचियोंके सेवनमें उद्देरय—

१ स्वचाकी उष्णता और शुष्कताका निवारण ।

२. विशेष प्रकारके विषप्रकोप अथवा सेन्द्रिय विषय (चयापचयमें उत्पन्न Metabolic Products) आपत्तिकर—प्रत्येक अवस्था प्रशाहको नष्ट करना ।

३ सरयामें उष्णता उरलका प्राप्त करना । जैसे जलोद्द और शोषमें मल त्याग करनेवाले अवयवको सहायता पहुँचानेके लिये तथा लघीअ-मेहमें वृद्धोको ।

अतिसार होनेपर अत्रको तथा आम-संग्रहजन्य घर्मरोध और शीतके निवारणार्थ पचन-संस्था और उष्णता उत्पादक केन्द्रको सहायता पहुँचानेके लिये ।

४ जय वृष कर्मन्युत होते हैं (जैसे वृष संन्यास Uraemia में) तत्र त्याज्य मलका परित्याग करनेके लिये । इस कार्यके लिये पित्तोक्षार्पण भेद्य है ।

५ अनेक चिरकारी त्वचा रोगोंमें त्वचागत रक्ताभिसरणको उन्नत करनेके लिये । उदा० फिटिमिकुड—(Psoriasis) में गरमजल या टर्किशबाथ । एवं त्रिफला म्वायकी घाष्य ।

सूचना—मूत्रल औषधि, विरेचन और शीतल प्रयोग करने पर स्वेदल क्रियामें प्रतिबन्ध होता है ।

गरम जल, गरम वस्त्र धारण और उष्ण वायुके सेवनसे स्वेदल क्रियामें वृद्धि होती है ।

(०५) स्वेदावरोधक ।

स्वेदापनयन—घर्मरोधक—अन्हाइड्रोटिक्स — एन्टिशाईड्रोटिक्स ।

(Anhidrotics-Antihidrotics) ।

अति प्रस्वेद निःसरणका हास करानेवाली औषधियाँ—जसद मस्म, कुचिला, स्वरूप माषामें किनाइन, पत्रकाष्ठ, कुलपी, लोष, वंशलोचन, सुरासानी अज्वायन, धतूरा, सूची भूटी, ब्रह्मदण्डी और अम्ल-कषाय गुणयुक्त औषधियाँ आदि ।

राज्यक्ष्मा रोगमें निशाधर्म (रात्रिको अति पसीना आना) एवं श्वर आदिमें अत्यन्त प्रस्वेद और निर्बलता आनेपर उसका रोध करनेके लिये जसद मस्म, फिटकरी, आदि औषधियोंको प्रयोगमें लाया जाता है । डाक्टरीमें किनाइन, जसद घटित औषधि सूचीभूटीका सत्व (Atropine) आदि ब्ययहृत होते हैं ।

व्याधत्सामें घर्मरोधक औषधियोंकी मालिश भी की जाती है । इसका सर्वत्र चिकित्सातत्त्वप्रदाय प्रथमसंख्ये सन्निपात चिकित्सामें किया गया है ।

डाक्टरी मतानुसार स्वेदावरोधक क्रिया प्रकारः—

(१) घर्मोत्पादक घातनाकी केन्द्रकी उग्रताका शमन या उग्रताके कारणका निवारण । इस उपाय द्वारा रक्तकी वैरिक अवस्थाका हास होगा है । यथा क्षीणता लानेवाली व्याधियोंमें शीतल स्वेद आता है, वह कुचिला, लोहमस्म, द्राक्षारिष्ठ, शराव, नौसाहर, अन्नक भस्म, रससिन्दूर, विशुद्ध वायुके सेवन, पीठिक भोजन आदिते निवृत्त होता है ।

(२) केन्द्राभिमुखी सावक घातवाहिनियोंकी क्रिया शमन द्वारा । यथा राज्यक्षमामें निशाधर्मका हास करनेके लिये गन्धक-द्रावके साथ अफीम दिया जाता है । एवं जसद मस्म प्रयोजित होता है ।

(९) वातनाशियोंके चर्मस्य अंतर्भागका अवसादन द्वारा । इस क्रियाके लिये सुरासानी अम्लवायु, सूजीमूनी, घट्ट आदि हितकारक हैं । एय गन्धक-द्रवके अंतर्में कपडा भिगोकर शरीरको पीछे लेनेसे या ससका लेप करनेपर चर्मस्य रक्त प्रणालिमा संकुचित होती है । इस हेतुसे स्वेदवरोध होता है ।

(४) केन्द्रामिमुखी सब वातनाशिनियोंकी क्रिया हास करानेसे प्रस्येद कम हो जाता है । यथा—स्थानिक शैत्यप्रयोग, पला तथा शीतल वायुसेवन आदिसे ।

मेटेरिया मेडिकाकार डाक्टर बोपने निम्नानुसार २ विभाग दर्शाये हैं ।

१ खाद्यक नाशियों (परिस्वतन्न नाशिया) के सिरेका अवसादन करके स्वैशयन मन करानेवाली । इस प्रकारमें सूजीभूतीतत्य (Atropine) का अंतर अत्यन्त प्रबल है ।

संशयाही नाशियोंकी सप्रताके हास द्वारा, सदाहरणार्थ शीतल कपड़ेकी स्त्री धोपना, शीतल फलवायु आदि । अम्ल, किनाइन, कुचिला आदि अनेक औषधियां व्यवहृत होती हैं किन्तु इनकी क्रिया किस नियमानुसार होती है, यह निश्चित नहीं हुआ ।

(२६) रसायन ।

अल्टरेटिक्स—Alteratives.

दीर्घमायु सृष्टिं मेघामारोग्यं उरुयं षय ।

प्रमावर्णस्वरौदार्यं वेहेन्द्रियवर्द्ध परम् ॥

वाक्पिबद्धिं प्रख्यतिं कान्तिं क्षमते ना रसायनात् ।

क्षामोपायो हि शास्तानां रसादीनां रसायनम् ॥

जिस द्रव्यके सेवनसे दीर्घ आयु, स्मरणशक्ति, मेधा (धारण और विवेकशक्ति वृद्धि), आरोग्य, ताकत, सुदृढ़ता, प्रमा, वर्ण और स्वर, तीनों की सुन्दरता, देह और इन्द्रियोंके बलकी वृद्धि, प्रमावर्धनी वाणी, बनठामें सम्मान और कान्तिकी प्राप्ति हो, उसे रसायन कहते हैं । रसायन सेवनसे रक्त, रक्त आदि अन्न भोज बनती है तथा रस, बौर्य, विपाक आदि, जो जीवको सुदृढ़ रखनेवाले हैं, उनकी विशेष प्राप्ति होती है ।

संक्षेपमें रसायन स्वस्थ मनुष्यके बलको बढ़ानेवाला, रक्त रक्त आदिकी नियतता कन्व रोगोंको तथा बुद्धावस्थाकी निपलताको दूर करनेवाला है । शाहपरचाय ने रसायनको पराम्याभिनाशन कहा है ।

यद्य रसायनं गण्य—उच्छ्वासस्या की स्वापना करनेवाली औषधियां—गिलोय, इन्ड, आंयशा मुक्ता, रासा, रवेत अपरायिता, जीबन्ती, शतावरी, मण्डूकपर्णी, शालपर्णी और पुनर्नवा ये १० औषधियां हैं ।

अन्य औपधियाँ—सुवर्ण, अन्नक, लोह, पारद, हिंगुल, सुरमा, सोमल, वंग, यशद, नाग (शोरा), हरताल, मनःशिला, हीरा, माणिक्य, पन्ना, पुसरज, यैत्रान्त मोती प्रवाल, गूगल, अष्टवर्ग, जीवनीयगण की औपधियाँ, असगन्ध, शालय मिथी, विचारा िल्लाज्वात, रुद्रवन्ती आदि ।

इन औपधियोंका सेवन आयुर्वेद कथित मात्रामें करते रहनेसे किन्ही मात्र विशेष पर सत्काल प्रत्यक्ष क्रिया प्रकाशित नहीं होती किन्तु शनैः शनैः चयापचय क्रिया सुभरती है रक्तमें उपस्थित मूल अणु नष्ट होकर, शरीर पूर्व स्थितिमें आ जाता है ।

चरकसंहिता, सुभ्रुतसंहिता, अष्टाङ्ग-संहिता आदि ग्रन्थों सुटीप्रावेशिक, वातातपिक मेदसे द्विविध काम्य (देह, बुद्धि-मल आदिकी वृद्धि रूप कामना सहित), नैमित्तिक (व्याधि नाशके लिये) और आजन्मिक (बी, वृषके अन्धास आदि) त्रिविध तथा संशोषन । संशमन मेदसे द्विविध, ये विभाग किये हैं । इन सबका वर्णन चरकसंहिताके चिकित्सा स्थान प्रथम अध्यायमें तथा सुभ्रुत संहिताके चिकित्सा स्थानके २७ वें अध्यायमें वर्णन किया है ।

हृदि, अर्शापीबित्तोंके लिये छिमे हुए वायविकक और मित्राया आदि, चय, रक्तपित्त, रक्तवमन पीबित्तोंके लिये खरैती, बिदारीकंद, शतावरी आदि, चक्षु काम और प्राण कामकी चाहना वालाको विजयसार, अरशी चित्रकमूल, छांवला, नागमूला आदि बुद्धि और आयुवृद्धिकी कामनावालोंको वेलचूर्ण, सुवर्ण शतावरी, दिप्लला नागमूला लोह, आशुचो, चित्रकमूल, छांवला आदि हृदय विद्वृतिशमनार्थ मण्डूकपर्णी, मात्री, श्वेत शचदि, व्याधि शमनाय सोम शिलाजतु आदि रोगनिवृत्तिके पश्चात् मनकी मसन्नता (हर्षवदन) के लिये अजगरी, कापेती, गोनासी आदि कतिपय अप्रसिद्ध दिव्य औपधियाँ दर्शायी हैं । वर्तमान में तिन्धतमें अनेक दिव्य औपधियाँ मिलती हैं । रश्मिका यनस्पति शरोषक डॉ० वेल्डमेर अनेक वर्षोंसे तिन्धतमें रहता है, जिसने अनेक प्रकारकी दिव्य औपधियोंकी रशियाँ भेजी हैं ।

रशियाके संशोषक मण्डूकने शहद तथा शहदके साथमें शहदके नीचे रहनेवाले कंकव सदा द्रुक्नोंमें दीर्घायुपी करनेका गुण बतलाया है ।

डाक्टरी मतानुसार, रक्तरस (Blood । Insima) की सहायतासे पौष्टिक पदार्थ देहके विविध घटकोंमें पहुँचता है एव शारीरिक घटक परिवर्तन क्रियाजय पदार्थका भी रक्तरस के द्वारा ही घटन होता है । इसलिये यदि रक्तरसक उपादानमें कुछ विलक्षणता हो जाय, तो साक्षात् सम्बन्धसे देहके पोषण, सर्व विधान और घटकोंकी जीवन क्रियामें विकृति हो जाती है ।

पथ्य भोजन, औषध द्रव्य या रक्तमोक्षण द्वारा रक्तकारिके उपादानमें कुछ अंशमें परिवर्तन हो सकता है । शरीरमें प्रवेशित अनेकानेक पदार्थ शोषण होनेके पश्चात् वे रक्तरसमें द्रवरूप होकर अवस्थिति करते हैं किन्तु विरेचक, मूत्रक और स्वेदन

श्रीपचियों रक्तसममें प्रवेशित होकर इनमेंसे अनेक पदार्थोंके परमाणुओंको निर्गत करा देती हैं। इस वस्तुसे रक्तधारिके उपादानमें रूपान्तर हो जाता है। फिर रक्त-जलपर कार्यकारी श्रीपचियों उसमें चारत्वकी वृद्धि करानेके उद्देश्यसे दी जाती हैं। यथार्थमें रक्तसको अम्ल गुणविशिष्ट बनानेवाली श्रमवा इसके चारत्वका ह्रास करानेवाली श्रीपचि एक भी नहीं है। सब वातव अम्ल रक्तसमें समतारात्वात् लक्ष-स्वमें अवस्थित होते हैं।

रक्ताधारिके चारवर्द्धक श्रीपचियों—शिक्षाजीत, मयाल, मौक्तिक, शुक्ति, यराटिका, शंख, वा बालार, सखीखार, जवाखार, नौसादर, विविध लवण, खूना, मेगनेशिया, केलेका चार आदि रक्तसमें प्रवेश हाकर चारकी वृद्धि कराते हैं। फिर ये चार मूत्रल गुण दशा मूत्राम्लके साथ संमिश्रित कर देहके बाहर निकल जाते हैं।

जब रक्तसमें अधिक मात्रामें मूत्राम्ल हो जाता है, तब चारपटित श्रीपचिका अवलम्बन किया जाता है। परन्तु जब दीर्घकाल तक श्रीपचि सेवन कराना है, तब पाचन क्रियामें विवृति करनेवाला श्रीपचियोंका व्यवहार नहीं किया जाता। ऐसे समयपर शिक्षाजीत, जवाखार, केलेका चार मयाल आदि विशेष हितकारक हैं।

वातरक्त, छीसेका पिय, विविध प्रमेह आदि रोगोंमें इस प्रकारकी श्रीपचियोंका प्रयोग किया जाता है। एवं जीर्ण आमयातजन्य सौंधे जकज जाने (Rheumatoid arthritis) पर भी इस प्रकारकी श्रीपचियोंका सेवन कराया जाता है।

जब शरीरमें किसी स्थानपर अधिक शोथ होनेपर या किसी व्याधि-विशेषके हेतुसे लसिका गड्ढर (Serous Cavity) में रक्तसका उत्सृजन होता है, तब विरेचन, मूत्रल या स्वेदन श्रीपचिका सेवन कराया जाता है, जिससे रक्त सत्पर निराकरण होता है। इसके अतिरिक्त रक्तमें मूत्र विष-वृद्धि (शुक्ल-संम्यास-Uremia) होने पर रक्त विषमय बन जाता है। इस विषको निकाल देनेके श्लेये भी विरेचन, मूत्रल या स्वेदल श्रीपचि ही दी जाती है। इन श्रीपचियों द्वारा रक्त जलमें रहे हुए विविध क्षार और जलीय अंश निकल जाते हैं।

रक्तके रक्ताणुओं पर कार्यकारी श्रीपचियों स्वत्वावस्थामें सब रक्ताणुओं (Red Corpuscles) के भीतर वर्ण द्रव्य (Hemoglobin) सम परिमाणमें रहता है। इसका प्रधान उपादान लोह है। स्वत्वावस्थामें रक्त रक्ताणुओंके भीतर रक्तकी वृद्धि करे, ऐसी कोई श्रीपचि नहीं है। किन्तु व्याधि विशेषके हेतुसे रक्तके रक्ताणुओंमेंसे वर्ण द्रव्यका परिमाण ग्यून हो जानेपर रक्तपर साक्षात् कार्यकारी और परोक्ष कार्यकारी ऐसे २ विभाग होते हैं। साक्षात् कार्यकारी श्रीपचियों (Direct Hematosis or Hematinosis)—दोहमस, अन्नक मस, मण्डूर मस रससिन्दूर, सुवर्णमासिक मस, आयला आदिके सेवन द्वारा इस वृद्धि की पूर्ति हो सकती है।

इन औषधियोंके सेवनसे केवल रक्तकणके वणुका परिवर्तन ही नहीं होता, अपितु रक्त-कणिकाओंकी मो वृद्धि होती है। रक्त-वृद्धिमें पीटिक पप्प, सूर्यके ताप और विशुद्ध वायुका सेवन, व्यायाम, ब्रह्मचर्य आदि का पालन, नियमित जीवनचर्या आदि क्रिया सहायक होती हैं।

परोक्ष कायकारी (Indirect Hematics)—सप्तपर्ण, गिलोय, सुवर्ण-मालिनी वसन्त, विवनाइन आदि औषधियां ज्वर और निर्मलताको दूर कर परम्परया लाभ पहुँचाती हैं।

सूचना—कितनीही औषधिया रक्तके भीतर रक्तवर्णद्रव्य और प्राणवायुको घटाती हैं। उनका प्रयोग रक्तवर्णद्रव्य कम होनेपर नहीं करना चाहिये। उन्हाहरणाय सामल प्रधान अम्ल, फॉस्फरस, तार्निन तैल, आयोडीन आदि।

रक्तके श्वेताणुओंपर कार्यकारी औषध—अथ उग्रतासाधक औषध द्वारा या इतर हेतुसे पीडा होकर प्रदाह उत्पन्न होता है, तब रक्तमें अवस्थित श्वेताणु (White Corpuscles) समीपकी केशिकाओंकी दीवारका मेदनकर उस स्थानपर सङ्गीत हो जाते हैं। इन श्वेताणुओंका स्थानान्तरित होना, यह स्वभावसिद्ध है। इस स्वभावसिद्ध क्रियाका विवनाइन और सिंकोनाइन दमन करती हैं अर्थात् इनका आम्यन्तरिक या स्थानिक प्रयोग करनेपर श्वेताणुओंका रक्तप्रणालियोंसे बाहर निकलनेमें प्रतिबन्ध हो जाता है।

फूपूर, अगर, दवेत चन्दन, इलायची आदि सुगन्धित द्रव्य तथा लाल नील आदि औषधियोंके अत्रमें शोषित होनेपर, रक्तमें श्वेत रक्ताणुओंकी संख्या बढ़ जाती है।

मौक्तिक शुक्ति, प्रवाल, शस्त्र, घण्टिका, संगजराहत मसम और चूना आदि औषधियोंके सेवनसे रक्तकी संयमशीलताकी वृद्धि होती है। सोमल, रसकपूर दाल-चिकना आदिकी माघा अभिक लेनेपर रक्तकी संयमशीलताका हास होता है कठिन उपादानमें कमी होता है, और रक्तकी तन्मलताकी वृद्धि होती है। बादाम, पिस्ता और मूंगफली आदिके तैलके सेवनसे रक्तका कठिन उपादान बढ़ जाता है।

(२७) जीवनीय ।

रेन्टोरेटिक्स Restoratives

जो द्रव्य जीवन (प्राणधारण) के लिये हितकर हो, जो जीवनको स्थिर रखनेवाला और आयुवर्द्धक हो, उसे जीवनीय कहते हैं। जीवनीय औषधि पृथ्वी जल प्रमान गुणयुक्त और विरोपत मधुररस-विपाकवाली होती हैं। मधुर रससे रस, रक्त और मज्जा आदि धातुओंका पोषण होता है। ये धातुएँ सबल होनेपर रोगोंके आक्रमणका मय प्रायः नहीं रहता।

जय योम्य पय्य आहारविहारका सेवन न होनेसे या व्याधि विशेषके उद्वेगसे पातुओंमेंसे लोह आदि द्रव्यों और प्राणवायुका हास हा जाता है, तत्र म्यूनताकी पूर्ति करने और चयापचय क्रियाका नियमित बनानेके लिये जीवनीय औषधियोंका सेवन किया जाता है।

जीवनीय गुण जीवक, श्वपभक, मेदा, महामेदा, काफोली, खौरकाफ्रेला, मुद्गपर्ष्णी, मापपर्ष्णी, खीवन्ती और मुलहठी, ये १० औषधियां जीवन्शक्ति (Vitality) की वृद्धि कराती हैं।

सुमुताचार्यने काकोरुयादि गुणको जीवनीय कहा है। उसका क्वचन परिष्कृत पित्तशामक रूपसे किया गया है। इनके अतिरिक्त रसायन वर्ग में ०२६ में कही हुई सुवर्ण आदि भातु विविधरक्त और यम स्थापन गुणकी औषधियोंमें भी जीवनीय गुण अवस्थित हैं।

(२७) मूत्रक ।

मूत्रजनन-बाह्युरेपिक्स Diuretics ।

जो द्रव्य मूत्रकी उत्पत्तिको कर वृद्धि कर देहमेंसे जल तथा रक्तमें से रूपाँ विजातीय द्रव्य और हानिकर निपको पेशाबके साथ बाहर निकालनेमें सहायता पहुँचाते हैं, उनका मूत्रक कहते हैं। शूक्राशनी (यन्दाक), गोखरू अन्तमूत्र, शीतल मिर्च, मोलसरीके बीज, कलमी सारा, नीसादर, सोहागा अपामागके पान, जवाखार, लोमानके फूल, पापाखमेद खरैठी, बनगोभी, तुलतुल, बच्छनाग, बहुपत्नी, सहदेयी, कमलगन्दा, पाद, पलाशपुष्प (केसला), नरसला, कुश, कास दममूत्र, इत्क (इक्ष-वनजवन्ती), काकमाची सागके बीज, अपराशिता, देवदारु, नागरमोषा, नारियल सुहिंजना, पुनर्नवा तार्पिन सील, यन्पलायड (Urginea), सप्तपण कुसुम्भ, ऊँट क्यारा, देवदाली, सोमलता, सुई भापला, पत्परकूल कडुवी तोरई का पत्राग, अलसी, दूध, अधिक बलपान आदि।

मूत्रल और पौष्टिक—मूत्रल गुणके साथ मूत्रयन्त्र, नोर्यस्थान और धीर्यको क्षाम पहुँचानेवाली औषधियाँ—शिलाजीत, सालमलाना, गोखरू, बिरदायीक, शतावर, ऊँटदारेकी बकरी छाँल, सेमल, इस्मबगोषकी मूली, गुंसा, अगस्तके पत्र, पञ्चलूष आदि। ये सब औषधियाँ शीतल तथा मूत्रक हैं।

मूत्रविरजनीय कषाय—मूत्रविकृतिका दूर करके उसका यथा स्वाभाविक बना देनेवाली औषधियाँ—द्वेतामकमल, नीत्रकलम, नलिन (रक्त कमल), कुमुद अति सुगन्धवाला नीलकमल, पुष्यरीक (रवेत कमल), शतपत्र कमल, मुलहठी, मिर्चगु और भापके फूल, इन सबके पुष्प।

डाक्टरों विभाग—१ शीतल मूत्रक और २ उत्तमक मूत्रक।

(१) शीतल मूत्रल - (Refrigerant diuretics)—इस वर्गकी औषधियां वृक्षोंको धोकर स्वच्छ बनाती हैं। धायुर्वेदमें इनको मूत्रधिरग्नीय सश दी है। शीतल अलपान, दूध-अम्लकी लससी, सोडावाटर, जलमिश्रित कार्बोलिक एसिड जवाबदार शिलाजीत चादाम आदिकी ठण्डाई, सारा, बाँदा, गोलरू, खस, खरैटी, पञ्चतुलामूखका हिम, चावलका बोधन, ब्राह्मी, वालमलाना, इस्सगोल और अलसीका जल आदि, ये सब औषधियां अधिक परिमाणमें सेवन करनेपर रक्तमें अधिक तरलता (Diluent) उत्पन्न करके कार्य करती है।

(उत्तेजक मूत्रल—(Stimulant Diuretics) गंधाविरोजा, कार्बन तैल, शीतल मिर्च, सागके बीज, अशलाका तैल, सारिवा, छोटी दूधो, पुननवा, काकमाची, बच्छनाग, भूददाणा (फेंकी), जंगली प्याज आदि। ये सब औषधियां वृक्षोंको उत्तेजित करके कार्य करती है।

यदि उक्त औषधियों की मात्रा अधिक दी जाय, तो ये मूत्रधिरचन (Hydragogue diuretics) का कार्य करती हैं।

डाक्टर घोषके मतानुसार वर्गीकरण —

(१) वृक्षस्य श्लुका घननीके गुच्छ (Glomeruli) की क्रिया बढ़ाकर इनकी क्रिया द्वारा केफाइन (कोफी, चाय आदिमें अवस्थित मूत्रलद्रव्य और मूत्रीया रचना जाता है।

(२) वृक्षोंमें रक्तप्रवाहकी वृद्धि करा या श्लुकाओंमें रक्तदबाव बढ़ाकर मूत्रसावकी विशेष मात्राका आचार श्लुकाओंमें रक्तदबाव और वृक्षोंमें रक्तकी आयपर अवलंबित है। जब वृक्षोंकी शिराएँ रक्तको वापस करनेमें असमर्थ होती हैं, तब उनमें रक्त संग्रह होता है और मूत्रोत्पत्तिक्रम हास हो जाता है। जब हृष्य औषधियां— डिजिटैलिस समूह, केफाइन, मयार्क ईयर आदिकी क्रियावृद्धि द्वारा रक्तमितरस्य क्रिया बढ़ाकर मूत्रल गुण उत्पन्न कराती है तब वृक्षशिराएँ प्रसारित होती हैं और फिर श्लुकाओंमें रक्तदबाव बढ़ जाता है।

उदर्यांकलामें जब तरल संग्रह होता है तब वृक्षशिराओंमेंसे रक्तप्रवाहकी गतिमें बाधा पहुँचती है। फिर उदरमें छिद्रकर, विरेचन देकर या मूत्रवृद्धि कराकर रक्तको दूर किया जाता है।

रक्तमें अलकी वृद्धि अर्थात् रक्तवारि प्रथिनके एकीकरणमें हास होनेपर श्लुकाओंमें दबाव पड़ता है। इसके २ कारण हैं। १ अधिक अलपान, २ सामान्य लवण जलका गुदा, त्वचा या शिरा द्वारा अन्त-क्षेपण।

३ चारके हास, (Acidosis) द्वारा एमोनिया स्क्योरिट और येल्लरियम ओपेशमें देनेपर मूत्रल अंतर पहुँचकर रक्तवारिमेंसे संग्रहीत चारका हास होता है।

वे रक्तवारी * अपिच्छिल (Non-Colloidal) विधानकी वृद्धि और रक्तवारी प्रथिनके केन्द्रीकरणका हास कराते हैं ।

(४) वृक्षपर स्थानिक क्रिया—जब भमनी संस्थामें दवाव धार वृक्ष-शिराग्रोंमें (प्रतिबन्ध परित्यक्त हुए विना) होता है, तब वृक्षके भमनीप्रदानोंको सामान्य क्षोभ पहुचनेपर ये प्रसारित हाते हैं और ऋजुकाग्रोंमें दबाव बढ़ता है । ये वृक्षोंके अणुओंको उन्नेजित करते हैं । फिर वृक्षके कुनडल्ला खेतोंका साथ यदाकर वा उन खातामें पुन शोषण होनेमें प्रतिबन्ध करके मूत्रल असर उत्पन्न कराते हैं । इस हेतुसे इसे क्षोभक मूत्रल (Irritant diuretics) संज्ञा दी है । केफाइन और इसके सम्बन्धनाले द्रव्योंके अतिरिक्त शेष औषधियोंमेंसे अत्यधिक मूत्रल औषधियां वृक्ष-वर्णोंमें क्षोभ कराती हैं । जिससे अधिक मात्रा देनेपर रक्तसंग्रह और वृक्षप्रदाह भी होता है । इस प्रकारमें निम्न ३ उपविभाग हैं ।

अ—मधुमन (Glycosides)—सुगन्ध द्रव्य, प्रूम (स्कोपरिन), केन्यारिडिन आदि ।

आ—अम्ल, धार और कतिपय लक्ष्म—केफाइन, यियोन्नोमाइन, पारथप्रधान केलोमस आदि ।

इ—कतिपय उद्बन्धनशील तैल, कोपायना, जुनिपर, चम्पदन, बडू (Ruohu) शीतलमिर्च आदि ।

(५) क्षयण क्रिया द्वारा—इस प्रकारकी औषधियां रक्तमेंसे विषविषादन कम करा छुनेकी क्रिया करा और ऋजुकाग्रोंमें दबाव बढ़ाकर मूत्रल गुण दशाती हैं । ये कुनडलियोंके भीतर पुन शोषण होनेसे रक्षण करते हैं । जल, मूत्रोपा, एमोनिया ऐसिटेट, एमोनिया साइट्रेट, लयण, शकच, वृक्ष प्रवेयक प्रन्थिसत्व आदि इस प्रकारकी क्रिया द्वारा फल दशाते हैं ।

मूत्रल प्रयोग हेतु—

१ हृदय और पुष्पुस क्रियाकी अभ्यवस्थासे मूत्रपरिमाणका हास हो जानेपर ।

२ रक्तमिसरणमें हानिकर त्याज्य द्रव्य और विष द्रव्योंको बाहर निकाल देनेके लिये अर्थात् रक्तशोधन और प्रदाह निवारणार्थ ।

३ किसी स्वामाबिन्न गुहामें तरल संग्रह हो जानेपर । उदाहरणार्थ जलोदर और उरस्तोषमें ।

४ मूत्राशय धार मूत्रमसेकके प्रदाहमें मूत्रका तरल बनाने और क्षोभका हास करानेके लिये । इसके अतिरिक्त अशमरीही रचना या कठोर द्रव्य संग्रह होनेपर ।

शिरासंमूहमें रक्तसंग्रह (Venous Congestion) होनेपर जलोदर शोथ (हृदय विकृति वा पुष्पुस विकृति जग्य शोथ) होनेपर सर्वाङ्गिक रक्त-

प्रणाली विधानपर कायकारी पुनर्नया, काकमाची आदि मूत्रल औषधिकां योजना करनी चाहिये ।

यहूँ विवृति जनित शोथ रोगमें शीतल मिर्च और वृक्कविकार जनित शोथ रोगमें शिलाजीव गोस्वरू, पुनर्नया आदि क्षामदायक हैं । यदि च्चर रोमासे वृक्क-विवृति हुई हो, तो तार्पिन तैल, चाय, सोरा, नागरमोषा आदि औषधियां प्रयोजित की जाती हैं ।

अथ वृक्क या मूत्राशयमें अरमरी, शर्करा, सिक्का आदि पदार्थ संचित हो जाते हैं, तब मूत्र परिमाणकी वृद्धि करानेके लिये शीतल मूत्रल औषधि दी जाती है ।

मूत्र वृद्धि करानेके लिये सरल उपाय अधिक शीतल जलपान है । शरीर भी शीतल रखना चाहिये । ताकि जल मूत्रमन्थियों द्वारा निर्गत होकर मूत्र बर जाय । इस उपायसे वृक्क उत्तेजित नहीं होते । इतर उपायोंमें रक्तसंचालन गति बध जाती है । परन्तु उनमें भी शरीर शीतल रखना चाहिये, और प्रस्वद वृद्धि नहीं कराना चाहिये ।

सूचना मूत्रल औषध प्रयोगक्रममें प्रदाह हो, तो प्रदाहनाशक चिकित्सा द्वारा उसका दमन करना चाहिये ।

जिन पदार्थोंके सेवनसे अधिक प्रस्वेद या अधिक पतले दस्त हो, उनका सेवन नहीं करना चाहिये । तात्पर्य यह है कि, इतर यन्त्रोंकी क्रियाका हाथ न करनेपर मूत्रल गुण पूर्ण शमें नहीं मिल सकता ।

अपीम सेवन करनेपर मूत्रल औषधियोंकी क्रियाका हास होता है । तार्पिन तैल और फास्फरस आदि औषधियांसे वृक्कप्रदाहकी प्राप्ति होती है । अतः वृक्कप्रदाह कारक औषधियोंका सेवन नहीं करना चाहिये ।

(२९) मूत्रविरेचन ।

मूत्रकृच्छ्रनाशक—Hydragogue diuretics—बलास्फरसे मूत्र उत्पन्न करा मूत्राशय और मूत्रमार्गके प्रदाह, विपसंमद, अरमरीद्वयसंमद और इतर कारकोंसे उत्पन्न मूत्राशयरोधको दूर करनेवाली औषधियां ।

मूत्रविरेचनीय कषाय—बादा, गोस्वरू, बसुक्क, (वक्कपुष्प), धशिर (सरज मुन्नी पुष्प), पापाणभेद, दम कुश, काश, गुद्रा (शर), इत्का (इक्क, यन जयन्ती), ये १० औषधियां चरक उद्दिष्टामें लिखी हैं ।

सुभृताचार्यने परुषकादि बग और पञ्चतृषामूलका मूत्रदीपहर कहा है । परुषकादि बर्गका वर्णन नं० ५१ दाह शामक प्रकरण में किया जायगा ।

और औषधियां—सफेद चन्दन, शीतल मिर्च, संशक्तोचन, अरनी, अलसी, छोट्टे इलायची, गंधाविरोगा, कुक्षयी, गुगल, कपतखिठा, छोट्टी दूधी, सागके बीज, बकुलापे बीज आदि ।

विविध कारखोसि उत्पन्न मूत्रावरोधमें मित्त मित्त चिकित्सा की जाती है।

अशमरीजन्य मूत्रावरोध होनेपर अशमरीद्रावक श्रीपथियां (Lithontriptics or Antilithics) दी जाती हैं। दूध-जलको सस्ती, गोमूत्र, कुसुमी जवाहार, शिलाजीत लोभान सत्व, पापाणमेद, मोलसरी पुष्प, पद्मवृक्ष, कंशोका चार, संभव हृद आदि।

मूत्रको प्रतिक्रिया अम्ल हो, तो जवाहार केशोका चार, शिलाजीत, संभवहृद आदि तथा प्रतिक्रिया क्षारीय होनेपर लोभान सत्व, कुसुमी, नीरू मत्व, इमहो मत्व, पद्मवृक्ष आदि लामदायक होते हैं।

अशमरीजन्य मूत्रावरोधमें विशेषतः स्निग्ध और मूत्रल श्रापथियां सामना की जाती है। एवं निवाये अम्लमें बैठाना एक स्थानमें शूल हो, तो एक स्थानपर हींगका लेप, नूत्राशयमें अवरोध हो, तो पलाश पुष्पका लेप या पुस्त्रिष्ठ आदि सहायक चिकित्सा की जाती है।

मूत्राशयप्रदाहसे मूत्रकृच्छ्रता हुई हो, तो मूत्रल श्रापथियां दी जाती हैं। मुत्राकफे हेतुसे मूत्रकृच्छ्र हो, तो चन्दनका तैल, शीतल मिर्च या प्रत्युषता सावक गन्धाविरोधा आदिकी योजना करनी चाहिये।

विषुचिका रोगकी प्रथमावस्थामें मूत्रस्तम्भ होनेपर मूत्रावति करनेवाली श्रापथियां—यबदाह, सोरा, संगवहृद आदि अति सूक्ष्म परिमाणमें देनी चाहियें, एवं वृक्केपर मारायण विलम्बी मालिश और उष्ण जलसे सेक तथा मूत्राशयप्रदाह निवारणार्थ सोरा और केवलाको जलमें बिसकर मूत्राशयपर लेप भी करना चाहिये। अन्तिमावस्थामें तो रक्के भीतर जल और लवणकी अति कमी हो जाती है। इस हेतुसे मूत्रावति नहीं होती। इस अवस्थामें भावस्य जलफा अन्तःक्षेपण करना चाहिये।

अशमरी जन्य मूत्रावरोध होनेपर सुभुव संहिता कथित निम्न वीरसर्वादि गणकी श्रापथियां विशेष लामप्रद मानी गई हैं।

वीरसर्वादि गण—वीरवरु (नेलसव) नीले फूलका पियावासा, पोसे फूलका पियावासा, दर्भ-मूल, बांरा, नागरमोषा, नरसल, कुत्राकी जड़, कंसकी जड़, पापाणमेद अशमरीकी झाल, मोरटा (ईसकी जड़ या अंकोल पुष्प), यमुक (बड़ पुष्प), बसिर (अषामार्ग या सर्वावत), मल्लूक (रयोनाक), कुरंटका (लाल फूलका पियावासा), इन्दावर (स्पलपत्र), कपोतवर्षा (ब्राह्मी) और गोसूरु व १९ श्रापथियां कही हैं। यह गण यावद्विषय, अशमरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र और मूत्रावका नाश करता है।

मूत्रकी अम्ल प्रतिक्रियाकी वृद्धि करनेवाली श्रापथियां—अम्ल लवण-साइट्रिक एसिड टार्टरिक एसिड आदि, एमोनियम क्लोराइड, कैल्शियम क्लोराइड, नान अम्ल (वेन्जोइक एसिड), सोडागका अम्ल (बोरिक एसिड), सेप्सि

सिलिक एसिड, चावल, कुलथी, अम्ल अनारदाने, कच्ची इमली, घृति स्पटे हा ऐसे पत्त आदि ।

मूत्रकी क्षारीय प्रतिक्रियाकी वृद्धि करानेवाली औषधियाँ—तमक, सोडा, पोटास, यकदार, कैलेका चार, अपामाग चार आदि । मुक्ता प्रवाल, शुक्ति, शस, वगणिका और घूना भी मूत्रकी अम्लताका हास कराते हैं ।

(३०) मूत्रसंप्रहणीय ।

मूत्ररोधक—एन्टीडाइरेटिक्स—(Antidiuretics)

जो द्रव्य आहार और घृति मात्रामें होनेवाले मूत्रको रोके (कम कराते) उसे मूत्ररोधक कहते हैं ।

मूत्रसमहणीय फ़ाय—बासुन, आम पिल्लन, घट, कपीतन (अम्बाबा), गूलर पीपल, मिलाया, अश्मन्तक (कैयदार वृक्ष), सोमधलक (लैर), ये १० औषधियाँ चरकसहितामें करी हैं ।

और औषधियाँ—वगभस्म, जसद भस्म अफीम, तगर आदि । लभण विरेचन, जलवात भेदन करानेवाली औषधियाँ, सूर्यके तापका सेवन, परिभ्रम और मागमन आदिसे भी उक्त समयके लिये मूत्रोत्पत्ति कम हो जाती है । तैल और तैनी पदाय—बादाम, मूंगफली तिल, कानू आदि तथा अजवायन, पिप्पलीमूल आदिके सेवनसे भी मूत्रोत्पत्तिका हास होता है ।

जब प्रयमावस्थामें वृक्ककी शक्तवाहिनियाँ आकुचित होनेसे मूत्रोत्पत्ति नहीं होती, तब डाक्टोरोंमें एड्रिनिनिका अन्त-क्षेपण करते हैं । इस तरह पोषिका ग्रन्थिके सत्वका प्रयोग भीसायस्थाव करते हैं ।

तार्पिन तैल, केन्यारिडिन और फोस्फोरस मूत्रपरिमाणका हास कराता है किन्तु इस उद्देश्यसे ये व्यवहृत नहीं होतीं । क्योंकि अधिक मात्रामें प्रयोग करनेपर वृक्कप्रदाह हो जाता है ।

वंग भस्म, जसद भस्म और कपाम रसवाली औषधियाँ वृक्कपर अवसात्क गुण उत्पादक क्य शनैः शनैः मूत्रोत्पत्तिको कम कराती हैं ।

(३१) शोथहर ।

द्वयशुहर—एन्थ्रॉपिक—Anthydropsics ।

जो औषधियाँ रक्त-रसके संग्रहण शोथको (आयुर्वेद कथित निज स्वयमुक्ता) दूर करे, उसे शोथहर कहते हैं । इसके २ प्रकार हैं । १ स्थानिक २ सार्वत्रिक । इसकी चिकित्सामें मुख्य २ बातोंपर लक्ष्य दिया जाता है ।

१ रक्त-रसके दूरीकरणार्थ पुननवा, काकमाची, निसोय, हरक, रेपशचोन्ती आदि मूत्रल, विरेचन और धर्मकारक औषधियोंका सेवन ।

२. शोथोत्पादक कारण शमनार्थ—हृदय, यकृत, वृक्क, इनमेंसे किसी विह्वति हुई हो, उसके अनुरूप उपचार करना।

इनके अतिरिक्त रक्तपौष्टिक और रक्तसंस्थापौष्टिक लोह, मण्डूर, सुवर्ण, अमृत, मुक्ता, प्रयास आदिका सेवन करना चाहिये। एवं अग्निप्रदीप्तकर सोतोर्धी शुद्धि करनी चाहिये।

चरक संहितामें दशमूलको शोथहर लिखा है। यह वातवाहिनियोंके शोथर दूर कर हृदय आदि दन्द्रियोंको लाम पहुँचाता है।

सुभुतसंहितामें विदार्यादि गण और करमर्दादि गणको शोथहर दर्शाया है।

विदार्यादि गण—विटारी (विदारीकंद) सारिषा, इल्ली, गुडूची अजमूमी (येनासिंगी), ये ५ कस्ली पञ्चमूल रक्तपित्त, तीना दोषोसे उत्पन्न शोथ, सप्त प्रकरके प्रमेह और शुक्रदोषके नाशक, विशेषतः कफ प्रधान शोथ नाशक हैं।

करमर्दादि गण—करौंटा, गोम्वरू पियार्यासा, यधनग्धी (कण्डकपात्री) और रातावरी, ये ५ कण्टक पञ्चमूल कफवातप्रधान शोथ, रक्तपित्त, प्रमेह तथा शुक्र दोषके नाशक हैं।

और औषधियाँ—पुनर्नशा, बन्धनाग, क्लिशारी रोहिषा, देवदारु, सोड, मिर्च, पोपल, चिन्नकमूल, दन्तीमूल, मकोष, पाठा, ययच्चार, शिलाज्यु, हरक, परवलको जक, कुन्की आदि।

निर शोथके अतिरिक्त जन्तुके कान्ने आगन्तुक चोत्से वा प्रस होनेपर जा शाय होता है, उन सबको आगन्तुक शोथ कहा गया है। उसका वधन आगे न० ४२ प्रणशोधन में किया जायगा।

(३०) सवरकमिधन।

एन्थेलमिथिक्स-धर्मिफ्यूस-धर्मिथाइड्स।

Anthelmintics—Vermifuges—Vermicides।

पचन संस्थागत—जाना प्रकारके इमियाँ मारने वा गिराने तथा उनसे उत्पन्न होनेवाले विकारोन्ने नष्ट करनेवाली (किन्तु शरीरको क्षति न पहुँचानेवाली) औषधियोंको इमिधन कहा दी है।

सुभुत संहितामें अर्कादि गण, सुरसादि गण, अर्वादि गण और लासादि गणको इमिधन लिखा है। इनमेंसे अर्कादि गण न० ४३ प्रणशोधनमें, सुरसादि गण न० ९ कण्डोपनमें अर्वादिगण न० ३९ विग्रहामर्मे तथा लासादि गणको न० ४३ प्रणशोधनमें देखें।

इमिधन औषधियाँ—वारद, गन्धक, समल, इरतास, दिगुल, मैन्थिल,

, अजवायन, पत्तारके बीज, घनारक मूलकी छाल, अटीस, यामबिहंग, काली

जीरी, कन्मी (बायपुषा), सुहिजनाके बीज कसिला, हींग, कपूर, पोदीना, जंगला प्याज, भिलावा, कीडामारी, कौंचकी फलोके काँटे, गोफर्षी, कुचिला, डोकामाली, नोम, सम्हालू, मुसाकानी, गोखरू, अजामार्ग, धूरर, घट्टा, कपूर, नीलगिरी तैल, तारिपिन तैल मासुगार्गनी, कालीमिर्च, इन्द्रजौ, पपीतेका रस, कडुवी जीरी सुपारी, शबची, पारसीह यमानी (किरमाकी अजवायन किसमेंसे सेन्टोनीन निकलता है), पररुड तैल आदि ।

मुख्य सर्वरुमि —

१ गोल रुमि (गण्डुपदोपमा-महागुदा-कंचे-सदृश Round Worms)

ये रुमि छोटी और बड़ी आँतमें रहते हैं । इनमें ३ जाति हैं ।

२ जजीर सदृश लम्बे (पृथुवन्ननिमा-उदगवेष्टा—१ इंचसे २४ फीट तक लम्बे कडु दाना—Tape worms) ये छोटी आँतमें रहते हैं । इस प्रकारके रुमियोंमें मुख्य ३ जाति हैं ।

३ सूक्ष्म रुमि (रूठ पान्याँकुर—Flukes)—इस प्रकारके रुमियोंमें अनेक जाति हैं । सूत्र रुमि और बकिश रुमि मुख्य हैं ।

गोल रुमिके लिये बूँई बूँटी, सेन्टोनीन, सुरासानी अजवायन, कोलरुन्द, सेया तारिपिन तैल आदि ।

जंजीर सदृश लम्बे रुमिके लिये कपिला, अनार मूलाकी छाल, तारिपिन तैल सुपारी, कडु बीजका मगज आदि ।

सूक्ष्म रुमियाके लिये किरकरी, लोह पटित औषधि, चूनेका जल, नीलगिरी तैल बायविडंग, कीडामारी, निर्गुणबी, गोखरू, मुसाकानी, काली मिर्च, डोकामाली कौंचकी पत्तीके काँटे, नागरमोया, बंगमम्ब, नमकीन जलकी वस्ति, त्रिफला, अठीठ, नूठ, कपूर, केसर, अजवायन इन्द्रजौ, कडुवी गुग्गी, कुचिला, पलाश बीज, सत्या-नारीकी जक, पररुड तैल आदि इनके अतिरिक्त पररुड तैल, तारिपिन तैल हींग, सिटकरी मिश्रितजल आदि औषधियोंकी एनिमा भी दी जाती है ।

रुमि नष्ट होकर फिर उत्पत्ति न होनेके लिए हिंगुल, सुवर्ण या लोह पटित और कडुबी-आमाशय-पौष्टिक (दीपन-पाचन) औषधि या शययका सेवन करना चाहिये ।

रुमिरोगकी उत्पत्ति, निदान और चिकित्सा आदिका विस्तृत विवेचन “चिकित्सावत्सप्रदीप” प्रथम खण्डमें किया गया है ।

डाक्टररी विभाग —

(१) विशेष रुमिघ्न (Specific Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधियोंके सेवनसे रुमि मियाक होकर मर जाते हैं । फिर विरेचन देकर मृत रुमियोंको निकाल दिया जाता है ।

उदाहरणार्थ गोज कृमिके लिये सेण्टोनीन, चैनोपोडियम सैब कडुनाके क्षिय मेलफर्म, हूरुपर्नके लिय अजवायन फूल, वेदानेरुयाल, सग सबर छोटे कृमिके लिये लवण जलकी बस्ति ।

(२) यान्त्रिक कृमिघ्न (Mechanical Anthelmintics)—इस प्रकारका औषधियोंके सेवनसे कृमियोंके शरीर विघ्न होते हैं, और फिर वे गिर जाते हैं जिससे वे अन्नमें नहीं रह सकते । बंगमरुम, कलईका मिर्ची मिला चूण, कीचड़ी फलीके घाल इत्यादि ।

कलई १ तोलेके पसले पतरे क्य, ५ तोले मिर्ची मिलाकर सरल करें । माषा १—१ माषा दिनमें दो बार जलके साथ दें । यूनानो इकीम इस प्रयोगके विशेष फलते हैं ।

(३) विरेचन कृमिघ्न (Purgative Anthelmintics)—कित्ता इन्द्रायण उसादेरेषन्द आदि वीर विरेचन औषधियोंके वेगसे सब कृमि गिर जाते हैं, परन्तु बहुधा उनमें से कुछ जीवित रह जाते हैं ।

(४) कृमिघ्नकारक कृमि उत्पत्ति निवारक (Preventive Anthelmintics)—इस प्रकारकी औषधियाँ अत्यन्त शैथिल्य कलाका संशोधन करती हैं । जब अल्प अहारका अधिक सेवन होता है, तब यह कला दूषित हो जाती है; फिर ठसमेंसे अधिक दलेष्मा निकलता रहता है । ऐसी स्थितिमें कृमियोंके निष्पन्न अनुकूल उत्पत्तित्त्वान और निवासस्थान मिल जाता है । यदि इस कलाका संशोधन हो जाय, तो फिर कृमिकी उत्पत्ति नहीं होती । इसका अर्थान आगे नं० १४ में किया जायगा ।

सेण्टोनीन आदि कठिण कृमिघ्न औषधियोंकी योग्य मात्रासे कृमि नहीं मरते, किन्तु उनके स्थापनक प्रभावसे बहोत हो जाते हैं । यदि उनको अल्प न निकाला जाय, तो फिर वे स्वस्थ हो जाते हैं । इस हेतुसे इन औषधियोंके पर्याप्त विरेचन देना पड़ता है । जिससे कृमि गिर जाते और औषध विघ्न नष्ट हो जाता है ।

सेण्टोनीन नेत्रदण्ड (Retina) को हानि पहुँचाता है । इस हेतुसे इसका प्रयोग रात्रिको ही सोनेके समय किया जाता है ।

कितनी ही कृमिघ्न औषधियाँ—मेलार्न, अजवायन पुष्प, कार्बोन टेट्राक्लोराइडका सेवन प्रातःकालका लक्ष्य विरेचनके साथ कराया जाता है एव इनके प्रयोगके पहिले अन्नमेंसे आमका निकाल देनेके लिये भी विरेचन दिया जाता है ।

लम्बनसद कृमिघ्न औषधिका प्रयोग करनेपर कडुदन्ता और बकिच कृमि (Hook Worms) अन्नद्रव्य द्राय अपना संरक्षण नहीं कर सकते किन्तु इससे रोगीको कुछ क्षीणता आती और औषधि शोषण इन्हींमें सहायता मिल जाती है, अतः लम्बन गम्भीर न होना चाहिये ।

(३३) उदरकृमिघ्न और विरेचन ।

परगेटिव एन्थेलमिन्टिक्स—Purgative Anthelmintics ।

उदरके कृमियोंको मारने और विरेचन करा कर बाहर निकालनेवाली औषधियाँ—कपिला, इन्द्रायण, उसारैरेयन्द (रेयन्दचीनी सत्व आदि ।

कपिला कृमिनाशक और विरेचक है । मात्रा २ से ८ माश । नैनीताल आदि पहाड़ी स्थानमें इसकी अधिक उत्पाति होती है । कपिला विशेषतः गुर्बके साथ मिला कर दिया जाता है, खाने पर कुछ बेचैनी रहती है परन्तु वमन नहीं आती । विशेषत यह गोलकृमि और सूक्ष्म कृमिको बाहर निकालनेके लिये उपयोगमें लिया जाता है ।

इन्द्रायण—अति विरेचन कृमिघ्न, जलोदरनाशक है । इस इन्द्रवायुमें मुख्य तीन जाति हैं । इसका लुपाय लेनेपर उदरमें दर्द बहुत होता है । एष अधिक मात्रामें लेनेपर आँवमें दाह शोथ हो जाता है । (अंगुली पककर भयकर वेदना होनेपर इन्द्रायणके फलमें क्षिद्र कर उसमें अंगुली प्रवेश करा देनेसे वेदना कम हो जाती है । जलोदर और शोथ रोगीमें इन्द्रायणका लुपाय देनेसे दस्तमें बहुत पानी निकल कर व्याधिक्व कम हो जाता है) ।

उसारैरेयन्द (Gambog)—अतिविरेचन, कृमिघ्न । मात्रा—१ चौथाई से १ रस्ती । यह नष्टार्थ और उदर रोगको दूर करता है । इसके सेवनमें विरेचनके साथ वमन और उदरमें वेदना उपस्थित होती है । साजुन और चारके साथ मिलाकर सेवन करनेपर ये उपद्रव्य कम होते हैं । अधिक मात्रामें सेवन करनेपर अन्नप्रदाह और विषलक्ष्ण प्रकाशित होते हैं । इसके सेवनसे मूत्रकी वृद्धि होती है, और इसका वर्षा मूत्रमें शोषित हो जाता है । यह कृमिनाशके लिये क्षामदायक है ।

(३४) कृमि विकारघ्न

प्रेवेटिव एन्थेलमिन्टिक्स—Preventive Anthelmintics ।

कृमियोंको उत्पत्तिके कारणरूप रक्त आदि घात और आमाशय अन्न आदिमें खे हुए सूक्ष्म बीजको नष्ट करनेवाली औषधियाँ—पारद, गन्धक, हिंगुल, सामल, हवाल, सुवर्ण, मौक्तिक प्रवाल शिलाजीत, मिलाया, कुचिला, इन्द्रजी, सपगन्धा चिराम्ता, नीम, हींग, यव, बीजानाली, कीडामारी अतीस, पलाशबीज कड़वी जीरी शोश्पट्टि औषधियाँ, कासीस, अम्रक, अम्यासन, गोमूत्र, शिलाजीत, धातुविट्ठक और पलावा आदि कड़ुवे रस प्रधान औषधियाँ । इसका वर्णन पहिले न० ३२ उदर कृमिघ्नमें किया गया है ।

पलाशा बीज—मृदु विरेचन कृमिनाशक और रसायन, बाहर लगानेपर उत्तमक है । नीबूके रसमें पिसकर पामा, दट्ट और इतर चर्म रागपर बाह्य कृमिघ्न (Insecticide) गुणके लिये लगाया जाता है ।

डाक्टरों मतानुसार माथा १० से २० ग्रेन है। खानेके लिये प्लाश बीजको जल या गोमूत्रमें भिगाकर ऊपरको छाल निकाल दें। केवल मीठरकी गिरी खेनी चाहिये। गांध कृमिकोंके लिये यह खामदायक है। यह सेन्टोनिनके प्रतिनिधि रूपसे व्यवहृत होती है।

फीटमारी (कोडामारी)—इसको कड़ू मी कहते हैं। यह कड़ुवी, उष्णचैत्य, चर, शोथ और कृमिको नाशक है। अग्नि प्रदीप्त करता है और आहारपर रुचि उत्पन्न करती है। शोथपर इसके रसका लेप होता है। यालकाकी नामिपर इसके पत्ते बांधनेपर मलशुद्धि हो जाती है। मासिकवर्ष खानेके लिए और प्रसवकालमें गर्भाशयमें सङ्कोच करनेके लिये इसका उपयोग होता है। कोडामारीका रस दूधमें मिलाकर उपदेशके घावपर लगाया जाता है, एम् मुआकके रोगको अफीम मिलाकर पिलाया जाता है। यह कृमिक विषपर भी खामदायक है।

द्विगुपत्री (बीकामाली)—उष्ण, कट्टु तीक्ष्ण, दीर्घ, कफघ्न, वातहर, विषन्वनाशक और वेदोष्णीकर है। बाजारमें इस वृक्षका गांठ मिलता है यही श्लोष रूपसे व्यवहृत होता है। इसके सेवनसे अत्रकी शुद्धि होकर पचन क्रिया प्रबल बनती है। माश आपसे दो रबी।

अनेकवार मख केश, राम और याज्ञ त्वचापर कृमि, जं, चामजू आदिकी उत्पत्ति हो जाती है। उस समयपर याज्ञ कृमिघ्न (Insecticides) श्रीपथियोंका उपयोग किया जाता है। इन प्रकारमें कायकल, कड़ुवी जीरी बच्, मिर्च, नोमटैल, कमलकी जड़, तमालू, गन्धक, खूनका जल, अफीम, नीलगिरी तैल, त्रिफलोका जल, नोसात्रका जल, घट्टेका रस आदि अनेक श्रीपथियां व्यवहृत होती हैं।

(३५) अपक्षयरोधक और फीटागुनाशक

एण्टिसेप्टिकस, डिस्इन्फेक्टन्स और पैरासाइटिसाइड्स ।

Antiseptics, Disinfectants and Parasitoides ।

अपक्षयरोधक (Anti septics)—जा द्रव्य सूक्ष्म फीटागुणोंकी वृद्धिको अक्षय करे अथवा उनको प्रगतिमें विराम करे; फैलनेमें प्रतिबन्ध करे, किन्तु नष्ट न कर सके, उनको अपक्षयरोधक संज्ञा दी है।

संक्रामक फीटागुनाशक (Disinfectants or Germicides) इस प्रकारके द्रव्य रोगोपादक फीटागु, जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष एक व्यक्तिमें दूसरोंपर आक्रमणके हेतु होते हैं उनको नष्ट करते हैं।

दुर्गन्धहर (Doodorizers or deolorants)—द्रव्य दुर्गन्ध और अप्रिय गन्धको दूर करते हैं। ये द्रव्य भी फीटागुनाशक माने जाते हैं।

परोपजीवी कृमिघ्न (Parasitocides or Antiparasitics)—

जो कृमि अन्य जीवोंके आहारसे अपना जीवन निर्वाह करते हैं, उनको परापजीवी संज्ञा दी है। उदाहरणार्थ ज, व्यट्मल, उदरकृमि आदि)। उन कृमियोंके नाशक द्रव्यको परोपजीवी कृमिघ्न कहते हैं। इस प्रकारके द्रव्योंके वाह्य प्रयोगोंका वर्णन भाग नं० १६ कुष्ठपत्र प्रकरणमें किया जायगा।

आमाशयपर क्षामदायक औषध वातादि दोषोंकी मूल रूप विकृति या आमाशय आदिमें कीटाणु उत्पन्न होकर विविध रोगोंकी उत्पत्ति करते हैं, इन विकृति या कीटाणुओंकी वृद्धिका रोकनेवाली औषधियाँ—पारद, गन्धक, रसकपूर, मुखर्ष मसम, नीलायाया, ताम्र मसम, कसौस मसम, मँकिक, शुक्ति, प्रवाल, शल, वरालिका, सहागा, चूना, नीम, कुचिला, बन्धनाग, अजयायनके फूल, पीपरमेष्टके फूल, नीलगिरी तैल, खींग, दालचीनी और सोंक आदिके तैल तथा मिर्च, सोंठ, पीपल आदि दीपन-वाचन औषधियाँ।

यद्यपि आमाशयका अम्लस्ताव अनेक प्रकारके सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट कर देता है। मोजनके साथ निगलनेमें आये हुए कितनेक आतिर कीटाणुओं (स्ट्रेप्टोकोकाई तथा प्रवाहिका, मधुरा विसूचिका आदिके कीटाणुओं) को भी न्यूनाधिक अंशमें नष्ट कर देता है, तथापि आमाशयिक अम्ल अपूर्ण होनेसे या निर्बल होनेपर आमाशयमें आमोत्पत्ति सूक्ष्म कीटाणुओंकी उत्पत्ति होकर विविध विकारोंकी उत्पत्ति होता है। फिर अपचयरोधक और कीटाणुनाशक औषधिका सेवन करने की आवश्यकता होती है।

अन्त्र चिकित्सामें अनेक रोगोंकी उत्पत्तिको रोकने और उत्पन्न रोगोंमें कीटाणु नाशके हेतुसे औषध प्रयोग किया जाता है। यदि भुक्त द्रव्यके आम और विट्हा (फनीमवन क्रिया या सेन्द्रिय विप) की उत्पत्तिके दमनार्थ प्रयोग किया जाता है, तो इस कार्यके लिये आमाशयकी उपवाका दमन करके घमनका निवारण करने वाली औषधियाँ व्यवहृत होती हैं। गन्धक, गन्धकका सेवास, प्रवाल, शुक्ति, शल, वरालिका, कासीस मसम और इतर आमाशयप्रदाहशामक औषधियाँ हितकारक हैं।

अग्निमान्य और अजीर्ण रोगका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' के प्रथम खण्डमें और घमन रोगका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है।

अन्त्रपर क्षामदायक औषधियाँ—सोंठ, मिर्च, पीपल, अजयायन अजमाद, अजयायन का फूल, पीपरमेष्टका फूल, सेतिसिजिक एसिड वाह्य, हिंगुल, पारद, गन्धक, इन्द्रजव इरु और विविध विरेचन और माही औषधियाँ। घृत, तैल आदिके आभयमें रहनेवाले कितनेक कीटाणु आमाशयके अम्लरसमें नष्ट नहीं होते और अम्लके मीठर क्षारीय पित्त मिश्रणके योगसे नष्ट हो जाते हैं। कभी कभी आमाशय रसकी तीक्ष्णता कम होने पर आमविपकी उत्पत्ति हो जाती है। यदि बहुत पित्त पूरी मात्रामें

कमी-कमी देहपर छोटी-छोटी पिट्ठिका निकलना इत्यादि लक्षण प्रकाशित होते हैं। गर्भाशयके विविध रोगोंमें यह प्रयोजित होता है। मूत्रमें मूत्राम्ल (Uric Acid) बढ़नेपर इसे द्रवीभूत करनेके लिये यह अति उपयोगी है। पारद सेबनसे मुँह आगरा इसके फुल्ले रूपमें आते हैं। एवं मुखपाक (घृत) पर शहदके साथ मिलाकर लगाया जाता है। पूय-प्रमेह और मदररोगमें इस औषधिको उपयोग उत्तर क्लिप्तरूपसे किया जाता है। विसर्पमें और स्तन फटनेपर शहदके साथ मिलाकर इसका लेप किया जाता है। स्वरमगमें मुँहमें रखनेके लिये दिया जाता है।

सोहागामें गन्धक द्रव्य मिलाकर बोरिक एसिड (Boric Acid) बनाया जाता है। इसे बाक्टेरीमें अत्यधिक उपयोगमें लेते हैं। यह सूक्ष्म कीटाणुओंको नष्ट करनेके लिये उत्कृष्ट औषधि है। इसमें यह विरोध गुण है, कि प्रयोग करनेपर शारीरिक पटकोंपर उम्रता उत्पन्न नहीं करता। अधिक मात्रामें सेबन करनेपर आमाशय और अन्त्रमें प्रदाह हो जाती है, फिर भी विष क्रिया नहीं दशाता। मात्रा ५ से १५ ग्राम। इसका अन्न चिकित्सामें अत्यधिक व्यवहार होता है। एवं घृत आदिपर इसके स्वेद, द्रव, मसालम आदि प्रयोगोंको उपयोगमें लिया जाता है। पूयउत्त पञ्च प्रदाह क्रियाओंके अन्तर्निद्रयके समीप भूचो, कण्ठरोहिणी, मुख, नासिका, कण्ठ आदिमें घृत और विविध चर्मरोगोंमें स्थानिक प्रयोगरूपसे उपयोगमें आता है। मूत्राशयप्रदाहमें ५ रसी मात्रामें दिनमें २ से ३ बार पानेको दिया जाता है।

(नं० ३६) कुष्ठन ।

परिटपेरेसाइटिस—Antiparasitic ।

जो औषधियां त्वचापर उत्पन्न हुए विकार और कुष्ठ रोगके उत्पादक विषको नष्ट करें, उनको कुष्ठन कहा दी है।

कुष्ठन गण—चरक संहितामें सैरछाल, हरक, औषिला, इन्दो, मिहाश, सप्तपर्ण (सतीनेत्री काष्ठ), अमलकाशके पत्ते, सफेद कनेरकी जड़, शफविडर, चमसोके पत्ते, ये १० औषधियां लिखी हैं।

इनके अतिरिक्त चरक संहिता सूक्तस्थान तृतीय अध्यायमें कुष्ठर अनेक सिद्ध प्रयोग दशाये हैं। जिनमें अनेक औषधियां कही हैं।

सालसाराधि गण साल वृक्षका चार, अजकर्ष (सालमेद), गैर, सफेद सैर, उडुम्बर, सुपाठे, भोजपत्र, मोंगसींगी, तिनीत्र, सफेद अन्दन, रक्तवन्दन, शीशम शिरस असन (विजयसार), पत्र, अर्जुन, वाड, सागवान, कर्करज, कर्जुवा, अश्वकर्ष (सलहृद्य मेद) अगद, पीलावन्दन। इन २१ औषधियोंको सालसादि गण कहते हैं। ये गण कुष्ठ, प्रमेह और पाण्डुका नाश करता है; तथा कफ-मेदका शोथ करता है।

इनके अतिरिक्त सुभुत संहितामें आरुपचारि गण, लाघादि गण; विडला

और त्रिकटुको कुष्ठहर लिखा है। आरम्भवादि गणका वर्णन नं० ३७ क्वथनमें तथा लाक्षादि गणका वर्णन नं० ४३ प्रथमशोधनमें देखें।

त्रिफलाको कफपित्तहर, प्रमेहनाशक, कुष्ठविनाशक, चक्षुष्य, दीपन और विषमम्बरनाशक कहा है। पुनः आगे सर्वरोगहर और क्वसस्थापन गुण भी दर्शाया है।

त्रिकटुको कफ, मेद, प्रमेद, कुष्ठ, त्वष्टारोग, गुल्म, पीनस, अग्निमान्द्य आदिक नाशक तथा अग्निप्रदीपक कहा है।

और औषधियाँ—सोमल, हरताल, पारद, गन्धक, रसकपूर, दालचिहना, सोहा (नाग), सर्पविष, लोहमस, चालमोगराका तैल, पीला चम्पा, उश्वा, चोष चोनी, गोकर्षी, सत्यानाशी, सरफोका कर्षादी, नीम, रक्तशोधनार्थ निशोय आदि विरेचन द्रव्य रसके शोषणार्थ रसकपूर, नाग (सीसा) और चना आदि।

आयुर्वेदमें कुष्ठके मुख्य और गौण, ऐसे दो विभाग हैं। मुख्य कुष्ठ (Leprosy) में भी वात, पित्त, कफ, वातपित्त, श्लेष्मपित्त, वातकफ, और त्रिदोषके प्राधान्यके मेदानुसार ७ मेद किये हैं। इनको क्रमशः कपाल, औषुम्बर, मण्डल, श्लेष्मण्ड, पुण्डरिक, सिध्म और काक्य संज्ञा दी है। सबके स्वरूप, लक्षण और परिणाममें मेद है।

कचित् यह कुष्ठ रोग उपदंश रोगजिनित विष रक्तमें लीन होनेपर उत्पन्न हो जाता है। इस कुष्ठमें आवि या अबस्था और लक्षणके अनुरोधसे मेद नहीं होता। इस उपद्रव रूप कुष्ठके लक्षण सब रोगियोंमें बहुधा समान ही होते हैं।

रोग वर्ण होनेपर गलितकुष्ठकी प्राप्ति हो जाती है। आरम्भमें कान, नाक, गाल आदि पर छाल चकते होते हैं। फिर हाथ-पैरकी अँगुलियों पर शोष आता है। पश्चात् संवेदना शक्तिका शनै शनै लोप हो जाता है। ऐसे समय पर अग्नि स्पर्शका भी पूरा शोष नहीं होता। उत्पत्त्यात् स्थान-स्थानपर शोष फूटने लगता है, उसमेंसे पीस निकलने लगता है। संपूर्ण शरीर सूख जाता है। मुलमण्डल मयानक बन जाता है। अन्तमें हाथ-पैरकी अँगुलियों टूट-टूट कर गिरने लगती हैं।

कुष्ठ रोगमें कर्तव्य चमकुष्ठ, क्विटिम, विपादिका, अलाहक, दहुमंडल, चमदल, पामा, कण्डु, विस्फोटक, शठार, षडर्विका, ये ११ उपकुष्ठ (Diseases of the skin) हैं। इन सबका अधिक विष अधिक गहराईमें नहीं जाता। इसके कीटाणु विशेषतः त्वचामें रहते हैं। इस हेतुसे डाकरी प्रत्यकारोने इन सबको चर्म रोगके भीतर लिखा है।

सोमल, हरताल, पारद मस रसकपूर, दालचिहना, नाग मस, सर्पविष श्लेष्मस, खदिर छाल, मिखावा और चोलमोगरा तैल, ये सब महाकुष्ठको नाश करनेवाली औषधियाँ हैं। शोष उपकुष्ठोंमें उपकारक हैं।

सोमल, इरवाल, पारद मस्र रसकपूर, दालचिक्ना, ये उपर्दश जनिष्ठ कुण्डों में लाभदायक हैं। पारद मस्र रसकपूर, दालचिक्ना आदि प्रथमावस्था में इरवाल मस्र द्वितीयावस्था में और तृतीयावस्था के प्रारम्भ समय तक लाभदायक हैं, और सोमल अति बड़ी हुई अवस्थामें भी लाभ पहुँचाता है।

सर्पविषका उपयोग कुष्ठरोग पर यूनानीमें होता है, और परिषाम भी संतोषजनक होता है। अनेक हकीम मृत सपका खात डाल कर ईस बोते हैं। फिर कुष्ठरोगीको खिलाते हैं। ऐसा मुना है कि इस प्रयोगसे लाभ पहुँचाता है, अनेक सपके मुँहमें सोमल, दालचिक्ना आदि श्रीपद्मियाँ भर, सपुट कर मस्र बना लेते हैं। फिर गलिक्कुष्ठ रोगमें प्रयोजित करते हैं।

महाकुष्ठ रोगपर चीलमोमघ्राके बिलका उपयोग पत्तमानमें अत्यधिक हो रहा है। डाक्टरी मतानुसार यह विरोध लाभदायक माना गया है।

नाग मस्र—रस, रक्त, मांस आदि सब दूष्योंको सफल बनानेमें लाभदायक है। दूष्य सफल बनने पर क्रीणणु और विषकी वृद्धि रुक जाती है, इस हेतुसे इसे कुष्ठनाशक माना है।

भस्मलावक पाकका उपयोग गलिक्कुष्ठको प्रथमावस्था (चक्रता होने के प्रारंभ) में किया गया है। यह भी रोगके विषको अस्वास्तर रोगीको नीरोग बना देता है।

गन्धक, मन्नी, चाबचीनी, सरयानारी, सदिर छाण, रसपर्ण, त्रिफला, मुरली, उषा, अम्लताठ आदि रसशोधक और स्वचा रोगहर हैं।

लोह मस्र रक्तमें रहे हुए रक्ताणुओंकी वृद्धि करती है, तथा मृत अणुओंको अच्छा देती है। इस तरह रक्त सबल और निर्दोष होनेपर कुष्ठरोग सरलतापूर्वक बुर हो जाता है।

मुर्दासंग, रसकपूर, कपूर, सोहागा, नीलाधोवा, गन्धक, कल्पा, गोमूत्र, वमत्सू, नालगिरी विल, चक्रमर्द (पुंषाक) के बीज, कर्सीरी, नीम पत्रांग, जमेलाके पत्र, पायबिडग, सत्यानारी आदि श्रीपद्मियाँ स्वचामें रहे हुए क्रीणणुओंको नष्ट करती हैं।

(३७) करहूँघन ।

एथिरसोरिक—एथियुरीभिनस—एथियु रासिक ।

Antipsonic—Antipriginous—Antipruritic ।

जो इन्ध करहूँ (सुजली) का नष्ट करे और उसकी उत्पत्तिको राके, उनको करहूँघन, करहूँघान और करहूँघोषक कहते हैं।

सुजलीकी उत्पत्ति अधिक मित्र, नमक, अधिक सखर, या अधिक परिष्कार में मधुर पदार्थका सेवन करने पर और कर्म अधिकारमें रहनेसे रक्तमें हानिकर विरक्त प्रवेश होनेपर होती है। इनके अतिरिक्त बाहरसे क्रीणणु प्रवेशसे भी होती है। बहुत या करहूँघोषित रोगीके बन्धका उपवास करना, मुजाक आदि रोक्कीका पुरा या

स्त्रीका समागम, गन्धे जलसे स्नान, गन्धे स्नानमें नंगे पैरसे चलना इत्यादि कारणांसे भी कण्डूकी उत्पत्ति होती है। कण्डूकी उत्पत्तिमें आ देह हो, उसका त्याग करने पर औषधि सत्वर खाम पहुँचा सकती है।

पारु, गन्धक, विरेचन औषधि, ये सब अत्र और रक्तमें अवस्थित विषको नष्ट करनेमें सहायक होती हैं। सरसोंका तैल, नीलगिरी तैल, निम्ब तैल और सत्वा नाशक तैल आदिकी मालिश और इतर औषधियोंके लेपसे चर्ममें रहे हुए फोटाण या कृमि नष्ट हो जाते हैं। तमालूका जल या गोमूत्रसे कण्डूवाले स्नानसे घना तथा गन्धक मिले जलके स्रोतमें स्नान करना आदि प्रयोगांसे भी खुजली शमन हो जाती है।

कण्डूघ्न—चरक संहितामें चन्दन, जटामांसी अमलतास करंज, नीम, कुटजत्वक, सरसों, मुलहठी, दाबहन्दी और नागरमोथा, ये १० औषधियाँ लिखी हैं।

सुभ्रत संहितामें पटोलादि गण, एलादि गण तथा आरग्वधादि गण, कहा है। इनमेंसे पटोलादि गणका वर्णन नं० ९० में किया जायगा।

एलादि गण छोनी इलायची, तगर, कूठ, जटामांसी, रोहिषपास दालचीनी, सेमपाव, नागकेसर, प्रियंगु, रेणुका, नरपी, सीप, चण्डा (सुरसानी अन्वयायन), स्थीय्यक (मन्थिपर्य—भुनेर), भीषेष्क (सरलवृक्ष—गूगल), दालचीनी, चोरक (मन्थिपर्य मद्), त्रेत्रबाला, गूगल, राज, शिलारस, कुन्दक, अगक, सृका (कपूर बल्ली), लस, देवदार, केशर, कमल केशर, ये २८ औषधियाँ। यह गण वात, कफ, कण्डू पिटिका, कोष आदि रोगोंका नष्ट करता है और देहके बणको सुधारता है।

आरग्वधादि गण—अमलतास, मैनफल, गांधपायटा (सुपारी मेद), कुवा, पाठा, फसकी (बशी कटेही), पादल, मूर्वा, इन्द्रजी, सप्तपथ, नीम, पीले फूलका कटसरैया, नीले फूलका कटसरैया, गिलोम, चित्रक, शार्ङ्ग (काकंबा—मन्त्रान्तरमें काकमाची), करब, पूतिकरंज, परवलके पत्ते, चिराम्ता और करेला, ये २१ औषधियाँ। यह गण श्लेष्मप्रकोप, विष, प्रमेह, कुष्ठ, ज्वर, बमन, कण्डू आदिका नाशक और अणुश शोषक है।

(३८) विषवर्ग—Poisons

सीद्गोप्यरुक्ताविशदं ध्ययाप्याशुकरं क्षु ।
 विकारिणं सूक्ष्ममध्यकरसं विषमपाकि च ॥
 ओजसो विपरीतं सत् तीक्ष्णमौगन्धिव गुणै ।
 यातपित्तोवरं नृणां सद्यो हरति जीवितम् ॥
 विषं हि देहं सम्प्राप्य प्राग् दूषयति शोणितम् ।
 कफपित्तानिलारचक्षु समं दोषान्सद्मशयान् ॥
 सद्यो हृद्यमास्थाय देहोच्छेदाय कल्पते ।

विषमें तीक्ष्ण, उष्ण, वीर्य, रुद्ध, विराद, व्य्वायी, आशुकारी, लघु, विकारी, सूक्ष्म और अल्प रस आदि १० गुण अवस्थित हैं। इस विषका पाक न होनेसे इसे अपाकी कहा है। विष तीक्ष्ण आदि गुणों युक्त होनेसे ओषधके विपरीत (नाशक) है। यह वात, पित्त आदि पातुओंको नष्ट कर तत्काल जीवनका हरण कर लेता है। पहिले रक्तको दूषित करता है। फिर कफ, पित्त, वात, इन दोषोंको और आतुओंको विकारी बनाता है। पश्चात् हृदयमें प्रवेश करके जीवनका उच्छेद करता है।

भगवान् आश्रय करते हैं कि, विष प्रथम रूद्धगुणके कारण वायुको, उष्ण होनेसे पित्तको, सूक्ष्म होनेसे रक्तको तथा अल्प रसके कारण कफको प्रदूषित करता है। आशुकारी होनेसे शीघ्र आस्रसहा अनुसरण करता है। व्य्वायी होनेसे (सत्त्व व्याप्त होनेका स्वभाव होनेसे) संपूर्ण शरीरमें शीघ्र ही व्याप्त हो जाता है। तीक्ष्ण होनेसे मर्मन् (हृदय आदि मर्मस्थानोंको दूषित करनेवाला) होता है। विकारी गुणके अरुण मांसोंको नष्ट कर देता है। लघु (चंचल) गुण होनेसे दुर्बलित्व होता है। विराद गुणके अरुण दोषोंमें सर्वत्र सहाय में ही पैदा जाता है।

सूक्ष्म होने से रक्तवाहिनियोंके मार्गमें सरलतापूर्वक प्रवेश करके रक्तको दूषित बना देता है। विषको प्राण नाशक कहा है क्योंकि, प्राण ओषधपर अवस्थित हैं और यह ओषधको नष्ट करता है इस हेतुसे इसे मांसका नाशक कहा है।

विषको अष्टाङ्ग समूह और अष्टाङ्ग हृदयकारने अपाकी (पाक न होने योग्य) कहा है अर्थात् उसकी गति सम स्थितिमें बनी रहती है। इस हेतुसे भी यह देहका विनाश कर देता है। मर्म और श्रीपच बलसे विषको शान्त करने पर भी सुविधा मिलनेपर यह प्रदूषित हो जाता है।

विष वातप्रधान प्रकृतिके मनुष्योंकी देहमें प्रवेशित होनेपर जब वात स्थानमें पहुँचता है, तब वातप्रकोपके लक्षण तथा, मूर्च्छा, व्याकुलता, मोक्ष, गलामह (गला-पकवना), घमन और भ्रम आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तथा कफविघने लक्षण कम हो जाते हैं।

विषप्रधान प्रकृतिवालोंके पिताके आश्रयार्थ विषका प्रवेश होनेपर तथा, कास, प्वर, शान्ति महाम, दाह, तम-प्रवेश (अन्वेष आना) और अतिसार आदि पित्त-प्रकोपके लक्षण प्रतीत होते हैं, तथा वातकफके लक्षण कम होते हैं।

कफप्रकृतिवालोंमें विष कफके स्थानमें पहुँचने पर स्वास, गलामह (कण्ठमें कफसे रोष होना), कण्ठ, शार गिरना और बमन आदि लक्षण प्रधान रूपसे तथा वातपित्तके लक्षण गौण रूपसे होते हैं।

एवं वातप्रकोपक पित्त वातस्थानको, पित्तप्रकोपक विष पित्तस्थानको तथा कफ-प्रकोपक विष कफस्थानको अपिक प्रदूषित करता है।

विषका प्रवेश स्वर्ण, स्यासमाय, अन्नमाय, गुदा और मूत्रमायसे होता है।

कितनेक कीटाणु देहमें प्रवेशकर विपात्यति करते हैं। एवं अपचन आदिसे भी देहमें सेन्द्रिय विपकी उत्पत्ति हो जाती है।

विपद्रव्य—सत्र प्रकारके नव महाविप (कलाकूट, हलाहल, ब्रह्मपुत्र, बन्धनाग हारिद्रक सक्तुक, प्रदोषन, सीराष्टिक और गृहक), सप्त उपविप (बूरका दूष, घट्टा, कलिहारी, कनेर, सफेद गुड्डा, अफोम, आकका दूष), कुचिला, जमालगोटा, सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, गांजा, केसर, कपूर, नीलायोया, सर्प आदि औषोका जंगम विप आदि। स्थायर और जंगम आदि विपयोका विशेष विचार खरक संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २३ तथा सुभुत संहिताके कल्प स्थानमें किया गया है।

कचित् हानिकर औषधि, शत्रु-परिषतन, अपच्य आहार, हितकर औषधिका अत्यधिक मात्रामें सेवन, अत्यधिक पथ्य मोहन, विरुद्ध भोजन, क्रोध, मानसिक चिन्ता, मलाश्रोध, मूत्राश्रोध, पूयोत्पत्ति, दुग्द संकल्प, प्रेरणा आदि कारणोंसे भी देहमें विपेत्पत्ति हो जाती है। एव विषचिक्षा, प्रनियन्वर, श्लैष्मिक खर, आमवातिक खर आदि व्याधि उत्पादक कीटाणुओंके प्रवेश होनेपर कीटाणु-सन्तानाकी उत्पत्तिके साथ साथ विप वृद्धि भी होने लगती है। इनको छोड़ कर जो खनिज, उद्विज और जाल्म मारक विप हैं, उनके परिष्काम अनुरूप डाक्टरोंमें उनको तीन भेगियोंमें विभक्त किया है।

(१) क्षोम उत्पादक (इरिटैण्ट्स Irritants)।

(२) मोहजनक (नार्कोटिक्स Narcotics)।

(३) मोहजनक और क्षोमेत्पादक (नार्कोटिक इरिटैण्ट्स और एक्रानार्कोटिक्स Narcotic-Irritants or Aero-Narcotics)।

(१) क्षोमेत्पादक अर्थात् उग्रता और प्रदाहकारक विप—सोमल, हरताल, मैनसिल, रसकपूर, दालचिकना, आक, कनेर, मिलावा, कलिहारी, एलुआ, जमाल गोटा, निसाय, रेखन्दचीनी, कालाशाना, उसारे रेखन्द, इन्द्रासन, चित्रकमूज शीतल मिर्च, पीपल, तापिन वैल आदि। इस प्रकारकी औषधियोंके लक्षण कुछ विशग्नसे प्रतीत होते हैं परन्तु तीक्ष्ण, विनाशकारी (Corrosive) विष—कास्तरस, तेजाब, दाहक चार, उग्र अम्ल आदिकी क्रिया उत्कल प्रकाशित होती है। इनके संकनसे आमाराय आदिकी श्लैष्मिक कला क्षोमलीभूत होकर विनष्ट हो जाती है।

(२) मोहजनक विप—अफोम, घट्टा, गांजा, शसध, चदेईकी गिरी, आदि। ये सब वातबहानावियोंपर प्रभाव दर्शाती हैं। इनके सेवनसे प्रलाप जडता, चकर, शिरदर्द, लीणता, तीक्ष्ण आक्षेप और फिर अचेतनाकी उत्पत्ति होती है।

(३) मोहजनक और क्षोमेत्पादक विप—कुचिला, कुचिला सत्व, बन्धनाग, कपूर, तमाम्बू, कबुवे बादाम आदि। इस प्रकारकी औषधियों द्वारा उग्रता और मोहजनकता (बेहोशी) दोनों परिणामोंकी प्राप्ति होती है।

द्वोमोत्पादक गुण न० ९९, प्रतिद्वोमोत्पादक न० १०० और मोहजनक न० ७७, इन स्थानोंमें विशेष गुण वर्णन देखें।

धिपनिर्णायक लक्षण—

१ बलक्षय (Collapse)—द्वोमोत्पादक और तीक्ष्ण दाहक विषका यह प्रथम लक्षण है। इतर प्रश्नरखे विषोंमें शोषाकस्या होनेपर बलक्षय होता है।

२ बेहोशी (Coma)—अफीम, शराव, क्लोरोफॉर्म आदिमें इस लक्षणकी प्राप्ति दृष्टी है।

३ उत्तेजना (Stimulation)—शरावकी प्रथमावस्थामें उत्तेजना आती है, एवं स्तुयसानी अजवायन, गांजा आदि औषधियोंसे अन्तिमावस्थामें उत्तेजना आती है।

४ नेत्र परिवर्तन—अफीमसे नेत्रकी कनीनिका आकुञ्चित होती है, और समान, स्तुयसानी अजवायन, एट्रोपिया आदिसे प्रभावित होती है। शरावसे सामान्यतः नेत्रकी पुकली प्रसारित होती है किन्तु क्वचित् सकुञ्चित भी हो जाती है।

५ त्वचा परिवर्तन—वेलाडोना सत्व (एट्रोपाइन) से त्वचा शुष्क हो जाती है। अफीम और पन्डूनागसे चर्म चार्द्र हो जाता है, एवं अनेक विषोंकी बलक्षयावस्थामें भी त्वचा गीली हो जाती है।

६ निःश्वासमें गन्ध—अफीम शराव, कार्बोलिक एसिड आदिके विषमें मूल पदार्थकी गन्ध निःश्वासमें निकलती रहती है। फास्फरस सेवनसे निःश्वासमें लक्ष्युन सदृश दुर्गन्ध आती रहती है।

७, मुख्वाभ्यन्तरस्थ श्लैथ्मिक कक्षाधिकृति—वेजाब और दाहक चारसे क्रोमलीमूत और श्वेत वर्णकी दो जाती है। अफीम, गांजा, एट्रोपिन आदिसे मुखमें शुष्कता आ जाती है।

८ धमन—द्वोमोत्पादक विषसे बान्त पदार्थ रक्त मिला कानीके सूक्ष्म सदृश वर्णका हो जाता है। फास्फरससे धमन क्लृप्ती होती है। सोमलमें बान्तद्रव्य हरा-सा और क्वचित् रक्तमिश्रित होता है, तास और नालेपोपेमें धमनध्वन्य नोला-मा हो जाता है।

इनके अतिरिक्त उदरस्यन, अक्सिडर, शिरदर्द, म्याकुलता, छाद्येन, दाह, मन्धेद आदि लक्षण भी विष निणयमें सहायता पहुँचाते हैं।

(१९) विषजन्त—Antidotes

सेन्द्रिय विष, रोगजन्य विष और श्रीपथप्रकोपज विष, जो पात्रधोमें लीन हो गये हों, उसे शमन करे, उसे विषरामक (Chemical Antidotes), अथवा शयमें प्रवेशित कृतन, मैदन, विनारण आदि गुणयुक्त विषको धारित न होने दे, उस विषरोपक (Mechanical Antidotes); विषका जलाकर स्वेदनाय धार

निकाल दे, उसे विषनाशक (Physiological Antidotes), तथा यमन विरेचन करा विषद्रव्यको बाहर निकाल दे, उसे विषाण (Evacuant) संज्ञा दी है ।

विषघ्न गण—चरक संहितामें इल्ली, मजीठ, सुवहा (हारुसिंगार या ईसपदी) छोनी इलायची, पालिन्दी (श्यामा, काली निशोय), चंदन, कतक (निर्मली), शोरोप, निगुयडो, लिह्लोका, ये १० औषधियां लिखी हैं ।

सुभुत संहितामें आरग्वघाति, लोघ्रादि, अर्कादि, एलादि, पटोलादि, उत्पलादि, अजनादि और श्यादि गणको विषहर कहा है । इनमेंसे आरग्वघादि नं० ३७ कण्डूघ्नमें, लोघ्रादि गण नं० ५० प्रदरनाशकमें, अर्कादि गण नं० ४३ मयशोधनमें, एलादि गण नं० ३७ कण्डूघ्नमें, पटोलादि गण नं० १० ज्वरघ्नमें तथा अजनादि गण और उत्पलादि गण नं० ५१ दाहशामक प्रकरणमें देखें ।

घ्रष्यादि गण—बद्ध, सीसा (नाग), ताम्र, शैष्य, सुवर्ण, लाह और मय्यूर, ये ७ औषधियां । यह गण गर (इतिम विष), इमि, तृपा, विषप्रकोप, हृद्राग, पायडू और प्रमेहका नाशक है ।

एकसर गण—माबची, मैनफल, नागकेशर, कल्मी, सग्हालू, चोरक, (मन्थिपर्ण मेद-सुगन्धद्रव्य), घरण्या, कूठ, सपगन्धा, सातला, पुनर्नवा, शिरीषके फूल (और पत्राङ्ग), अमलतासकी फली और पुष्प, आकके फूल (और मूल), श्यामा (काली निशोय), पाठा, नायबिडङ्ग, आम, अशमन्तक (अम्शोट), काली मिर्ची और पियात्रासा, ये २१ औषधियां । इनमेंसे एक-एक, दो-दो या तीन-तीन औषधोंका प्रयोग करना चाहिये ।

इनके अतिरिक्त मुलाहठी, तगर, अगार, देवदारु, पित्तापाका, छोनी इलायची, एलावालुक, क्मल, मिर्ची, प्रियङ्गु, रोहिणिवृक्ष, इल्ली, दाहरल्ली, छोनी कटेली, बकी कटेली, शालपर्णी, कोपातकी, बला, अजमोद, त्रिकटु, सुवर्ण गेरु, जटामांसी, नागर मोथा, लाल, अर्तिस, हरक गिलोय, पारिमद्र, असन, अश्वकृष्ण (शाल), घघ (धामबा) विफला, हिंशु, लम्बवर्ग, सजोसार, चित्रक, कुटकी, गुम्फुल, कालीरापत्र, श्योनाक, छुरोला, जिजौरा, गोकर्णी, कपित्थ, कचा, करंजके बीज, काकमाची, अषा मागंके बीज, तिलपर्णी, मारंगी, कपूर, यस्ता, केतकी, चमेनी अरनी आदि अनेक औषधियां सुभुत संहिताके कल्पस्थानमें कहे अगदी (विषहर औषधियों में तथा चरक संहिता चिकित्सा स्थान अध्याय २३ में लिखी हैं ।

और औषधियां—बसन्, पारद, प्रवाल, मुक्ता, राजापत, कहरमोहरा लताई, मिरोन्ना, नीलाधोया, सोमल इस्ताल, शिलाज्वीत, ईसरमूल, कुचिला, चूनेका जल, सोहागा, रेखन्दचोनी, ठसारे रेखन्द, सत्यानारी, हल्लीशुण्ठी, एरएडके पत्ते, अंजना, शीठा, राई, बसु (पुननवा मेर), जहवार लताई, (निर्बिषी), मुहिनना, तमालू, बधायन

केलेके खम्बेका रस, मिरचार्कंद, नौसादर आदि । एवं घी, शहद, मक्खन, दूध, दही, अण्डेका रस, शीतल जल, उष्ण जल ये सब आवश्यकवानुसार मिलाने जाते हैं ।

पिरोडा, गन्धक, रेव-इषोनी, सनाय, निसोत, ठसारेरेवन्द, कुन्की, सत्यानारी, त्रिपला, नमक गोरुर्षा आदिमें विरेचन गुण मैनफल, सरधानारी, इस्तीशुपही, बच, नीलायोथा, रीठा, भाक, तमालू, अंकोल आदिमें घमन गुण, ठसारेरेवन्द, नीलायोथा बच, सत्यानारी आदि कतिपय श्रीपथियोंमें घमन-विरेचन, दोना गुण, नौसादर, गरम जल, चाई, बकायन, सुइजना आदिमें स्वेदन गुण ; गिलोय, शालपर्णा शूगल, शिलाजीत आदिमें विषयामक गुण, अन्तमूल, पुनर्नवा, वसु, सनाय, केलेके खम्बेका रस, छोटो इलायची आदिमें मूत्रल गुण, तथा अनेक श्रीपथियों में विशेष प्रकारके विपको नष्ट करनेका गुण है ।

सामान्यत विष रसमय द्रव्य लघु और सूक्ष्म स्रोतोभासी होनेसे विपके समान सूक्ष्म स्रोतोंमें सत्वर पहुँच जाते हैं । फिर अपने विशद गुण और शलधीयके हेतुसे विषप्रकोप और श्लेष्मप्रकोपके लक्षणोंको शमन करनेमें सहायक होते हैं ।

सामान्यत विषका परिशाम सत्वर होता है । रक्तपात वृषित होनेपर दृश्य र असर पहुँच ही जाता है । अतः दूधके संरक्षक और पलबद्धक द्रव्य-सुबर्ष, मुक्ता, प्रवाल आदि तथा मूत्र द्वारा विपको बाहर निकाल कर रक्तको शुद्ध करनेवाले द्रव्य सारिषा, श्वेतवन्दन, मज्जिठा, पुनर्नवा आदिका प्रयोग भी करना चाहिये ।

किन्तुके विप घातनानियों और रक्तवाहिनियों द्वारा सत्वर मस्तिष्कमें पहुँच जाते हैं । किन्तुके प्रकारके विपों (अफीम, सपविप आदि) से बेहोशी आ जाती है । उसे रोकनेके लिये सेम काँची पिलायी जाती है । एवं नेत्रोंमें तीक्ष्ण अंजन किया जाता है । पीपल आदिका प्रयोग इस तरह अंजन रूपसे होता है ।

सुबर्षमें कीटाणुनाशक और प्रतिविषोत्पादक गुण होनेसे यह सर्प आदिके लीन विप, उपविप और देशमें उत्पन्न सेन्द्रिय विप और विविध कीटाणु तथा इन सबसे उत्पन्न विकृतिको दूर कर, देशको निर्बिष बनाता है ।

रोष्य मसम, नाग मसम, सोह मसम, बंग मसम, रससिपूर, शिलाजीत आदि श्रीपथियां प्रमेह या मधुमेहसे उत्पन्न सेन्द्रिय विपको नष्ट करती हैं ।

सोमल, इच्छाल, पारद मसम, रसकपूर आदि श्रीपथियां उपदंश जनित विपको जलानेमें अति हितकारक हैं । प्राग्भिन्न छापस्यामें पारद मसम, रसकपूर, सुरासग आदि हितकारक हैं । कुष्ठ मलतो श्रीपथिते उपदंश विप वृषित होनेपर प्रथमापस्थामे नीलायोथा, द्वितीयावस्थामे इरतास, और तृतीया तथा तृतीयावस्थामे सोमलप्रधान श्रीपथियां लाभदायक हैं ।

चग मसम, शूग मसम, जसद मसम आदिके सेवनसे विद्रधि आदिका वृ

अनित विप, जिसका रक्तमें प्रवेश हो गया हो, यह जल जाता है ज्वर कम हो जाता है और विद्रधि जल्दी मर जाती है।

लोह मरुम प्रमेहजन्य विप और विविध प्रकारके कुष्ठविपके नाशमें अति हितकारक औषधि है।

वास मरुम, मोहजनक विप, कृत्रिम विप, सेन्द्रिय विप आदिको दूर करती है।

शिक्षामीतमें दोषको सुखानेका अद्भुत गुण है। मधुमेहमें रक्त, विपमय बनता रहता है। फिर विप अधिक बढ़नेपर संन्यासकी प्राप्ति हो जाती है परन्तु शिक्षाजीतका सेवन करते रहनेसे रक्तमें विपवृद्धि नहीं हो सकती। इसके विपरीत शिक्षाजीतके रसायन गुणके हेतुसे रक्ताणु मुट्ठ और सबल बनते जाते हैं।

कुचिला समालूके विपको, चूनेका जल तेजावजन्य दाहक विपको, कपूर विसृष्टिकाके विपको, किनाहन मलेरियाके विपको, सुवर्णमासिक किनाहनके विपको, हींग अफीमके विपको तथा दही अथवा क्षीर मांगके विपको दूर करनेमें उपयोगी माने गये हैं।

डाक्टरीमतानुसार विभाग—

(१) रासायनिक (Chemical)—विपमें मिश्रित होकर रासायनिक क्रिया द्वारा विपके स्वभावको नष्ट कर देनेवाली औषधियाँ। जैसे गन्धकके तेजावका विपमय असर होनेपर क्षार या चूनेको जलमें मिलाकर सेवन करना। चार द्वारा मियाक होनेपर अम्ल रसका प्रयोग करना। उद्विग्न विपके असरको नष्ट करनेके लिये जगम विप और जगम विपके असरको नष्ट करनेके लिये स्यावर विपकी योजना करना आदि।

(२) यान्त्रिक (Mechanical)—जो औषधियाँ आमाशयकी शैष्मिक फला और विपके परमाणुओंके चारों ओर आश्रुत होकर यंत्रोंका दृष्ट्य करें और विपको शोषण न होने दें, वे यान्त्रिक कहलाती हैं। जैसे काँच खानेपर पी तैल, अस्बेका रस, दूध, दही, मक्खन, गोंदका जल, मिर्ची आदि पिलाना (एक वमन भी करना)।

(३) आभिमौलिक (Physiologic)—विप विरोधी क्रिया करके विपको नष्ट करनेवाली औषधियाँ। जैसे काफ़ी द्वारा अफीमके मोहजनक असरको नष्ट करना। पारद मरुमका सेवन कर जीवनीय शक्तिही क्रिया द्वारा उपर्दशके विपको नष्ट करना। सुवर्णका सेवन कर क्षय कीटाणुका विनाश करना आदि।

विपचिकित्साके नियम—

(१) विप स्थानान्तरित करण—औषध या कण्डमें छँगुली डालकर वमन करना, अथवा पत्र (स्त्रक पत्र) द्वारा आमाशयमेंसे विप खींच लेना।

दाहक श्रीपथ प्रकोपमें वमन करा तरल कारक और शिथिल कारक श्रीपथ (दूध, दही), ईस्त्रयगोलका लुआम आदिका सेवन करना ।

उम द्रावक या क्षार आदिके विषमें स्त्रमक पम्पका प्रयोग निषिद्ध है । निवावे जलमें नमक मिलाकर अथवा नीलेथोपेका जल पिशाकर वमन करना चाहिये । नीलेथोपेकी मात्रा बमनार्थ २॥ रस्तीसे ५ रस्ती ।

(२) रासायनिक (Chemical) विपशामक प्रयोग ।

(१) विपशिकारमें संरक्षणार्थ यान्त्रिक (Mechanical) प्रयोग ।

(४) आविमीषिक क्रिया द्वारा विपक्रिया लाभकरण । जैसे तेज काकी द्वारा अफीमका मादक अंतर कम किया जाता है ।

(५) विपशाममें शोषण होनेपर शमन या शोथन श्रीपथि द्वारा निर्गतकरना । यथा पारद (रसकपूर आदि) के विपशमनार्थ माँगरेके रस और खस्तीमें खोप मिलाकर लिये । बच्छनागके विपशमनाय दूधमें चोलाईका रस मिलाकर पिलावे । अथवा नीलायाया जलमें मिलाकर पिलानेसे भी विपका निवारण होता है । सोमल द्वारा विपाक होनेपर मिरेचन और रासायनिक विपशामक श्रीपथि व्यवहृत होती हैं । मृत अथवा चोलाईका रस, दूध-मिमी और जल मिला, ठण्डाई बनाकर पिलानेसे विप सत्वर शमन हो जाता है ।

(४०) रक्तवर्द्धक ।

रक्तपौष्टिक-हिमेटिनिकस-प्लास टॉनिकस ।

Haematinics—Blood tonics—

जो आपथियाँ रक्तमें रक्षाणुओंकी संख्या और रक्तजनकी वृद्धि करें, उनको रक्तवर्द्धक-संज्ञा दी है । रक्षाणु और रक्तजनकी वृद्धि होने पर रक्त सफल बन जाता है, इस हेतुसे इन आपथियोंको रक्तपौष्टिक भी कहते हैं ।

रक्तके भीतर रक्षाणु, श्वेतारणु, रक्तकृमि और रक्तधारि, ये ४ द्रव्य होते हैं । रक्षाणुका हास या रक्तजनका हास होने पर पाण्डुरोगकी संभावना होती है । पाण्डुरोगका यथार्थ चिकित्सासम्प्रदायी त्रितीय रूपमें किया गया है ।

रक्तवर्द्धक आपथियाँ—सोद, अन्नक, सुवस्त्र, सुधर्मपाथिक, मधुकर, कासीस, मुष्ठा, प्रबाल, शृग मधु, फॉस्फोरस आबला और जीवनीय गन्ध, काबोल्यादि गन्ध, वृद्धशीय गण तथा बन्ध-स्थापन बर्ग की आपथियाँ आदि ।

यिसुचिन्त्रमें रक्तमेंसे जल बहुत निकल जाता है, तब लवणजल का अन्तःसेचन करके रक्त बचा लिया जाता है । अति रक्तसाय होने पर समान रचनावाले रक्त अथवा लवणजलका अन्तःसेचन कर लिया जाता है । रक्तके अन्तःसेचनाय विशेष नियम बताने गये हैं और रक्तके ४ विभाग किये गये हैं, उनका यथुन इच्छितरिचय्यां से सातवें प्रकरण के ३० वें भागमें किया गया है ।

(४१) रक्तप्रसादन द्रव्य विवेचन ।

जो द्रव्य रक्तके मीतर मृत रक्ताणु, विष, कीटाणु, पूष अथवा अन्य विजातीय द्रव्य मिलनेसे उत्पन्न विकृति को दूर करे, उसे रक्तप्रसादन और रक्तशोधन कहते हैं । इसमें २ प्रकार हैं । १ सार्वाङ्गिक और २ स्थानिक ।

सार्वाङ्गिक रक्तप्रसादन—जसद मस्म, सुवणपटित औषधियां, लोह, सुवर्ष माचिक, मण्डूर, कासीस,

धग मस्म, नाग मस्म, गन्धक, पारद, हिंगुल, रसकपूर, हरताल, सोमल, शिलाजीव, मैनसिल, गन्धाविरोजा, मिलावा, कपिला, कुचिला, कपूर, मजीठ, सत्यानाशी, अनन्नमूल, आबला, रेवन्दीनी, एलुआ, सनाथ, गूगल, चोषचीनी, उरुश, चालमूगरा तैल, शतावरी, उभात्र, असगन्ध, परंढनूल, अंकोल कचनार, इन्द्रायण, पुनर्नवा, सिरस, सुवण चम्पा, शरपला, सवीना, घमासा, रोहेषा, वदवन्ती, लज्जतु, वपूल, चदन, हन्दी, फलिहारी, विवनाइन, फिटकरी आदि ।

स्थानिक रक्तप्रसादन—अस्फाक, तन्दुर्दंश, चोट आदि से स्थान विशेष में रक्त-वृद्धि होने पर उसे शुद्ध करनेवाली औषधियों का वर्णन न० ४६ ब्रह्मशोधन प्रकरणमें किया जायगा ।

मरुद्विषार, विषप्रकोर और मूत्रविकृति (मूत्रमें यूरेन्स या ओक्सलेट क्षार अधिक निकलना) आदि से रक्तविकृति होने पर पारदपटित और शिलाजतुप्रधान औषधियां लाभदायक होती हैं ।

वायुरक्तच विकार होने पर हरताल, मजीठ फलिहारी आदि, उपदशज विकार होने पर प्रथमायस्यामें पारद मस्म, सत्यानाशी मूल सत्यानाशी तैल द्वितीयायस्यामें रसकपूर, चोषचीनी, उरुश आदि और तृतीयायस्यामें सामन्तपटित औषधियां ।

कण्ठमाल, गलगण्ड, अपत्ती आदि रोगोंमें गन्धक, गूगल, जसद मस्म, नाग मस्म, सुवर्षा, मन शिला आदि ।

महाकुष्ठ, उपकुष्ठ और चर्मरोगज रक्तविकारमें हरताल, सोमल, गंधक, लोह, चोषचीनी, मजीठ, शिलाजीव, चालमूगरातैल, मिलावा, स्पदिर, बावची आदि ।

सुजाकमें गन्धाविरोजा, चन्दन तैल, फिटकरी, गूगल, मिलावा, रसकपूर पटित औषधियां ।

आक्षेपेत्पादक कीटाणुओंसे उत्पन्न रक्तविकृतिमें सोमल, पारद, गूगल और कीटाणुनाशक विशेष औषधियां ।

शीतविष, पिट्टिका, काठे आदिमें सोमल, गन्धक, विरेचन औषधियां, त्रिफला, काली मिर्च आदि ।

उद्वेगप्रशामन कपाय—चरक ऋंहितामें सिन्धुक, चिरंजी, नर, कैर, फर

(सफेद मेर), सतीना, अरधकर्ण (सर्जमेद), अर्जुन, अरिमेद (दुग्न्धसुक्त वैर), ये १० औपधियाँ कही हैं ।

उदरफुमिजन्य रक्तविक्षुति पर कपूर, कुचिला कपिला, गन्धक, टरश, पापयिङ्ग आदि इमिन् औपधियाँ ।

विषिय प्रकारके पातक ज्वर, शराब, गांजा, ताम्र मस्म आदि उच्छेक औपधियाँ, उच्छेक आहार, बार बार अत्यधिक कोष करना और अति गरम गरम आहार या उपर्दश आदि रोगसि धमनीकी नीवार अति फटोर हो जाना आदि कारखोसि रक्त अशुद्ध होता है । निर रक्तदाय (Blood pressure) मद्ध जाता है । शिरमें मारीपन, म्याकुलता, आदि लक्षण उपस्थित होते हैं, तब रक्त प्रसादन औपधि दी जाती है ।

वरक संहिताकोर लिखते हैं कि :—

दुर्ग्याच्छोणितरोगेषु रक्तपित्तहरीं क्रियाम् ।

विरेक मुपपासं घा स्नायणं शोणितस्य वा ॥

॥ सू० अ० २४ १८ ॥

रक्तदायको न्यून करनेमें उपपास, विरेचन, शिराम्यन और औपधियोंमें सप-गन्धा सर्वोत्तम मानी जाती है । लहशुन मो रक्तमारके दबावका ह्रास करनेमें अति हितकर है ।

रक्तबल, रक्तमारवृद्धि हेतु, रक्तमारक्षय हेतु, रक्तमाप्यापक पन्त्रसे परीक्षा करनेकी विधि इत्यादि बातोंका वर्णन "सिद्ध परीक्षाप्रदीप" में किया गया है ।

शिराम्यनके, विधि, अधिकारी, फल आदिका विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड पृ० १०९ से ११५ तक किया है ।

उपर्युक्त औपधिके अतिरिक्त सुबस मस्म, लोहपट्टि औपधियाँ (टाप्यादि स्त्रोह आदि), सुवर्णमादिक मस्म, मौक्तिक, प्रवाल आदि हितकारक हैं ।

नेत्रपाक होने पर नेत्रस्य रक्तके प्रसादनाय शतघोत भूतमें कासीस मस्म मिला मलहम बनाकर उपयोग किया जाता है, और खानेके लिए सुवर्णमादिक मस्म, मौक्तिकमस्म शुक्ति मस्म, प्रवालपिठी आदि दी जाती हैं ।

इनके अतिरिक्त नेत्रके प्रसादनाय, र्नीतुग्न्ध, मांस मडगा, घी, गिहोय, अङ्गुला, परबल, फ्लेसी आदि का पुट्याक बना, रस निचोकर नेत्रमें डाला जाता है ।

(४२) संधानीय ।

संधान—यूनिअन—हीलिंग—Union—Healing ।

जो द्रव्य टूटी हुई अस्थि, त्वचा, पेशी आदिको जोडनेमें हितकर हो, और जो औपधि पखम को जोड देयें, उसे संधानीय संज्ञा दी है ।

संधानीयवर्ग—वरक संहितामें मुसहदी, मयुपर्शी (जज्ञय मुसहदी अथवा

गिल्लोय), पुरनपर्षा, पाठा, लजालु, मोचरस, भातकी, लोष, प्रियगु और कायफल, ये १० औषधियां लिखी हैं ।

सुभ्रत संहितामें विप्रह्न्यादि, अम्बष्ठादि और न्यम्रोधादि गणको संधानीय कहा है । इनमेंसे न्यम्रोधादि गणका यणन नं० ६ पित्तशामक प्रकरख में किया गया है ।

प्रियह्न्यादि गण—प्रियगु, लजालु, भायके फूल, पुन्नाग, नागकेशर, चन्दन, हलकी जातिका चन्दन, मोचरस, रसौत, मोक्षपत्र, सुरमा, कमलकेशर, मजीठ और जवासा आदि ।

अम्बष्ठादि गण—पाठा, घायके फूल, लजालु, श्वोनाक, मुलहठी, कच्ची बेलसिरो, लोष, पलाश, नन्दोद्ब (गंभायी), कमलकेशर आदि ।

ये दोनों पक्ष अतिवार नाशक, संधानीय, पित्तशामक और ब्रह्मरोधक है ।

और औषधियाँ—माशूफल, कासीस, भिलाया, लहसुन, गूगल, कुन्दरु, बीजाबोल, मैदालकनी, हल्दी, आम्राहल्दी, अस्थिसपिनी (हज्जोती) तथा अन्य कतौली रसधीय प्रधान औषधियाँ । इनका आगे नं० ५७ रक्तसम्भक रूपसे पुष्यक धर्षण किया है । उक्त गुणवाली औषधियाँ आगन्तुक पाषण्य त्वचामेदको जोड़ देती हैं ।

(४३) ब्रह्मरोधहर ।

विम्लापन—एण्टिफ्लोजिस्टिक्स—रिजॉल्वण्ट्स—डिस्कन्टिण्ट्स ।

Antiphlogestics—Resolvents—Discontients ।

जो द्रव्य ब्रह्मरोधकी प्रयमावस्थामें लोप रूपसे व्यहृत होनेपर ब्रह्मरोधको घिना पकाये घैठा देवे, उसे विम्लापन, प्रदाहहर और ब्रह्मरोधहर (Antiphlogestics) संज्ञा दी है । जो औषधि रक्तसम्भक या रसप्रण्यिकी वृद्धि होकर गाँठ बन जानेपर उसे बिलेर देती है, उसे विम्लापन—ग्रन्थिविलयन (Resolvents—Discontients) संज्ञा दी है ।

ब्रह्मरोधहर औषधियाँ—पारद, वञ्जनाग, कुन्दरु, गूगल, रेवन्ध्रीनी, प्लषा फुटकी, दशांगलेप, हरद, विजौरा, अरखी, देवदारु, सोंठ, रास्ना, चंदन, मुलहठी, पीलीमिष्टी, काली मिष्टी, गिले अरमनी, अजमोद, असर्गंध निशोप, लोष, जवासा, काकवासिगो, आदि ।

परक संहितामें शोषनिर्वापक प्रक्षेपमें बड, गूजर, पीपल, पिलासन, वेतसू, इन पंचवृक्षोंकी छालका घूष तथा विजवादिप्रदेह (प्रक्षेप) में मित्रया (हरद) मुलहठी, बीरा (काकोली), विसप्रन्थी (भितकी गाँठ, शतावरी, नीला कमल, नागकेशर और सफेद चंदन इन औषधियोंकी शोधहर दशायी हैं ।

ग्रन्थिविलयनकारी—पारद, दाहहल्दी, कूठ, सिरसकी छाल, देवदारु, कुन्दरु, गूगल, गोस्म (मालाकंद—*Eulophia nuda*), आयोडिन, सेक, पोस्तकैशोदेकी बाभसे सेक आदि ।

रक्तको भिन्नरनेके लिये जो लेप लगाया जाय, उसपर रुई चिपकाकर गरम करवा (ऊनी वस्त्र) बांध लेना चाहिये। एवं लेप सूख जाने पर उसे हटा, उस स्थानको गरम जलसे धोकर नया लेप लगाना चाहिये। यदिसे पहले लेपके दूषित परमाणु रह न जायें इसलिये सम्मालपूर्वक रुईको जलमें मिगाकर धोना चाहिये। या साबुन लगाकर भली भाँति साफ कर लेना चाहिये। इस तरह दिनमें कई बार लेपको हटा देना चाहिये।

यामुझी शोथ पर रात्रिका लेप नहीं लगाना चाहिये। यदि पहिल लगाना हुआ लेप गिर जाय तो उसे उठाकर फिरसे नहीं लगाना चाहिये।

गांठका पैठानेके लिये गांठ लेप क्रिया हा, उसे रात्रिको रहन देबें। पकाने योग्य गांठ पर रात्रिका दमरय लेप करना चाहिये।

(४४) म्रणपाचन-शोधन-रोपण ।

पकने योग्य म्रणशायको जो द्रव्य शीघ्र पकाये, उसे म्रणपाचन (Maturant) जो द्रव्य पकनेपर मो अपने आप न फूटनेवाले म्रणशायको जोड़ दे, उसे म्रणदारण (प्रचलदाहक Escharotic or Caustic), मिस म्रणशोधक मुह फूटनेपर अति सूक्ष्म होनेके पूयसाव सम्भक्त होवा हा, उसे पीकित कर मुलको नीचा बनाकर पूयका बाहर बहन करावें, ऐसे द्रव्यको पीकित पककर फूटे हुए या फोड़े हुए म्रणको जो द्रव्य शुद्ध बनाये, कीलाणु, पूय और दूषित मांस आदि बाह्यको अक्षर्यित कर बाहर निकाल दे, उसे म्रणशोधन तथा जो द्रव्य शुद्ध म्रणको भर देता है, उसे म्रणरोपण संज्ञा दी है।

म्रणपाचन—खिल, सवू, अलसी, गेहूँ, सरसों, सनके बीज, घृत्य, सजीसार, पाहुँवार, प्याज, सहा दही, किरण (मुपयोज), कूठ, सैवानमक, मुहिनके बीज आदि। उष्ण द्रव्य, इन द्रव्योंका प्रयोग उपनाह (पुल्टिस) क रूपमें होता है। पुल्टिस (Poultice) का वर्णन चिकित्सातत्त्वदीय प्रथमसंस्कृत पुठ ५० से ५१ तक तथा अक्षरपरिचर्या के २३ वें भाग में किया गया है।

म्रणदारण—चित्रकमूल, कपूतरकी विद्या, सेमल हापीदांत और वेत्र आदि श्रीपत्रिका।

म्रणपीडन—सेमल, स्पृहाको गलानेवाला धार, त्वचामें खिचाम करनेवाले पलका, गुगल, राह आदि श्रीपत्रिका। सुभुत संहितामें लिखिल द्रव्योंका प्रपीडन कहा है, जैसे सेमलकी छाल, सिंदुवा, बकके पान आदि।

म्रणशोधन—सुभुत संहितामें इसके ८ प्रकार कहे हैं। कणाय, घर्षि, क्लृष्ट, चूठ, तैल, रसक्रिया, चूर्ण, धूप (धुआँ)।

यस्तिरूपसे शोधन द्रव्य—अजगन्धा (अजमोद), अजगृगी (मेंढासिंगी), इन्द्रायण, कलिहारी, बहरकरंज चित्रकमूल, पाठा, नायविडङ्ग; इलायची, रेणुका,

सोंठ, मित्र, पोपल, यवचार, लवण (सैधव आदि), मन शिला, कासीस, त्रिवृत (निरोत), दन्तीमूल, इस्ताल, गोपीचन्दन आदि ।

कल्करूपसे मो वे द्रव्य सब व्यवहृत होते हैं ।

घृत द्रव्य—आकके मूल, त्रिफला, सेणुका वृष, चार (यवचार, अपामार्ग-चार, पलाश चार, सञ्जीवसार आदि), चमे की की जक, इन्दी दासइन्दी, कासीस, कुन्की, गूगल आदि ।

तैल द्रव्य—अपामार्ग अमलतास हरई, नीम, तिल, मषी कटेली, छोटी कटेली, इखाल, मन-शीला आदि ।

शोधन चूर्ण—कासीस, सैधव, सुरभीज, बचा, इन्दी, दासइन्दी, आदि (पून हानेपर छिड़कनेके लिये) ।

रसक्रियाके द्रव्य—छालघारादि गख, पटेल, त्रिफला आदि द्रव्योंका स्वाय करें, फिर उस स्वायको छान कर रक्की बैठा गाढ़ा बनालें, इसे रस क्रिया करते हैं ।

घूप-द्रव्य—कुन्दक, रास, गूगल आदि कीटसुनाशक द्रव्योंका घुआ देना ।

अर्कादि गण—सुभुत संहिता^१ आक, सफेद आक, कर्ज पूतिकर्ज, नाग दन्ती (इस्तीशुषधी), अपामार्ग, भारगी, रास्ना, इन्द्रपुष्पी (ईशरमूल) जुद्र श्वेता (लाल धामा वाला अपामार्ग) महा श्वेता (बंध्या कर्कोटकी), विद्धवा, अलवणा (मालकामनी) और हिंगो, ये १४ औपचिया कहीं हैं । यह गख कफ, मेघ, विप, कृमि और कुष्ठका नाशक और विशेषतः मखरोषक है ।

साक्षादि गण—साल, अमलतास, इद्र जौ, कनेर कावफल, इन्दी, दास-इन्दी, नीम, सतौना, चमेली और आयमास । यह गख क्सेला, कहुवा, मधुर, कफ, पित्त और रक्तका विह्वति, कुष्ठ, तथा कृमिका नाशक और दुष्टद्रव्यको शुद्ध करनेवाला है ।

त्रणशोधन प्रलेप—चरक संहितामें तिलकल्क, सैधानमक, इन्दी, दासइन्दी, निरोत, बी मुलहठी, नीमके पान त्रणशोधन कहे हैं ।

शोधन कषाय—चरक संहितामें त्रिफला, खैरकी लकड़ी (या कल्या), दास-इन्दी बज, आदि पंच खीर वृष्टोंकी छाल, खरैटी, फुरा, नीमके पत्ते, बेरके पत्ते, इनके स्वायसे मखको शुद्ध किया जाता है ।

मसहम द्रव्य—बसमानमें विशेषतः मलहम द्वारा शोधन क्रिया करायी जाती है । पारद, रसकपूर, गन्धक, मुर्दासंग, नीलायोया, सोमल, इखाल, मन-शिला पंगाल, चूना, गन्धानिरोमा, कासीस सोहागा, असदपुष्प, कपूर, सैधानमक, नीमके पत्ते, हींग, इन्दी, पत्रा, निर्गुण्डी, पिनाहल, समुद्ररोप, अलसी, अफीम, तमालू, कर्ज, राहन, पररख तैल, घृत, वेसलोन, मोम, सेनोलीन (कनका तैल), आदि, इनमेंसे—

पारद, गन्धक, घृता, कपूर, नीलायाया आदिमें क्रीणाणुनाशक गुण तथा सुर्दीहग, गन्धात्रिरोमा आदि श्रीपथियोंमें पीपको सुखाना, क्रीणाणु नाश करना, और पाय मरना, ये त्रिविध गुण हैं।

महाहमकी पट्टी हट जानेपर उसे निकाल देनी चाहिये, एवं पूय लग जाने पर भी पट्टीको बदल देनी चाहिये। साफ लकड़ी या साफ छुरीसे सम्हालपूर्वक महाहम निकाल पट्टीपर लगा कर ब्रण-विद्रधि पर चिपका देवें, या सौम्य मलहमसे श्रृंगुलीसे विद्रधि पर लगा लेवें। पूय लगी हुई श्रृंगुलीसे दिन्नीमेसे महाहम नहीं निकालना चाहिये। एवं श्रृंगुलीको अन्धो तरह साधुन लगा निषाये अलसे धो लेना चाहिये।

पूयमय ब्रण विद्रधिको प्रातःसायं भिपलाके क्याय, नामके पत्तोका क्याय, कार्बोलिक लायन या इतर श्रीपथिसे अलसे सम्हालपूर्वक धोते रहना चाहिये। परन्तु पूय घन्द हो जानेसे पश्चात् और ब्रणरोपण क्रिया वर्तमान होनेपर ब्रणको बाँध-बार नहीं धोना चाहिये। अन्यथा धारें हुए, गूठन कोमल त्वचा नष्ट हो जाती है।

घरक संहितामें एक मण्डके शासन और भेदनके लिए उमादि गणमें निम्न श्रीपथिया कही हैं—

उमादि गण—अलठी, गूगल, सेंदुडका पूष, मुर्गे और कवूतरकी मिठा, पलाशदार, हेमदीरी (सत्यानाशी या उसारे रेयन्) और दन्ती या हापी दाँत, ये श्रीपथियां सुकुमार व्यक्तियोंके शोथके शोषन-भेदनाय प्रयोजित होती हैं।

अनेक समय प्रणशोषनार्थ बाह्य प्रयोगके साथ आम्बुत्वरिक संशोषन श्रीपथि भी दी जाती है। गृह्णमस, बंगमस, गन्धक, शिलाजीत, मृदुविरचन और रक्त-शोषन श्रीपथियां आदि प्रयोजित होती हैं।

ब्रणरोपण कपाय—बक, गूलर, पीपल, कदम, पिलखन, वेतस, इन सबकी छाल, कनेरकी अड़की छाल, आककी पड़की छाल और मुट्ठ छालके कपायको ब्रण रोपण कहा है। इन सबका या किसीका कपाय उपयोभामें लेवें।

ब्रणरोपण लेपकी श्रीपथियां—घरक संहितामें त्वन्दन, कमल केशर, दाह-इन्दी, नीलकमल, मेवा, मूर्धा, मजोठ, मुलाइठी, जीफन्ती, गोविन्ध्या, धातके फूल, खरैदी मूलकी छाल, पुसडरीक काष्ठ, ये श्रीपथियां कही हैं।

ब्रणरोपण सैल द्रव्य—कमिन्धककायवैशमें कपीला, बावविडल, इन्दी, त्रिपला, बलामूला, पटोलपत्र, नीमके पान, लोच, नागरमोषा, पियंगु, खैरछाल, धातके फूल, राल, छोटी इलामनी, अगर और रक्तचन्दन; प्रपीपरोपण सैलमें पुसडरीक काष्ठ, मुलाइठी, अकोली, धीरकाकोली और रक्तचन्दन इनके अतिरिक्त नूयस्वरस और वाचइन्दीकी छाल आदि श्रीपथियां कही हैं।

सुमुखसंहितामें इनके अतिरिक्त चर्तित्त्वयोंमें भासी, गिलोय, असगंध, फाकोत्यादि गणकी श्रीपथियां तथा पंच धार वृद्धोके अङ्कुर कल्क द्रव्योंमें बायलु,

सोम (बाह्यी), सरल, कफल, चदन और काफोस्मादि गणकी औषधियां रोपण घृतमें पृश्नपर्णी, कौंच, हल्दी, मालती, शफर और काफोस्मादि गणकी औषधियां, सैलमें तगर, अगर, हल्दी, दाबहल्ली और लोष, रोपणचूर्णमें प्रियंगु, त्रिफला, लोष, कासीस मुएडी, घष (धामोषा), अश्वकर्ष (शाल मेद) और रल, रौपणी रसक्रियामें नारिकेलकी करोटि, न्यमोषवर्गकी औषधियां तथा त्रिफलाका उल्लेख किया है ।

और रोपण औषधियाँ—सिंदूर, सफेदा, कुदर, रल, कल्या, सैरसार, मेरू, मेहदी, विजयसार आदि तैल, पी, मोम और वेसलीन मिला मलहम बनाकर व्यवहृत होती हैं ।

इनके अतिरिक्त प्रथविकित्तामें छत्सादन अर्थात् शुष्क, अल्पमांसवाले और गम्भीर अर्थात् मांसकी वृद्धि करनेवाली औषधियाँ—अपामार्गमूल, असगन्ध, मुरली, सुवचला (सुप्रकर्तकी मूल) आदि तथा अघसादन अर्थात् उमरे हुए मूढ मांसको घैटाकर सम ठंडाई पर लानेवाली औषधियाँ—कासीस, संधानमक, सुरामीज, कुशविन्द (जाल सोचल नमक या हिगुल) मन शिला, कुनकुयस्कत्वक, चमेलीकी क्ली, शिरोपके फल, करंजफल, हरताल, कासीस, सपर आदिका उल्लेख किया है ।

(४५) वेदना-स्थापन ।

वेदनाशामक—पीडाहर—एनोडाइन्स—एनलजेसिक्स—एयट्सजिक्स ।

Anodynes—Analgesics—Antalgics ।

उत्पन्न हुई वेदनाका नाशकर शरीरको प्रकृतिस्थ बनावे, उसे वेदनास्थापन कहते हैं । इन औषधियोंकी शामक क्रिया मस्तिष्कमें रहे हुए केन्द्रस्थान या सशावाही वाकनाभियों पर होनेसे वेदना शमन हो जाती है ।

वेदनास्थापन वर्ग—चरक संहितामें साल, कायफल, फदस्य, पद्माल, नाग केशर, मोचरक, सिरस, बैत, एलवाहक (सुगन्ध द्रव्य विरोध) और अशोक, ये १० औषधियां कही हैं ।

अगमदप्रशमन वर्ग—चरक संहितामें अगमद (फूटनी-मांसपेशियोंमें होने वाले स्निचाब) को दूर करनेवाली औषधियाँ—शालपर्णी, पृश्नपर्णी, बकी कटेली, छोटी कटेली, परण्ड काफोली, पन्न, रल, छोटी हलायची और महुआ (गतान्तरमें मुलह्दी), ये १० लिखी हैं ।

और औषधियाँ—अफीम, गांजा, सुरासानी अजवायन, लौंग तैल, दल चीनी तैल, नीलमिठी तैल, विपरमेष्ट तैल, कन्दनाग, सूचीबूटी, बदय आदि ।

वेदनाके दो प्रकार हैं । १ स्थानिक और २ सर्वांगिक ।

स्थानिक वेदनाहर द्रव्य (Local Anodynes)—ये स्वस्थ त्वचाके

ऊपर लगानेमें व्यवहृत होती हैं। ये घातनाशियोंके सिरेका घिर बनाती हैं अथवा केन्द्र स्थानपर अंतर पहुँचाकर वेदनाको दूर करती हैं। क्लिनिक श्रीपथियां आमाशुकी क्रिया पर स्थानिक शामक (Local anesthetic) अंतर पहुँचाकर यमन अथवा आमाशुके घोरको दूर करती हैं। उनका वर्णन पहिले नं० २२ छर्द निग्राह्यमें किया गया है।

स्थानिक वेदनाहर—अतिशोत (बर्फ), उष्ण-सेक, रक्तमाद्य, पल्लोका-प्रयोग, पुल्सिस, अफीम, मे-योज्ञ आयफल, बन्धनाग, भोग कुचिला केसर, कपूर, घत्रा, कटेही, सूचीबूटी (बेलाबाना), यारासिगेका सींग आदि। इनमेंसे अधिक श्रीपथियां मदन, तैल, मलहम, लेप, धूस आदि प्रयोग रूपसे व्यवहृत होती हैं।

सार्वाङ्गिक वेदनाहर—चेतनाहर (Anaesthetics) श्रीपथियां—अफीम, गांजा, सुरासानी अजवायन, बत्रा आदिका स्वल्प मात्रमें सेवन करने पर सार्वाङ्गिक पीडा शमन होती है। चेतनाहरका विशेष वर्णन आगे नं० ७८ में किया जायगा। एवं उच्चरन् श्रीपथियां भी सार्वाङ्गिक लाभ पहुँचाती हैं। उनका वर्णन नं० १० में देखें।

अफीम वातपहा नाशियोंके सिरे, सुपुम्हा और संज्ञावाही नाशियां, तीनोंपर परिशाम दर्शाकर कार्य करती हैं।

माँग और गांजा मस्तिष्ककी यातपहा नाशियोंके केन्द्र पर प्रभाव पहुँचाते हैं।

सुरासानी अजवायन, बत्रा, बन्धनाग आदि संज्ञावाही नाशियोंकी उत्तेजनाको दमन करने वाली श्रीपथियां हैं।

वेदना स्थान किसी भी आशुयमें हो जिस वातपहा नाशियों द्वारा वेदनाका अनुभव होता हो, उसकी चेतनाका हर्ष होनेपर वेदना निवृत्ति होती है। इस दृष्टिसे अफीम, अफीमसरस, गांजा आदि श्रीपथियां, यातनाशियोंकी मूल पर मोहजनन अंतर पहुँचा कर दर्दको दूर करती हैं।

दही, घृत, तैल, चर्बी आदि स्निग्धता पहुँचाकर मांस आदि अङ्गोंको उष्ण बनाते हैं; तथा कपूर, केसर, रक्तचन्दन, नेत्रपाला, पीली मिट्टी, गिले अरमनो आदि श्रीपथियां क्षीण, विषप्रभाव, प्रदाह, शोथ आदिको दूर कर पीडाका निवारण करती हैं।

संज्ञावाही घातनाशियोंको घिर बनानेसे कुछ समयतक व्यथाका दोष नहीं होता परन्तु श्रीपथ बल दूर होनेपर पुनः वेदना उपस्थित होती है। अतः मूल हेतुको दूर करनेके लिए मर्दन, लेप आदि उपचार करना चाहिये।

(४६) शूलप्रशमन।

जो द्रव्य पचन स्रवामें उत्पन्न शूलको तथा शूलके अरस्यस्य आम, कीणुण, प्रदाह आदिको दूर करे, उसे शूलप्रशमन, या शूलजन कहते हैं।

पचन संस्थाके अतिरिक्त हृदय, यकृत, कुम्भुक, वृक्ष, गमाशय, बीजाशय आदि अन्त्य स्थानोंमें भी शूल उत्पन्न होते हैं, उनका वर्णन ठन अक्षयवीके रोगोंमें पृथक् किया है। पचन संस्थामें ग्रामप्रक्षेप, अपचन, ग्रामाशयकी श्लैष्मिक कला प्रदाह, वायुसंग्रह, अत्रकी श्लैष्मिक कलाका प्रदाह, मल जम जाना, प्रथ, भिद्रधि, कर्कस्रोत, त्रिजातीय द्रव्य प्रवेश आदिसे शूल उत्पन्न होता है। इनमेंसे अपचन, ग्रामविष, श्लैष्मिक कलाप्रदाह वायुसंग्रह, मलाशयोप आदिसे उत्पन्न शूलोंको आयु वैदने बातज, त्रिजज, कफज, इन्द्रज संज्ञा दी है। अन्त्र पुच्छप्रदाहका भी इसमें संग्रह किया गया है। प्रथ और भिद्रधिजन्य शूलका अन्तर्मांस परिग्राम शूलमें और अक्षयद्रव शूल में किया है। कर्कस्रोतज शूलको त्रिदोषज शूल माना है। प्रथ भिद्रधिजन्य शूलपर औषध चिकित्सासे लाभ बहुत कम मिलता है। त्रिदोषज शूलको असाध्य माना है। इन सबका वर्णन चिकित्सातत्त्वप्रदीप द्वितीय खण्डमें किया गया है।

शूलप्रशामन कषाय—पिप्पली, पिप्पलीमूल, चन्म, चिपक, सोंठ (या अदरक), अली मिर्च, अजमोद, अजगन्धा (जंगली अजमोद), जीरा, गरबीर (शमठ शाक), ये १० औषधियां चरक संहितामें लिखी हैं।

सुभ्रत संहितामें पिप्पल्यादि गणको शूलघ्न कहा है। उसका वर्णन नं० ९ कच्छदोषघ्नमें किया गया है।

और औषधियाँ—दोनों ग्रन्थोंमें न आई हो ऐसी औषधियाँ—कुचिला, नीलगिरी तैल, लौंग दालचीनी, पीपरमेण्टके फूल, अपामार्गचार, सर्बित्कार, काला-न्मक, शुक्ति मरम, शंख मरम, लषस वर्ग, अकंचार, मण्डूर, सोह, शंखद्राय, चनेका घार, कटिवाले करंजके फल, गई विरेचन औषधियाँ आदि।

(४०) मेदोहर और मेददोषघ्न।

कई हुई मेदको कम करनेवाली और मेदकी उत्पत्तिको रोकनेवाली औषधियाँ—शिलाजीत, गोमूष, हार, शुक्र-भोजन, भांगरा, सोह, गूगल, लाल, अपामार्ग, जलमिश्रित शहद और चरपरी औषधियाँ इत्यादि। इनके अतिरिक्त नं० ११ लेसनके साथ अनेक औषधियाँ लिखी हैं, ये सब मेदोहर क्रिया करती हैं।

इनमेंसे शिलाजीत, जलमिश्रित शहद और गोमूषमें मेदोहर गुण अधिक है। आवश्यक व्यायाम करनेसे औषध सत्वर लाभ पहुँचाती है। भोजनमें धी, आशु, शकर आदि मेदोवृद्धक आहार कम देना चाहिये।

सुभ्रत संहिताकारने मेद दोषघ्न शमन करनेके लिये निम्न वरुणादि गण कहा है—

वरुणादि गण—वरुण, आत्तगल (ऋषरैया), संहजना, लाल भरणी, मेंढासिंगी, प्लिकरज, करंज, मोरग (मूर्वा), बहा झरणी, लाल पुष्पका

फटसरैया, पीले फूलका फटसरैया, कंवूरी, यमुक (बक पुष्प या अगस्तियाका फूल,)
 धूपामार्ग, चिप्रक शपाथरी शिल्प, अजगृंगी (मेंढासिंगी), कुशाको ज्वर, छोट्ये
 कनेली मबी कटेली इन २२ औषधियोंको बरुपादि गण्य करते हैं। यह गण्य कफ-
 मेदनाशक है। शिरःशूल, गुल्म और आम्बन्तरिक विद्रधिमें प्रयोजित होता है।

मेदोदधि विकार (Obesity) अनेकोंको कुल परम्परा मिलता है।
 कह्योको मेदवर्द्धक पदार्थोंके शक्ति सेवन, व्यायामके अभाव आदि कारणोंसे हो जाता
 है। इनके अतिरिक्त पोषणिका ग्रन्थि (Pituitary gland), ग्रैवेयक-
 (Thyroid) ग्रन्थि और अधिवृक्क (Suprarenal) ग्रन्थि, इनके अन्त-
 स्थापका हीनयोग होने पर भी मेद बढ़ जाता है। यदि इन ग्रन्थियोंकी विकृति हो,
 तो शान्तरिमें इन ग्रन्थियोंके सत्वका प्रयोग करते हैं।

कषित् हृदय, वृष यक्ष्म आदि इन्द्रियामें मेदापकान्ति (Fatty dege-
 neration) होकर (जीवित घटक नष्ट होकर) मेद संघष हो जाता है।

(४८) आसंघजनन ।

रजोनिःसारक—शुशुदोषघ्न—एमेनगागस ।

(Emmenagogues) ।

जो द्रव्य न्यून, लुप्त, रुद्ध और अनियमित मासिक धर्मको पुनः स्वाभाविक
 नियमानुसार स्थापन करे, उसे आसंघजनन और रजोनि सारक करते हैं। यह द्रव्य
 भोषिगुहामें रक्तको संप्रदीप्त करता है। गर्भाशय आकुंचक द्रव्य (Embolics)
 जो सगर्भा न हो येसी क्रियाओंको सब कर्म मात्रामें दिया जाता है, तब यह भी रजोनि-सारक
 रूपसे कार्य करता है। जो क्रिया जीर्ण विषमश्वर, जीर्ण पाण्डु, अल्प योग्य अति
 निर्बलता आदिसे पीडित हो, उनको लोह, शुभ्रमाषिक कासीस, किनाइन आदि
 पौष्टिक औषधियां आवश्यक वेनी चाहिये। एवं मन्त्रावरोध हो, तो पशुधा भी मिला
 देना चाहिये।

औषधियाँ—सोहागा, हींग, क्वसीस, लोह भरम, एशुआ हाँकबेर, कास
 बोल, आबला, लोप, खिरनी, मेपी, उलट कमल (Abronia Augusta)
 स्ट्रबन्टी, प्राणी, कचनार, कपासमूलत्वक् आदि ।

मुख्य प्रकार—१ साक्षात् (Direct) और २ परम्परा ।

साक्षात् रजोनि-सारक औषधियाँ—विद्युत् प्रयोग, सामल, अरगट, उलट
 कमल, हींग, सोहागा, कपासमूलत्वक् बालचीनी क्वसीस भरम आदि। इन
 औषधियोंकी क्रिया साक्षात् गर्भाशय पर होती है।

परम्परा रजोनि-सारक औषधियाँ—गर्भाशयमें रक्तसंग्रह होनेके लिये
 पैरोंकी निवाये पल्लमें सुबोना, उष्ण पल्लसे इटिस्तान, उदरके नीचे सरसाका सेक,

नामिके नीचे पुष्टिख बांधना, ऊरुके मीसर जननेन्द्रियके पास जलौका प्रयोग तथा एलुआपटित औपधियां आदि । इनके प्रयोगसे गर्भाशयमें रक्त सञ्चय होकर मासिक धर्म आने लगता है ।

गर्भपातक (गर्भाशय सकोचक) औपधियाँ (Ecobolics)—गर्भाशयके सकोचकी वृद्धि करा गर्भस्य सन्तान आदिको बाहर निकालनेवाली औपधियोंको गर्भपातनी कहते हैं । ये औपधियां उरोजना पहुँचाकर गर्भाशयका आकुचन करती हैं । इनमें भी सादात् और परम्परा फलदर्शक, ऐसे दो विभाग हैं ।

सादात् फलप्रदमें किनाइन, बेरियम, सीसा, हिस्टेमीन और पोपयिका ग्रन्थिका पश्चिम माग, ये गर्भाशय पेशीपर क्रिया करते हैं । अगट स्वतन्त्र नाभियों (Motor sympathetic) के सिरे पर कार्य करता है । कुविलासत्व (Strychnine) केन्द्रस्थानपर असर पहुँचाता है । इनमेंसे हिस्टेमीन, अगट और पोपयिका सत्व अत्यन्त प्रबल कार्यकारी और विश्वसनीय औपधियां हैं । सोसेकी वृत्तिका प्रयोग प्राय गमसाव या गर्भपात (Abortifacient) करानेके लिये किया जाता है ।

परम्परा फलदर्शक औपधियां भोगिगुहामें रक्तसंग्रह कराती है । इनमें एलवा और फलसदृश पत्तले विरेचन लानेवाली औपधियां हैं । किठनेक झोमोत्पादक सैल सेवोन (Sarsaparilla) आदि भी परम्परा असर पहुँचाते हैं ।

उच्च औपधियोंका प्रयोग कम मात्रामें किया जाय, तो ये रजोनि सारक क्रिया करते हैं । उनके अतिरिक्त सर्पगन्धा, इशरनूछ (Aristolochia Indica) मुन्गव (Ruta graveolens), सताप (हरमल), सोहागा, गांजा आदिमें भी गर्भ पाति गुण है ।

आविजनन (Oxytocics)—जो औपधियां उत्तेजना पहुँचाकर प्रसव करानेमें सहायता पहुँचावे और प्रसव होनेपर गर्भाशयका आकुचन करावें, उनको आविजनन रूपा दी है । किनाइन अगट, कीडामारीके मूल, गांजाकी कली, मांग, चित्रकमूल, खस्य अस्थानन, पिप्पलीमूल, सेंठ आदि व्यवहृत होते हैं । इनमें रजोनि-सारक गुण भी अनाधिक अंशमें रहता है ।

मासिकधर्मके समय गर्भाशय और दोनों बीजाशयोंमें रक्त संग्रहित हो जाता है । फिर बीजाशयोंमेंसे बीज (डिम्ब) निक्षिप्त होते हैं और गर्भाशयमेंसे रक्त प्रवाहित होने लगता है ।

सार्वभौमिक और स्थानिक अयस्या भेदसे इस मासिकधर्मका क्षीय या हास हो सकता है । जैसे पायडू रोग, अतिकृशता, अतिस्पृशता, गर्भाशय और बीजाशयोंमें स्वल्प रक्तसंग्रह होना आदि कारणोंसे सुवाकस्थामें भी रजोदर्शनमें हीनता आ जाती है ।

सूचना—१ यदि आयु वृद्धि हो जानेसे स्वभावत रज लुप्त हुआ हो,

तो रजोनिःसारक श्रीपथि नहीं देनी चाहिये । यदि श्रीपथि दी जावगी, तो गमाराय प्रदाह आदि रोग उपस्थित होंगे और रज साव भी नहीं होगा ।

१ गमामावस्था और गर्भांशय पर ककसोट होनेपर रजासाव करानेवासी श्रीपथि व्ययद्धत नहीं होती ।

२ रजोनिःसारक श्रीपथि देनी हो, तो मासिकधर्म आनेके पहिले देनी चाहिये ।

मासिकधर्ममें क्रिया और समय भेदसे प्रकार—

- १ अधिक रज साव (Profuse menses) ।
- २ दीर्घकाल स्थायी रज साव (Long menses) ।
- ३ असमय या अतीतकालमें श्रुद्धप्रकार (Premature menses) ।
- ४ विलम्बसे श्रुद्धप्रकार (Delaying or retarded menses) ।
- ५ अल्पकालस्थायी रज साव (Short menses)
- ६ अल्प रजासाव (Scanty menses) ।
- ७ बार-बार रज साव (Again and again menses) ।
- ८ पादिक श्रुद्धप्रकार (Fortnightly menses) ।
- ९ अनियमित श्रुद्धप्रकार (Irregular menses) ।
- १० गर्भांतर्यामें श्रुद्धसाव (Mense during pregnancy) ।
- ११ प्रतिबन्ध सह श्रुद्धसाव (Suppressed Menses) ।

मासिकधर्ममें रजके वर्ण उज्ज्वल लाल (Red), कृष्ण (Black) पायसु (Pale), मलिन वर्ण (Brown), और हरित वर्ण (Greenish) होते हैं ।

इनके अतिरिक्त इस रज सावमें प्रकृति भेद और विकार भेदसे (१) विशुद्ध (Pure blood), (२) जलवत् (Watery), (३) मांसके टुकड़े (Clots) युक्त जमा हुआ, (४) विपचिना (Slimy) (५) दुग्न्ध (Fetid smell) युक्त, (६) सफा हुआ (Putrid), (७) दाह युक्त (Ardent), (८) अम्ल वासयुक्त (Sour smelling) एवं (९) रज्जुवत् (Like string) आदि प्रकार प्रतीत होते हैं ।

किसीको चलाने किरनेसे अधिक रज साव तथा बैठने और शयन करने पर बन्द हो जाता है । एवं किसीको दिनमें अधिक और किसीको रातमें अधिक बरस होता है । किसीको शून्यसहित श्रुद्धसाव होता है । शून्यमें भी किसीको श्रुद्धप्रकारके पहिले, किसीको श्रुद्धप्रकारके प्रारम्भमें, श्रुद्धप्रकारके मध्यमें और किसीको श्रुद्ध बन्द हो जानेपर वेदना होती है ।

इनके अतिरिक्त शिरदर्द उदरस्पीति, कोष्ठमदता, असिसार, ज्वर, कास, अप्समार, नेत्रोशी, हृदयकम्पन, ऐंठन (Cramps), आक्षेप (Convulsions), अर्श, स्वरमंग, यमन, जननेन्द्रियमें दाह, शुष्कता, घृत और जननेन्द्रियमेंसे आवाक-सहित धातुनिर्गमन आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं। अतः इन सबका दूर करनेके लिये लक्ष्य और उपद्रवके निवारणपूर्वक मासिककर्म शाश्वत चिकित्सा करनी चाहिये।

(४९) अत्यार्त्तव अननहर।

स्त्रियोंके मासिककर्म कालमें रजको विकृति होकर अधिक परिमाणमें रज साव (Menorrhagia Menorrhoea) होने और मासिककर्म कालके पश्चात् रक्तसाव (Metroorrhagia) होनेपर विकृतिको दूर कर अति सावका हास या दमन करावे, उनको अत्यार्त्तव अननहर संज्ञा दी है। इस कार्यके लिये शामक औषधियाँ हितकर होती हैं। एवं शीशियोंके काटकी काली राख, ऊनकी काली राख, अशोक दाल, गुलर, केला, आंवला, मांग, गांजा, सालबोस आदि उपद्रव होती हैं।

सूचना—यदि स्थानिक कारखके अतिरिक्त हृदयविकार या महतृण रक्त संग्रहके हेतुसे रजःसाव अधिक होता हो, तो मूल कारखको दूर करना चाहिये।

बोल—(भीजाबाल Myrrh) बोल दृखके गोंद (भीवास-कुन्दर) को आयुर्वेदमें लघु, उष्ण, विपाकमें कटु, कफ-मातनाशक और विशेषतः रक्तहन्ता माना है परन्तु डाक्टरीमें लघ्ना, कफघ्न और रजोनिःसारक तथा अपचन, अत्यार्त्तव, हलीमक (पाण्डु मेद-Chloresis) और इतर गर्भाशयके विकारमें हितकर माना है।

आयुर्वेदने रक्तहन्ता मानकर रक्तप्रमेह, रक्तप्रदर, नासिकासे रक्तसाव और रक्तपित्तमें इसकी योजना की है। डाक्टरीमें रजोनिःसारक रूपसे प्रयोजित होता परन्तु कलकत्ताके सुप्रसिद्ध डाक्टर भी फ्रियन्चन्ड पोप L M D ने लिखा है कि “बोलकी रजोनिःसारक क्षमताके सम्बन्धमें संदेह होता है।”

(५०) प्रदरहर।

गर्भाशयप्रदाहहर अर्थात् गर्भाशयकी शिराओंका प्रदाह (Metrophlebitis), गर्भाशय और बीजकोपनशिकाका प्रदाह (Metrosalpingitis), तथा योनिमाग आदिकी प्लैथिमिकरक्तलाकी प्रदाहनाशक औषधियोंको प्रदरहर कहते हैं। सोहम्स, मांग, गांजा, कुसुम्भ, राल, चौलाईकी पत्र, रसोठ, लाल, गम्भारी, मुलहठी, कमलकेसर, आमुनकी गुठली, पाठा, आमकी गुठली, सुपारी, लोद आदि प्राची औषधियाँ तथा पिचकारी रूपसे फिटकरी आदि।

गर्भाशय आदिके प्रदाहक हेतुसे द्रव प्रदर (Leucorrhoea) होता है; अतः प्रदाहशमन होने पर द्रव प्रदरका निवारण हो जाता है। गर्भाशय के मध्यसे साव

होता हो, तो यह जल सदा पतला और क्वचित् पूय संयुक्त होता है। गर्भाशय प्रीवासरणी (Cervical canal) से होनेवाला साव चिपचिपा श्लेष्ममय और विशेषतः पूयमिश्रित दुर्गन्धयुक्त पीले रंगका होता है। यीमाशय नखिकामेंसे साव पूययुक्त दुर्गन्धवाला, पतला और वेदना मुक्त होता है तथा मगमसे होनेवाला साव गाढ़ सख चिपचिपा होता है।

रोगादि गण—सुभूत संहिताने सोच, पठानी खोच, पलाश, स्थानाक, अशोक, भारंगी, कामफल, पलवालुक (अमावसे कूठ या नेत्रयासा), सखलाकी (सालमे), मजीठ, कदम्ब, साल और केला, ये ११ औपविषा कशी हैं। यह गण मेद, कफ, योनिदोष और विपका नाशक, अविचार आदिक स्वम्मक तथा वर्धकर है।

(५१) दाह प्रशमन ।

दाहशामक—रिफ्रिजरन्ट्स—Refrigerants ।

जो द्रव्य आमाशय, मस्तिष्क हाय-पैराके तल आदिके भीतर और बाहर होनेवाले दाहका निवारण करे, उनको दाहप्रशमन कहते हैं। मुता, प्रवाल, सुम्ब माचि, गन्धक, इलायची, फेणर, श्वेतचन्दन, वनतुलसीके बीज, त्रिफला, मेहरी, केयडा, कमल, कपूर, शिरस, धानका सावा, यम्भारीके फल, तुलाहठी, मिश्री, खज, सौंफ, अनन्तमूल, यशलोचन, अमर, अनन्तमूल, गिलोय, धनिया, पिचपापका, मन्दिना, ककनीके बीज, पपकाठ, दुर्वा, नेत्रयासा, दाहहस्ती, पी, मखन, दूध आदि।

सूचना—इस प्रकारकी औषधिके सेवन कालमें मिर्च, तैल, राई, धरसो आदि दाहक पदार्थ, नमक, आचार, सूर्यके ताप और अग्निका सेवन, तमालू, गांजा, शराब गरम चाय गरम कर्को, गरम-गरम भोजन, गरम मशाला, इत्यादि दाहवर्धक आहार-विहारका विस्तृत, त्याग करना चाहिये वा हो सके ठवना कम करना चाहिये।

नं० ६-७ विचशामकमें और नं० २१ तृष्णाप्रशमनमें कशी हुई औषधियां तथा नं० १० श्वरयकी कतिपय औषधियां दाहको शमन करती हैं।

क्वचित् भोजन कर लेने पर आमाशयिक रस अति तज और अम्ल बन जाता है, तब रोगीका दाह होता है, खहो-खहो अकारें आती हैं। यदि १-२ घण्टेमें वमन न हो जाव, तो ठदरमें मारीपन, अपहर और वेदना उपस्थित होती है। ऐसे समय पर यदि भोजनके पहिले आमाशयमें लष्टा ठमरत शेष न हो, तो भोजनके २० ३० मिनट पहिले या भोजन कर लेने पर सुख अम्लस प्रदान औषधि दी जाती है, जिससे आमाशकी क्लामेसे रससाव न्यून हो जाता है। किन्तु विरोध अम्ल विच वा अपचनके रोगीके देहमें वृषित रस संप्राप्त रहता है, जिससे सुख वमन क्रिया

द्वारा आमाराशयका संशोधन और मोहनके ३ घण्टे पश्चात् चार प्रधान औषधि देनी पड़ती है। यदि आमाराशयकी श्लैष्मिक क्लामें उग्रता अधिक है, तो उसके शमनार्थ, आंवला, कुम्भायड आदि शामक औषधका भी प्रयोग किया जाता है। इस तरह आमाराशय रसकी अम्लता दूर करने पर दाह सहज शमन हो जाती है।

स्वचित् विपप्रकोप या उग्र घस्तुके सेवनसे त्वचामें पित्तकी उष्णता पहुँच जानेसे त्वचामें दाह होती है, समस्त शरीरमें मस्तिष्कमें, हाय-पैराके ठलबोंमें या इतर किसी स्थान विशेष पर दाह मालूम पड़ती है। ऐसे समयपर शीतल जलमें बैठना, रीठा, बेरके पत्ते या नोमके पत्तोंके अलकी मालिश की जाती है। सिद्ध वैश, मक्खन, बकरके दूध आदिसे मर्दन कराया जाता है, या धोखुंयारके गर्मका लेप अथवा चन्दनको जलमें घिसकर लेप कराया जाता है तथा खानेके लिये भी शीतल औषधि दी जाती है।

यदि मिर्च, राई आदि दाहक पदार्थोंके स्पर्शसे स्थानिक दाह होता हो, तो मूत-शैल आदिकी मालिश करनेसे दाहकी निवृत्ति होती है।

अग्नि सेवन, सूर्यके तापका सेवन या उष्ण कष्टके हेतुसे दाह होता हो, तो मौक्तिक, प्रवाल, दूधकी लत्थी या शीतल जल मिला शर्करा आदिका सेवन करना चाहिये।

सुभ्रत संहितामें सारिवादि गण, परुषकादि गण, अञ्जनादि गण और उत्र लादि गण दाहशमनाय कहे हैं —

सारिवादि गण—अनन्तमूल, मुलहठी, रक्त चन्दन पद्मास, गम्भारीफल, महुवेका फल और खस, ये ७ औषधियाँ कही हैं। यह गण तृपा, रक्तपित्त, पित्तन्वर और दाहका निवारण करता है।

परुषकादि गण—पालसा, दास, गम्भारीफल, अनार, खिरनी, निर्मलीफल, शाकफल (सागके फल) और त्रिफला (हरद, बहेवा, आंफला), ये १० औषधियाँ कही हैं। यह गण घात, मूत्रदोष (मूत्रदाह मूत्रकी साखी आदि) और पिपासाका नाशक, हृद्य और रुचिबर्द्धक है।

अस्त्रनादि गण—सुरमा, रघोत्त, नागकेशर, प्रिवंगू, नीलाफर, खस, कमलकेशर, और मुलहठी, ये ८ औषधियाँ कही हैं। यह गण रक्तपित्त, विषदोष और आम्यन्तरिक दाहको शमन करता है।

छत्पलादि गण—नीलोत्तर, सालकमल, कुन्दनी, सुगन्धबाला, नीलाश्वेत कमल, श्वेत कमल और मुलहठी, ये ७ औषधियाँ कही हैं। यह गण दाह, पित्त, रक्त दोष, प्यास, विष, हृद्रोग, यमन और मूत्रांको दूर करता है।

दाह शमन सम्बन्धी विशेष विचार “चिकित्सातत्त्वप्रदीप” द्वितीय खण्डमें किया गया है।

(५२) दीपन ।

अग्नि दीपन—एपिटायस—Appetiser.

जो द्रव्य पचन संस्थाही अग्निसे बढानेमें स्तिक्कर हां, उनको दीपन कहा ही है । आचार्य चारपायिका पचन अष्टाङ्ग समूहके टीकाकार अरुणदत्ताचार्यने उद्धृत किया है कि, "दीपनं त्वग्निहृत्त्वामं कदाचिन्वाचयेत् वा" अर्थात् जो द्रव्य अग्निसे प्रदीप्त करनेवाला हो, तिसमपूर्वक आमका पचन करावे या न करावे, वह दीपन कहाता है ।

दीपनीय गुण—चरक संहितामें पीपल, पीपलामूल, चम्प, वित्रकमूल, अदरक (सोंठ) अम्लयंत्र, काली मिर्च, अजमो, गोईची (मिलावेकी गिरी) और हींग, ये १० श्रीपचिमां कहे हैं ।

सुभूत संहितामें त्रिफला (हरक, बरेका, भांषला), त्रिफादि गुण (गृहत्पंचमूल), गुह्य्यादि गुण तथा आमलक्यादि गुण (भांषला, हरक, पिप्पली, चिचक) को दीपन कहा है । गुह्य्यादि गुणका पचन नं० १० चरकमें किया आम्गा ।

और श्रीपचिमां - धी, सींक, सोया, बिजौर, सन्तरा, नीबू, पनीया, दाल चीनी, जावित्री, जायफल पीरा, फालाओरा, मेथी, लहसुन, प्याज, अजवायन, भांग, शराब, सोमल, अन्नक मस कुलिञ्जन, अम्लकला आदि ।

दीपन श्रीपचि प्राय अम्ल, कटु, लवण, मधुर रसप्रधान होती हैं । अम्लरस वातनाभियोपर किया दर्शाकर कार्य करता है । कटु रस विरोधतः पाचन होता है । लवणरस मांसका शोषन करके छाम पहुँचाता है । मधुर रस (घृत, तैल आदि) पाचक रस अत्यादक पदकोंके बलाकी वृद्धि करता है ।

रसवैशेषिक सूत्रकारने दीपन गुणको शुक्लो वासु प्रदान कहा है तथा ये द्रव्य पित्तप्रधान रस और गुणोंकी वृद्धि करते हैं । आमाराशयगत वातबाहिनिर्वा उभे-जित होकर आमाराशय रससाध अचिक्र करती हैं (पाचन द्रव्य आमाराशय रससाधको उभ बनाती है) अग्निमें योषा-योषा घृत-तैल आदि डालने पर अिस तरह वह प्रवृत्त होता है उस तरह मर्मादिन घृत, तैल और तैलप्रधान द्रव्यके सेवनसे पचनाग्नि प्रदीप्त होती है । जो द्रव्य रुचिकर होते हैं, वे भी खालासाव और आमाराशय रससाध अचिक्र कराते हैं । भांग सोमल, अन्नक आदि वातनाभियोंके उत्तेजक होनेसे आमाराशयके रससाधको बढाते हैं ।

दीपन क्रियाकी सिद्धि तब होती है, जब आमाराशय रिक्त हां, तथा पहिलेके आहारका पचन होकर शीघ्र वृद्धि हो गई हो । यदि अपचन हो तो पाचक श्रीपचि देनी चाहिये । शीघ्र वृद्धि न हुई हां तो उसके लिये प्रवृत्त करना चाहिये । अन्नकी वृद्धि होने पर दीपन श्रीपचिका कार्य सरलतापूर्वक हो सकता है ।

ज्वर, पच्यमान शोथ, कफप्रधान कास, श्वास आदि अनेक रोगोंमें अग्निमान्द्य हो जाता है। उन रोगोंमें पहिले उन रोगोंकी नाशक औषधि लेनी चाहिये। रस, रक्त, मांस आदि चातुर्णै निर्मल हैं, तो उनका बल बढ़े, ऐसी योजना करनी चाहिये। दीपन पौष्टिक औषधि (विशेषत दीपन-पाचन-सिद्ध रसप्रधान), लघु पौष्टिक आहार और आवश्यक ध्यायाम द्राग पालुओंको लाभ पहुँच सकता है।

डाक्टरी दृष्टिसे विशेष विचार नं० ५४ दीपन-पाचन गुणके साथ किया जायगा।

(५३) पाचन ।

डाइजेस्टेयट्स—डाइजेस्टिक्स—Digestants—Digestives

पचत्यामन्नं वह्नि च कुर्वीदु यत् तद्धि पाचनम् ।

नागकेशरषट् यिद्याच्चित्रो दीपनपाचन ॥

जो द्रव्य घाम (अपक्व आहार रस) का पचन करता है किन्तु अग्निको प्रदीप्त नहीं करता, उसे पाचन कहते हैं। जैसे नागकेशर। पचनगुणके साथ जो द्रव्य जठराग्निको प्रदीप्त भी करता है, उसे दीपन-पाचन सहा दी है।

अन्त्रमें चोम होकर अतिसार होनेपर प्राणी औषध सेवन करायी जाती है। परिश्राममें अनेक बार चोम शमन होकर निर्मला और वृद्धोंके अन्त्रमें आम संघर्ष हो जाती है। अन्त्र कुण्डलीकी वातनादियाँ संचि जानेस स्थान-स्थानपर आकुचन हो जाता है। जिससे आहार द्रव्यकी योग्य गति नहीं होती। मल बकरीकी मँगनी या घोड़ेकी स्त्रीदके समान बन जाता है। मलके चारों ओर आम लगा रहता है और आमविषका शोथ भी रक्तमें होता रहता है। ऐसी अवस्थामें आमविषघ्न, घाम पाचन और अम्बको सफल बनानेका काय दीपनगुण प्रधान औषधिसे नहीं होता। उसके लिये पाचन गुणकी ही आवश्यकता है। श्री शाङ्गधराचार्यने इस गुणवाले द्रव्योंमेंसे नागकेशरका उदाहरण दिया है।

चरक संहितामें दीपनीय गणमें ही पाचन औषधियाँ लिख दी हैं। अतः उस ग्रन्थमें दीपन, पाचन, ये दो विभाग नहीं किये। सुभृत संहितामें घचादि, हरिद्रादि और मुस्तादि गण (वीनों नं० ७० स्तम्भशोषणमें), पिपल्यादि गण (नं० ९ कफदोषणमें), दशमूल तथा वृहत्यादि गण (नं० ९ कफदोषणमें), इन सबको पाचन कहा है। यद्यपि ये सब दीपन-पाचन मिश्रित द्रव्य हैं।

और औषधियाँ—महा, सत्रीलाय, यवचार आदि अनेक सोम्य घार, मिस्तावा, संधानमक, समुद्रनमक आदि। पाचन औषधि उष्णशीर्ष विशेषत कटु, अम्लारस प्रधान होती हैं। चार और लवण भी पाचन गुण दशाति हैं।

डाक्टरीमें पेप्सिन (पराह आदि पशुओंके आमाशयमेंसे प्राप्त पाचन द्रव्य) पपैन (अर्घपक्व परणककीके दूधका सत्व), मवसत्व (Ext. Malt.) को पाचन कहा है।

पाचन द्रव्य चक्रदत्ताचार्यके मतमें अग्नि वायु गुण प्रधान हैं। रसवैशेषिक सूत्रकारने आग्नेयगुण प्रधान दर्शाया है। जो द्रव्य आमाशय रसको धीम बनावे, वे आमका पचन कर सकते हैं। जब आमाशयमें अत्यधिक भोजनसे अपचन हुआ हो, आमाशयकी शैथिल्यक कक्षामें चिरकारी प्रदाह होनेसे आमोत्पत्ति अधिक होती रहती हो, तब औषधामक और पाचन गुण युक्त या फेसल पाचन गुणयुक्त द्रव्यके सेवनकी आवश्यकता रहती है।

पाचन गुण प्रधान तथा दीपन-पाचन गुण प्रधान आदि औषधियोंका कम प्रयोग करना चाहिये। इस सम्बन्धका विशेष विचार न० ५४ दीपन-पाचनके डाक्टरी विवेचनमें किया जायगा।

अनेक बार किसी विशेष द्रव्यके अपचनसे स्वास्थ्य विगड़ता है, तब उस द्रव्यके विरोधी द्रव्य (दोषशामक द्रव्य) द्वारा उसके विकारको दूर करना चाहिये। जैसे अम्लरसजन्य विकृति होनेपर चार सेवन। चारजन्य विकार होनेपर अम्लरसका सेवन आदि। इसके कुछ उदाहरण रसवर्णनके अन्तमें दिये हैं।

(५४) दीपन-पाचन ।

स्टमचिक्स एण्ड एपेटाइजर्स—Stomachics & Appetisars.

दीपन और पाचन, दोनों गुण जिन द्रव्योंमें हों, उनको दीपन-पाचन कहते हैं। चरक संहितामें कई दूर दीपनीय तथा सुभूत संहितामें कई द्रुप पिप्पल्यादि गणमें दीपन और पाचन दोनों गुण दर्शाये हैं।

और औषधियाँ—वास मस, कुचिला, करंजी, विनाइन, सतौना, अतीत, चिरायता, यच, सुपर्ण चम्पाकी छाल, विशकमूल कालानमक आदि लवण, सज्जीलाट, नीलागिरी तैल, पीपरमेण्ड तैल, हींग, इन्द्रजी, प्रवाल, शंख, बरगिका, शालचीनी तैल खींगका तैल, नीसादर आदि।

आमाशय गतिपर कार्यकारी औषधियाँ—कुचिला, कुचिला सत्व और विशकमूल आदि चरपटी, दीपन-पाचन औषधियोंके सेवनसे आमाशयमें भोजन किया प्रबल होकर भोजन तत्पर पचन हो जाता है।

आहार-मत्स्यकी शोषण क्रियाको बढ़ानेवाली औषधियाँ—वास मस, नीसादर आदि जो औषधियाँ यकृत और अन्त्रकी क्रियापर काम पहुँचावे हैं, वे ही परम्परा आमाशयकी शोषण क्रियाको सबल बनाती हैं। इसी हेतुवे यकृत पित्त निवारक और विरेचन औषधियाँ आमाशयकी शोषण क्रिया पर उपकारक होती हैं।

सोमल, वास, लोह मस, पारदपट्ट औषधियाँ, ठसारेरेकन्द, कच्छुनाम आदि औषधियाँ आमाशय कलाको उत्तेजित करती हैं।

सोहागा, गन्धक, नोछागिरी तैल आदि आम्लाशयकी फेनीम्वन क्रियाको निर्दोष बनाती हैं। इसी हेतुसे अपचन नष्ट होता है।

वात्रा मधुर कृक और चार रस लाला खावकी कमी और आम्लाशय रसकी वृद्धि कराते हैं। मोजनके साथ किये हुए अम्ल तक्र और अम्ल रस आम्लाशय रस साथ कम तथा लालाखाव अधिक कराते हैं।

बराटिका आदि मत्स, अफीम बर्फ, सुरासानी अजवायन, आम्लाशय रसकी अधिक उत्तेजना होनेपर उग्रताका हास करा आम्लाशयको साम पहुँचाती-हैं। अत ये सब विविध वेदनायुक्त अजीर्ण रोगमें व्यवहृत होती हैं।

दीपन, पाचन औपधियां क्षुधा प्रतीत करती हैं किन्तु यह आम्लाशयकी विशेष अवस्था और औपध परिमात्रपर निर्भर है। आम्लाशय कला स्वरूप उत्तेजित होने पर क्षुधाका उद्रेक हाता है अपेक्षाकृत अधिक उत्तेजना होनेपर क्षुधा विरोहित हो जाती है और अत्यन्त उत्तेजना होनेपर उष्ण और घमन उपस्थित हो जाती है। सामान्यत स्वस्थाप्रस्थामें आम्लाशय स्वरूप उत्तेजित होनेपर आम्लाशयका रससाव बढ़ जाता है और अधिक उत्तेजना होनेपर आम्लाशयका रससाव बन्द हो जाता है।

दुर्बलताजन्य अमिमान्द (Atonic Dyspepsia) में क्वचित् उत्तेजना होनेपर क्षुधाका उद्रेक हो जाता है।

जब शिवा कोमल स्निग्ध हा, तब सोमल, वात्र और चरपरी औपधियां सामदायक होती हैं। परन्तु आम्लाशयमें उग्रता आ जानेसे जब शिवा फट्ये हुई रक्तवण युक्त प्रतीत होती हो, तब ये सब औपधियां उग्रता बढ़ा देती हैं। परिणाममें क्षुधाका अधिक हास हो जाता है, और उष्ण प्रारम्भ हो जाती है।

पित्ताशय शूलके आक्रमणके पूर्वकालमें आम्लाशयमें उग्रताकी वृद्धि होती है और यथेष्ट क्षुधा लगती है और मोजन अचिपूर्वक क्रिया जाता है। फिर उग्रता अधिक होनेपर मोजनके पहिले अति क्षुधाका भास होता है, परन्तु योका-सा मोजन करनेपर क्षुधा क्षोप हो जाती है। ऐसी अवस्थामें चरपरी औपधियां साम नहीं पहुँचा सकतीं प्रत्युत हानि पहुँचाती हैं। ऐसे समयपर आम्लाशय शामक प्रवाल, शुक्ति, बराटिका, शंख मत्स, अवासाद, इतर चार और सौंफ आदि औपधियां उपकरक हावी हैं।

आम्लाशय क्रिया प्रकार -

१ पाचक रस निःसरण करा युक्त द्रव्यको शोषण और समोकरण योग्य बनाना।

२ आम्लाशय की गति द्वारा आहार द्रव्य अणु मणु रूपमें विभक्त होकर उनका आम्लाशय रसमें सम्मिलित होना।

३ आहारके कुछ अंशका आमाशयकी पचन क्रिया द्वारा शोषण योग्य होनेपर शोषित हो जाता।

आमाशय रसस्त्राव पर कार्यकर आहार—मोजनके पहिले चारमिष्ठ पदार्थका सेवन करनेसे आमाशय रस अधिक निरुणता है। मोजनके प्रारम्भमें किञ्चित् नाबूके रस, सैमानमक और अदरकके सेवनसे भी रसस्त्राव अधिक होता है। जल मिश्रित स्वल्प शयनसे भी आमाशयमें उत्तेजना प्रा जाती है।

अम्लरस मिश्रित चार सेवनसे मुखमें लालास्त्राव अधिक होता है। लालास्त्राव विगप होनेपर भोजन सुखाद्यु लगता है एवं अस्थी तरह आहारका खानेसे लाला ग्राव और आमाशय रस निःसरणमें भी वृद्धि होती है।

अजीर्ण रोगके निर्बल आमाशय यालोंको चाहिये कि, भोजनके प्रारम्भमें शुष्क पदार्थका सेवन करें। जिससे आमाशयमेंसे पाच्य मात्रामें रसस्त्राव हो, अरुण रसके कि तरह पदार्थके अधिक सेवनसे रसस्त्रावमें न्यूनता होती है।

निर्बल पचन शक्तिवालोंका भोजन कर लेने पर जल्दी खलपान नहीं करना चाहिये। कमसे कम भोजनके १ घण्टे बाद जल पीना चाहिये।

तीव्र रोगोंके अन्तमें सर्वांगिक क्षीणतामें एष वृद्धावस्थाजनित निवसतामें (आमाशयको उत्तेजित करनेसे भी) यथोचित रसस्त्राव न होता हो, तो भोजनके प्रारम्भमें नीबू रस और नमकमिश्रित अदरक, भोजनके अन्तमें तक्र, भोजनके साथ लहसुन, अनारदाने और पोक्ष्णोत्तरी घटनी या भोजनके दो-तीन घण्टे बाद नीबूका रस या सन्तरा आदि पदार्थका रस सेवन करना चाहिये।

जब अपचन रोगमें लट्टो बकार घाना दाह, प्यास आदि लक्षण उपस्थित हो, तब भोजनके दो-तीन घण्टे परचात् पोषा सोबा या इतर चार अथवा शंखपदी देनेसे उदरमें मारीपन, लट्टी बकार, दाह और बेचैनी आदि दूर होकर भोजन सरलतासे पचन हो जाता है।

डाक्टरी विशेष विचार

आहारका संग्रह करनेवालोंमें आमाशय मुख्य स्थान है। यह बेहके लिये उपयोगी हो, उस तरह कुछ पचन द्राव और कुछ यान्त्रिक रीतिसे तरल और अदरक तरल आहारका परिषर्जन और दमन करता है। कठोर आहार आमाशयमें कुछ घण्टेभर रह जाता है, इस समयके भीतर आमाशयस्य मांसपेशियाँ आकुंचित होती हैं और परिचालन क्रिया द्वारा आहार तरल बनता जाता है और यह मुद्रिका द्वारा प्रहरीके भीतर फेंका जाता है। हार्दिकदारसंकोचनी, और मुद्रिकादारसंकोचनी, दोनों पेशियोंके दबाव द्वारा आमाशयमेंसे आहार रसको बाहर निकाल दिया जाता है। जब आहार द्रव्य अमुक पचनावस्थाको प्राप्त होता है, तब प्रतिफलित क्रिया होकर

मुद्रिका द्वार खुलता है। और आहाररसका ग्रहणीमें प्रवेश होता है किन्तु, जो - आहाररस अन्नमें जाने योग्य न बना हो, उसे आमाशयका अन्तर्भाग रोक लेता है।

आमाशयपर अंकुश रखनेके लिये दो प्रकारकी नाभियाँके तन्तु फैले हुए हैं, १ प्राणदानाकी (Vagus or Augmentor nerve), यह आमाशयकी आकुंचन क्रियाको उत्तेजित करती है २ आशयिकीनाकी (Splanchnic or inhibitor nerve), यह आमाशयकी गति या उत्तेजनाको रोक करता है। इस इन्तरे सब परिवर्तन नाभियोंकी उत्तेजना द्वारा आमाशय गतिको वृद्धि और स्वतंत्र नाभियोंकी उत्तेजना द्वारा, सब गतिका निवारण होता है। यह एक स्वयं संचालित अवयव है, जो रसलाव और गतिका संरक्षण करता तथा आमाशयकी पचन क्रिया नियमित करता है।

आमाशयिक रससे होनेवाली क्रिया —

१ पेट्टिक पचन (Peptic digestion) — इस क्रियाके लिये पेपसिन द्रव्य और लवणाम्ल सावकरी सहायता चाहिये। यह प्रथिन पचनमें सहायक है, लवणाम्लके अभावमें इसका महत्व नहीं है। क्योंकि, मांस अविच्छिन्न (पचन क्रिया रहित) शेष रह जाता है।

२ अपचयरोधक क्रिया (Anti septic action) — यह क्रिया अति महत्वकी है। क्योंकि आमाशयका अक्षररुध अनेक जातिके कीटाणुओंको नष्ट कर डालता है। प्रसिद्ध स्ट्रेप्टोकोकाईका मो नाश हो जाता है। एवं प्रसारिका, मधुरा, विद्युच्चिकाके कीटाणु मा न्यूनाधिक अंशमें आमाशयरस द्वारा नष्ट हो जाते हैं। यदि आमाशयके लवणाम्ल सावका अभाव हो तो लघु अत्रके द्रव्योंका क्षारीयपन बढ़ जाता है। ऐसी स्थितिमें ग्रहणी बेसिलसकालाईके आक्रमणके अनुकूल बन जाती है। सामान्यत लघु अन्नकी ओरपे स्ट्रेप्टोकोकाई द्वारा तथा नीचेकी ओरसे बेसिलस कोलाई द्वारा प्रभावित हो जाता है। यह परिवर्तन लवणाम्लके अभावसे आहार द्रव्यका पोष्य भेदन न होनेसे होता है। फिर एन्थिम्बिक कक्षापर घूम होकर चिरकारी अत्र प्रदाहकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

३ रक्तरचना (Haemopoiesis) — इसके २ विभाग हैं।

अ लोहशोषण (Iron absorption) — सामान्यतः भोजनमें पूरा लोहद्रव्य रहता है, जो रक्तमें रक्तरञ्जक कुछ अंशमें पोषण करता है। लवणाम्लके अभावमें आहार और उसके अनुवर्ति आहार लोहका उपयोग अपूर्ण होता है। यदि रक्तकी कुछ हानि होती है ता लोहकी मात्रा आहारमें शोषित होती है, यह लोहके योग्य अनुपातकी रक्षा नहीं कर सकती। परिस्थाममें लघु रक्तानुओंकी उत्पादनय पाण्डु उपस्थित होता है। लवणाम्लके अभावसे आहार लोहका अधिक अनुकूल

परिचर्चन करनेमें अमरप्रलता मिलनेसे तथा लोहशायसमें धन्त्रकी असमर्थता हो जानेसे स्वास्थ्यका पतन होता है।

आ रक्तरंजन (Hæmopoietin) —की उत्पत्ति आमाशयरसक मीठर आन्तरिक प्रतिनिधि (Intrinsic factor) जो आहारस्य प्रथिन (बाह्य प्रतिनिधि Extrinsic Factor) पर परिपक्व रक्तद्रव्य बनानेकी क्रिया करता है, जो मज्जामें रक्तारुणिके परिपाकके लिये उपयोगी है। इसके अभावमें शक्त (Pernicious) पाण्डु उपस्थित होता है।

४ नाडीजनकी (Neuropoietin) की उत्पत्ति—आमाशयरस जिस तरह रक्तजनकी उत्पत्ति कराता है, उस तरह केन्द्रीय नाडीरंस्थाके सामान्य पोषणार्थ नाडीजन भी पैदा करता है। यह मस्तिष्कके स्वभावका है और आमाशयरसमें इसका अभाव होनेपर मधुमन्थाकाण्डकी अपकृति होती है।

आमाशयरसके उत्पत्तिवर्द्धन हेतु—आमाशयरसकी उत्पत्ति पर प्राणदानाडी अंकुश है, जो रक्तसायी सूत्रों द्वारा दमन करती है। प्राणदानादियोंके परिधिमान्तके धिरेकी उत्तेजनाके अनुस्यू आमाशयिक रक्तसाय होता है। आमाशय रिक होनेपर भी अनाडीकी सुगन्धमात्रसे आमाशयके मीठर रक्तसाय होने लगता है। स्वाद और सुगन्धमात्रो नाडीकी उत्तेजना होनेसे प्राणदा नाडीके रक्तसायी वस्तुपर प्रतिबन्धित क्रिया होती है। इस तरह उत्पन्न रक्तसायको मानससाय (Psychic secretion) संज्ञा दी है। गन्धुओंमें भी फल्योंको इनली आदि पदार्थोंको देखने मात्रसे मुन्धके मीठर लालासाय होने लगता है, यह भी मानस साय है।

इस तरह मानस उत्तेजना द्वारा आमाशय साय और लालासाय, दोनोंकी वृद्धि होती है। यदि सूचीबूटी सत्व (Atropine) आदिके प्रयोग द्वारा प्राणदा नादियोंका पक्षवध करमा माय, तो रक्तसायी सूत्रोंकी उत्तेजना नहीं होती एवं रक्तसाय भी नहीं होता। यह साय आमाशयिक पचनका प्रारम्भ करता है, जो आमाशयमें आगे खाद्योत्पत्ति द्वारा स्वयमेव पूर्य होजाता है। इसलिये यह विदित होता है कि, अतिरिक्त सत्व कृतिपय रासायनिक या विशेष प्रकार की उत्तेजनाअ आमाशयिक है। व्यवर्धमें जब मुत्रिका द्वाराकी श्लैष्मिक कलाकर सत्व रक्तके मीठर स्रवित होता है, तब आमाशयका साय बढ़ जाता है। यह सायोत्तेजनाकी उत्पत्तिके लिये आर्योपित होता है, जो कृतिपय आहारसे उत्पन्न होता है और जो मुत्रिका द्वाराकी श्लैष्मिक कलापर क्रिया करके गैस्ट्रिन (Gastrin) अर्थात् आमाशयरसके उत्तेजक द्रव्यकी रचना करता है, जो रक्तसे खाया जाता है और वह अल्पिकेपर रासायनिक उत्तेजन क्रिया करता है। कृतिनेक आहार, मुख्यतः मांससत्व, घोरना आदि रासायनिक उत्तेजक द्रव्यकी उत्पत्तिको उत्तेजित करते हैं। और अल्पिकेकी सफेदी, रोटी और सामान्य लक्ष्यरस ऐसी क्रियाकी उत्पत्ति नहीं करते।

आमाशयरस स्नायवर्द्धक औषध क्रिया—इसके ५ प्रकार हैं -

१ मानस स्नाय (Psycho Secretion)—मुखकी नाभियोंकी उच्चैजनाकी प्रतिफलित क्रिया द्वारा उत्पत्ति जो रुचिकर आहारकी वातालाप या दशन द्वारा मुखमें रहे हुए गंधग्राही या स्वादग्राही नाभितन्तु उच्चैजित होते हैं। जो लुघाकी माषनाको प्रदीप्त करते हैं और आमाशयमें रसस्नावकी वृद्धि कराते हैं, इस प्रकारके द्रव्य रुचिकर आहार या पेय हैं। तिक और सुगन्धयुक्त औषधियां भी मोजनके पहिले मानसस्नावको उच्चैजित करती हैं, जिनकी प्रतिफलित क्रिया स्वादग्राही नाभियों द्वारा होती है।

२ प्राणवा नाभियोंके रसस्नावी सूत्रोंकी उत्तेजना द्वारा—पाइलोकॉर्पिन, एसिगोलोसिन और मस्केरिन आदि।

३ आमाशय स्कन्धकी प्रत्यक्ष उत्तेजना द्वारा—शराब आदि।

४ सुत्रिका द्वाराकी उत्तेजना द्वारा—कृत्तियम मांसरस, घसाम्ल, सोरवा आदि, यसायनिक उत्तेजकके सदृश कार्य करते हैं।

चार—मोजनके पहिले सेवन करानेपर आमाशयस्नाय बढ जाता है।

आमाशय रसस्नावका हासकरनेवाली औषधियाँ—इसके ५ प्रकार हैं।

१ ग्राही औषधियाँ—अफीम, गैलिक प्रधान औषधियां (लोय, मांशूख आदि), पातुओके लवण आदि।

२ प्राणवात्नाडीके सिरेका पक्षवध करानेवाली औषधियाँ—एट्रोपिन, सुषामूली, घत्रा आदि।

३ जमनेवाले तैल और घसा।

४ चार—ये कृत्तिय प्रकारके अजीर्णमें मुग्धाम्ल और यसाम्लसे उत्पन्न अत्यधिक अम्लताको उदासीन बनानेके लिये ब्यबहृत होते हैं। इसके सेवनसे पहिले आमाशयरसका हास होता है; किन्तु आरोग्य होनेपर ग्रन्थियों अधिकतर अम्लता स्नाव कराती हैं (अतः इसका सेवन सम्हालपूर्वक करना चाहिये)

५ आमाशय स्कन्धपर प्रत्यक्ष क्रिया—पहिले दोमकी वृद्धि हावी है। फिर आमाशय रसस्नावका हास होता है।

इसके अतिरिक्त जिस तरह मानस प्रमाथ द्वारा स्नाय बढता है, उसी तरह मानस आपात, चिन्ता आदि द्वारा स्नाय घटता है। बर्षमल भी स्नावका हास कराता है। मोजनके पहिले या मोजनके बीचमें बर्षजलका पान करना, यह पचन क्रियामें कुछ बाधा पहुँचाता है।

आमाशयिक रसकी रचनापरिवर्तक औषध—आमाशयरसमें विकृति आनेपर अपूर्ण वा अत्यधिक (Hyperchlorhydria) भी होता है। कमी अनेक परिस्थितियामें लयबाम्लकी न्यूनता होती है और सामान्य स्थितिमें कुछ भी

लक्षण प्रकाशित नहीं होता। लवणाम्लके अभावमें आमाशयके क्रीमणुनाशक द्रव्यका हास होता है और इसलिये आमाशयरसमें लवणाम्लका अभाव (Achlorhydria) पचनसंस्थाके ऊपरके हिस्सेकी रोगविष संचारके अनुद्भूत बनता है। आमाशयमें फर्कसाट आदि रोगोंके हेतुसे या श्लेष्माका अधिक संग्रह होनेपर यह अप्रसृतता उपस्थित होती है। परिणाममें चिककारी आमाशयप्रदाहकी संपत्ति होती है। बुराबस्था, पातक पाण्डु और अन्य अनेक रोगोंमें तथा अन्त्रमेंसे क्षारीयसावका विपरीतागमन (Regurgitation) होनेपर ऐसी स्थिति प्राप्त होती है।

आमाशयिक मण्डले पीकितोंमें सामान्यतः अत्यधिक रसुसाव होता रहता है। अधिक ग्रासका चिकित्सा चार द्राय होती है। डान्टरीमें मेगनेशियम ऑक्साइड उत्तम माना है, क्योंकि वह कार्बोनिक एसिडकी उत्पत्ति नहीं कराता जो एसिड आमाशय सावकी उत्पत्तिको बढ़ाता है केलशियम और मेगनेशियम-कार्ब इसके पश्चात् आते हैं, जो सोडाबाईकार्ब और पोट्रशियमकी अपेक्षा सर्वश्रेष्ठ हैं। वे अम्ल विरोधा कइते हैं। दूध भी मूत्रवान अम्लविरोधी और अम्लको उदासीन करनेवाला है।

आमाशयिक गतिके परिवर्तक श्रीपथ—आमाशयकी गति बड़ी हुई हो, ऐसे समयपर आमाशयकी शैथिल्यकलापर शामक अक्षर पहुँचानेवाली श्रीपथियोंका प्रयोग करना चाहिये। जो चेष्टानाशी यन्त्रिणा द्राय क्रिया करता है, जो आमाशयशामक (Gastro Sedatives) द्रव्य हैं वे आमाशयकी शैथिल्यकलापर शामक अक्षर पहुँचाते हैं। कोकीन और वमन श्रीपथ, सूचीबूटीसत्व, एड्रेनलिन आदि बड़ी हुई गतिको कम कराते हैं। पहिले प्रायश्चानाशियों पर शामक अक्षर और फिर परिवर्तन नाशियोंपर उष्णक अक्षर पहुँचाकर कार्य करते हैं। अफीम मांसपेशियोंपर आकुंचन क्रिया करके और मुखिका द्वारकी पेशीका आकुंचन करके आमाशयकी गतिका हास कराती है। विस्मथका अद्रवीभूत लवण, मेगनेशियम और केलशियम आवरणकी रक्षा और आमाशय गतिका हास कराते हैं। कोकीन, हाइड्रोशैथेनिक अम्ल और क्लारोफार्म आदि श्रीपथियाँ संवेदना नाशियोंके सिरेपर शामक अक्षर पहुँचाती हैं और प्रतिनखित क्रिया द्राय आमाशयगतिका हास कराती हैं।

अम्ल और क्षारका अक्षर आमाशयकी गतिपर अनुमनात्मक मूत्रवान होता है। आमाशयमें मुक्त अम्लकी विद्यमानता दार्दिक क्षारका आकुंचन कराती है, मुखिका द्वारकी गति बढ़ाती है, मुखिका द्वारको संकोचक पेशीको खोल देता है और आमाशयिक द्रव्यको ग्रहणीमें प्रवेश करनेकी अनुमति देती है। ग्रहणीमें मुक्त अम्लकी विद्यमानता मुखिका द्वारको घट्ट करनेके लिये प्रतिनखित क्रिया कराती है और ज्यत्क वह अन्त्रके रसद्वारा उदासीन न हो पाय, ठकठक नहीं खुलता। यह भी विनिवदुभा है कि, मुखिका द्वारकी आकुंचक पेशीपर आमाशयकी अपेक्षा ग्रहणीका अधिक

प्रभुत्व है। यद्यपि क्षोमात्पादक द्रावक मुद्रिका दारका आकुंचन करता है, तथापि यह क्रिया जब घमन द्रव्यका प्रयाग होता है या जब आहार द्रव्य क्षोम उत्पन्न करता है, सब ही होती है, अन्य समयमें तो ग्रहणीका ही अधिकार अधिक रहता है। जब आमाशय स्वयमेव यमन द्वारा द्रव्यका परित्याग करता है, तब हार्दिक दारकी आकुंचनपथी खुलती है और मुद्रिका दारकी बन्द होती है।

चार नियमानुसार आमाशयको रिक्त होनेम विलम्ब करता है, किन्तु फिर भी द्रव्य जब चारयुक्त, अम्ल या उदासीन होते हैं, तब उसी वेगसे रिक्त होते हैं।

५. घातहर औषधियाँ (Carminatives) — यह क्रिया निम्नानुसार १ प्रकारसे होती है।

अ निममित मयम क्रियाको उत्तेजित करके।

आ हार्दिक या मुद्रिका दारका आकुंचन पेशीको शिथिल करके।

इ वातनाभियाँ या मांसपेशियोंको उत्तेजित करके।

इसके लिए उष्णद्रव्यगुणित तैल उत्तम औषधियाँ हैं। सुगन्धवाले द्रव्य, सुगन्धवाले कड़ुवे द्रव्य, कंफूर, पीपरमेण्ट, स्त्रिस्ट आदि आमाशयमेंसे गैसको निष्काशनके लिये प्रयोजित होते हैं।

हासरीम्ल अनुसार कड़ुवे द्रव्योंमें आमाशय पौष्टिक (रससाय बर्द्धक और पाचक) गुण अधिक है। यद्यपि इनमें विशेष गुण मिस्र-मिस्र हैं, तथापि ये सब आमाशय पौष्टिक गुणवाले हैं। उदाहरणार्थ कुचिला वातनाभीपर विशेष कार्यकारी और विघनाहन चरुण है। कड़ुवी औषधियोंमें २ प्रकार हैं।

१ सामान्य (सुगन्ध रहित) कड़ुवी औषधियाँ—केलाभा, क्वासिया, केन्थन, चिरायता, काँटेवाले करंबके फल आदि।

२ सुगन्धयुक्त कड़ुवी औषधियाँ—इसरमूल (Serpentary), संतराके फलकी छाल आदि उष्णद्रव्यगुणित औषधियाँ।

(५५) तृप्तिजन ।

अठचिनारान—रोषन—भक्तद्वेपहर

जो द्रव्य तृप्ति (अन्नको इच्छा न होना—अरुचि)को नष्ट करे, उसे तृप्तिजन कहा दी है। श्लैष्मिक प्रकोप होनेपर मोजन न करने पर भी उदर सूब मय दुग्धा प्रतीत होना उदरमें मारीपन, आलस्य, मलायरोध, मुँहमें फीकापन आदि लक्षण मालूम होते हैं। मुँहमें स्वादु अन्नका प्रास डालने पर भी यह भेत्वाडु लगवा है। उदरमें पाचन, शोषण और अमिसरस्य क्रिया मंद होनेपर, ऐसा होता है, जिससे तृप्तिजन अर्थात् पाचन (अधिक रसोत्पादक), शोषण और अमिसरस्य बढ़ानेवाली औषधियाँ व्यवहृत होती हैं।

स्वचित् आमविष या क्रीणाणुषिष यदने पर मी उदरमें मारीपन आ जाता है। एसी स्थितिमें विषय श्रीपथ प्रयोजित होती है। कभी कभी शोफ, चिन्ता आदिसे घुषा नष्ट हो जाती है। इन सब प्रकारोंका विशेष वर्णन चिकित्सावत्त्वप्रदीप द्वितीय खण्डमें राग न० १-अरोचकमें किया है।

सृष्टिघ्नवर्ग—अरक संदितामें सोंठ, चित्रकमूल, पच्य, वायविद्ध, मर्वा, गुडची वच, नागरमोषा, पिप्पली, पाटल, (बुद्धवाग्मटके मताअनुसार पटोल), ये १० श्रीपथियां मिली हैं।

सुभ्रुत संदितामें बृहत्यादि गण, पिप्पल्यादि गण, सुरसादि गण (तीनां का वर्णन नं० ९ कन्दोपजमें), पटोलादि गण, गुह्य्यादि गण (इन दोनोंका वर्णन नं० ९० अरुजमें) तथा आमलन्धादि गण (आंवला, हरब पिप्पली और चित्रकमूल), इन सबको अरुचिनाशक कहा है।

और श्रीपथियां—संतरा, नीबू, अनारदाने आदि अम्ल फल, संधानमक लगा हुआ अदरक और नीपूरस, बन्धनाग, चांगेरी, बज्र मम्म, सोमल, गन्धक, रससिंदूर, कपूर, पीपरमेंटके फूल, नीलगिरी वैल आदि।

(५६) प्राही।

संग्राहक—पुरीयसंग्रहणीय—एस्ट्रिंजेन्ट्स—Astringente

शोषन पाचनं यस्यादुष्णत्वाद् प्रयशोपकम्।

प्राहि तस्य यथा शुबली जीरकं गमपिप्पली ॥

जो द्रव्य अग्नि मदीपक और आम आरिका पाचन करनेवाला हो तथा उष्ण वीर्यके हेतुसे शोष, घाट और मल आदिके पक्कापनका शोषण करनेवाला हो, उसे 'प्राही' कहा दी है। उदाहरणार्थ सोंठ, जीरा, गन्धोपल।

प्राहि द्रव्योंका यहां उष्णवीर्य कहा है किन्तु सुभुताचार्यने पाठगुणभूषित माना है। क्योंकि, वायुका कार्य शोषण करना है। बिचार मेरका समाधान करनेके लिये शार्ङ्गधर संदिताके टीकाकार भी० आत्मस्तलाचार्यने लिखा है कि, प्राही द्रव्योंका २ प्रकार है। १ जो द्रव्य ग्रहणमें आमका पचन कर, जठरगतिमें मदीपक कर वहांपर रहे हुए द्रव्यका शोषण करता है, वह उष्ण संग्राहक तथा जो द्रव्य अतिशय आदिमें पक्वमल आदिका स्तम्भन करके संग्रहण (धारण) करता है, उसे शीत संग्राहक कहा दी है। ये द्रव्य वातगुणभूषित होते हैं।

प्राहि द्रव्य अन्नके शिथिल और प्रसारित स्रोतसोको आर्जुचन करते हैं। अन्नकी पुरुसरथ किमाकी उमठाका शान्त करते और अन्नमें उत्पन्न होनेवाले क्षामजन्य सावका हास कराते हैं।

पुरीयसंग्रहणीय धग या द्रव्य अति करनेवाले पुरीयको धारण करे, उसे

पुरीपसंग्रहणीय करते हैं। प्रियंगु, अनन्ता (घमासा) ग्रामकी गुठली, श्योनाक, लोप, मोचरस, सर्मागा (लज्जालु), भायके फूल, पत्रा (मारंगी) और कमलकेशर, ये औषधियां चरक संहितामें कही हैं।

सुभ्रत संहितामें यमोवादि गणको संग्राही कहा है। इसका वर्णन नं० ६ पित्तसशमन प्रकरणमें किया है।

और औषधियाँ अतीस, मांग, खसखस, लिहोला, राल, शहस्र, शम्भ, कुचिला, अजमोद, केशर, सौंड, ज्योरा, गजपीपल, इन्द्रजौ, ईस्तमगोल, कुशाको छाल, वेलागिरी, नागकेशर, कृत्वा, जामुनकी गुठली, जायफल, जावित्री, अनार, दासहस्तो, मारंगी, मागूफल फिटकरी, सेमलाका गोंद, राल, सेलसबी, चाक, गेरु, अहरमोहर्य, सवाई, कमलकेशर, अनन्तमूल, विजयसार, लालबोस, पाना, मत्स्याची (मछेड़ी), गोंद, हीरादोस्ती गोंद, बहेवा, कासीस, सिलारस (हेमेमेलिस वृक्षका रस), षकुल (मूत्राशय संकोचक और दन्तमूल हट करनेमें हितावह), गूलर, कच्चाकपित्त, पिस्तेके फूल, मलारागोद, तेंदुगो, मेहदीके पान, खैरछाल, बबूलछाल, काकवासिंगो, इमलीके बीज, तक, चाय, भोक वृक्षकी छाल आदि।

डाक्टरों मतानुसार ग्राहीवर्गके भीतर स्वम्मनगुणका भी अन्तर्भाव किया है। दोनाका विवेचन पृथक नहीं किया। इस मतमें ग्राही औषधियोंकी क्रिया तन्त्रुओंके आकुंचन द्वारा प्रकाशित होती है तथा साव द्वारा नष्ट होती है। अन्त्रके भीतर इनका असर मलाकी अक्सरणा क्रियाके विच्छेद होता है। ग्राहीवर्गमें ग्राही पात्र, गन्धकाम्ल और उद्भिद् ग्राही औषधियाँ हैं। अफीम और सक्तिया मिट्टीका प्रभाव अत्रकी गति और साव, दोनोंपर होता है, गति मन्द होती है और सावका भी हास होता है।

उद्भिद् ग्राही औषधियां विशपता उनमें रहे हुए कपायाम्ल (Tannin) द्रव्यके देहसे फल दर्शाती है। कासीस या लोहप्रमाण औषधियां अन्य ग्राही पात्रुओंकी अपेक्षा अधिक सीम्य है।

और निर्दोष होनेसे पचनसंस्थाके रोगमें विशेष व्यवहृत होती हैं।

सब ग्राही औषधियां स्थानिक स्वम्मक (Local hoemostatits) हैं। उनका लेप करनेपर रक्तवाहिनियोंका आकुंचन होता है। इस तरह इससे श्लैष्मिक कलाको सतहका और मांसपेशियोंके सूत्रोंका भी संकोच होता है। इस प्रकारकी औषधियां फिटकरी, रोप्य, सीसा, लोह आदि हैं। ये औषधियाँ और उद्भिद् ग्राही औषधियां, सब रक्तवाहिनियोंके चारों ओर रहे हुए तन्त्रुओंमें प्रथिनको घनीभूत करके फल दर्शाती है। इसका प्रमाण रक्तवाहिनियोंकी दीवारकी पेशीकला (Muscular coat) पर नहीं होता। इसका विशेष विचार रक्तस्वम्मक प्रकरणमें ५७ में किया जायगा।

कपायाम्ल अथवा कपायाम्लयुक्त द्रव अनेकवाह, उपचार (Alkaloids) और मधुजन (Glycosides) आदिके साथ मूलाधिक अंशमें अद्रवणीय मिश्रण होता है। प्राची औषधियोंके २ प्रकार हैं। १ खनिज प्रधान और २ उद्भिद् प्रधान। १ खनिज द्रव्य—शीरा (सुर्दसिंग) रौप्य अम्ल, ताब्र (नीलापाषाण), फिट्करी आदि। उद्भिद् द्रव्य-कपायाम्ल, कत्या, लोद, माज्जल आदि।

प्राची औषध प्रयोग प्रकार—१ बाह्य, २ आन्तरिक। लेप आदि प्रयोगसे लाभ पहुँचावें, वे बाह्य, २ मुँहसे सेवन करनेपर आमाशयिक आदिमेंसे मिलकर आन्तरिक यत्रमें कार्य करें, वे आन्तरिक।

१ बाह्य प्रयोग—मलहम का लेप, द्रव, चूर्ण आदि रूपसे घृत आदिपर होता है। ये औषधियाँ रक्तस्राव और स्तैमिक कणके स्रावका दमन करती हैं। सर्पविषका रक्तवाहिनीपर लेप करनेपर वहाँ रक्तको जमाकर रक्तस्रावको रोक देता है। इतर प्राची औषधियोंका प्रयोग नेत्र और मुँहमें द्रव रूपसे क्यटनलीमें गण्डूप और छिन्नकाव (Spray) रूपसे तथा नासिका, मूर्धप्रसेक नलिका, योनि और गुवा द्वारमें पिचकारी और घर्षि (Suppository) रूपसे प्रयोजित होता है।

आन्तरिक प्रयोग—अतिसार, रक्तमन, रक्तकाष्ठ, रक्तस्राव आदि रोगके दमनार्थ उपयोग होता है। इस विभागमें फिट्करी, लोप, माज्जल, बेलगिरी, अतीस, शंख भस्म आदि अनेक औषधियाँ हैं।

अतिसार होनेमें मुख्य हेतु,

१ अन्नमें अस्वास्वजन क्रियाकी अधिकता (इस हेतुसे यथोचित शोथ होनेके परिणाम आहार-द्रव्य बाहर निकल जाता है)।

२ शोथक क्रियाका हास। इस हेतुसे मलमें पतलापन रह जाता है।

३ अन्नमें रससाधकी अधिक उत्पत्ति।

इन तीनोंमेंसे किस कारणसे अतिसार हुआ हो, उस विद्वत्तिके अनुसृत्य आपस योजना करनी चाहिये।

कारण भेदसे ३ प्रकार—

१ अन्नको उपसाशामक—अपीम, आमकी गुठली, परसहसैलका दुग्भीकरण, लिहसोडा, राहूत, ईसकगोल, बिहदाना आदि।

२ आन्त्रिक शोथक क्रियावर्द्धक—नागकेसर, अतीस, भांग, इन्द्रजी, जीरा, सोंठ, गजपीपल आदि।

३ रसोत्पत्तिकी दमनकारी—फिट्करी, कुबेकी छास, सेनापाठा, कत्या, लोप, माज्जल, कसीस आदि रसोत्पत्तिका हास करती हैं। इसके लिये अपीम की व्यवहृत होती है।

कपायाम्ल (Tannic Acid)—इसकी प्राप्ति माशूफलमेंसे अधिक होती है। लोभ हरक, बरेका आदिमें भी यह रहता है।

गुणधर्मविज्ञान (Pharmacology)—अच्छी त्वचापर लगानेपर इसको कुछ भी क्रिया नहीं होती किन्तु पीकित श्लैष्मिक कला या फटी हुई त्वचाके नीचे रही हुई नमन श्लैष्मिक कलापर लगानेपर एलेय्मा और प्रथिनसाधको गाटा बनाता है। फिर यह बनीभूत प्रथिन या विपत्विपा सरेस (Gelatin) विगलन (Pntrifaction) होनेमें प्रतिबन्ध करता है। यह तन्तुओंमें शोषित होता है और अन्तरस्थ द्रवको (प्रथिन द्रवको) गाटा और संयोजक तन्तुओंको मोग बनाता है, फिर इस हेतुसे रसस्त्रावका हास हो जाता है।

कपायाम्ल सबल स्थानिक ग्राही औषधि है। यह कुछ अंशमें छोटी रक्तवाहिनियोंमें डाटके समान धन कर और कुछ अंशमें तन्तुओंके चारों ओर बनीभवन कराकर रक्तस्वम्भन कराती है किन्तु रक्तवाहिनियोंकी मासमयी कलापर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इसलिये यह स्थानिक रक्तस्वम्भक है।

मुखसे सेवन करनेपर पहिले मुखके भीतर शुष्कता लाती है तथा श्लैष्मिक कलाके सावको बनीभूत कराकर जिह्वा और कण्ठका आकुंचन और खिंचाव करती है। यह अंतर प्रथिन पर प्रत्यक्ष रासायनिक प्रभाव पहुँचकर होता है। आमाशयके भीतर जानेपर उसका रूपान्तर होकर कपायाम्ल चार (Tannate) बन जाता है। अबतक उसका ग्राही द्रव्य नष्ट न हो, तबतक प्रथिनका कपायाम्ल चार आमाशयपरसे पुन पृथक् होता रहता है और कपायाम्ल भी मुक्त होता रहता है।

यह अत्रके भीतर प्रथिनका निक्षेप और प्रथिनियोंके साक्का हास कर मला परोष करता है। इससे मला फठोर और शुष्क बन जाता है। यह यीस्ट और लघु कीटाणुओंको अथ क्षेपित करता तथा सीम्य अपक्षमरोधक क्रिया करता है एवं उद्भिद् कीटाणुओंको संख्याका हास करा मलमेंसे दुर्गंध कम करता है। अविद्रिलिष्ठ कपायाम्ल चार और अशोषित उपकपायाम्ल चार (गैलेट्स Gallates) मलके साम फेंक दिये जाते हैं तथा कपायाम्ल बहुत्सायपर विलकुल अंतर नहीं पहुँचाता।

कपायाम्ल रक्तमें उपकपायाम्ल चार रूपसे और कुछ अंशमें कपायाम्ल चार रूपसे प्रवेशित होता तथा उसी रूपमें भ्रमण करता है। यदि कपायाम्लका शिरामें अन्त-क्षेपण क्रिया जाय तो स्थानिक शस्यो (Thrombosis) की उत्पत्ति होकर मृत्यु हो जाती है।

मल रूपसे परित्याग (Elimination)—मानव देहमें यह विक्षेपित होकर शोषित होता है। इसमेंसे १ प्रतिशत मात्र ही मूत्र या पुरीयमें विच्छिन्न होता है।

रोगावस्थामें उपयोग (Therapeutic) - स्थानिक रक्तसम्पन्न रूपसे नासिका, गुदा, मूत्राशय, मूत्रप्रसेक नलिका आदि पर व्यवहृत होता है। नासिकासे नाथ होनेपर समालूके समान सुधाया जाता है, अथवा पिचकारी लगायी जाती है। अश्रुमें बर्तितरूपसे प्रयोग किया जाता है। त्वचापर सूक्ष्म प्रकारके आशुकारी या उपाशुकारीप्रदाह (म्यूची आदिमें) होकर उत्पत्ति होने और रसम्प्राप होनेपर क्लिस्तीनके साथ इसका प्रयोग किया जाता है।

कानमेंसे पूयस्राव होनेपर मो क्लिस्तीनमें मिला हुआ कपायास्र व्यवहृत होता है। नेत्राभिष्यन्द (Conjunctivitis) और गुस्लमण्डल पर रक्तवहिनियांकी प्रतीति होनेपर नेत्रबिन्दु (Collyrium) रूपसे प्रयोजित होता है (१ आंस वाष्पमलमें ४ ग्रैन) पोतस (नासिकासे दुर्गन्धमय स्राव (Ozaenā) होनेपर समालूके सदृश सुधाया जाता है।

श्वेतप्रदर होनेपर योनिमार्गमें अन्त-क्षेपण, धस्ति या छूत्के (Pessary) का उपयोग किया जाता है। गभाशयमें छत होनेपर क्लिस्तीन युक्त कपायास्रमें सूक्ष्म पोहा मिगोकर या छूत्केको गर्भाशय मुलमें रखवाया जाता है। मूत्राशय प्रदाह होनेपर इसका अन्त-क्षेपण किया जाता है। गुदनसिकामें छत या विदारण होनेपर या गुदनसिकाका बहिर्गमन (गुदभ्रंश) होनेपर अन्त-क्षेपण या बर्तितरूपसे प्रयोग होता है।

जले हुएकी चिकित्सामें इसका प्रयोग होता है। इसका पट्टी बांधनेमें प्रयोग किया जाता है। बालकोंको ५ प्रतिशत और बड़ेके लिए १० प्रतिशतके द्रावणका उपयोग होता है। यह वेदना दूर करता है, तरल स्रावसे रक्षा करता और विषप्रयोगका ह्रास करता है। द्वितीय और तृतीय भेद्योके दग्धपर यदि श्लैष्मिक कला है, तो यह अन्त त्वचाकी उत्पत्ति कराता है। विपरीतसे सरक्षणाथ यह चिकित्सा उत्तम है, जो विष आघातके घट्टा २ रे या ३ रे दिन मृत्युका कारण हो जाता है। एष इसका पावपर उत्क्षेप (स्त्रिकाय Spray) किया जाता है, तब पट्टी नहीं बांधी जाती, जबतक शुष्क विंगल स्त्रिकाय न बने तबतक प्रत्येक १५-२५ मिनटपर स्त्रिकाय किया जाता है। यद्यपि कपायास्रके इस उपचारमें कुछ असुविधा है। इसका द्रावण अस्तिर है, इसमें अपचयरोपक शक्ति नहीं है तथा इसमें समान स्थितिका भी अभाव है। इस हेतुसे इसका प्रयोग इतर रंग द्रव्य (नीले, पीले आदि) के साथ स्त्रिकाय रूपसे होता है।

इसका आम्प्टेरिक प्रयोग मुख्य पचन संस्थापर होता है, यह मसूरेमेंसे रक्तस्रावको बन्द करने और छतको मिटानेमें उत्तम दन्तमज्ज (Dentifrice) है। मुलपाक, उपाशुकारी या चिरकारी कण्ठ छत, कण्ठाकडी शिथिलता या दीर्घता, उपजिह्विकाइदि आदिमें क्लिस्तीन युक्त कपायास्रका लेप किया जाता है। एवं

इसका गण्डूप, उत्क्षेप या पिक्विमरूप से भी प्रयोग होता है। मुख और स्वरयंत्रके भीतर वायु या धूम (Insufflation) रूपसे श्वेतसारके साथ इसका उपयोग किया जाता है।

यह आमारुष और अन्त्रमेंसे होनेवाले रफलावको बन्द करनेके लिये मूत्रपिण्ड आरौप्य है, किन्तु इसका प्रयोग अधिक मात्रामें ३० या ४० ग्रेन ११ या २२ घण्टेपर करना चाहिये, यह उपचार और घावव सवख्य द्वारा शिपाक होनेपर उत्तम विषय द्रव्य है। इसका प्रयोग अतिशयमें विरोध रूपसे होता है, चाहे आशुकारी हो या चिरकारी, किन्तु अतिशयमें विरोधत कस्येका ही प्रयोग होता है।

(५७) स्तम्भन।

रौक्ष्यात् शैत्यात् कपायत्वात् लघुपाकाच्च यद्भवति ।

वातकृत् स्तम्भन सत्याद्यथा वत्सकटुण्डुकौ ॥

जो द्रव्य रुद्ध, शीतल, कसैला और पाकमें लघु होनेसे वायुकी उत्पत्ति करे और रस अग्नि पण्डुआदि प्रवाहका अवरोध करे, उसे स्तम्भक कहा दी है। जसद मत्स्य, नाग मत्स्य, लोह मत्स्य, मुख्यामादिक मत्स्य, नीलायोया, अफीम कुवाकी छास, द्योनाक, ईसमगोल, कत्या, केसर, जामुनकी छास, बबूलकी छास, सेमलका गोद इत्यादि।

अफीममें शोषण, माही, कफन, वात पित्तकारक, स्वापजनक, दाहकरक, शुक्रस्त्वग्भङ्ग, आस्रास्यकर और मोहजनक गुण हैं। डान्टरोमें अफीमके गुण मस्तिष्क उच्छेजक, मादक, निद्राकारक, वेदनानिवारक, आक्षेपनिवारक, स्पर्शहारक, संमाही, स्वेदजनक और पुनरोत्पत्ति निवारक कहे हैं। यह थोड़ी मात्रामें सेवन करनेपर पहिले उच्छेजना देती है, फिर स्वापजनक और अवसादक गुणकी प्राप्ति कराती है। मस्तिष्क-प्रदाहके अतिरिक्त इतर सब प्रकारकी वेदना कम करनेके लिये अफीम प्रयोजित होती है। जीर्ण अतिसार, रक्तातिसार, प्रवाहिका, समशयी, निद्रानाश, आक्षेपक वात, यमसी, आभाशीशी, कृमिवात, विविध प्रकारके शूल, स्वासप्रकोप, विविध आशुयोके प्रदाह, अन्त्रवृद्धि, उपात्रप्रदाह, मूत्ररोग, शुक्राशय सम्बन्धी रोग, बहुमूत्र, मधुमेह, अभिक छासालाव, प्रदर, अघिक कफश्राव, दाँतोंका दर्द, दिवृच्छिका आदि व्याधियोंमें अफीम उत्तम औषधि मानी गई है। मात्रा ४ रत्तीसे २ रत्ती।

सूचना—वासाकका अफीम देनी हो, तो अति कम मात्रामें देनी चाहिये। वेदना और आक्षेप निवारणार्थ अफीम पूर्ण मात्रामें देनी चाहिये। एक मात्रासंख्यान न हो, तो कुछ समय पश्चात् पुन दूसरी मात्रा देवे। निद्रा लानके लिये अफीम शयन कालके १ घण्टा पहिले देनी चाहिये।

श्रीमन्तं याम् पारदं विधानेते यद् द्रव्यं नदी करता । किंनारके चाम्
मिलान्तर देनेसे रोमों दोर दूर होने हैं तथा चतीवये चाम् मिलाकर देनेसे शक्ति
रह लावी है ।

(५८) रक्तस्तम्भन ।

रक्तस्तम्भन—दिग्गतेरिक्त-गण्येधोरेरिक्त-रिष्टपिक्व ।

Haemostics-Antbomorrhagics-Styptics

यिद्यु आग्निमे निष्कमनेशले रक्तस्य रोष करनेवाली श्रीपथियाँ—खोदमरु,
मुषर्णमादिक भस्म, प्रयाण, अग्नीम, मोती, चाप, संगमरमर, अशोक, छनडी रस,
लालबोल, गिलोय सत्य, वासा (चबूसा) कमलकी फेरार, लाल, तिक्टी, माकड़स,
गंगागीरल, रक्त चन्दन, कहरवा, बक, कच्चा, माकड़स, लोभ, सोनावाण, उवय,
मोगनी, नीयू और अनारका रस, कर्तिय, पला, पकीका दूध, अट्टाके पान, घूना
घोर नीसा रके मिश्रणमेंसे उपवासु निष्कल जानेके पचाव रहा दुग्धा घायमिमथ
(Calcium chloride) आदि । इनमेंसे बाबले, अट्टाके आदि अनेक श्रीपथियाँ
रक्तविनाशक (Antiscorbutics) रूपसे भी प्रयुक्त होती हैं । इस प्रकारकी
श्रीपथियाँ दो विभाग हैं—आभ्यन्तरिक और बाह्य ।

आभ्यन्तरिक रक्तस्तम्भक (रक्तसंवाही—Haemostatics) रक्तविसार,
पिपिथ प्रघ्नके रसवित्त, रक्तघमन, रक्तप्रदर, मासिकवर्गमें अधिक रक्तसाध, अथ,
नासिकासे रक्तस्राव आदि विकारोंमें रक्तसाधकी रोक्नेवाली श्रीपथियाँ—प्रवाहपिष्टी,
मौक्तिकतो, नागमय्य, मुषकान्त मत्स्य (कहरवा) पिटी, तिक्टी, अग्नीम, रक्तबोल,
अशोक गूलर, चन्दन, नेत्रमाला, चापला आदि ।

बाह्य रक्तस्तम्भक (रक्तस्तम्भन—Styptics) स्थानिक संकोचक क्रिया द्वारा
रक्तस्रावघ्न अथरोष करनेवाली अथवा क्षत शोफर वा रक्तवाहिनी पटक होनेवाले
रक्तस्रावका रोष करनेवाली श्रीपथियाँ—चार वा तेजाव आदिसे रक्तवाहिनीको बलाना,
बर्त या शीतल जन्मपायका प्रयोग, तिक्टी, रामबाण मरुहीका चाप किवा दुग्धा
मफद पाखा, बारहसिंगके बोये हुए चमकेकी करण, लोभ, रतोंठ, बायके फूल,
रेशम या अलसोकी मरु, कासीन, दिगुल, गन्धक, सोहागेका फूला और पखरीज
(अरुम हैयात) आदि श्रीपथियाँ प्रयोगमें लाई जावी हैं ।

शोणित स्थापन वर्ग—घरक संहितामें किन्ही दुई रक्तके साधके रोक्नेवाली
या गाड़ा करनेवाली श्रीपथियाँ । शदर, मुकहठी, फेरार, मोचरस, मिट्टीका ठोकर,
लोभ, सोनागेक, पिबंगु, मिथी और सासा, ये १ श्रीपथियाँ । रक्तस्तम्भन क्रिया
किंश नियमानुसार होती है तथा रक्तके स्तम्भनार्थ किंश किंश प्रयोगकर आभय लिया
जाता है, इसका विचार न० ५५ माहो गुण और कथावाग्दके उपयोगमें
वित्सारपूर्णक क्रिया है ।

(५९) वीर्यस्तम्भन ।

शुक्रका अधिक समय तक स्तम्भन करनेवाली औषधियाँ—जायफल, जालित्री, अफीम, बकधूप, मांग, केशर, लसखस आदि ।

अनेक जातियोंमें बालविद्याहका रिवाज है । उन जातियोंमें अनेक म्पत्तियोंके ब्रह्मचर्यभंग मग छोटी आयुमें ही हो जाता है । जिससे वीर्य स्थान सबल नहीं बन पाता तथा वीर्य भी पतला रह जाता है । एवं किसने ही अयोध विद्यार्थी सगदोपसे अपने अपरिपक्व वीर्यको नष्ट कर देते हैं । उन सबमें स्तम्भन शक्ति अति कम हो जाती है ।

शुक्रस्नान यत्र निषल बननेपर अनेक अज्ञानी धूर्त विक्रितकोंको जालमें फँसकर अफीम प्रधान औषधका सेवन तथा अति स्त्रीसमागम करते रहते हैं, अत वे कुछ वर्षोंमें शुक्रव्ययसे पीड़ित हो जाते हैं ।

शुक्रमें ठण्डता और पतलापन आनेसे तथा शुक्राशयकी या मूत्रप्रसेक नसिकाकी संज्ञावाहिनियाँ अधिक उत्तेजित होने पर शुक्रपाय सत्वर होने लगता है । यदि शुक्रमें अधिक ठण्डता आई हो, तो मौक्तिक आदि शीतल शुक्रल औषधिका सेवन करना चाहिये । यदि मूत्रप्रसेक नसिकाकी संज्ञावाहिनियाँ अधिक उत्तेजित हो गई हो, तो शामक लेप लगाना चाहिये । शुक्राशयकी निर्बलतामें धंगमस्म, त्रिवंगमस्म, नागमस्म, सुवर्णमस्म, रौप्यमस्म, प्रवालपिटी आदि औषधियाँ हितकरक हैं ।

धंगमस्म और नागमस्म शुक्रवर्द्धक हैं तथा शुक्राशयके मांस और वात वाहिनियोंको दृढ़ बनाती हैं ।

त्रिवंगमस्म पुरुष और स्त्री, दोनोंको लाभदायक है । इस मस्मका शुक्राशय और गर्भाशय आदि अङ्गोंके मांस और वातवाहिनियों पर पौष्टिक असर होता है ।

सुवर्णमस्म अण्डकोषकी ग्रन्थियों और केन्द्रस्थानको बलवान बनाती है ।

रौप्यमस्म अण्डकोष और वातवाहिनियोंपर शामक असर पहुँचाकर शुक्राशय और शुक्रको लाभ पहुँचाती है ।

प्रवालपिटी शुक्र स्थानके दाहको दूर करनेमें अति हितकर है । अनेक रोगियोंको प्रवालपिटी और धंगमस्म, दोनोंको मिलाकर सेवन करनेसे अधिक लाभ पहुँचा है ।

(६०) द्रव्य ।

पौष्टिक-टॉनिकस-Tonics

सर्वाङ्ग या किसी एक अङ्गके पलाको बढ़ानेवाली औषधियाँ । अङ्गीमें इन औषधियोंके निम्नानुसार अनेक विभाग किये हैं ।

१ सार्वभौमिक पौष्टिक (General tonics)

२ रक्तपाटिक—रक्तकण्ठरसक (Hematio tonics)

३ आमाशय पाटिक (Stomachics)

४ अन्नपाटिक (Intestinal tonics)

५ वातवदा नासो पाटिक (Nervines)

६ हृदयशैतिक (Cardio tonics)

७ रक्तसंचालन शैतिक (Vascular tonics)

८ मांसपाटिक (पृथक्) ५ अस्तिशैतिक, लसीका संस्था शैतिक आदि विभाग होते हैं ।

• कृत्रिमिक श्रीपथिया रोग पुनराक्रमणसे सरक्षण करती हैं, वे पुनरेकस्ति नियारक (Anti pe iodies)—रोगशमन द्वारा देखको पुष्ट बनाती हैं ।

शैतिक—साधारणिक बलवर्द्धक श्रीपथियोंके सेवनसे जीवन क्रिया उत्तेजित होती है तथा रोगनिरोधक शक्ति (Immunity) बढ़ जाती है ।

इनके अतिरिक्त आमाशय शक्ति संपन्न होती है ; छुषा प्रदीप्त होती है ; हृदय-क्रिया शीघ्र नासो गलबती बनती है ; शारीरिक उत्थाप बढ़ जाता है ; एवं वात-वाहिनियोंकी शक्तिमें भी वृद्धि होती है ।

शैतिक श्रीपथियां कुछ अंशमें आसुंचन भी करती हैं ; परन्तु प्राची श्रीपथि सदा अति मृदुले नहीं करती । एवं वे अल्पथियां उत्तेजना भी देती हैं परन्तु यह उत्तेजना क्षीम शीघ्र स्थिर नहीं होती । शनैः-शनैः स्थिर उत्तेजना देती हैं । इस उत्तेजनार्थे पदचाल अथवादक्षता नहीं आती ।

जब किसी कारणसे जीवनीय शक्ति (Vitality) क्षीण हो जाती है, तब जीवनीय शीघ्र बल्य श्रीपथिक सेवन करना चाहिये । एवं जोखता, अजीर्ण रोग, पाण्डू, आसोत्रक श्वाभियां शीघ्र उत्साह-उत्साह कर आक्रमण करनेवाले रोगोंमें कारण-अनुरूप श्रीपथि सेवन करनी चाहिये ।

गुरुत्वता विविध कारणवशात् क्षपस्थि होती है । यथा-मांसपेशियोंको क्षीणत्व, रक्तसंचालनकी न्यूनताजन्य क्षीणता, रक्तमें आहारिक बाध-वृद्धिजन्य निर्बलता, अधिक शुक्रसावसे क्षय, दूषित जलवायुसे गुरुत्वता, लवण अथवा अनुपयुक्त आहारजन्य कृशता, एवं आमाशय, अन्न, कुम्भक हृदय, वृक, यकृत, मूत्राशय आदिमें विकृति होनेसे निर्बलता । इस तरह अनेक हेतुअंति गुरुत्वता आजाती है । अतः मूल कारणको दूर कर तिर धैर्य अनुक्रम चिकित्सा करनी चाहिये ।

सांवाहिक जोखतामें शोथपटित श्रीपथियां, सुवर्णमस्य शीघ्र रसायन श्रीपथियां आदि हितकर हैं ।

रक्तकी न्यूनतामें मयूर, शोथमस्य, सुवर्णमस्य, सुकषमाधिकमस्य, कासोष, आयुष्ता, कचनार, शिलाजीव, गूगल, मल्लमस्य आदि ।

घातवहा नाभियोंकी निर्बलतामें अन्नकमत्स, रौप्यमत्स, आंयला, जगामांसी, आसो, शंखालूनी आदि हितकारक हैं। जो घाताक्षेप निवारक औषधियां पहिले नं० २ में लिखी हैं, वे भी सब प्रयोजित होती हैं।

फुसफुसोंकी निर्बलतामें लोहभस्म, अन्नकमत्स आदि।

रसायनियोंकी क्षीणतामें जसदमत्स आदि।

मानसिक निबलतामें मुखर्षभस्म, कस्तूरी, मांग तथा सूक्ष्म मात्रामें मृग आदि।

पचनेन्द्रिय संस्थाकी निर्बलतामें दीपन-पाचन औषधियां।

दोषसंचयजन्य दुर्बलता पर स्वेदन और बमन आदि शोधन क्रिया।

मासिकघर्म विकृतिमें गर्माशय शोधक औषधियां।

इस तरह कारण अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये।

घातवहा नाभी पीठिकका विवेचन याव दोपन्न न० १ और आमाशय पीठिकका विवेचन दीपन-पाचन नं० ५४ में किया गया है। तथा बृहण न० १९ में किया गया और हृदयपीठिकका नं० ३७ में किया जायगा।

सूचना—पूण स्वस्थ, रचाधिस्य और प्रदाहसुख व्यक्तियोंको इस वर्गकी औषधियां नहीं देनी चाहियें।

सुभ्रुत संहितामें सप्त पञ्चमूल (शालपर्णी, पृश्नपर्णी, छोट्टे कटेली, बड़ी कटेली, छोट्टे गोखरू) को बलवर्धन, वातहर, पित्तशामक और बृंहण कहा है। गोखरूके स्थान पर चरक संहिताकारने परपञ्चमूल लिखा है। यह पञ्चमूल वातनाभियों पर पीठिक अक्षर पहुँचाता है।

बल्य वर्ग—पेन्द्रो (गोरक्ष कर्कटी), श्रुपमी (कौंच), अतिरसा (शतावरी), श्रुप्यप्रोक्ता (मापपर्णी), पमस्था (चीरकाकीली) असगध, शालपर्णी रोहिण्यो (जगामांसी)- सरैटी और कहरिया, ये १० औषधियां चरक संहितामें कही हैं।

(६१) शुक्रसूत्र।

यस्माच्छुक्रस्य वृद्धिः स्याच्छुक्रस्य च सदुच्यते।

यथाऽऽरवगन्धा सुसली शर्करा च शतावरी ॥

जो औषधियां शुक्र (वीर्य) की वृद्धि करयें, उनको शुक्रसूत्र और शुक्रजनन संज्ञा दी है।

शुक्रजनन वर्ग—जीबक, सपमक, काफोली, चीरकाकीली, मुद्गपर्णी, मापपर्णी (मदान्तरमें महामेदा), मेदा, बृहच्छा (शतावरी), जटिला (उच्चदा या जगामांसी), कुक्षिन्ना, ये १० औषधियां चरक संहितामें कही हैं।

श्रीर श्रीपथियाँ—मुषण भस्म, लोह भस्म, घंग भस्म, त्रिकण भस्म, अष्टकेको द्विपथकी भस्म, अस्मगन्ध, मूतली, मिथी, पद्मन लाल, पद्मन सफेद, पातालगस्त्री, उषद, जगमांसा, आंखला, सालध मिथी, दूध, भिलावेकी गिरी, भिलावे आदि ।

प्रजास्थापन वर्ग—चरक संहिता कथित प्रजानाशक दोषही हटाकर प्रजाप्री स्थापना करनेवाली (सन्तानोत्पादक) श्रीपथियाँ—ऐन्द्रा, नाडी, शतबीयाँ (दूध) सद्मयवीया (श्वेत दूध) अमाया (पाटल या लक्ष्मणा), अम्पया (हरक, शिया), इन्दी, अरिदा (गरीदी), घाटवपुष्पी (गंगरन), विश्वरूसेन कल्प (घाराहीकंद), ये १० श्रीपथियाँ कही हैं । ये गर्भका स्थिर करनेमें सहायक हैं ।

ऊपर कही हुई श्रीपथियोंमें मुषण भस्म, अष्टवर्ग, दूध, आंखला, ये शीत-शीतल के श्रीर लोह, कुन्कुराण्डत्यक् भस्म, भिलावे, अस्मगन्ध, मूतली आदि उष्ण-शीतल हैं ।

अस्मगन्ध—यह कङ्कणा-कपेला, उष्णभोज, मधुर विपाक गुण है । घातशामक कर्प, फाल, श्वास, क्षय, मद्य और शोथका नाशक, पक्ष्य आर अग्नि शुक्ल है । इनका अनिश्चित इतमें कुछ पात्रोकरण गुण भी है ।

उष्णधार्य होनेके कारणसे क्रम हुआ शीतल सत्त्व पूरा हो जाता है । इससे सेवनसे साध-साध कामाच्छेदना भी होती है; जिससे हृत्तिमें स्त्री-समागमका विचार आता रहता है । अतः स्वप्नदोष होनेकी भीति रहती है । आलस्य, हाय-मीरोंकी कृद्वी, निम्बाराह आदि बुर होते हैं । रक्त, रक्त, मांस आदि घातघ्नोकी वृद्धि होती है । यह तदण वृद्ध स्त्री, बालक आदि सबके लिये हितकारक है ।

भी वाग्मगाचायजीने अष्टाङ्गस्य उच्चरम्भानमें लिखा है कि—

पीताऽऽश्वगन्धा पयस्यार्यमास घृतेन सैलेन सुखाञ्जुना या ।

कृत्वास्य पुष्टिं वपुषो विघत्ते आक्षरस्य शस्यस्य यथा सुवृष्टिः ॥

जिस तरह वृष्टि होनेपर पास पुरु बन जाता है, उस तरह अस्मगन्धका सेवन भी, घल, दूध या निषामे जलके साथ करनेसे कृत्वा भागक पुरु बन जाता है ।

(६०) शुक्ल और शीतल

शीतल शीतलशर्करा श्रीपथियाँ—मुषण, रौप्य, बस, बस्ता, शीशा, अमरक, मोती, मन्नाल, आंखला, गोलरू, मुलहठी, गिलोपसत्य, गुञ्जा, वाशाम, वंशसोचन, शतापर, टालमलाना, मूतली जीवन्दी, सिंघाहा, चिर्येमी, नारियल, कटहरके पत्रके फल बभूलकी फली, सेमलका मूल, सेमलका गोंद, बलावगुत्रय आदि ।

इन श्रीपथियोंमें शुक्ल गुण शीतल होनेसे पिचमभान प्रकृतिवालोंके लिये विशेष उपकारक है । इन श्रीपथियोंका उपयोग उष्णकृत्तुमें किया जाय, तो भी बाधा नहीं पहुँचती ।

(६३) शुक्ररोधन ।

शुक्रमें खे हुए मूत्र, निषल, दूषित और विजातीय अणुओंको दूर कर शुक्रको विशुद्ध बनानेवाली औषधियाँ—पारद, सिंगुल, सुवर्ण, रौप्य, मौक्तिक, हरताल, सोमल, शिलाजीत, वग, सेमलका गोंद, प्रवाल, बंशलोचन, शशावरी, गिलोयसत्व, गूगल, कपूर, कूठ, एलवालुक, नेत्रवाला, कायफल, समुद्रफेन, कदम्बका गोंद इस्की जड़, तालमखाना, अमृत्यके फूल, खस, बबूलकी कच्ची पत्ती आदि ।

सुभ्रुत संहितामें मुष्ककादि गण (न० ९ कफदोषघ्नमें), विदाम्बादि गण तथा करमदाणि गण (न० ३७ शोथहरमें), इन ३ गणोंको शुक्रदोषविनाशन कहा है ।

उपर्दश शुष्काक आदि रोगोंके विष, संक्रामक अथ दीर्घकाल तक रह जाना वृद्धवस्था, वीर्यका अत्यन्त दुर्बलयोग, इतर अनेक व्याधियाँ आदि कारणोंसे वीर्य दूषित हो जाता है, ऐसे समय पर मूल हेतुको मो दूर करना चाहिये ।

यदि उपर्दश विपरक्तमें हो, तो पारद या सोमलप्रधान औषधि सेवन करना चाहिये । शुष्काकके विषमें मल्लसिंदूर, गन्नाविरोधा, रौप्यमक्ष, प्रवाल आदिका सेवन हितकर माना है ।

हृय, जीर्ण अथ आदिसे वीर्यमें निर्यस्तता आ गई हो, तो सुवर्णमक्ष, बंगमक्ष, गूगल, शिलाजीत आदि हितकारक हैं ।

उष्णता शमनायं मौक्तिक, प्रवाल, सुवर्ण, गिलोयसत्व, बंशलोचन, तालमखाना आदि विशेष रूपसे व्यवहृत होते हैं ।

(६४) वाञ्छीकरण ।

कामोत्तेजक—वृष्य—अफ्रोडिसियाक्स—Aphrodisiacs

येन नारीषु सामर्थ्यं वाञ्छीवल्लभते नर ।

प्रजेरुषाम्यधिर्क येन वाञ्छीकरणमेव सत् ॥

जिस आहार, विहार या औषध से पुरुष स्त्रियोंमें (सुरतके विषयमें) वाञ्छी (धोषे) के समान सामर्थ्यको प्राप्त होता है और जिसके द्वारा अधिक काल तक मैथुन कर सकता है, उसे वाञ्छीकरक संज्ञा दी है (चरकसंहिता)

वृष्य प्रकार—१ शुक्रसृष्टिकर, २ शुक्रवर्द्धन ३ शुक्रसृष्टिकर और शुक्रवर्द्धन ।

१ शुक्रसृष्टिकर (शुक्रप्रवर्धक-कामोत्तेजक)—स्त्रियोंका स्पर्श, मानस संकल्प, शराभ, अपौम, कपूर, धनूरा आदि ।

२ शुक्रवर्द्धन (शुक्रल)—दूध, घी, मांस, रसायन और जीवनीय औषधियाँ आदि ।

१ इनके अतिरिक्त क्षीर्ष विषमज्यर, सतीकामर, मधुमेह, वातरज, च्व
 प्रादि विकार और शारीरिक क्षीणता दूर करने पर रतिशक्ति स्वयमेव उन्नत हो जाती
 है। पीपिक श्रीपथि, पीपिक आहार—दूध, मांस आदि द्वारा स्वास्थकी वृद्धि होनेपर
 नष्ट कामोत्तेजना हो सकती है।

(६५) शुक्ल और घाजीकरण ।

शुक्ल और घाजीकरण—दो गुणयुक्त श्रीपथियाँ—सुवर्ष, धात्रक, पाद,
 पौंचके पीप, विदारीकन्द, सालवमिथी, लरैटी, पायफल, जायसी, असगन्ध, लहसुन,
 पुन्डेवेदरतर, दूध, घी, गेहूँ इत्यादि कीमयद्रक और कामोत्तेजक हैं। इनमेंसे कुन्डे
 वेदरतरमें कामोत्तेजक गुण अधिक है। सुवर्षमस, कौच पीप और सालवमिथीमें
 दाना गुण लगभग समान हैं। रोग श्रीपथियोंमें कामोत्तेजक गुण कुछ कम रहता है।

(६६) कामशामक ।

घट्टप्य पांशुकर अनेफ्रोडिज़ियस—Anaphrodisiac

कामवासना और रतिशक्तिका ह्रास करनेवाली श्रीपथियाँ—बन्ध, शीतल-
 फलसे स्नान (स्थानिक या साध्याधिक स्नान), विरेचन केलेके सम्मोका रस,
 विद्यासनमें बैठना, नीसादर पुष्प, साल्वा, ब्रासी, जामांवी, शंखाहूरी, विरोप
 मासामें कपूरका धार-धार सेवन, सोहागा तथा उषाक उत्पादक श्रीपथियाँ आदि ।

इनके अतिरिक्त अधिक मासामें धार, अधीम सुरासानी अत्रयायन, तमाहू
 आयोडाइट, प्रोमाइट, सूचीपूटी और धरूय आदिके सेवनसे भी कामोत्तेजना मन्द
 होती जाती है। कपास मूलत्वक आदि जो जननकर्त्रके सुमुग्धा सम्बन्ध वाले, रक्त
 संचालनको कम करती हैं, वे भी परम्परागत कामको शमन करती हैं ।

इन श्रीपथियोंमेंसे कितनीही स्थानिक क्रिया (जननेन्द्रियके घात नाशियोंकी
 उत्तेजनशीलताका ह्रास) दर्शाती है; और कितनीही घातपहा नाशियोंके केन्द्रपर
 शागक असर पहुँचा कर काम शमन करती हैं ।

नैतिक और मानसिक शुद्धि, प्रतिनि वेदके उष्ण मासको उचित भ्रम
 पहुँचाना, सामान्य सात्विक भोजन, सात्विक विहार, भक्ति, प्राणायाम, धर्मग्रन्थोंका
 पठन, पूज्योत्री सेवा, एकान्त सेवनका त्याग, दुष्ट सहवासका त्याग, विषय भागसे
 उपराम वृत्ति आदि काम शमनमें सहायक होते हैं ।

सूचना—कामनिवारणार्थ प्रयत्न करनेके पहिले बृहदन्तमेंसे इमि और
 संयुक्त मल, मूत्राश्रमसे अशमरी या पेशाबकी अधिकता तथा कामोत्तेजक
 आहार-विहार और पावन आदिमेंसे जो रोग हो, उसे दूर करना चाहिये। अन्यथा
 कामनिवारक श्रीपथियोंके उपयोगसे उचित लाभ नहीं होता ।

तीव्र कामोत्तेजक औपधियोंका धारधार अति मात्रामें उपयोग, सुरापान और कामोत्तेजक, आहार-विहारका अति सेवन, क्वचित् गुदासे निकले सूक्ष्म कृमि-समूहोंका योनि मार्गमें प्रवेश अथवा किसी फरखवश रति-साशकाकी वृत्ति न होनेपर स्त्रियोंकी (पुरुषोंकी भी) कामोत्तेजना अत्यधिक बढ़ जाती है। उसे आयुर्वेदमें तीव्र कामोत्तेजना कही है। अन्तरेमें पुरुषोंकी कामोत्तेजनाको सेप्टिरियासिस (Satyriasis) और स्त्रियोंकी कामोत्तेजना (उन्माद) को निम्फोमेनिया (Nymphomania) संज्ञा दी है। क्वचित् स्त्रियोंमें मानसिक उन्मत्तताके लक्षण भी हो जाते हैं, उसे कामोन्माद इरोटोमेनिया (Erotomania) कहा जाता है।

ऐसा होनेपर लज्जारील कुमारिका उन्मत्त वेद्याके समान निर्लज्ज बन जाती है (The timid girl becomes like a mad prostitute)। फिर न्यभिचार या आत्ममैथुन (Self abuse) में प्रवृत्त हो जाती है। प्रारम्भमें इस विकारके लक्षण विविध वातविकार, निद्रानाश, अश्लोल स्वप्न दर्शन, बेहोशी, दीर्घ निःस्वास आदि हाते हैं। क्लृप्तत्वात् ज्वर, अतिसार और क्षय आदि रोगोंका भोग होकर मरत्यके मुखमें चली जाती है।

इस विकारके प्राथमिक या द्वितीय अवस्थामें कामरामक औपधिका प्रयोग किया जाय, तो लाभ पहुँच जाता है। तृतीयावस्थाकी प्राप्ति हा जानेपर आरोग्यताकी आशा कम रहती है।

(६७) हृद्य ।

हृदयवैष्टिक-कार्डियाक टॉनिक्स ऐण्ड वेसकुलर टॉनिक्स ।

Cardiac tonics and Vascular tonics-

हृदय और रक्तवाहिनियोंको समल बनाने वाली औपधियाँ—सुवर्णमसम, अभ्रकमसम, लोहमसम, मरुहमसम, संगमसम, माणिक्य, मोती, जहरमोहर खतार, अफीक, पद्मा, रसविंदूर, सालबमिभी, सुवर्णमासिक मसम, अजुनद्याल, लाक्षा, पर्णबीज, पीपल, शङ्ख, घृत, दूध, विविदिलित आदि ।

इस प्रकारकी औपधियोंका सेवन बहुधा हृद्य गुणके लिये अत्यन्त कम मात्रामें करना चाहिये। मात्रा अधिक होनेपर हृदयके आकुचनमें अनियमितता उपस्थित होती है। आवश्यक मात्रामें सेवन करने पर बहुधा इन औपधियोंकी क्रिया उत्तर प्रतीत नहीं होती। दीर्घकाल सेवन करने पर हृत्स्फन्दन अधिकतर समल होता है और हृत्स्फन्दन संख्याक्य हास हो जाता है। ये औपधियाँ हृदयकी मांसपेशीको समल बनाती हैं; एवं हृत्संकोच बलकी वृद्धि और ठँसकी मृदुगति होती है।

कपूर, आर, घातुपट्टिव लवण आदि औपधियाँ हृद्य हैं परन्तु इनका नाभीस्फन्दन पर प्रभाव नहीं पड़ता। इनसे हृदयाकुचन बलकी वृद्धि होती है।

विदोक्त हृदयके वाम निलय एवम् (Left Ventricle) स्थित है।
 ने पर पञ्चम महाधमनी (Aorta) में यथोचित वक्त्रपूर्वक रक्त प्रेरण नहीं कर
 सकता, तब इस श्रेणीकी श्रीपथिकी आवश्यकता रहती है। क्वचित् श्वास, कास
 आदि हेतुसे हृदयके दक्षिण नरकका प्रसारण होने पर भी हृदय श्रीपथि व्यवहारमें
 लाई जाती है।

हृदयपितृविके अनेक हेतु हैं। यथा आशुकारो ज्वर, आम-वातिक ज्वर,
 शुक्रज्वर, पाण्डु, अधिक ध्यायाम, हृदयके कपाटकी विफलता, विविध मन्त्रोक्ती
 अभियोगिणिया, श्वास, कास आदि व्याधियों, मानसिक आघात, अधिक प्राण-
 याम, गरम चाय आदिका अधिक सेवन इत्यादि।

अनेक मार छुद्र धमनी प्रसारणाओ और फेसिकाओका प्रसारण हो जाने
 पर शोथ या जलोदरकी सम्प्राप्ति होती है, तब रक्तवाहिनी तौषिक (Vascular
 tonics) श्रीपथियों—लोहमस, मयङ्करमस, कुचिला, आदि न्ययद्धत होती हैं।
 इन श्रीपथियोंके सेवनसे छुद्र रक्तप्रणालिकाओका व्याकुंचन हाकर रोगकी निवृत्ति हो
 जाती है। धमनीका सम्बन्ध हृदयके साथ रहता है। इस हेतुसे इसका विवेचन भी
 हृदय वगमें ही किया गया है।

उप्युक्त आपथियोंके अतिरिक्त चरककदितामें हृदय कपाय तथा सुभ्रुव-
 संहितामें पुरुषकादि गण और उत्पलादि गण (न० ५१ दाशरामनमें) कहें हैं। ये
 श्रीपथियों पचननिय्या पर काम पहुँचाकर, हृदयको काम पहुँचाती हैं।

हृदयार्ग—धाम, आजातक (अन्धाश), लङ्गुच, करीदा, मृदाश
 (काकम आमचूर), अम्लनेत्र, छोटे बेर, बड़े बेर, मीठे अनार और बिछौरा, ये
 १० श्रीपथियों हृदय मानी गई हैं।

हाकरी मवानुसार हृदय मन्त्रकी क्रिया दो नाडीकेन्द्रों द्वारा होती है। एक
 केन्द्र हृदय क्रिया दमन करता है, उसे हृदय दमनकारी केन्द्र (कार्डियो इन्हिबिटरी
 सेन्टर Cardio Inhibitory Centre) कहते हैं। दूसरा केन्द्र हृदय क्रिया
 वृद्धि करता है, उसे हृदय क्रिया बढकर केन्द्र (एक्सिलेरेटिंग सेन्टर Accelerating
 Centre) संज्ञा दी है। ये दोनों केन्द्र सुगुण्यामें अवस्थित हैं। मन, हृत्पिण्ड
 और शरीरके विभिन्न स्थानोंमें आघात या संस्कार होने पर, वाक्वहा नाडियों
 द्वारा समाचार सुगुण्यामें पहुँचता है। फिर वहाँसे यह आवेग हृदय पर प्रतिफलित
 होता है।

यह क्रिया दो प्रकारकी वाक्नाडियों द्वारा साधित होती है। १. माखदा
 नाडियाँ (Vagus Nerves) द्वारा हृदय, कुम्भक, आमाराय आदिसे उत्तेजना
 केन्द्र स्थानमें पहुँचती है एवं इनके द्वारा हृदय क्रियाका दमन भी होता है। २.

क्रियावर्द्धक केन्द्रसे उत्पन्न क्रिया बढ़ानेवाली वातनाभियों (इकापिङ्गला नुम्बियों Sympathetic Nerve-fibres) द्वारा हृदयकी क्रिया उत्तेजित होती है।

जो औषधियां प्राणदा नाभियोंको उत्तेजित करती हैं, वे स्य नाडीकी गतिको मन्द करती हैं। यदि प्राणदा नाभियोंको काट दिया जाय तो नाडीके स्पन्दनकी मात्रा निवृत्त हो जाती है। बन्धुनाग, क्लोरोफॉर्म, सुरासानी अजवायन, सूचीवृटी-सत्व (Atropine), रक्तसंचापको वृद्धि, घमनीके रक्तको शैरिक अवस्थाको प्राप्ति होना इत्यादि औषधि और क्रिया प्राणदा नाभियोंको उत्तेजित करती हैं।

सर्पगन्धा, लहसुन, बिरिचन आदि जो रक्तसंचापका हास कराती हैं, वे सत्र प्राणदा नाभियोंको दमसादित करती हैं, तथा उपर्युक्त बन्धुनाग आदि उत्तेजक औषधियोंका प्रयोग अधिक मात्रामें किया जाय, तो वे मो प्राणदा नाभियों पर अवसादक असर पहुँचाती हैं।

हृदयको उत्तेजना देनेवाली (Cardio Stimulants) औषधियाँ— शराय, क्लोरोफॉर्म, कुचिला, सोमल, कन्दूरी, नीलगिरी तैल और वायुमें ठबने वाले सब तैल इत्यादिके प्रयोगसे हृत्स्पन्दन बल और सप्लाकी वृद्धि होती है, तथा सुरासानी अजवायन, सूचीवृटी, कोकीन आदि औषधियोंके सेवनसे भी हृत्स्पन्दन सप्लाकी वृद्धि हो जाती है; परन्तु यह हृदयोत्तेजना अधिक काल तक नहीं रहती, अतः इसको हृद्य (हृदयपौष्टिक) नहीं कह सकेंगे।

इनके अतिरिक्त हृदयको अवसादक करनेवाली (Cardio Depressants) औषधियाँ हृदयके स्पन्दन बल और सप्लाका हास कराती हैं। बन्धुनाग, एपिटमनिवटित, लवण, हाइड्रोस्थानिक तेजाब और कड़वे बादाम आदिमें हृदय अवसादक गुण रहता है। इन सबकी क्रिया हृद्य गुणके प्रतिकूल मानी गई है। अवसादकका बर्णन भागे नं० ७४ में किया जायगा।

(६८) मेघाकर ।

बुद्धिवर्द्धक—सञ्जावारी नाभियों और मस्तिष्कको पुष्ट बनाकर धारण शक्तिकी वृद्धि करने वाली औषधियाँ - सुषर्ष, रोष्य, मज्ज, मोठी, प्रयास, जसद, अन्नक, पूष्य चन्द्रोदय रस, रसचिन्तूर, पद्मा, मालकांगनी, आयसा, गिलोय, शंभाकुली, ब्राह्मी, शतामरी, अदामासी बंशकोचन, बज, वृष, पी, बादाम, पिस्ता, खरैटी, विदारीकन्द, केशर, बनफरा और शुक्रल औषधियाँ आदि।

बुद्धि वृत्तिमें शानप्रद शक्ति (समक शक्ति), स्मरण शक्ति (धारण शक्ति) और विवेक शक्ति (सत्यासत्य, साम-दानि, कृतव्याकर्षण्य आदिके निर्णय करनेकी शक्ति), ये तीन विभाग हैं। तीनों विभागोंका परस्पर सम्बन्ध है। पिर भी तीनोंका सहचार सर्वदा एक साथ हो, यह नियम नहीं है। कतिपय स्थानोंमें ये तीनों एक

साय प्रवीर होती हैं। फिर भी कितनेही व्यक्तियोंमें समझ शक्ति प्रयत्न होती है, तथा अनेकों मनुष्योंमें धारण शक्ति असाधारण होती है। एत अनेकोंमें विवेक शक्ति का विकास अधिक हो जाता है।

समझ शक्ति, धारण शक्ति और विवेक शक्ति, ये तीनों शक्तियां मनुष्योंमें जन्मसिद्ध ही होती हैं। इनका विया और अनुभव द्वारा अधिक विकास किया जाता है। इनमेंसे धारण शक्ति का सम्बन्ध युवावस्थाके समय अनेक अंशमें शुरूके साथ ही रहता है। शुरूका जितने अंशमें संरक्षण होता है, उसने अंशमें धारण शक्ति भी प्रयत्न रहती है; और शुरूके क्षयते धारण शक्ति भी हास होता है। अतः शक्ति और शुरुआत श्रीपदधियाँ सेवनसे भी मनाकर गुणकी सम्प्राप्ति होती है। इसी तरह रसायन और जीवनिय गुण मुक्त श्रीपदधियाँ भी लाभ पहुँचाती हैं।

(६९) योगवाही ।

गृह्णाति योगवाहिं द्रव्यं संसर्गिधस्तुगुणान् ।
पच्यमानं यथैतन्मधु-जल-तैलान्य-सूत-सीरादि ॥

इस योगवाही का अर्थ पहिले गुणव्ययनके प्रभाव में विशेष रूपरूपसे दखाया है।

पाकके समय साथमें मिली हुई श्रीपदधियोंके गुणोंको ग्रहण करनेवाली श्रीपदधियाँ—पारद, सुभ्रक, लोहा आदि पाण्ड, शहद, घी, तैल, जल आदि।

जैसे मदन फलको शहदके साथ मिलाकर देनेसे शहद मदनफलके यमन कार्यमें सहायता करता है, और निसोपके साथ शहदकी योजना करनेसे निसोपके विरेचन कार्यमें सहायता पहुँचती है। विरेचन श्रीपदधियोंके अनुपान रूपसे शहदकी योजना करनेसे उदरमें पीडा नहीं होती और विरेचन क्रिया सरलतापूर्वक होती है। इसी नियमानुसार सुभ्रक आदि घट्टियोंके साथ किली अनुपानकी योजना की जाती है, तब सुभ्रक आदि घट्टियोंके गुण-साधनके साथ अनुपानके गुण भी विशेष रूपसे प्रकाशित होते हैं।

(७०) स्वन्य शोधन ।

जो द्रव्य दूषित दूधको शुद्ध और मधुर बनावे, उसे स्वन्यशोधन कहा-
ती है। सुभ्रकसहितामें क्वादिगण, हरिद्रादि गण और मुस्तादि गणको स्वन्यशोधन कहा है।

क्वादिगण—क्व, नागरमोषा, अतीस, हरष, देवदाक और नागकेसर,
ये ६ श्रीपदधियाँ।

हरिद्रादिगण—इस्दी, दाकइस्दी, पुनपसौं, इन्द्रजौ और गुलइठी, ये ५

ओषधियाँ । क्वादि और हरिद्रादि गण स्तन्यशोधन, आम और अतिसारशामक तथा विशेषतः दोषपाचन हैं ।

मुस्तादिगण—नागरमोषा, हल्दी, दाहहल्दी, हरक, भांजला, महेका, कूठ, हेमवती (रेणुका मतान्तरमें सफेद भूच), लाल भूच, पाठा, कुटकी, काकजपा, अतोस, छोटी इलायची, मिलावाँ और चित्रकमूल, ये १६ ओषधियाँ । यह, गण श्लेष्महर, योनिदोषहर, स्तन्यशोधन तथा पाचन है । (भूच वमनकारक है, उसका उपभोग अतिक्रम मात्रामें करना चाहिये) ।

स्तन्यशोधन कषाय—चरकसंहितामें पाठा, सोंठ, देवदारु, नागरमोषा, मोरनेल, गिलोय, इन्द्रजौ, चिरायता, कुटकी और अनन्तमूल, ये १० ओषधियाँ कही हैं ।

और ओषधियाँ—तगर, पित्तपापवा, चोबचीनी, उरुवा, सोवा, सतौना, गन्धक, पारद, हरताल आदि ।

स्तन्यविकृति कारक—माता की देहमें १ वातप्रकोप, २ पित्तप्रकोप ३ कफप्रकोप; ४ उपदश, मुजाक आदि रोगोंका छीन विष ५. अनुचित आहार विहार, ६ माताका स्यास्थ्य पहिलेसे ही खराब रहना आदि ।

वातदुष्टि होनेपर दशमूल सोवा आदि, पित्तदुष्टिमें पित्तशामक ओषधियाँ—गिलोय, शतावरी, पित्तपापवा, सारिवा, रक्तचदन चिरायता, कुटकी, आदि कफदुष्टि में सोंठ, अजवायन, पीपल, पांशुला, कुटकी मुस्तादि गण, आमप्रकोपज विकृति होनेपर क्वादिगण, हरिद्रादि गण आदि त्रिदोषज विकृतिमें स्तन्यशोधन कषाय उपदशज दुष्टिमें चोबचीनी, उरुवा, हरताल, रसकपूर आदि; मुजाकविकृतिमें मिलावा, श्वेत चदन, सारिवा, घंशलोचन प्रवाल, गोक्षर, शीतलामिर्च आदि । चर्मरोगज विकृतिमें गन्धक, भिप्ला, कुटकी आदि ओषधियाँ प्रयुक्त होती हैं ।

बुग्धकी विकृति होनेपर प्रियु पुष्ट नहीं बन सकते बहुधा रोगपीडित हो जाते हैं और अनेक बालक मृत्युके मुझमें चले जाते हैं । अतः बुग्धविकृतिपर माताको स्तन्यशोधक ओषधियोंका सेवन उत्तर करना चाहिये ।

टाकट्टी हरिसे निदोष विचार नं० ७२ "स्तन्यपर कार्यकर" औषधके विवेचनमें किया जायगा ।

(७१) स्तन्यजनन ।

स्तन्यवर्धक—गोक्षेकटेगोम्स—जेकटेगोम्स ।

Galactagogues—Lactagogues,

स्त्रियोंके स्तन्यको उत्पन्न करने और बढ़ानेवाले द्रव्योंको स्तन्यजनन सहा दी हैं ।

स्तन्यजनन कषाय—चरकसंहितामें क्षुध, शक्ति, पशिक (सांठी चावल),

दूध, इजुवालिका (ईंय मेर), दर्भ, कुय, फाय, गुदा (पाटरफ पास), इरुट (शरमेद) ये १० श्रीपथियां कही हैं । इण, दर्भ, कुय आदि सबके मूल लेख चाहिये ।

मुभुव संदितामें काकोत्यादि गखको स्तन्यकर कहा है । इउका वणन पहिले न० ५ पित्तसंरामनमें किया है ।

और श्रीपथियां—दूध, मीठे जलकी मङ्गली, नारियल, घायका गांठ, सेमलकी जक, अम्यराट, अरुगन्ध, शतापर, सोबा, परण्डपत्र, उबद, डालोकी लीर, भिनीलेकी गिरी, मिभी, मधुरअम्ल श्रीपथियां, दीरीष्टव (दुधवाले वृक्ष), सोष्टव छापर अन्व प्रकारकी शराव आदि ।

दूध तथा दूधके समान द्रव्य—दीरीष्टव, शतापरी, भूमिङ्गप्पावड सत्वर लाम पहुँचाते हैं । असद, सुपख, चावल, पचतृषामूल, मधुर अम्ल फल आदि स्वघातुको समल बनाकर लाम पहुँचाते हैं । आरुवर्ग आदि श्रीपथियां देहकी मांस आदि भातुओंको पुष्ट बनाकर दूध बढ़ाते हैं ।

दुग्धप्रवर्त्यामें अनेक क्रियोंके दुग्धके परिमाण अथवा स्यमावमें पैलद्वय प्रवीण होता है । कमो-कमी दूध बहुत कम आता है । इसमें अनेक कारण हैं ।

(१) यदि दुग्धप्रत्थियोंके विधानमें साम्य वृद्धि न होनेसे दूध कम उत्तरता हो, तो उसकी कोई चिकित्सा नहीं हो सकती ।

(२) गर्भावस्थामें निबलता, अवर आदिसे क्षीणता, प्रसूताके पोषणमें न्यूनता, रक्तसाव, अतिशार, अवर आदि विविध पीडाके हेतुसे दूधमें न्यूनता हुई हो, तो उसके कारण अनुष्म चिकित्सा की जाती है ।

(३) स्तनके भीतर स्लीपिक आवरण आ जानेसे योग्य दग्धसत्व नहीं हो सकता । ऐसे समय पर स्तनोंको कुछ दिनोतक मसल कर दूध निकालनेसे फिर सामासिक निःसारण क्रिया होती रहती है ।

(४) मानसिक उद्वेगजनित स्तन्यमें न्यूनता या विलक्षणता हो, तो मानसिक उद्वेगको दूर करना चाहिये ।

(५) स्तनमें रखी हुई दुग्ध प्रत्थियोंकी क्षीणता होनेपर दूध कम आता हो, तो उपर्युक्त श्रीपथियोंसे लाम हाता है एव विद्युत्प्रयोगसे भी उपकार होता है ।

(६) शारीरिक बल योग्य मात्रामें होनेपर भी दुग्ध बननेकी क्रिया यथोचित न होती हो, या पित्तके प्रपलताके हेतुसे दूध सूख जाता हो, -तो उपर्युक्त स्तन्यवर्द्धक श्रीपथियोंका सेवन कराना हितकर होता है ।

इस स्तन्यका विशेष विचार न० ७२ "स्तन्यपर कार्यकर" बर्गमें देखें ।

(७०) स्तन्यपर कार्यकर ।

दूधमें अपना गुण प्रकाशित करने वाली औषधियाँ—पारदघटित औषधियाँ, लोहमस, असदभस्म, मल्लभस्म, मोक्तिकमस, नौसादर, सोवा, शीतलमिच, वार्षिन तैल, रेवन्दचीनी, सनाय पत्ती, परण्ड सैल, अफीम, सौंफ, इलायची, सुगन्धयुक्त सैल, धाले पदार्थ, लहस्युन, शिलाजीत, अवाखार आदि विविध चार, उबद, केसा इत्यादि । यद्यपि सामान्य रूपसे माताके माजनका प्रभाव स्तन्यपर होता ही है, तथापि उपसुक्त औषधियोंके सेवनसे माताका दूध अधिक प्रमावित होकर स्तनपायी शिशुपर विशेष रूपसे परिणाम प्रकाशित करता है ।

सौंफ, इलायची, बादाम आदिके सेवनसे दुग्ध मधुर, सुगन्धित और पौष्टिक बनता है । एवं यह दूध बालककी बुद्धिपर भी लाभ पहुँचाता है ।

लहस्युनसे दुग्ध उग्र, दुर्गन्धयुक्त, बेस्वाद, बुद्धिमान्यकारक और वातहर बनता है ।

शिलाजीत, जवाखार, केसाका चार आदिके सेवनसे बालकको मूत्रल गुणकी प्राप्ति होती है । जब दूधमें चारकी न्यूनता हो, तब चारप्रधान औषधि दी जाती है ।

वार्षिन तैल देनेसे बालकके मूत्र संस्था और मूत्रपर उग्रता पहुँचती है ।

अफीम शिशुपर स्वापननक असर पहुँचाती है ।

उबद, केसा, पका मोजन आदि बालककी पचन क्रियाको विकृत कर मलायरोत्र उत्पन्न करते हैं ।

माताको विरेचन औषधि देनेसे बालकको ज्वलात्र क्षय जाता है ।

सौंफ, सोवा आदि देनेसे स्तन्यकी शुद्धि होकर बालककी पचन क्रिया सबल बनती है । बालकको उत्पन्न हुए उदरविकार नष्ट होते हैं ।

माताको मल्ल भस्म देनेसे बालकके रक्तमेंसे उपद्रवजनित हीन विषकी निवृत्ति हो जाती है ।

तेजाय और अम्लरस युक्त औषधि देनेसे बालकको उदरशूल, पेचिस आदि व्याधियाँ हो जाती हैं । अत ऐसी औषधियाँ, तिरका, तीव्र अम्लरसप्रधान मोजन आदिका निषेध किया गया है ।

चर्बी, (घृत आदि) प्रधान मोजनसे दूधमें शर्कराके अंशकी वृद्धि होती है परन्तु परिमाण कम होता है । उद्भिद् (अष्ट, शाक और फल फूल आदि) आहारमें दूधमेंसे क्लिस्टोजनक सत्र (Casein) का ह्रास होता है मांस और शरयमिभित्त मोजनसे दुग्धमें चर्बी और क्लिस्टोजनक सत्रके परिमाणकी वृद्धि होती है । गादुग्धका भोजन करनेसे शुद्ध स्वादु और बुद्धियुक्त दुग्धका परिमाण बढ़ जाता है ।

फर्मी-फर्मी किसी-किसी स्त्रीको दुग्धका परिमाण अधिक होता है। यदि कुछ अंशमें अधिक हो, तो विरेचन श्रीपथि श्रीर नियमित पथ्य देनेसे दूध मर्यादित हो जाता है। क्वचित् दूध अत्यधिक आता रहता है, उसे रक्तमक्षरण ग्वाधि (गैलेक्टोरिया Galactorrhoea) कहा दी है। उस पर अनन्तमूलके कापके साथ शिला-जीतका सेवन कराया जाता है, तथा स्तनपे ऊपर हल्दी मिली हुई घट्टाकी पुन्डित्त यौधनी चाहिये एवं ठण्डा जलसे सेक करें या सूजोबूटोका लेप करें। आवश्यकतापर दुग्धपूपक पम्प (Breast pump) से दूध खेंच लेना चाहिये।

अनेक बार प्रसूताको पुनः मासिकचक्रम आनेपर दुग्धस्रावका स्थान ही जाता है अथवा किसी तरह गर्भाशयमेंसे रक्तस्राव होनेपर स्तन्यनि स्ररणका ह्रास हो जाता है। निवाया जलका दूध (रस्ति) देनेसे लाभ हो जाता है।

गर्भाशयमें गर्भावृद्धि होनेके साथ-साथ स्तनमें स्तन्य निःसरण क्रिया प्रारम्भ हो जाती है। जैसे-जैसे सर्गर्मा स्त्रीके स्तनोंके आकारका परिवर्तन होता जाता है, ऐसे-जैसे भीतर एक प्रकारका दुग्धरस निकलने लगता है। फिर जब सन्तान बाहर आती है, तब यह पहिली समय गाढ़े दूध सद्य होकर बाहर निकलता है। इसे पीमूप (Colostrum) कहते हैं। इसे मापामें स्वीध नाम दिया है। यह स्वाभाविक स्तन्यकी श्रेयसा घन, इयत् पोषामधर्णका और मधुर स्वाद मुक्त होता है।

कितना आश्चर्य है कि सन्तानका जन्म होनेपे पहिले जगदीश्वर जन्मीके स्तनोंमें स्तन्य सञ्चारित कर देते हैं। फिर जन्म होने पर परिपोषण पदार्थ (स्तन्य) की स्ररणक्रियामें जीवनीय शक्ति सहायता करती है। प्रसूने जननपन्थ इस तरह चनाया है, कि एक अंशको क्रिया घटमान होने पर इतर अंश विभ्राम होता है। गर्भावस्थामें जिस तरह गर्भाशयको परिभ्रम पहुँचता है, उसी तरह स्तनोंमें भी पहुँचता। फिर प्रसव होनेके दो दिन बाद स्तन कठोर और स्पूल हो जाते हैं। एवं प्रसूताके शरीरमें विविध परिवर्तन हो जाते हैं। शीत लगना, मुख लाल हो जाना, मस्तिष्कमें वेदना, सुषास्त्रोप, जिह्वापर श्वेत बणका छेप, सामान्य ज्वर, वेग नाभी आदि लक्षण प्रतीत होते हैं। यदि इस अवस्थाकी वृद्धि हो जाती है, तो स्तन्य ज्वर (Milk fever) कहलाता है। यह ज्वर लक्षण और साम्य उपचार करनेसे २-३ दिनमें शमन हो जाता है।

स्तन्य निःसरण क्रिया प्रारम्भ होने पर नियमपूर्वक होती रहती है। इस हेतुसे जब माता अपने शिशुको स्तनपान कराती है, तब उसके स्तनोंमें गुदगुदी (एक प्रकारकी मधुर वेदना) होती है। किसी-किसीको तो सन्तानके सम्मुख आने पर स्नेहाधिक्य वशात् दुग्ध वेगपूर्वक सञ्चारित होकर रक्त वृन्तमेंसे बाहर निकलने लग जाता है। यदि बालक बहुत दिनों तक स्तनपान करता रहता है, तो स्तन्य

निःसरण क्रिया ५-७ वर्ष तक सतत होती रहती है और स्तन्यपान करानेका त्याग कर देवे, तो दूध योजेही दिनोंमें सूख जाता है।

कमी-कमी बालककी माताका देहान्त होजानेसे बालकी दादी या नाना सम्भालने लगती है। ऐसे समय पर अप्रसूता वयोवृद्धा स्त्रीके स्तनोंमें भी स्नेह वृद्धिके हेतुसे स्तन्यकी उत्पत्ति हो जाती है।

स्तन्य उत्पत्ति किसी माताके स्तनमें अधिक और किसीके कम होती है। किसीको इतना अधिक दूध आने लग जाता है, कि दूध स्वयमेव बाहर निकलता रहता है।

इस दूधमें जब रोग आदि कारणोंसे विकृति हो जाती है, तब यह सन्तानके जीवनका, पोषणके बदले शोथक करता है।

स्वस्थ माताका दुग्ध कुछ नील आभायुक्त होता है। स्वस्थ माताके दुग्धका विश्लेषण करने पर उसमें निम्नानुसार तत्व मिलते हैं।

शुकरा प्रधान द्रव्य-कर्वोदक (Carbohydrates)	५९	} १०० भाग
वसा (Fat)	२८	
प्रथिन-पौष्टिक तत्व (Protein)	१२	
लवण	२४	
जल	८९८६	

नीरोगी दूध स्वादमें मधुर होता है। इसमें एक प्रकरकी सुवास आती है। आपेक्षिक गुणत्व १०२६ से १०३५ पर्यन्त होता है। यदि स्तन्यको किसी पात्रमें कुछ समय रख दिया जाय, तो उसपर मलाई आ जाती है। स्त्रीदुग्ध विशेषतः सार गुणविरहित होता है। गोलुग्ध भी चारयुक्त होता है। बहुधा मांसमोक्षियोंका दूध अर्थात् गुणविरहित होता है।

अणुवीक्षण मन्त्रद्वारा मिश्रित स्तन्यकी परीक्षा करनेपर उसमें तल्ल पदार्थ—कैसाटजनक तत्व (Casein) पाया जाता है। इस दुग्धसत्व द्वारा प्रकाश प्रतिबिम्ब होनेसे दूधका वर्ण श्वेत प्रतीत होता है।

स्तन्य शुद्ध चरकसंहिता और सुभ्रु तसंहितामें लिखा है कि—

जीवनं वृहणं स्यात्सर्गं स्नेहनं मानुषं पयः।

नायनं रक्तपित्तं च सर्पणं स्यात्सिद्धिं क्षिणात् ॥ च० स० ॥

नार्यास्तु मधुरं स्तन्यं कपायानुरसं हिमम्।

नस्याप्रथ्योतनयो पथ्यं जीवनं क्षुधु धीपनम् ॥ सु० स० ॥

स्त्रीदूध पीबनीय, वृहण, सत्त्व (मनुष्य देशके अनुकूल) तथा स्निग्ध करने वाला है। यह रक्तपित्तमें नस्यस्मसे और नेत्ररोगमें तपणरूपसे (नेत्रको दूधसे भर देनेमें) उपयोगी है।

मातृपी दूधने रस मधुर और अनुसुप्त कर्तव्य है। पद रूपांत, तनु, एवं और दीन है, तथा नया और आरोग्योपन रूप (नेपथे वृद्ध शब्दों) निरूप है।
 स्वस्थ भोग्यमहाचारन पतप्रदो, विद्युद्दि, ग्दविमर, अमिना की
 विशेषता नातक कता है।

यदि मनसे दूधने पर अतिवृत्ते दूध विद्यमान ही, तो उस दूधमें दुग्धक कम निकलने है और तनु, रस परमातु मिश्रित होने है। ऐसा होनेपर वल्ले शिशुका योग्य पदार्थ नहीं होता। इस तरहके दूधमें श्वेतोष्ण (White) का प्रमाण होता है परंतु थोड़ा अधिक दूधमें भी पावोका मात्रा मान नहीं मिलता।

गन्ध-पा प्रमदक परमातु शिथिल मास पयन दुग्धकत्त और श्वेतोष्णका वृद्धि पाव नहीं। वह चाणो न पथही अधिकता तथा आरोग्ये वरुं मासक शब्दाका परिमाण विराम होता है। वरुं मासमें श्वेतोष्ण मात्रा कम रहती है। पति मासके पाव पाविसात नून होने लगता है। श्वेतोष्ण २४ मासक दुग्धकत्त और पावोके वृद्धे तथा दशमे ११ वें मासक श्वेतोष्ण परिमाण कम होता है।

जिना दूध अधिक निकलता है, उतन ही दुग्धकत्त और श्वेतोष्ण वृद्धि होती है, तथा रस वीर्य-तत्त्वका तृप्त होता है। प्रारम्भमें प्रमातके दूधमें पतक अथ कम होता है। तथा आहार होने पर दुग्ध, दुग्धके भीतर दुग्धकत्त, श्वेत और श्वेतोष्णके परिमाणकी वृद्धि होती है। यदि कर्बोहक प्रमाण (Carbohydrates) भीजनका भेदन अधिक हो, तो दूधमें श्वेत बढ़ जाता है।

यदि अनभोज दूधकी नूनता अत्यन्तता अथवा मूल्य होने पर रस पावो निन्देता करती हो, तो कैसी रानी चाहिये ? इस नियमने भगवान् आशेष करते हैं, कि जो पावो शिशुके समान पक्ववाली (कुमार और हो, तो गौर, और कुमारका कर्बो-स्वाम हो, तो दूधम पक्वही) समान पाविसाती, प्रमातके समान वन पावो, निर-सगम नीचेमी, सप अतिरुत अन्नोपाती, दुग्धकत्तने रूद्धि, जो वृद्धि न हो, मैली-सुन्दरी न हो, स्वच्छताका पूर्य लक्षण रहने वाली हो जिस देवका शिशु हो, उस देवको ६, समाममें दूध न हो, वृद्धि कर्बोहक न बढ़ती हो, श्वेत युक्तही हो, शिशुके यदि हार्दिक प्रीति रहने वाली हो, जिसकी सन्तान अविद्युत हो, जिसे पुत्र पत्नी हो (कन्या न हो), जो अधिक दूध देने वाली हो, प्रमातरुद्धि और आसत्परुद्धि हो, श्वेतोष्णवाली हो, श्वेतके मलमूत्रको उकास वृद्धि करनेवाली हो, घम और सगवरुत युक्त हो, उपचारमें शुद्ध हो, कर्बोहक सेपा-मुभूपाका जिसे बोध हो, पवित्र विचारकी हो एवं जिताके स्तन और सस्य, दोनों शुभ शुभपुत्र ही, देवी स्त्रीको पावोरूपसे नियमित परनी चाहिये।

जिस धारीके स्तन अधिक ऊँचे या अथि लम्बे, लटके हुए, अथि कृश या अथि मोटे न हो, जिसके मूत्रक उग्रत हो, जिससे शिशु सरलवापक दुग्धपान कर

सके। जो स्त्री अति दृश या अति स्थूल न हो, जिसके स्तनोंके दूध (पुच्छ) अति कठोर न हो, एवं स्तनदृन्त अति ऊध्वमुख या अधोमुख न हो, ऐसी स्त्रीको धात्रीरूपसे रखनी चाहिये।

दुग्ध विलानेके पहिले और पीछे बूजुकोंकर गरम जलसे धो लेना चाहिये। जिससे प्रस्वेद अदि बालकके उदरमें न जाय, एवं दुग्ध जो बाहर खगा हो वह तुरन्त दूर हो जाय। यदि हो सके तो रासायनिक और अणुषोद्धयमत्र द्वारा दुग्धकी परीक्षा करा लेनी चाहिये।

नीरोगी दूध—जिस दूधके वर्ण, गन्धरस और रसस्वा माषिक हो, और जल पात्रमें बुझने पर त काल जलमें मिला जाय वह पुष्टि कारक और आरोग्यप्रद माना जाता है।

घातदुष्ट दूध—जिस स्तन्यमें स्वाभता या अरुणता हो, जो स्वादमें कषाय रसविशिष्ट हो जिसकी वास अन्धवी न हो, जिसमें रूक्षता (चिपचिपापनका अभाव) हो, जो मग्न मुक्त और लघु हो, और जो दध अतृप्तिकारक, कृशकर हो, उसे घात दुष्ट मानना चाहिये।

पित्तदुष्ट दूध—जो दूध काला, नीला, पीला, ताम्रवर्णकी आभायुक्त हो, जो तिक्त, अम्ल और कटु रसविशिष्ट हो, जिसमेंसे घात रक्तके सदृश आती हो, जो अति तप्य हो, उसे पित्तप्रकोपक जानना चाहिये।

कफदुष्ट दूध—जो दूध अति द्रव्य, अति मधुर, लवण रसविशिष्ट, घृत, सैल, घसा और मखा सदृश गन्धयुक्त पिच्छिल और सन्तुमुक्त हो तथा जलपात्रमें दोहन करने पर जो जलमें दूध जाय, उसे कफप्रकोपक माना है।

घात, पित्त या कफके दोष युक्त दूधको दोषप्रशमनकारक आहार विहार, योग्य औषधि या वमन, विरेचन, आस्थापन और अनुवासन रस्तिके प्रयोगों द्वारा उपचार लेना चाहिये।

वर्तमानमें शहरोंमें जो धात्री म्यङ्गलाय करनेवाली लियाँ हैं, उनकी धात्री रूमसे योजना नहीं करनी चाहिये। कारण, वे स्वार्थनिमित्त कृत्रिम उपायों द्वारा स्तन्यको विरकात्तक समान रखनेका प्रयत्न करती हैं। यह विधि स्वात्प्यप्रद नहीं है, इससे बालकको योग्य लाभ नहीं मिलता—

दुष्ट दूधवाली धात्रीको जी, गेहूँ शालि और पण्डिक चावल, मूँग, मटर, कुसुमी, सुप (शराब), सौबीर, सुपोदक, मैरिच, मेरक (ये शराब के मेरक हैं), साइडन और करंजका अधिक प्रयोग करना चाहिये। एवं दूधके दोषके अनुसार दोषशामक आहार-विहार और औषधि देनी चाहिये।

गेहूँ, चावल, मांसरस, मछली, लहसुन, क्योर, सिंवाड़े, भीठी कुम्भी आदि श्याक, अनेक प्रकारकी शराब, शवाधरी, मुसाहठी, विदारीकन्द आदि स्तन्योत्पादक आहार माने गये हैं।

(७३) सान्गनाशन ।

साम्बसात्पातकर—लेक्टीभुग्ग ।

(Lactifuge)

जो दौर्गतियी रक्त्यको मुष्ठा देवे, उनको सान्गनाशन करने है । मातृदूध देहको स्वल्प दानसे दानि पहुँचाते हैं मय हा या गिरुकी मूत्र हा जाने दर दर प्रत्येक कृता पशता है । नागरकेसरे पान, कपूरके पान या भाग्यके दूध स्नान पर भी पड़े है मयया धनुषके पानीके कटका सेर दिया जाता है तथा कूर २२ रसी दिनमें २ समय दियाजा जाता है ।

सास्त्रीमें एम्पेडोका सेर (Emp. Belladonna) लगाया जाता है । इससे दूध गुण जाया शीर गुणन भी दूर हो जाती है तथा पशुके कोरते भी यही लाभ होता है ।

इस तरह दौर्गत्य दौर्गति या विरिचनका प्रयोग किया जाता है । दुग्धपूरक-मयस दूध लौन दिया जाता है । दुग्धयाभिनियोको शिथिल करनेके लिये हल्दी, देवदारु पुननवा आदिका लेन भी लगाया जाता है । उष्ण जलके स्नानपर सेक भी दिया जाता है ।

(७४) सामक ।

अवसादक—टैमिल्यकर—त्रिपेरिअ—टिप्रेउण्ट्य ।

अ मस्तिष्कपर कार्यकर द्रव्य —

१ मादक (Intoxicants) शराब, मद्यार्क, ताकी आदि ।

२ सार्वाङ्गिक चेतनाहर और मोहजनक—General Anaesthetics and Narcotics—क्लोरोफर्म ईथर आदि ।

३ निद्राप्रद और मोहजनक—Hypnotics and Narcotics—

अधोम, मांग, गांजा, क्लोरल हाइड्रेट, सल्फोनल, पेरलडीहाइड, बार्बिटोन, त्रोमाइड आदि ।

आ सुपुण्याशीर्षपर कार्यकर द्रव्य—उत्तेजक-Stimulants कफूर, लोयाम्बोल आदि ।

इ सुपुण्याकाण्डपर कार्यकर द्रव्य—आन्वेपोत्यादक—Convulsants-कुचिला सत्व (स्ट्रिक्निन) ।

स्वतन्त्रवातनाडी सस्थापर कार्यकर द्रव्य —

१ परिस्वतन्त्र नाडियोंके सिरेके उत्तेजक—पाइलोकार्पिन, एसिटिलकोलिन आदि ।

२ परिस्वतन्त्र नाडियोंके सिरेके अवसादक—यूचोभूटे, सुयसानी अजवायन (Hyoscyamus), चत्रा आदि ।

३ स्वतन्त्र नाडियोंके सिरेके उत्तेजक—एड्रेनलिन, एफेड्रिन (सोम) आदि ।

४ स्वतन्त्र नाडियोंके सिरेके अवसादक—रही मात्रामें अर्गोटोमिसन, एपोकोडीन आदि ।

उ. श्रेष्ठावाही नाडियां और नाडीमन्थिपर कार्यकर द्रव्य—जेसिमि बमके मूख, निकोटिन, कोनायम (हेमलाक सत्व), लोबेलिन आदि ।

ऊ. संचेतनावाहो नाडियोंके सिरेके अवसादक द्रव्य—कोफीन, बेन्सो-फैन, पकैन आदि ।

ए. संचेतनावाही नाडियोंके सिरेके उत्तेजक द्रव्य—इनका वर्णन प्रथि-सोमेट्रादक द्रव्य नं० १०० में आगे किया जायगा ।

अन्य प्रकारसे शामक विभाग—१ व्यापक अवसादक, २ मस्तिष्क-शामक ३ सुपुण्याशामक ४ वातनाडीशामक ५ घमनी शामक । यदि स्थानभेदसे विभाग किया जाय, तो हृदयावसादक, फुफ्फुसावसादक आमाशयावसादक, यकृतवसादक, मूत्राशयावसादक, गर्भाशयावसादक आदि भेद हो जाते हैं ।

(१) व्यापक अवसादक (General Sedatives)—रक्तमोचक वायु, कफ या जलकी शीतलता और उपवास आदि ।

(४) घातनाडी शामक (Nervous Sedatives)—घातवहा नाबियोके विहारीमें, ब्यापक और स्थानिक, ऐसे दो मेद हैं। समस्त शरीरकी घातवहा नाबियोमें विभूति हो, वो ब्यापक विकार कहलाता है और मस्तिष्क और सुषुम्बासे सम्बन्धवाली घातवहा नाबियो शास्त्राएँ जो विविध मात्र या स्थानोंमें रहती हैं, वे सब स्थानिक कहलाती हैं। इन स्थानिक नाबियोकी विकृतिसे स्थानिक विहार करा है।

ब्यापक घातवहा नाबियोपर अवसादक औषधियोका वर्णन आगे न० ७६ निम्ना उल्पादक (Hypnotics) विभागमें किया जायगा।

स्थानिक घातनाडी शामक (Local Sedatives)—स्थानिक शामक औषध कुछ समयके लिये चमकी अवसथ (मूर्च्छित) सा बनाती है। इस हेतुसे उस भागमेंसे स्पर्श बोधका हास हो जाता है। बन्धनाग, अफीम, कार्बोसक एथर, क्लोरोफार्म आदिका प्रयोग स्थानिक अवसादक रूपसे होता है।

इनके अतिरिक्त स्थानिक स्पर्शहारक-चेतनाहर (Local Anaesthetics) का प्रयोग करनेपर भी वेदना और स्पर्शानुभव लोप हो जाते हैं। इस विभागा वर्णन आगे न० ७८ में किया जायगा।

घातनाबियो कुफकुज, हृश्य, आमाशय आदि प्रदेशोंमें प्रविष्ट हुए हैं। इनमें ठण्डपनाकी वृद्धि हो जानेपर स्थानिक लक्ष्य रखकर शामक औषधिका प्रयोग करना चाहिये।

(५) धमनी अवसादक (Arterial Sedatives)—इस प्रकारकी औषधियो रक्तसंचालन यन्त्र पर अवसादक क्रिया दर्शाती हैं। इन औषधियोद्वारा रक्तप और सब धमनियोके स्पन्दनका हाधव होता है। स्वसोच्छ्वास क्रिया मन्द होती है। एवं शारीरिक उष्णताका हास होता है।

नये सुसार और मदाह आदि ब्याधियोमें जब हृदय स्पन्दनकी वृद्धि, धमनीके वेगकी वृद्धि और स्वासोच्छ्वास क्रियाकी वृद्धि हो जाती है, तब शीतल औषध (Refrigerants) प्राघासव, अंगूरका सिरका, यवचार, केलेका चार, बिगारेका रस, नीबूका सत्व, इमलीका सत्व, बन्धनाग, पषकाष्ठ, सुरमा, सुवर्षमाक्षिक, सर्षपगन्धा, मुक्ता, प्रकाश, जलदमस्त्र आदि औषधियो धी जाती हैं। इन औषधियोसे धमनी पर अवसादक असर पहुँचता है।

सब रक्तप्रणालियो घातनाबियोके अधीन हैं। इन घातनाबियोमें दो प्रकार हैं—एक रक्तप्रणाल संकोचक (Vaso constrictor) और दूसरा रक्तप्रणालीप्रसारक (Vaso-dilator)। इन दोनों प्रकारकी (घातवाहिनियो पर कार्य करनेवाली) औषधियोके दो विभाग किये हैं। जो औषधियो स्थानिक क्रियाद्वारा रक्तप्रणालियोकी संकुचिता या प्रसारित करती हैं, वे सब ठण्ड घातवाहिनियो पर कार्य करके क्रिया दर्शाती हैं।

जो औषधियाँ हृदय या विलीन रक्तप्रवाहीय स्थान पर कार्य करती हैं, उनके द्वारा रक्तसंचार में परिवर्तन ला जाता है। सब धमनियाँ की दीवारों में वेग या दबाव पाया जाय, उस रक्तसंचार कहते हैं। रक्तसंचार की ताव-बृद्धि ठीक हीन प्रकारकी वातनादियों की क्रियाके कारणके ऊपर निर्भर है। अतः वातनादियों पर असर पहुँचाने वाली औषधियोंसे भी रक्तप्रवाही पर साम-दानि पहुँच जाती है।

हृदय अवसादक (Cardiac Sedatives)—हृदयका अवसादन होने पर आयु पान मलका हाथ हाथ है। संचालन नियंत्रण हस्त है और गति भी कम हो जाती है इस प्रकारकी औषधियोंका वर्णन पहिले नं० ६७ हृदय गुण विषयके अन्तमें किया गया है।

हृदय अवसादक औषधप्रकार—

१ प्राणनादीके कन्द्रकी उत्तेजनाद्वारा कानर पञ्चनाग, अफीमसत्व (Morphine) आदि।

२ प्राणनादीके सिरेकी उत्तेजनाद्वारा अर्पकर स्वप्न और परिवर्तन नादियों पर उत्तेजना पहुँचाने वाली औषधियाँ—एड्रिनलिन, एड्रिनिन, एसिटिल कोलीन आदि।

३ शार्क रक्तमिस्रणके हाथद्वारा अर्पकर-ग्लोबुलिन प्रथितत्व (Pituitin), मधु माशमें एड्रिनलिन।

४ हृदयवेग पर साक्षात् कार्यकर—एप्युनाग, इमेटिन, स्विनाइन, हारोड्राये नक अम्स, फ्लोरल हारोड्रेट और बरी माशमें निद्राप्रद औषधियाँ।

भौतिक, प्रयास आदि प्रथम प्रकारकी हृदय अवसादक औषधियाँ हैं।

महापमनीची पीसने हेतुमें हृदयक कम्पकी वृद्धि हुई हो, तो यिलासीत या इतर मूल औषधि और कफखाती गुणगुण औषधि दी जाती है।

अजीर्णजनित हस्तम होने पर प्रयास मम्म, शुक्ले भरम आदि औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

गन्नाधुप्रदाहन (Tonsillitis) अरमें हृदय वेगको स्थित करनेके लिये बारबार अति सूक्ष्म माशमें एप्युनागप्रदान औषधिये अथवा साम पहुँच जाता है।

पुष्पुस अवसादक (Pulmonary Sedatives)—स्वातोप्युष्यकके आघाररूप वातप्रदा नादियों और उनका केन्द्र, दोनोकी उमदाका हाथ कथनवाली औषधियाँ। इनमें तीन प्रकार होने हैं—

१ स्वातकृच्छता और फासको दमन करनेवाली औषधियाँ। इसमें तीन उपविभाग हैं, तिनका वर्णन आगे किया गया है।

२ प्रसनिफा रक्तवाहिनियां, हृदय आदि पर क्रिया दर्शाकर परम्परा छाम पहुँचानेवाली औषधियाँ।

३ श्वासप्रणालिकाके आक्षेपको दमन करनेवाली औषधियाँ—घट्टाका घूसपान, ईयर, क्लोरोफॉर्म आदि। श्वास-कासके दमनकारी औषधियोंमें भी तीन तप विभाग होते हैं—

अ कासउद्दीपक कारणको दूर करनेवाली औषधियाँ।

आ वातवाहिनियोंके अन्त मागोकी उग्रताका साक्षात् सम्बन्धसे दमन करनेवाली औषधियाँ।

इ फुफ्फुसोंकी सजावही वातवाहिनियोंकी उत्तेजनाका साक्षात् सम्बन्धसे दमन करनेवाली औषधियाँ।

कितनी ही औषधियाँ प्रसनिफा (Pharynx) और स्वरयंत्रके रक्षावेगजनित कासपर छाम पहुँचाती हैं। यथा गांढमिभित अफीमप्रधान औषधि, मुलहठी, मिमी, बच लौंग आदि। इनको मुँहमें रखकर रस चूसते रहनेसे कासका दमन हो जाता है। अफीमसे श्वासयंत्रतय वातवाहिनियोंकी उग्रताका दमन होनेके साथ, श्लेष्मच्छाव भी कम हो जाता है।

कमि ठारक औषधियाँ बहुधा श्वासमार्गके रक्तसंचय (Congestion) का हास करके तथा सोह मसम आदि औषधियाँ हृदय और रक्तवाहिनियोंपर क्रिया दर्शाकर कासरोगमें छाम पहुँचाती हैं।

तमाखू, घट्टा, मैनसिल, वेधदाक आदि औषधियों घूसपान करने पर फुफ्फुस अवसादक होकर कासका निवारण करती हैं। ये सब सूक्ष्म श्वास प्रणालिकाओंके आक्षेपका हास कराती हैं, अतः कफप्रधान तमक श्वासमें लाभदायक हैं। एष अफीम, ईयर, क्लोरोफॉर्म, कन्डुनाग, सुपधीय आदि श्वाशोच्छ्वास नियामक वास्तवहा केन्द्रपर साक्षात् सम्बन्धसे अवसादन क्रिया करके लाभ पहुँचाती हैं।

आमाशय अवसादक (Gastro Sedatives) का विवेचन पहिले न० २२ यमन निवारक औषधियोंके साथ किया गया है।

यकृतवसादक (Hepatic Sedatives) औषधियाँ—मीरकिक, शुक्ति, शंख, पराटिका, प्रवाल, मीठे अनार, अँवला, चूनेका जल आदि विच निःसंशय क्रिया की हास करती हैं।

मूत्राशय अवसादक (Vesical Sedatives)—मूत्राशयकी उग्रताका हास करनेवाली औषधियाँ—निवाये जलमें पैठना, निवाये जलसे कठिनान, अफेम, सुरासानी अजवायन, घट्ट, एखीबूटी, जवालाक, चूनेका जल, गोखरू, कुसुमी शिलाजीत आदि। इस प्रकारकी औषधियाँ मूत्राशय और मूत्रप्रसेक नलिनमें शामक असर पहुँचाती हैं जिससे वेदना और बारबार योषा-योषा मूत्र उतरना, ये विकार

दूर होते हैं। मूत्राशयमें अधिक मूत्र संचय होना, अस्मरीकी उत्पत्ति और मूत्राशयकी र्लैम्बिक कलाका प्रदाह इत्यादि विकारोंमें पारवार पराण करनेकी इच्छा होती रहती है। ऐस समय पर अपसादक औषधियाँ व्यवहृत होती हैं।

अस्मरीमन्व विकारमें शिलाजीत, ज्वालार, केसेफा चार, गोखरु आदि उपकारक हैं।

मूत्राशयकी र्लैम्बिक कलाके प्रदाहमें उष्ण जलसे कटिस्तान, शिलाजीत, मन्पानियोना, शावकभिर्च, इलायची आदि प्रयोजित होती हैं।

वातयद्वा नासियोंकी उमठा हो, तो अफीम, चुपछानी अज्यायन, बेघाटोना, अलसीअ फाय, उष्ण जलपान आदि सामदायक हैं।

मूत्रकी प्रतिक्रिया अत्यधिक अम्ल हो जाने पर र्लैम्बिक कलाका प्रदाह होकर म्लेष्मा (Mucous) निकलता है; और मूत्रवागक समय दाह भी होता है। परीक्षा करने पर यदि मूत्रमें मूरिक एसिडका प्रचेय प्रतीत हो, तो ज्वालार, प्रवाल, मौक्तिक या इतर मूत्रल औषधि देनी चाहिये।

यदि मूत्राशयकी मांसपेशियाँ शिथिल हो जानेसे मूत्रधारण अनवाका हास (Incontinence of Urine) हो गया हो, तो मूत्राशय पौष्टिक (Vesical Tonic) औषधियाँ लोदमस, शिलाजीत और यंगमरप्रमिश्रित औषधि तथा कुचिलासन्य आदि दी जाती है।

गुजाक आदिसे कीटानुग्रो द्वारा मूत्रप्रसेक नसिका (Urethra) में प्रदाह होने पर मन्पानियोना, शतलभिर्च, चन्दन वीण आदि प्रयोजित होते हैं। एवं बाह्य उपचार रूपसे टिटकरी, मुर्गच्छ, भिखला फाय आदि संकोचक और प्रदाहशामक औषधियोंकी निचकारी लगाई जाती है।

गर्भाशय शासक (Uterine Sedatives)—गर्भाशयप्रदाह और संकोचका निवारण करने वाली औषधियाँ—बाह्य उपचार रूपसे नामीके नीचे उष्ण सेक, तार्पिन तैलकी मालिश, सरसोंकी पुन्डिस आदि। आन्तरिक उपचार रूपसे पारदपणित विरेचन, मूत्र विरेचन, परएक वील और मूत्रकृच्छ्रनाशक स्निग्ध औषधियों का परस्त्रु तीव्र पेदना होने पर अफीम आदि औषधियाँ उपयोगमें ली जाती हैं।

गर्भाशयकी मांसपेशीक आबरणका प्रदाह, गर्भाशय संकोच करने वाली औषधियोंका अधिक व्यवहार, गुजाकके उष्ण रूप गर्भाशयप्रदाह या गर्भाशयमें अति उच्चोजना आने पर गर्भाशयशामक औषधियाँ प्रयोजित होती हैं।

रक्तप्रणाली आकुञ्चक औषध—इनमें दो प्रकार हैं। (१) रक्तप्रणालियोंके पेशिक आबरणको कुञ्चित करने वाली औषधियाँ। (२) रक्तप्रणालीके चारों ओर रक्तजल (Plasma) का संयमन करनेवाली, ये औषधियाँ इस संयत रक्तको आकुञ्चित कर रक्तप्रणालियोंका अस्मरोच करके कार्य करती हैं।

प्रथम प्रकारकी औषधिका वाह्य प्रयोग करने पर रक्तप्रणालियोंके पैथिक आवरण पर कार्य होता है। शीतलता, सीसापटित लवण, रौप्यपटित लवण, गन्धकके तेजावका हलका द्रव, फिट्ठरी आदि। लोहपटित लवण (कसीस) सामान्य रूपसे आकुञ्चन करता है।

द्वितीय प्रकारकी औषधियां—जामुनके पत्तोंका रस, कहरमा, हीरादोखी गोंद, मन्गुफला, लोब आदि रक्तसका निग्रह कर अपना गुण दर्शाती हैं। कसीस और फिट्ठरीमें रक्तकारिके समनन करनेका गुण भी रहता है।

रक्तसंचालक वातवाहिनी केन्द्र पर कायकारी—मन्धनाग, सुराधीर्य, सूचीभूटी, क्लोरोफार्म, ईपर, ककबो याशाम, सुरासानी अजवायन, अफोम, ठमाख आदि रक्तप्रणाली संचालक वातवाही केन्द्र (Vaso-motor Centre) पर असर पहुँचा कर रक्तप्रणालियोंको प्रसारित करते हैं।

अभ्रफमरम, नीसादर, चूनामिषण, कुचिला सत्व सीसापटित लवण आदि वातवाहिनी केन्द्रपर क्रिया दर्शाकर रक्तप्रणालियोंका आकुञ्चन करते हैं। इनके अतिरिक्त सूचीभूटी, सुरासानी अजवायन, सुराधीर्य, ईपर, क्लोरोफार्म आदि पहिले रक्तप्रणालियोंका प्रसारण करते हैं; फिर योई ही समयन संकोच करते हैं। सूचीभूटी, सुरासानी अजवायन, गांगा, आदिमें प्रलाप, उत्साहक (Delirifacients—Deliriant) शेष भी रहता है। अतः इनका उपयोग समालम्बपूर्वक करना चाहिये।

(७५) उत्तेजक ।

(स्टिमुलेंट्स—Stimulants) ।

देहमें उत्तेजना अथवा तेजी लानेवाली औषधियां—अजवायन, सोंठ, अदरक, लौंग, दालचीनी, कर्करी, अम्बर, प्याज, लहसुन, पीपल, पीपलामूल, मिलावा, दशमूल, रास्ना, चित्रकमूल, मिर्च, तिल, कुचिला, सस्त्रिया; हरखल, बन्धनाग, तालीसपत्र, तेजकल, खोबचीनी, पाठा आक, हींग, मालाकांगनी, अकलक्य, समुद्रफल, जावित्री, कालाजोरी, असगन्ध, कटमी (वापुवा), दुलसी, कायकला, उष्यकल, गुड़, शकर, पृथ्वर्षा, अरनी, गम्भारी, बरी कटेली, छोटी कटेलो, निगुण्डीके पान, हरमलके बीज, ममीठ, शराब, चाय गांजा, नीलगिरी तैल, रोहिण तैल, रस सिंदूर, अन्नक, राम्र आदि ।

संज्ञास्थापन कपाय—अर्थात् सञ्ज्ञा-चेतनाको स्थिर करनेवाली औषधियां—हींग, बक्यायन, दुर्गन्ध सदिद, यन्, चारक (चोर पुष्पी), आसी, गोशोमी, (मूल-केशी), यगमांसा, गूगल और फुटकी से १० औषधियां। इनका उपयोग, अत्र तन्त्रक (Hysteria), अपस्मार, बेहोरी आदिमें चेतना लानेके लिये होता है।

स्थानभेदसे वर्गीकरण—

- १ मस्तिष्क उच्छेजक—शुगण ।
- २ सुप्त्याशीर्ष उच्छेजक—कूरुंर आदि ।
- ३ सुप्त्याश्राय उच्छेजक—कुनिला, घँहरस आदि ।
- ४ रक्षामिषरण उच्छेजक—कपूर, शराब, गरमपेय आदि ।
- ५ धामाराय उच्छेजक—धमन और दीरन-पाचन औषधियाँ ।
- ६ यहदुच्छेजक—ध्यान नं० ८ पित्तनि चारक में ।
- ७ कुपुसो-उच्छेजक—करसावी नं० १० में ।
- ८ मणशोष उच्छेजक—गुल्लिस आदि ।

इस तरह वृष, गर्माशय, मूत्राशय, जननमन्त्र, नेत्र, नासिकदि सम्बन्धि उच्छेजक विभाग हा सकते हैं ।

इस प्रकारकी औषधियोंमें स्थायी गुणदशक (Permanent) और अप्रथायी गुणदशक (Diffusible), ऐसे दो प्रकार होते हैं । इनमेंसे स्थायी उच्छेजक औषधियोंमें कितनीही प्राप्ति (Astringents) और कितनीही वीक्षिक (Tonics) हैं । इनका विवेचन पहिले नं० ५६ और ६० में किया गया है ।

अस्थायी उच्छेजक औषधियोंकी क्रिया सदृश प्रकाशित शक्ति और योर्ष ही समयमें समाप्त हो जाती है । कितने परिमाणमें उच्छेजना होती है, उतने ही परिमाणमें क्रियाके अन्तमें अवसादकताकी प्राप्ति होती है । जब किसी कारणवश अकस्मात् अशक्त शक्ति अक्षय हो जाती है, तब उसे तत्काल उच्छेजित करनी पडती है । ऐसे समय पर इन अस्थायी उच्छेजक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है ।

किसी वृहद् आशय या कित्तोर्ष स्थानमें दाह-शोथका कारण होने पर उस स्थानमें वातशक्ति विरोध मात्रामें संश्लेष हो जाती है, इस हेतुसे इतर आशयोंसे इस शक्ति का हास हो जाता है; परिणाममें जीर्णनीय शक्ति अकस्मात् अक्षय हो जाती है । ऐसे समय पर उच्छेजक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है; किन्तु इस बातका भी स्मरण रखना चाहिये कि उच्छेजक औषधियोंका प्रयोगसे योर्ष ही समयमें प्रदाहके लक्षणोंकी वृद्धि हो जानेकी संभावना रहती है इसलिये सब उच्छेजक औषधियोंकी क्रिया बहुत कम समयतक ठहरती है; और प्रदाहके लक्षण प्रकाशित होनेके पहिले ही पर्यवसित हो जाती है, अतः नौसादर-धूना का मिश्रण या ईपर आदि औषधियोंका प्रयोक्त्त होना ही तथा बाह्य प्रयोगरूपसे राईका प्लास्टर आदि लगाया जाता है ।

कवचित् शरीरके किसी प्रधान अवयव पर अकस्मात् अति चोट लग जानेसे वेधेरी या जाती है, ऐसी अवस्थामें भी उपयुक्त अस्थायी उच्छेजक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है, परन्तु अत्यन्त स्थानके प्रति जिन उच्छेजक औषधियोंकी विशेष

प्रवृत्ति होती हो, उनका व्यवहार नहीं किया जाता, जैसे मस्तिष्क पर चोट लगनेके समय अफीमका प्रयोग नहीं किया जाता ।

मोतीभ्रम और शीतला आदि उत्कट ज्वरोंमें कमी कमी घातक शैत्यानस्य की प्राप्ति हो जाती है, तब उतेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है । इनके अतिरिक्त इन रोगोंमें रोगाको दुर्बलता और वैशेशी आ जाने पर जीवन-रक्षाके निमित्त उतेजक औषध दी जाती है । यदि कोई ध्यात्मिक प्रदाह (कणमूलप्रदाह आदि) उपस्थित हो जाय, तो जलाका आदि प्रयोग द्वारा उसके दमनका तत्काल प्रयत्न करना चाहिये । ऐसे समय पर आवश्यकता हो, तो उतेजक औषध प्रयोग भी करना चाहिये, क्योंकि, इस अवस्थामें जीवन शक्तिके संरक्षणको पूर्ण आवश्यकता है ।

क्यचित् पूर्ण रोगके हेतुसे या अत्याचारके हेतुसे किसी दुर्बल व्यक्तिके प्रदाह आदि विकार उपस्थित हो जायं तो उतेजक और दोहन, दोनों प्रकारकी औषधियोंका एक साथ प्रयोग करना चाहिये । शराबीके लिये ता इस प्रकारकी चिकित्सा निरान्त आवश्यक है ।

रक्तसाव अथवा अधिक मात्रामें रस या पूय नि सरणके हेतुसे कृशता और शिथिलताकी प्राप्ति होने पर कल्प औषधिके साथ कस्तूरी आदि उतेजक औषधि मिश्रित देनी चाहिये, या कल्प और उतेजक गुणयुक्त अन्नक और रससिद्धरूपित या इतर औषधि देनी चाहिये ।

जब रक्तमें पूय या किसी औषधि विशेषका विषमिधित होकर वेदना उत्पन्न हो जाती है, तब उतेजक औषध द्वारा जीवनीय शक्तिको सकल रक्षना चाहिये, जिससे रोगनिरोधक शक्ति विकसित कर प्रकृतिको स्वस्थ बना सके ।

वातवहा नाभियोंकी निर्पलताजनित व्याधिमें इस श्रेणीको औषधियों द्वारा वातनाभियोंके बलको कायम रखना चाहिये ।

सार्वभिक उतेजक (General Stimulants)—विद्युत् प्रयोग, उष्णता गर्म प्राय, गर्म दूध गर्म अन्नपान, क्रोध, प्रसन्नता आदि मनाहति और व्यायाम आदि । इनकी क्रिया देहमें सर्वत्र सममात्रसे प्रकाशित होती है किसी पत्र विशेष या स्थान विशेषका आभाव नहीं करती ।

मस्तिष्क उतेजक (Cerebral Stimulants)—मस्तिष्क की क्रियामें वृद्धि कर स्फूर्ति कराने वाली औषधियाँ—शराब, आसव, अरिष्ट, कपूर, चाय, काफी, गांजा, पेरस, कस्तूरी आदि। इनमें शराब उत्कृष्ट है ।

इस प्रकारकी औषधियाँ प्रारम्भमें वातवहा नाकी उतेजक और धमनी उतेजक रूपसे कार्य करती हैं फिर थोड़े ही समयमें मस्तिष्क पर विशेष रूपसे क्रिया दर्शाती हैं । इनका अल्प मात्रामें सेवन करने पर शरीर उष्ण होता है; धमनीके

स्पन्दनोरो वृद्धि होती है, पातमण्डलसे स्थिरता सम्पादित होती है, मस्तिष्कमें रक्तकी सुगु अधिकता होती है तथा मानसिक वृत्ति प्रकुम्भित और उत्तेजित होती है।

श्रीपथि सेवन अपेक्षाकृत अधिक मापामें करने पर मस्तिष्कमें रक्तवृद्धि अधिक होकर मस्तिष्क क्रियामें विवृति आ जाती है; इसी हेतुसे मद्यके लक्षण प्रकाशित होने हैं। इसकी अपेक्षा भी अधिक श्रीपथि सेवन की जाय, तो मस्तिष्कमें अत्यन्त रक्तधिक्य दाकर बहोती आ जाती है।

उत्तेजक श्रीपथि मेंसे यह अवस्था १ से १४ घण्टे रहती है। फिर क्रमशः चेतनाका उन्मत्त हावा जाता है। चेतन्यता ध्यानके परचात (चित्त परिमाणमें उत्तेजना आई हो उतने परिमाणमें) अवसादन किया होती है और आलस्य, स्तानि, सिरदर्द, सुषामा घ, पमन, उदाह, सुर्भङ्गा आदि चिह्न प्रतीत होते हैं।

यदि इससे भी अधिक परिमाणमें श्रीपथि सेवन की हो, तो अचेतनावस्था क्रमशः बढ़ कर मस्तिष्ककी क्रिया लाप हागती है, एव स्वाकारोप (Asphyxia) होकर मृत्यु तक हो जाती है। माम्यपचात् इस अवस्थामें मुक्त हो जाय, तो भी अवसमावस्थाकी आधिकता होती है और मृत्युकी भीति रहती है।

मस्तिष्कमें संचालित रक्तके परिमाण और रक्तकी अवस्था पर, मस्तिष्ककी क्रिया अवलम्बित है। अतः सर्वाङ्गिक रक्त संचालनमें उत्तेजना आने पर मस्तिष्कमें रक्तसंचालन वृद्धि होती है और मस्तिष्कक्रियामें उत्तेजना आ जाती है। मस्तिष्कको नीचा रखने और मुँहसे पान-सुवारी आदि चपाते रहनेसे मस्तिष्कमें रक्तसंचालन वृद्धि हो कर उत्तेजना आ जाती है तथा ध्यायामें करने पर भी मस्तिष्क उत्तेजित हो जाता है।

इस देहके लिये यह नियम है, कि चित्त यन्त्रमें उत्तेजना उत्पन्न होती है, उत्पन्न में उसी दिशावसे रक्तका अधिक संचालन होता है। मस्तिष्कके लिये भी यही नियम लागू होता है। शयन आदि मस्तिष्क उत्तेजक वस्तुके भ्रमणको क्रमशः मात्रा बढ़ानी ही पड़ती है उसकी अन्यथा शयन आदि सेवनके उद्देश्यकी सिद्धि नहीं होती। इस तरह अधिक अलस तक सेवन करते रहने पर मस्तिष्क और इतर मन्त्राकी क्रिया बार-बार उत्तेजना शयन आदि मादक द्रव्य हये रहनेसे हास होता रहता है एवं जीवनिय शक्ति अवसन्न होती जाती है। यदि भ्रमण शरीरसे कृप है, तो यह रोगके आक्रमण के अधिक अनुदूष है।

मस्तिष्क उत्तेजक श्रीपथियां विविध प्रकारकी व्यापियोंके निवारणार्थ और ओषधीय शक्ति के उत्तेजनार्थ प्रयोचित होती हैं। आक्षेप निवारक श्रीपथियोंका विवेचन नं० २ में और वेदनानिवारक (Anodynes) का विवेचन नं० ४५ में किया गया है तथा निद्राकारक (Hypnotics) का विवेचन आगे नं० ७५ में किया जाएगा।

- सूचना—इस प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग नूतन श्वर, नूतनप्रदाह और रक्ता विक्रम होने पर नहीं करना चाहिये ।

सुपुम्णा उत्तेजक (Spinal Stimulants) सुपुम्णाकी प्रत्यावृत्तक्रिया (Reflex) में वृद्धि करने वाली औषधियाँ—कुचिला, कुचिलोका सत्व, अधीम, अधीमसत्व, रससिंदूर, पूर्वचन्द्रोदय रस, अन्नक मस्म, फॉस्फरस आदि । इनमेंसे कुचिला अधीम आदि औषधियोंको योकी मात्रामें प्रयोजित किया जाय, तो प्रतिकूलित क्रियाको वृद्धि करती है और अधिक मात्रामें तीव्र आक्षेप उत्पन्न करती है । रस सिंदूर, पूर्वचन्द्रोदय, अन्नक मस्म आदि औषधियाँ विषकुण निर्बिष्य हैं, किंचिद् भी आक्षेप या हृत्तर अपाय नहीं करती ।

स्थानिक पक्षाघात अर्धाङ्गमात, श्म-पैरका बंध आदि व्याधियोंमें इन औषधियोंको उपयोगमें लिया जाता है । पक्षाघात रोगमें कुचिला, सोमज आदिकर प्रयाग करनेपर जब औषधिका हृत्तर पहुँचता है तब स्वल्प अङ्गकी अपेक्षा अक्षय अङ्गकी मांसपेशियोंमें स्पष्ट रूपसे स्पन्दन, स्फूर्त्त और कम्प होने लगते हैं ।

अधीम, कुचिला, कुचिलासत्व, नौसादर घूनाका मिश्रण, स्तोरोद्यम, ईयर आदिसे सुपुम्णाके सन्मुखशृङ्ग (Anterior Horn) में उग्रता उत्पन्न होती है । सुपुम्णाको विह्वलितजनित पक्षाघातमें आशयकता पर इन औषधियोंका उपयोग किया जाता है । परन्तु सुपुम्णाकी पीठामें इन औषधियोंसे कोई लाभ नहीं होता ।

घमना उत्तेजक (Arterial Stimulants)—इस प्रकारकी औषधियोंकी क्रिया सब घमनी और हृदयपर प्रकाशित होती है । लाल मिर्च, टार्विन तैल, विकट्ट, फास्फरस, नौसादर आदि औषधियोंके सेवनसे घमनी स्पन्दनमें तेजी आती है, आमाशयमें ठण्डाता मालूम देती है, एवं शरीर में उष्ण हो जाता है और बाह्य प्रयोग करने पर त्वचा पर उग्रता आ जाती है ।

किसी कारण वश हृदयकी क्रिया निस्तेज होजाने पर इस प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग किया जाता है । यदि आमाशयप्रदाह हो, तो इन औषधियोंका प्रयोग नहीं करना चाहिये । घमनी उत्तेजक औषधियोंसे हृदयोत्तेजना होती है । इनके अतिरिक्त रक्तमिसरण बढ़ानेवाली सुगन्धयुक्त और ठण्डा औषधियाँ भी हृदयोत्तेजक (Cordial) गुण दर्शाती हैं ।

वातनाडी उत्तेजक (Nervous Stimulants)—इस श्रेणीमें क्वरी हींग, अयमांसी, लहसुन, चाय, काफी आदि औषधियाँ हैं । ये वातवा हिनियोंकी निर्बलता दूर करती हैं । एवं वाताक्षेपका निवारण करती हैं । इनकी क्रिया समग्र शरीरमें समान रूपसे प्रकाशित होती है । मस्तिष्क या किसी वातनाडी केन्द्र पर विशेष रूपसे उत्तेजना नहीं पहुँचाती ।

संज्ञावाही नादियोंके विरुद्धी उत्तेजक—बन्धनाग, बन्धनागसत्व (*Aconitum*), कलिहाती, बिन्दुवृक्ष, घैंचकी पत्तापे बाज्र आदि संज्ञावाही पात-नादियोंके विरुद्धी उत्तेजित करते हैं। इनमें बन्धनाग या बन्धनागसत्व रक्तमें संज्ञा रित होकर अिद्धा, छात्र, कण्ठ आदिमें भ्रम भ्रमादृष्ट होने लगती है, एवं भिन्न, अकल्पना आदिसे विहास्य संज्ञावाही नादियोंके अन्तिम विरुद्धी उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

यदि प्रफान आचारके सेवनसे आमाशयस्य संज्ञावाहिनियोंके विरुद्धी (अन्त भाग) में उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है।

हृद्योत्तेजक (*Cardiac Stimulants*) श्रीपथियां—पूर्वचन्द्रादयस्य रससिद्ध, समोत्पन्न कण्ठी, शराब, नौसादर, प्रोक्सास्य कपूर, तार्पिन घैल, नील गिरी घैल, वातर घैल। हृद्य पर उत्तम और नं० १०० अत्युत्तमप्रकारके श्रीपथियोंका प्रयोग भी रसाभिसरस्य क्रिया पर लाभदायक है। इत प्रकारकी श्रीपथियांसे नाडीके यम और वेगकी रोक बूझि होती है।

अथ अशिशय मानसिक उद्वेग, भीतिक आरात या हृद्य अपसादक श्रीपथ सेवन होनेसे बेहोशी (*Shock*) या मूढ्या (*Stupor*) आकर सहसा हृद्य निवा लोप होने लगती हो या सर्पदंश, ज्वर आदि रोगोंसे हृद्य अति क्षीण होने लगता है, तब इत प्रकारकी श्रीपथियां प्रयोमित होती हैं।

कपूर मधुरा या कुमकुम प्रदाहसे उत्पन्न चरम्ये प्रलाप होने पर कपूर उत्तम हृद्योत्तेजक है। एत कपूरके अकल्पना शक्यके साथ सेवन करनेसे प्रविश्याय (*Jaundice*)का भी उत्तर दमन हो जाता है।

अथ शराब—रक्तमें शोषण होने पर हृद्यका उत्तेजित करती है; परन्तु यह प्रारम्भमें सुख, कण्ठ और आमाशयस्य बातपक्ष नादियोंसे उत्तेजित करती है। फिर बढ़से उत्तेजना हृद्यमें प्रतिक्रियित होकर क्रिया दर्शाती है। अतः येदनावस्थामें शराबका प्रयोग करना हो, तो थोड़ी-थोड़ी मात्रामें बार बार करना चाहिये। परन्तु साथ-साथ संश्लेष भी रहना चाहिये कि रक्त-संचालन क्रियामें विकृति तो नहीं होती। यदि रक्तसंचालनमें विकार होने लगे, तो शराब बन्द कर देने चाहिये।

नौसादर भिन्नश भी उत शराब सदृश प्रतिक्रियित होकर हृद्य पर अर्थ करता है। इसके अतिरिक्त यह सुप्त घमनी और ऐशिकाओंके अज्ञातन विषास्य बातनाडी केन्द्र (*Vaso-motor Centre*) को भी उत्तेजित करता है।

मूढ्य होने पर नौसादर और घुनेका भिन्नश सु भाया जाता है। एवं सर्पदंश होनेपर नौसादरके अकल्पना हृद्येक्षण दिवा जाता है।

श्वर आदि रोगोंमें हृद्यकी निर्मलतासे दूर करनेके लिये पूर्वचन्द्रोदक या रससिद्धका उपयोग आदरसके रसके साथ किया जाता है। जिससे उत्कल्पना नाडीकी

शक्ति तेज हो जाती है। इस तरह उष्ण जलपान और उष्ण सेक करनेसे भी इन्फ्लूएन्जा उत्तेजित हो जाता है।

रक्तवाहिनी उत्तेजक (Vascular Stimulants) हृदयसे वृषर्षी रक्तवाहिनीकी दीवार प्रसारित होने पर उनमें रक्तसंचालन क्रिया अधिक वेगपूर्वक करनेवाली औषधियाँ शराब, अफीम, ब्रांजासब, सोरा, नौसादर मिश्रण, पूर्ण पन्द्रोदय रस, रससिंदूर, अन्नकम्लम लोहकम्लम ताम्रकम्लम, उष्णता और उष्ण जलपान आदि।

रक्त संचालनकी समता सम्पादित करने और आन्तरिक यन्त्रोंमेंसे रक्तके बड़े हुए वेगका ह्रास करानेके लिये शराब या इतर मानसिक उत्तेजक औषधिका प्रयोग किया जाता है।

शीत लगाने या शीतकालमें देरतक गीले कप पहिनेसे स्वासयंत्र, आमाशय अन्त्र या मूत्राशयमें रक्तसंग्रह हो जाता है, फिर कम्प या स्थानिक वेदना होने लगती है। यदि घुन्त रक्तसिक्तता रमन न हुआ, तो दाह शोथकी उत्पत्ति हो जाती है। ऐसे विकारोंमें मृदु मायसे कपूर या अफीम प्रधान औषधियाँ कार्य करती हैं और शराब, अग्निसेवन, सूर्यके तापका सेवन, चाय, काफी आदि तत्काल लाभ पहुँचाती हैं।

सोराको निषाये जलमें मिलाकर प्रयोग करनेसे वह रक्तवाहिनियोंको प्रसारित करके उत्तेजना उत्पन्न करता है।

बाह्य प्रयोग—चिरकारी प्रदाह और अमयवोंको दृढ़ता अर्थात् घनीभवन (Consolidation) के निवारणार्थ स्थानिक क्षेप, मर्दन आदि रक्तवाहिनी उत्तेजक क्रिया करनी चाहिये।

रक्तप्रणालीप्रसारक—नीलायोया, सोमल, सुयभीर्य, ईशर, न्लोरोफॉर्म, तार्पिन तैल, कार्बोसिक तेजाब, जमालगोटिका तैल, कपूर, फास्फोरस, उष्णता (पुच्छिस, सेक, स्वेदन क्रिया, अग्निसेवन आदि), लोहकम्ल, ताम्रकम्ल इत्यादि रक्तप्रणालियोंको प्रसारित करती हैं, अतः इनको डाक्टरोंमें रक्तप्रणालीके लिए चोम्बोत्पादक (Vascular Irritants) कहते हैं।

जब इन प्रकार की औषधियोंका स्थानिक प्रयोग किया जाता है, तब रक्त प्रणालियोंका प्रसारण करके त्वचाको लाल बना देते हैं। ऐसे प्रयोगोंको चर्मप्रदाहक (Rubefacients) संज्ञा दी है। इनसे अधिक प्रयोगोंको स्फोटकरक, चोम्बोत्पादक, चर्मप्रदाहक, प्रत्युत्पत्ता सापक आदि उज्ञा दी है। इन सबका विवेचन आगे नं० १९ और १०० में किया जायगा।

(७६) निद्राप्रद ।

स्वप्नजनन-द्विपयो टिक्स-सोपोरिडिक्स ।

Hypnotics—Soporifics-

जो औषधियाँ निद्रा ला देवें, उनको निद्राप्रद कहते हैं । अफीम, अफीमसत्व, भोग, गांजा, गुरामानी, अजवायन, श 1 व पीगलानूल, सर्पगन्धा, फस्ट्री, ब्रासी, खंलाहूली, सहदेबी, ब्यूय, मैसका दूध, यक्यन, पी आदि ।

निद्रापी उत्पत्ति प्रकार—

१ मस्तिष्कके रक्त संचालनका हास होने पर निद्रा उत्पन्न होती है । यह कार्य हृदयकी क्रियाकी स्थिरता सम्मान करने धयबा रक्तको अन्यत्र प्रेरित करनेसे होता है ।

२ मस्तिष्ककी क्रियाका हास करानेसे निद्रा आ जाती है ।

अन्यथा स्थानकी शिरा ०साधित होने पर मस्तिष्कमेंसे रक्तका परिमाण म्यून हो जाता है । शरीरमें कृपता और रक्त संचालनमें क्षयता आने पर तथा अधिक फल सक रखे रहने या बैठे रहने पर तन्द्रा उपस्थित होती है । परन्तु शय्यामें शयन करने पर मस्तिष्ककी रक्तसाहिनियाँ क्षीण होनेसे, उनमें रक्त अधिक परिमाणमें संचारित हो जाता है इस हेतुमें थोड़े ही समयमें सन्ना-निद्रा दूर हो जाती है । ऐसी अवस्थामें यदि मस्तिष्कको ऊँचे स्थिरराने (तन्त्रिये) पर रक्तकर शयन कराया जाय तो निद्रा आ जाती है । ऐसे रोगग्रस्त व्यक्तियोंको हृदय और रक्तसाहिनी पीटिक सोद धटित औषधि या कुचिला आदि देनेसे शान्त निद्रा आ जाती है ।

अनेक बार उदर पर रकी पुल्टिस (रोटी) बाँधनेसे या शीतल जलमें फलालेन मिगो उदर पर रक्त उस पर दोलक (रो वह करके) फलालेन बाँध देनेसे भी निद्रा आ जाती है । एवं ठण्डा आहार, ठण्डा जलपान, ठण्डा चाय, ठण्डा दूध आदि भी मस्तिष्कमेंसे रक्त नीचे गमन कराकर निद्रा ला देते हैं ।

परतु हृदरोग, हृदयकी निर्बलता और याजवहा नाभियोंकी उग्रता होने पर गरम चाय, गरम दूध आदि पदार्थके से नसे याजवहा नाभियोंके केन्द्रस्थानमें उच्च बना पहुँच कर निद्राका नाश हो जाता है । ऐसे रोगियोंके लिये शीतल जल, पारश्व दूध या गरम करके शीतल किया हुआ दूध, साखिरक वाजा मोहन, ये सब हितकारक हैं । तमालू, चाय, सूर्यके वायसे भ्रमण, अग्नि सेवन, ये सब हानिकर हैं ।

ज्वर रोगमें निद्रानाश होने पर देह पर आर्द्र वस्त्र आच्छादित करनेसे लाभ हो जाता है ।

निद्रानाश होने पर यदि दोनों पैरोंको गरम जलसे सेक कर या सारे शरीरको शीतल जलसे मदन कर फिर अच्छी तरह पोंछकर शयन कराया जाय, तो सत्वर निद्रा आ जाती है।

वेदनाशून्य निद्रानाश होने पर अचठीम और अस्त्रीमसत्व अमोघ औषधि हैं। इन औषधियांसे मस्तिष्क की क्रिया क्षीण होती और वेदना भी निवारित होती है।

इन निद्राप्रद औषधियोंके अतिरिक्त मोह्यनक औषधियोंके सेवनसे भी निद्रा आ जाता है। इसका विवेचन आगे नं० ७७ में क्या जायगा।

निद्राका सम्बन्ध कन्दार्थिक माग (Hypothalamu) और स्वतन्त्र नाडी-संस्था (Anonomic nervous system) के साथ गुप्त भावसे सम्बन्ध है। इस हेतुसे मस्तिष्क प्रशाह (Encephalitis Lethargica) में विकृति अनुकर निद्रा अधिक आती या बिल्कुल नहीं आती है।

शान्तनिद्रा कालमें परिस्वजन्त्रनाडियोंकी दृढ़ता बढ़ जाती है। भित्ति मन्द नाडी, कर्त्तनिकाका आकुंचन तथा श्वासनलिकाका संकोच होना है। पाचन रस और अन्त्रकुण्डलीकी गति दृढ़ बनती हैं। निद्रा दूर होने पर मस्तिष्क, वातनाडियों, मांसपेशियों आदि की यकाकट दूर होती है तथा मन प्रसन्न होता है।

सूचना—(१) यदि अन्न आदि अन्नमयोंमें मस, वायु, आम आदि संघटित होनेसे निद्रानाश हुआ हो, तो उसे दूर करना चाहिए। इस तरह मांस पेशियाँ, अस्त्रि, संघटितानोंमें दशाव बढ़ा हो तो उसे कम कराना चाहिये।

(२) अनेक रोगी निद्रा लानेके लिए डार्वरी तीव्र औषधियाँ—ट्रियोनल (Trional), टेट्रोनल (Petronal) पैरालडोहाइड (Paraldehyde), बारबिटोनम (Barbitonum) आदि का धार धार सेवन करते रहते हैं। प्रारम्भमें वो ये औषधियाँ सत्वर काम पहुँचाती हैं। फिर अधिक मात्रामें सेवन करने पर भी निद्रा नहीं आती; और दृश्य भी निर्बल बन जाता है। अतः ऐसी मादक औषधियाँ उपयोग न किया जाय, तो अच्छा।

(७७) मादक ।

मदकारी-मद्य-मलापोह्यारक-डिलिरियम्स-डिलिरिफैशियन्स ।

Deliriantes—Delirifacients

धुत्रिं लुम्पति यद् द्रव्य मदकारी तदुच्यते ।

समोगुणप्रधानं च यथा मद्य सुराविकम् ॥

जो समोगुणप्रधान द्रव्य धुत्रि (समस्त विचार और विवेक शक्ति) का लोप करती है, उसे मादक कहते हैं। जैसे शराब आदि।

चरक महिताकारने लिखा है कि, मग हृदयमें प्रवेश कर (मस्तिष्कमें पहुँच कर) अपने १० गुणों (लघु, उष्ण तीक्ष्ण, सूक्ष्म अम्ला, ख्यापी, आशुग, रुच, विनायी और पिरार) से हृदयाभित (मस्तिष्क मिति) आत्मके १० गुणों (गुण शात, मृदु, श्लक्ष्ण महल, गधुर, रियर, प्रसन्न, पिच्छिन चार लिग्ध) से विदुम्ब-कर आशभित सत्य (अंत फरणही बुद्धि वृत्ति) में विचार उत्पन्न कर देती है। फिर योड़े ही समयमें मत्तता आ जाती है।

मगका श्रत्यधिक भावामें रोचन करने पर प्रारम्भमें आनन्द और प्रसन्नता उपस्थित होती है। कामोन्मत्तता होती है तथा मानस सम्कारके अनुसृत नानाप्रसरके चिन्मिचिन्न विवृत विचार उत्पन्न होते हैं। फिर मानमकेन्द्रमें विवृता आकर मोहनिद्रा (Coma) की प्राप्ति होती है। इस मयज मानस विवृतिको मद्र संज्ञा दी है।

मध्यम मद्र होनेपर बारंबार स्मृति (पिथेक ज्ञान) का, हास, बारंबार शनलाप कमी वाणो अल्प, कमी दोस्तों बोधते रुक जाना कमी वचन मुक्तिमुक्त और कमी असम्बद्ध प्रलाप तथा चकर आना आदि लक्षण उपस्थित होते हैं। इस अयम्याही ५ वा होने पर रजोगुणी और समोगुणी मनुष्योंके अिने ऐसा कोई अशुभ कार्य नहीं है, जो वह न कर सकें अथात् नित्य और अनुचित कार्योंसे अिन्न अिसके संस्कार उद्भूत होते हैं, व चर ही बालक हैं।

फिर जब मृतीयापरमांशु प्राप्ति होती है तब शरणो दृश्य हुई लङ्घनी लघु निश्चेष्ट होकर गिर पड़ता है और अध्वित होते हुए भी मृतके लक्षण बन जाता है। उसे संसार-अपहर, सुख-नुःख, हित अहित, या अश्लेष-सुरेका कुछ भी ज्ञान नहीं होता। इस अशरणाको मोहजननावस्था (Narcoosis) कहते हैं। इस अवस्थाको प्रातिके पश्चात् योड़े ही समयमें निद्रा (Sleep) या बेहोरी (Coma) की प्राप्ति हो जाती है।

इन्द्रियक्रिया विनाशकी दृष्टिसे विचार किया जाय तो जब मादक औषधियोंका सेवन करने पर मस्तिष्कमें रक्तसंचालन अधिक हो जाता है, तब मनको दमन करनेकी शक्तिका हास होजा है। मनोवृत्ति बुद्धि और अचीनता और सामाजिक मर्यादाका त्यागकर रवेच्छाचारी बन जाती है। अशिक्षित विवृति होने पर विचार शक्ति और स्मरण शक्तिका लोप हो जाता है। किसी क्रियको मानसिक विवृति होनेके पहिले ऐच्छिक क्रियामें मा विलक्षणता आ जाती है। अिससे वाक्योच्चारणमें अक्षय और अज्ञानमें भी विचित्रता प्रकट होती है। कर्मका सुसुप्ताकी प्रत्यावर्तन किमान हास होजा जाता है। और अन्त ' श्वापोच्छ्वास क्रिया करने वाली वातपदा नाभियोंकी मूत्र (सुपुष्पास्य केन्द्र) में पक्षाघात उपस्थित होता है।

मादक औषधियाँ—शराब, ताबी, अफीम, भांग, गांजा, चरस, सूचीबूटे पुरासानी अजवायन, घट्टा, ईयर. क्लोरोफार्म आदि ।

शराबसे प्रारम्भमें मस्तिष्ककी रक्तसंचालन क्रिया उत्तेजित होती है। फिर मस्तिष्कके मिन मिन केन्द्र अमसन्न होने लगते हैं। ताबीमें भी शराबके सद्य ही गुण प्रतीत होते हैं।

भांग और गांजे द्वारा रक्तसंचालनमें विशेष उत्तेजना नहीं होती। ये केवल मस्तिष्कके मिन-मिन अंशमें परस्पर क्रियाकर परिवर्तन कराकर कार्य करते हैं।

पुरासानी अजवायन, सूचीबूटे और घट्टा आदिसे प्रबल प्रलाप उपस्थित होता है। रोगीका मन अति अस्थिर हो जाता है, और वह सब वा उमक-उमक बन जाता है।

संज्ञा (चेतना शक्ति) का लोप करने वाले ईयर और क्लोरोफार्मकी क्रिया भी अनेक अंशमें उम शराबके सद्य होती है।

विशेषतः अधिक परिभ्रमजनित यक़ावट दूर करने और तीव्र ज्वरमें प्रलाप आदिके दमनके लिये उपयुक्त मादक औषधियोंका सेवन कराया जाता है, एवं मस्तिष्क, हृदय, वृक्क, फुफ्फुस आदि स्थानोंको घेदना और मानसिक चिन्ताकी प्रतीति न होनेके लिये भी इन औषधियोंका उपयोग किया जाता है।

(७८) मोहजनन ।

नार्कोटिक्स—Narcotics

जो द्रव्य बेहोशी (Unconsciousness) ला देवे, उसे मोहजनन कहते हैं। इस द्रव्यकी क्रियाके प्रारम्भमें कुछ अंशमें मादक अस्तर पहुँचता है। यद मोहजननावस्था एक प्रकारकी इन्द्रियोंकी अवस्था है, जिसमें जीवित अस्थानके वन्द या पदोंकी सामान्य प्रतिक्रिया अथवा यात्रिक दृढ़ताका हास या लोप कुछ कालके लिये होता है। यह बेहोशी सर्वदा कुछ अंशमें प्रतिकलित दमन युक्त होती है।

यद्यपि निद्राजनन औषधिकी मात्रा अधिक होने पर गम्भीर बेहोशी आनेके हेतुसे मोहजननावस्थाके समान अस्तर प्रतीत होता है तथापि इन दोनोंमें अन्तर है। मोहजनन द्रव्यसे प्रारम्भमें जैसा मद आता है, वैसा अस्तर निद्राजनन औषधिसे नहीं होता।

यदि मोहजनन द्रव्यका सेवन सूक्ष्म मात्रामें कराया जाय, तो निवृत्तव्यता (Quietness) आती है; किन्तु अधिक मात्रामें तन्द्रा (Drowsiness), निद्रा, आशिक बेहोशी (Stupor) और अन्तमें पूर्ण बेहोशी प्राप्त होती है। इस हेतुसे मोहजनन द्रव्य निद्रा लाने या शलचिकित्सामें संज्ञालोप करानेके लिये प्रयुक्त होते हैं।

जबतक द्रव्यका पर्याप्त केन्द्रीकरण रफके मीतर रहता है, जबतक मोहननन अक्षर दृढ़ रहता है, कोई भी मोहननन द्रव्य मस्तिष्क घटकपर सीधा अक्षर नहीं पहुँचा सकता। यदि मोहननन द्रव्य उद्बुध्यनशील है, तो उसका शोणन उत्तर होता है और कुम्भप्रयान द्वारा त्याग भी अफ़सो होता है। इसका अक्षर अस्थिर होता है। दूसरे प्रकारके मोहननन द्रव्य, या उद्बुध्यनशील नहीं है, उसका त्याग केवल हृक्-मार्गसे मर्यादित मिश्रणमें होता है, जिससे उसका अक्षर अपिष्ट समयवक टिकता है।

श्रीपथिया—अफीम, गांजा, शयप आदि। अनोपचा गुणधर्म पहिले नं० ४ पाठशुद्धिमें लिखा है।

(७६) सहाहर।

संमोहन—चेतनाहर—अनेस्थीसिस—*Anaesthesia*.

जो द्रव्य मस्तिष्क और सुषुम्णाशीयमें स्थित वातनाडी केन्द्रों पर अपना वातनाभियोंके अन्त भागपर क्रिया करके बेहोशी ला देता है, सुप्त-सुप्त और स्वयंज्ञानका स्थापन करके है, उसे सहाहर कहते हैं। ये द्रव्य उद्बुध्यनशील होते हैं इस वर्गमें मारक द्रव्य—शयप, अफीम, गांजा आदिका अन्तर्भाव नहीं होता। इस प्रकारकी श्रीपथियोंमें ३ वर्ग हैं। १. सार्वभौमिक (General) २. स्थानिक (Local) और ३. भ्रान्तीक (Regional) चेतनाहर।

सार्वभौमिक चेतनाहर श्रीपथियों द्वारा मस्तिष्क और वातबहानाभियोंके मूलमें अत्यल्पमात्र धाकर समस्त शरीरकी चेतनाका लोप हो जाता है। समस्त अंग संमोहित होनेपर मस्तिष्कमें बचिरखा जा जाता है, फिर हृदयक्रिया, श्वसन आदि मूल क्रियाओंको छोड़ शेष सब संचालन क्रिया और मानस व्यापारको मस्तिष्कसे संचालना नहीं मिलती अथवा ज्ञान, संवेदना मस्तिष्क तक पहुँचने पर भी उसका परिष्कार मस्तिष्क पर नहीं होता।

स्थान विरोधमें श्रीपथ प्रयोग करनेपर स्थानिक स्वयंज्ञानका लोप होता है। इससे बेहोशी नहीं आती। वेदनामात्र और स्पर्श संवेदना मस्तिष्क तक नहीं पहुँचती तथा उनका बोध नहीं होता।

किसी बड़ी नाडीके आसपास बधिरता छानेवाली श्रीपथिका अन्तःक्षेपण द्वारा नाडीके निविद्धिध भागकी वेदनाका लोप कराया जाता है। फिर वेदावाही (Motor) नाभियोंका समाचार बहाते मस्तिष्कमें नहीं पहुँच सकता।

इस सहाहर द्रव्योंके उपयोग, क्रियाविधि आदिका विचार रम्य परिचय प्रकरक ५ के अन्तिम भागमें किया है। सहा और वेदनाका अनुभव होनेके लिये मस्तिष्क केन्द्र सहावाही नाभियों और सुषुम्णा, रीनोंकी विशेष आवश्यकता है। ये सब याम्य क्रियाशील रहनेपर सहावाही वातबहा नाभियोंकी मूलपर सहाहर और

विशेषी क्रिया समान भावसे होती है। फिर परिणाममें वेदना, कष्ट, स्पर्शानुभव और प्रत्यावृत्त न क्रिया, सबका लोप हो जाता है।

स्थानिक चेतनाहर औपधियाँ (Local Anaesthetics)—अधिक शीतलता, यक, ईयर, कोकीन, हाइड्रोक्लोरेट, वार्पिन सैल, जटामांठी, तगर कार्बोलिक एसिड और तथापे हुए लोहा-पत्थर आदिका सेकआदि। घ्राणबोधघर्म भी इसी उद्देश्यसे व्यवहृत होता है।

ईयर द्वारा प्रयोग करनेपर शीतलताकी उत्पत्ति होकर सामान्य चिकित्सा करने पर वेदनाका अनुभव नहीं होता।

इन औपधियामें ईयर उत्तेजक चेतनाहर है। जल या वायुकी शीतलता, कोकीन और फ्लोरोफार्म आदि अवसादक चेतनाहर हैं।

फोड़े पर कार्बोलिक एसिड लगानेसे शूलजन्य वेदना लोप हो जाती है।

स्थानिक स्पर्शहारक औपधियाँ चर्मसे सम्बन्ध वाली घातबहा नाशियोंकी अन्त शालाको अवसन्न करती हैं। एव कुछ अंशमें रक्तवाहिनियोंके और इतर विषानके ऊपर भी कार्य करके स्पर्श शक्तिका लोप करती हैं। अत इनका कष्ट निवारणाय और वेदनादमनार्थ व्यवहार किया जाता है। अति प्रबल वेदना और स्पर्शसह्य कष्टकाके निवारणार्थ तथा सामान्य शस्त्रचिकित्साके निमित्त इन औपधियों द्वारा स्पर्शलोप कराया जाता है।

कचित् किसी स्थानमें रक्तका परिमाण अत्यधिक हो जानेपर संज्ञावाही नाशियोंके अन्त-धिरात्रोंमें उत्तेजना आ जाती है। जिससे उस स्थानमें स्पर्शसह्य वेदना होती है, अर्थात् अंगुली लगानेसे पीकाकी वृद्धि होती है। ऐसे दाह-शोथ (प्रदाह) होने पर उम्रठाजनक औपधियोंका लेप किया जाय, तो उस स्थान पर स्पर्शसह्य वेदना हो जाती है।

यदि मच्छुनाग, मच्छुनाग सत्व (Aconitine) या कलियारीका रक्तमें संचार हो जाता है, तो शिवा, ओष्ठ, कण्ठ आदिमें म्लम्लनादृष्ट होने लगती है। ऐसे समय पर वेदनाके दमनार्थ स्थानिक स्पर्शहारक औपधियाँ प्रयोजित होती हैं।

अग्नि में लोहें, पत्थर आदिको तपाकर वेदना वाले भाग पर जस्दी-जस्दी छिरानेसे घशावाही नाशियोंके अन्त भागमें अवसन्नता आकर कष्ट लोप हो जाता है।

सार्वभौमिक चेतनाहर औपधियाँ (General Anaesthetics)—संशोदिनो मुरा, मसोरोफार्म, ईयर आदि। इनमेंसे मुरा पितायी जाती है मसोरोफार्म आदि सु पाये जाते हैं। इस प्रकारकी औपधियोंके उपयोग द्वारा क्रमशः चार अवस्था उत्पन्न की जाती है—१ उत्तेजनावस्था; २ मादक और वेदनानिवारणावस्था, ३ अचेतनावस्था, और ४ अवसन्नावस्था।

(१) उच्च ज्ञानावस्था—प्रारम्भमें सबसे उच्चतम वृद्धि—कल्पनाशक्ति उच्च जित होता है। रोगीको अत्यन्तनीच विचार उत्पन्न होते हैं; विविध दृश्योंका अचल स्वरूप फरता है, एवं अनेक प्रकारके शब्द सुननेमें आते हैं। फिर अस्मिन्निष्ठ प्रज्ञाप हल्ले लगता है। इसी दशासे मस्तिष्कस्य गृह (Cerebral Cortex) और इतर संचालनविधायक केन्द्र उच्च जित होते हैं। जिससे रोगीकी सुप्ताकृति विचित्र हो जाती है; एवं अंगमें विकृति होती है। हाय-पर इधर उधर पङ्कने लगता है। इस समय पर संभवतः उच्चतर बुद्धि वृद्धिमें जो दक्षिण उच्च ज्ञान आई है, वह स्थगित होती है।

इस अवस्थामें रक्तसंचालनकी वृद्धि होती है फिर ममशा द्वितीयावस्थामें मधता उपस्थित होती है। पाठशाला आदि रोगोंमें वेदना और आक्षेपके निवारणाय इन सायाधिक चेतनादर आपपियोग स्वल्पमात्रामें उपयोग किया जाता है। विचारम-रोज्य, शूल, वृकाशय, अन्त्रराल आदिमें जबतक मुख्य श्रीपथकी उच्चतम क्रिया समाप्त होकर मादक अवस्थाका आरम्भ न हो; तबतक क्लोरोफार्म आदि श्रीपथियोंके प्रभावकी आवश्यकता है।

(२) मत्सायस्या—उच्च श्रीपथियोंकी उच्च ज्ञानवस्था उत्पन्न होनेकी अपेक्षा अधिक मात्रा देनेसे इस अवस्थाकी प्राप्ति होती है। इस अवस्थामें दर्शन शक्ति, भयंश शक्ति आर स्मरण शक्ति का लोप हो जाता है; विवेक शक्ति बुद्धिकी अचलताका त्याग करती है। रोगीका ऐसा भास होता है कि, मस्तिष्क खाली या हलका है। सहज ही बिना विचार हँसता-भूदता है; और स्वच्छन्दा बन कर, मर्यादा रहित बचाव करने लगता है तथापि प्रत्यावर्तन क्रिया नियमित रूपसे हो सकती है।

श्रीपथसेवनकी अधिकतासे संचालन विधायक केन्द्र उच्च जित होता है; और इसी हेतुसे हृदय क्रिया और स्वासोच्छ्वास क्रियामें भी वृद्धि हो जाती है। नाडीके स्पन्दन, रसासंख्या और रक्तका दबाव, ये सब बढ़ जाते हैं तथा मुल शाल हो जाता है। इसके पश्चात् उच्च ज्ञानाके अनुक्रम सब इन्द्रियोंकी क्रिया क्रमशः अवसा-दिष्ट होने लगती है।

अचित् अस्थिर उच्च ज्ञानाके हेतुसे उच्च प्रज्ञाप उपस्थित होता है परन्तु यह अवस्था यत्ने ही समयमें अचेतनावस्थामें परिस्थित हो जाती है। प्रसवावस्थाकी वेदनाका हास करनेके लिये इस द्वितीयावस्था पर्यन्त इन श्रीपथियोंका प्रयोग किया जाता है।

(३) अचेतनावस्था—इस अवस्थाकी प्राप्ति होनेपर प्रारम्भमें मस्तिष्कका उच्चतर अथ अमृतप्रज्ञा होता है। तेज प्रकाश, उच्च शब्द और शरीर पर प्रबल आघातका भी रोगीको भास नहीं होता। रोगी निरन्तर निरन्तर हो जाता है मास-पेशिया पूर्णरामें शिथिल हो जाती हैं—स्वसन क्रिया गम्भीर और नियमित होती रहती है; तथा प्रतिप्रस्थित निया लोप हो जाती है।

अतः रोगीको किसी मो प्रकारकी वेदनाका अनुभव नहीं हो सकता। नाकमें तृण जाने पर छींक आना, कण्ठमें कृच्छ्र जाने पर खांसी आना, हिक्का आना, इन सबका लोप हो जाता है। पैरोंके तलमें खुजलाने पर भी पैर नहीं सरकाता, अर्द्धि किल्लीको स्पर्श करने पर भी नेत्रपल्लव बन्द नहीं करता। एवं कनीनिका कुञ्चित होती है वह तीव्रप्रकाश पड़नेपर भी बैसीकी वैसी ही रहती है।

सावधानतापूर्वक रोगीको इस अवस्थामें कुछ समय तक रक्खा जाता है। औषध प्रयोग इसकी अपेक्षा मो अधिक मात्रामें होने पर चतुर्थां अवस्था अवसन्नताकी प्राप्ति हो जाती है।

धनुर्वास, श्वानविष प्रकाप आदि रोगामें मांसपेशियोंके सकोचको शिथिल करने और वेदनाका हास करानेके लिये इस तृतीयावस्थाकी प्राप्ति करायी जाती है। पित्तलिकामें अशमरीजन्य शूल, वृक्कशूल और प्रसवकालमें अन्नचिकित्साकी पीडाका मान न होनेके लिये इस अवस्थामें रोगीको रक्खा जाता है। एवं उतरो हुई हड्डियोंके यथास्थान स्थापित करने, टूटी हुई हड्डियोंको जोड़ने, अत्रावतरणका दूर करने तथा उदरमें रहे हुए यत्र, आंतरविद्रधि और इतर स्वशासहस्य स्थानकी परीक्षा करने आदि हेतुअसि मो इस अवस्थाकी प्राप्ति कराई जाती है।

(४) अवसन्नत्वस्था—यह अतियोग (Overdose) युक्त अवस्था है। यदि किसी रोगीको इस अवसन्नत्वस्थाकी प्राप्ति हो जाती है, तो शरीरको सब अनैच्छिक मांसपेशियोंका षल और प्रतिफलित उच्चजनारोलताका लोप हो जाता है। इस हेतुसे लघु अन्न और मृशाशयअवरोधक मांसपेशियां शिथिल हो जाती हैं। मस्तिष्क और हृद्यम्बामें रहा हुआ श्वासोच्छ्वास क्रियाका केन्द्र स्थान दोनों पक्षापात प्रसित हो जाते हैं। फिर श्वासोच्छ्वास खरिबत और उथला तथा नाकी अतिशय क्षीण, मन्दगामी और अनियमित होती है। पर्य हृत्स्पन्दन भी अतिक्षीण हो जाता है अथवा क्वचित् बन्द हो जाता है।

सूचना—इन औषधियोंके प्रयोगमें निम्नानुसार विषयियां उपस्थित हो जाती हैं। अतः रोगीकी शारीरिक शक्तिका विचार कर समालापूर्वक प्रयोग करना चाहिये।

१ मात्रा अधिक हो जानेपर मुखमण्डल नीला होता है। ऐसे समय पर श्वासोच्छ्वास क्रियाका अवलम्बन किया जाता है।

२ कक्षारोफार्मके साथ यथोचित वायु मिश्रित न होनेपर हृद्यक्रियाका लोप हो जाता है। ऐसा होनेपर मस्तिष्कसे पैर ऊँचा रहे उस तरह रोगीको शयन करा अमिल नाइट्रेडकी कुछ बूँद भस् या कागज पर डाल श्वास द्वारा कुम्कुवोंमें प्रवेशित करानो चाहिये।

३. बृहदल चिकित्सा में क्वचित् क्लोरोफार्म अनिष्ट मत्ता या अलजे आपातजन्य अयसाद (मूर्च्छा) की प्राप्ति होकर हृदयक्रिया लोप हो जाती है ।

४. श्रीपथ प्रयोगक्षेत्र में यमन न होनेके लिये अलजचिकित्साके कुछ पद्ये पहिलेसे रोगीका कुछ भी मोचन नहीं देना चाहिये और अलजको रिक कर लेना चाहिये ।

५. अलज प्रयोगके हनुसे अलजचिकित्साके पर्यात् उपाक, सामान्यबान्ति, क्लोरोफार्मके विपसे यमन (Delayed Chloroform Poisoning), वेदना व्याकुलता (Restlessness), श्पथनमार्गमें प्रशह, द्यास संस्था में दुर्गन्ध, रक्त, पूय आदिका आकर्षण, मश्रावाचोपके निम्न भागमें आपात हाकर वेदनाग्रह और अगामीर श्वसन, अनियमित श्वसन, जमे हुए रक्तका कुक्कुटमार्गमें प्रवेश होकर उस स्थानको रक्तामिसरखका निरोध होना, हृदयपेशीकी निपलताके हेतुसे कुक्कुट शोष होना, अपाय, आमारायका प्रसारण आदि उपद्रव उपस्थित होते हैं । इनकी प्राप्ति न होनेके लिये पहिलेसे सम्हाल रम्ना चाहिये ।

(८०) निद्राहर ।

निद्रानाराक—एप्यहिनोटिक्स—एपिट्लेवार्जिक्स ।

Anthypnotics—Antilethargics

जो द्रव्य अस्वामाजिक निद्रा और अति निद्रा (सन्ना) का दमन करे, उसे निद्राहर कहते हैं ।

श्रीपथियाँ—लोहभस्म, अन्नकमरु, पूर्वचन्द्रोदय रस, रससिन्दूर आदि पौष्टिक श्रीपथियाँ, बादामका तैल, मक्खन, मृदुबिरेचन, कुचिला आदि हृदयोद्योजक श्रीपथियाँ, चाय, कर्पूरे, गरम जल, विशुद्ध वायु तथा मानसिक विभ्रान्ति आदि ।

अति निद्रा सन्ना और निद्राकी अस्वामाजिकताके अवरोधार्थं कारणके अनुक्रम भिन्न-भिन्न श्रीपथियाँ दी जाती हैं । वात्तवा नाशियोजकी निर्पलतामें अन्नक, लोह और प्यवनप्राशावल्लोह आदि पौष्टिक श्रीपथियाँ, बादामका तैल, एवं मानसिक विभ्रान्ति आदि हितकर हैं ।

कोष्ठकृताजन्त विकारमें मोटे आटेकी रोटी, क्षुद्र पय्य मोचन, व्यायाम, मृदुबिरेचन, और विशुद्ध वायुका सेवन करना चाहिये ।

हृदयकी निर्पलतामें हृदयपौष्टिक श्रीपथियाँ—मुषर्ण, पूर्वचन्द्रोदय, रससिन्दूर, अन्नक, कुचिला आदि उपकारक हैं ।

अप्रीम, गांजा आदिके विषप्रकोप निद्रा या सन्नामें विपन्न श्रीपथियाँ और कर्पूरे आदि सामदायक हैं ।

(८१) व्यवायी ।

पूर्व व्याप्याखिलं फाय तत पाकञ्च गच्छति
व्यवायि तद् यथा भङ्गा फेनञ्चाहिसमुद्भवम् ॥

जो द्रव्य अपनवावस्थामें ही देहमें व्याप्त होते हैं, फिर घात्वनि द्वारा पचन होते हैं, उनको व्यवायी कहते हैं। जैसे मांग, अफीम शराब बन्धुनाग आदि विप ।

आशुकारी, व्यवायी, विक्लासी आदि गुण-द्रव्य सत्त्व रक्तमें शोधित होते हैं और रक्तामिषरस्य द्वारा समस्त अंगोंमें फैल जाते हैं। शराब विप आदि द्रव्य रक्तमें प्रवेश कर फिर सब घटकोंमें पहुँच जाते हैं और अनेक यन्त्र और इन्द्रियोंपर अपना प्रभाव दर्शाते हैं। विशेषतः इन व्यवायी औषधियोंका चिकित्साप्रयोग वेदनाशमन और उच्छेदनार्थ किया जाता है। इन दोनों गुणोंकी दृष्टिसे विवेचन पहिले वेदना स्थापन नं० ४५ और उच्छेदनक नं० ७५ में किया है। अनेक बार दुःख और शोक-चिन्ताकी निवृत्तिके अर्थ मोहजनन अथवा उत्पन्न करनेके लिये मांग, गांवा, अफीम, शराब आदिका सेवन कराया जाता है। इसका विवेचन नं० ७८ में किया है। इनमेंसे अनेक औषधियोंका अधिक मात्रामें सेवन करने पर विषप्रकोपके लक्षण प्रकाशित होते हैं। इसका विवेचन पहिले नं० १८ विषवर्गमें किया है।

मांगको मायप्रकाराकारने कन्दर, तिक, ग्राही, आमपाचक, लघु वीक्ष्य, उष्ण, पित्तवर्द्धक, मादक, मोहवर्द्धक, वाय्वीवर्द्धक और अग्निप्रदीपक कहा है। डाक्टरों मतानुसार मांग और गांवा मस्तिष्क उच्छेदनक, मादक, निद्रामद, वेदनानिवारक, आक्षेपनिवारक कामोद्दीपक और गर्माशय संकाचक है।

मांगकी अपेक्षा गांवेमें अधिक उग्रता है। ये आक्षेपक बात (पागल कुत्तेके विषजनित आक्षेप और वेदना), संग्रहणी, अतिघार, आमशयणस्थान्य पीडा, काली स्वांती, मासिकधर्ममें अधिक रक्तस्त्राव, मासिकधर्ममें वेदना (पीडितार्त्तव), निद्रानाश, शिरदर्द आशुकारी और चिरकारी वृक्कप्रदाह, विषमस्वर, भूतौन्माद (Catalepsy) और वातराज्य आदि रोगोंमें प्रयोजित होते हैं। मदात्म्य रोगमें ये विलक्षण उपकार दर्शाते हैं। मस्तिष्क कोमल हो जाना (Softening), इस रोगमें रात्रिको प्रलाप होता है। यह प्रलाप मांग या गांवाके सेवनसे सत्पर शमन हो जाता है। अर्शाकी पीडा शमन करनेके लिये मांगका घुसा दिया जाता है और मांग की पुल्लिप्त करके बांधी जाती है।

मांग और गांवेका औषध रूपसे सदुपयोग किया जाय, तो ये दिव्य औषधियाँ हैं परन्तु दुरुपयोग करने एक व्यसन करके बह होने पर विविध प्रकारसे शारीरिक और मानसिक हानियाँ भी पहुँचाते हैं।

(८०) विकारी ।

एण्टिस्पेस्मोटिक्स—Antispasmodics

सन्धिबन्धनास्तु शिथिलान् यत् करोति विकारि तत् ।

विश्लिष्योऽश्च घातुष्यो यथा म्मुफकोद्रया ॥

जो द्रव्य संधिस्थानके बन्धनांका शिथिल करता है तथा घातुष्यमेंसे खोख (घातुस्य) को पृथक् करता है, उसको विकारी कहते हैं। जैसे सुपारी छार, कोदो घान्य ।

यिक्रमधीके शिष्ये सुभुव संदिवाकारे लिखा है कि, “विकारो विकसमेर्षं भद्र बन्धान् विमोक्षयेत्” जो द्रव्य अपस्वावस्थामें ही छारे शरीरमें फैलकर घातुबर्ण (घातुष्यो) को शिथिल करता है, उसे विकारी कहते हैं। ध्यवामी द्रव्य भी पचन होनेके पहिले वेदमें सर्वत्र फैल जाता है, किन्तु यह सन्धिबन्ध और घातुष्योको शिथिल नहीं करता, यह दोनोंमें अन्तर है ।

इस वर्गमें द्रव्योंको किया अनेक प्रकारसे होती हैं। इस दृष्टिसे इसके अनेक विभाग होते हैं। इनका वर्णन न० २ याताक्षेपम्न प्रकरणमें दशया है ।

श्रीपार्थिव्या—सुपारी, कोदो घान्य, यच्छनाग, तमाल, पचकाष्ठ, कर्तूय, जगमांसी, प्राची, प्याज, सोमल, कूठ, गांजा, सोम, सूधीबूटी, भद्र्य, सुरासानी अजभायन हाँग, इलायची, तगर, हाँग, अफीम, कपूर आदि उदरवातहर श्रीपथिया ।

पच ग्रामपात, वातरघ, उपदेश आदि व्याधिजनित सन्धिवात, अस्थपिच अथिफ प्रवास, व्यानाम, अम्ल विपाकवाले पदार्थोंका अधिक सेवन आदि कारणांसे सन्धि स्थानोंमें छार संकित होकर मंशपेशियां आक्षेप पोषित होकर या सन्धि स्थानोंकी नाबियां लिचकर वेदना होती हो, तब सन्धिबन्धनोंमें प्रवेश करनेवाली विकारी श्रीपथि ही साम पहुँचा सकती है ।

सूचना—शराम, गांजा, भद्र्य आदि विकारी, उष्णधर्म और तीक्ष्ण श्रीपथियोंके सेवनसे मस्तिष्क विरुति भी हो जाती है अतः इन कस्तुओंका उपयोग रामें ही करना चाहिये ।

(८१) प्रमायी ।

स्रोवासि दोपक्षिप्तानि प्रमथ्य विदूखोसि भत ।

प्रविश्य सौहृन्ध्यात् सैदृष्याथ तत् प्रसाधीति सक्षिप्तम् ॥

निज क्षीर्ष्येण यत् द्रव्यं स्रोतोभ्यो दोपसंभवम् ।

निरस्यसि प्रमाथि स्यात् तद्यथा मरिचं वषा ॥

जो द्रव्य अपने स्वस्व, तीक्ष्ण और व्यापक गुणके हेतुसे स्रोतोंमें प्रवेश कर निकले हुए मलम्ल संपन कर पृथक् कर देता है, उसे प्रमायी संज्ञा दी है ।

जो द्रव्य अपने वीर्यसे (प्रमावसे) रस-रक्तादि बाहिनियों द्वारा तथा कर्ण, मुख, नासिका, नेत्र आदि मार्गसे संश्लिष्ट मलको निकाल देता है, उसे प्रमायी कहते हैं, जैसे कालोमिर्च, पच आदि ।

औषधियाँ—कालोमिर्च, बच, अक्रकटा, पीपल, पीपलामुल, नीलगिरी तैल, सर्पिन तैल, पोपरमेयटका तैल, शरप, पारद, सोमल, इस्ताल आदि ।

उपदेश आदि रोगजन्य विकृति और वृषित पारद आदि औषधजनित विष प्रक्षेप या कीटाणु-कृमि आदि हेतुसे सूक्ष्म-सूक्ष्म नाभियोंमें मल संश्लिष्ट हो जाता है । तब उसे निकालनेके लिये प्रमायी गुणयुक्त औषधि दी जाती है ।

बच—चिबके हुए कफदोषको उखाड़कर बाहर निकालता है । सेंट, मिच, पीपल आदि दीपन औषधियाँ दोषोंको जलाने वाली हैं, और वे शहद-गुड़ आदिसे योगसे दोषको बाहर मो निकालती हैं ।

जवाहार, केलोका धार आदि औषध दोषोंके जलाने तथा प्रस्वेद और मूत्र द्वारा बाहर निकालनेमें सहायक होती हैं । इन धारोंमें छेदन (कफन) गुण मो रहता है । इस गुणका वर्णन न० १० में किया है ।

(८४) अभिष्यन्दी ।

पेच्छिव्याद् गौरवाद् द्रव्यं रुद्ध्वा रसघ्ना शिरा ।

घत्ते यद् गौरयं सत् स्यादभिष्यन्दि यथा दधि ॥

जो द्रव्य पिच्छिल और गुठ गुणयुक्त होनेसे (या गुठ पाकी होनेसे) रस बाहिनियोंके मार्गको रोककर शरीरमें भारीपन ला देवे उसको अभिष्यन्दी कहते हैं, जैसे दही ।

अभिष्यन्दी द्रव्य बहुधा क्लेदकी प्राप्ति कराता है । अतः इसे कफयटक कह सकते हैं । कफ प्रकृतिनालोंको तथा कफ प्रकोपवालोंको इसका सेवन कम करना चाहिये ।

औषधियाँ - खट्ट दही, कटइल, केला, मत्स्य, अण्डे, नये पावलोंकी विलेपी, पिछीके पदार्थ, खोला, गोटका प्रयाही घासमखाने, इस्सयगोल, सिंहदाना आदि त्रिपत्थि औषधियोंका लुआन, पायस (लीर) आदि स्निग्ध भोजन ।

विषप्रकोप, कौंच आदिके सेवनसे अन्ध आदिमें रक्तलाव शरप, तिरका या अन्य अन्तर्दाह, पित्तप्रकोप और मस्मकरोग आदि विकारोंमें अभिष्यन्दी गुणयुक्त औषधियोंका सेवन कराया जाता है ।

डाक्टरों मतानुसार विषप्रकोपके संरक्षार्थ जो औषधि सेवन करायी जाती है, उसे यान्त्रिक विषशामक (Mechanical Antidotes) कहते हैं । इन श्रेणीकी औषधियोंका विवेचन पहिले न० १९ विषशामक प्रकरणमें किया है ।

(८५) वर्ण्य ।

जो द्रव्य वर्णकर अर्थात् शरीरके रंगको सुधारने वाले हों, उनको वर्ण्य और वर्णप्रसादन कहते हैं । अनेक रोगोंमें देहका रंग विगड़ जाता है । तब इस वर्णकी औषधियोंसे सेवन कराया जाता है । सुभ्रत संदितामें लोभादि गण (वर्णन नं० ५० में) तथा पलादि गण (वर्णन नं० ३७ में) को वर्णप्रसादन लिखा है ।

औषधियाँ—सुवर्ण भस्म, रंग भस्म, सुवर्णमासिक भस्म, राजावर्ण पिंडी, हीरा आदि रत्नोंकी भस्म, रक्तचन्दन, नागपेशर, हस्ती, पद्माल, पुलाग, खस, मुलदठी, मगीठ, अनन्तमूल, क्षीरफूलोली, विदारीकन्द, कृष्ण, शकर, लोप, कूट-बदके अंकुर, मधुर, मधुपेशर, गिलोपसत्व, जायफल, जावित्री, केशर हस्तादि तथा सोमल, हरताल, पारद, गंधक आदि कीयगुनाशक ।

सामान्यतः शीतप्रधान देशवासियोंकी त्वचा रक्तम-श्वेत, उष्ण प्रधान वर्णवासियोंकी त्वचा कृष्ण तथा मध्यम देशवासियोंकी त्वचा गेहूँके रंग जैसी होती है । शीतल देशवासियोंकी त्वचा शीत अधिक सह सकती है और उष्ण देशवासियोंकी त्वचा उष्णता अधिक सह सकती है । दोनों देशवासियोंकी रक्तत्वचानामें रंजन प्रवृत्तिके परिमाणमें अन्तर रहता है । इस हेतुसे भी त्वचा शीत और स्वाम भावती है ।

त्वचाके रंगका आधार रक्त, रक्तस्य रंजनद्रव्य पित्त और ओजपर स्थिर है । रक्तकी स्वस्थता या विकृति रंजन द्रव्य या पित्तकी म्यूनाधिकता तथा आमकी स्थिति अनुरूप त्वचाके रंग और कान्तिमें अन्तर हो जाता है । सामान्यतः मुलमपदल, नेत्र और नासूनपरसे स्वामाधिकता और अस्वामाधिकताकी कल्पना हो जाती है । अधिक शीत छानेपर त्वचा फट जाती और निस्तेज हो जाती है । एवं सूक्ष्म ताप अधिक लगनेपर त्वचा द्याम हो जाती है ।

मधुर रसप्रधान भोजन और औषधि (शतावरी सारिवा, विदारीकन्द, तालमलाना, मूसली, मुलदठी आदि) रसरक्त आदि घातुओंको पुष्ट करती हैं । इस हेतुसे त्वचाको भी पोषण मिल जाता है तथा ओजकी वृद्धि होती है । परिखाममें त्वचा सुन्दर भासती है । मन चिन्ता और शोक-संशय रहने पर मुलमपदल निस्तेज हो जाता है । इसके विपरीत मन प्रकृष्ट रहनेपर त्वचाकी कान्ति बढ़ती है । कितनेही कृपाय रसप्रधान, मधुर विषाकी, शीतवीर्य तथा रक्त और पित्तसंशोधक द्रव्य त्वचाका रंग सुधारते हैं । अदारशार्प-कमलकंद, बदके अंकुर केशर, जावित्री, लोप, हरितकी, कपूर, चन्दन, कस आदि ।

इस प्रकारकी औषधियोंमें सार्वाङ्गिक और स्थानिक, ऐसे दो विभाग हैं । सार्वाङ्गिक प्रयोगार्थ औषधि खाने या पीने और मर्दन करनेको दी जाती है; तथा स्थानिक प्रयोग रूपसे वैश, लेप, मलहम, उषदन (उद्घर्शन) आदिका उपयोग किया जाता है ।

रक्तविकार, अनेक प्रकारके सकामक व्वर, उपर्दश, सुष्वाक, श्मलवित्त, पित्तप्रकोपजन्य अनेक व्याधियां, चर्मरोग आदि विकारोंमें सारे शरीरकी त्वचा मलिन स्याम हो जाती है। कितनेही रोगोंमें मदन करनेपर बाह्य त्वचाके टुकड़े टूट-टूट कर निकलने लगते हैं। मुखमुद्रा काली निस्तेज हो जाती है। ऐसे समयपर औषधका अन्तर्बाह्य दोनों प्रकारसे उपयोग किया जाता है। अन्तर प्रयोगार्थ बहुधा सुवर्ण मस्म, सुवर्णमाक्षिक मस्म, अनन्तमूला, घोरकाकोलो, विदारीकन्द आदि शीतल और वर्ण कर या सोमल आदि कीटाणुहर औषधि तथा याज्ञप्रयोगार्थ रक्तचन्दन, खस, नेत्र बाला, मञ्जीठ, कूठ, पद्मकाष्ठ आदि-आदि औषधियोंसे बने हुए सिद्ध तैलका उपयोग होता है। रक्तचन्दन, मसूर आदि औषधिका लेप और उर्ध्वर्चन भी लाभदायक हैं। उर्ध्वचनका बयान चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ १३३ १३४ में देखें।

शरावका अत्यधिक सेवन करने पर त्वचा काली हो गई हो, तो राजावर्त पिष्टी, सुवर्णमाक्षिक मस्म, मौक्षिक मस्म और प्रवालपिष्टी आदिका सेवन लाभदायक है। कुटकी, पुनर्नवा और गिलोयका काय अनुपान रूपसे दिया जाता है। एष मालिश के लिये भी चन्दन आदि तैल साबुन और घेर, चनेली, नीम आदिके पत्तोंके जलका मिश्रण (मदात्यय रोगीको), लाभदायक है।

शुष्क आदिके घाव, गण्ड, विद्रधि, तेजान, अग्नि आदिसे जल जाना, चर्म-रोग, मयूरिका आदि व्याधियोंके हेतुसे त्वचा विकृति हो जाने पर रक्तचन्दन, लोच आदि औषधियोंका केप किया जाता है।

मुखकी अन्ति नष्ट हो जाने पर या ताक्ष्यपिटिका आदि रोग होने पर मुल मसबल पर लेप, तैलमर्दन आदि प्रयोग किये जाते हैं। मुखलेपका वर्णन चिकित्सा तत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ १२८ में देखें।

तेलाम्यलसे त्वचाका बय सुन्दर बन जाता है, और त्वचाकी शुष्कता, कण्डू, घावविकार, मैला बचना आदि दोषोंकी निवृत्ति हो जाती है।

सूचना—आमसह व्याधियां, कफवृद्धि, तद्वक्ष व्वर, अपचन और संतपण अनिष्ट रोगोंमें तथा वमन, विरेचन और निरुद्धार्य वक्षि करने पर तैलमदन नहीं करना चाहिये।

प्रति दिन स्नान करनेसे चेहका वर्ण उज्ज्वल बन जाता है अग्नि प्रदीप्त होती है मनोवृत्ति प्रसन्न रहती है, कण्डू, मैला, प्रस्वेद, परिभ्रम, आलस्य, रुपा, दाह, चर्मरोग और रक्तविकारका नाश होता है।

परन्तु स्नान कैसे करना चाहिये, कब करना चाहिये, कौन अधिकारी, कौन अनधिकारी, स्नानके पहिले कथम्, स्नानके पश्चात् कथम्, इन सब बातोंकी मशने-मांति समझ कर स्नान करनेसे पूरा लाभ मिला सकता है। इस विषयका विस्तृत विवेचन "चिकित्सातत्त्वप्रदीप प्रथम खण्ड पृष्ठ १३० से १३३ तक किया गया है।

(८६) कण्ठय ।

जो द्रव्य कण्ठस्य विरुतिज्ञा दूर कर उस न्यानको सबल बनावे और स्वरका सुपारे उसे कण्ठय कहते हैं । कण्ठ (स्वरयन्त्र) श्यासवाहिनीके ऊपर है । यह श्वसन संस्थाका अग्रपत्र होनेसे कण्ठ भातुछ स्थान माना जाता है, उस स्थान पर कार्य करनेवाली श्रीपधियां विशेषतः कण्ठय होती हैं । इनके अतिरिक्त स्वर सुधारक कुछ श्रीपधियां शीतवीर्य, पित्तप्रकोपहर और कण्ठातु रक्षक होती हैं ।

कण्ठय श्रीपधियां—शरक संहितामें कण्ठय कण्ठयवर्गमें सारिका, ईलायची जड़, मुल्लहठी पीपल, मुनक्का, चिन्तमोहन, महानिम्ब, ईसराज, बही कण्ठली और छोटो कटेला ये १० श्रीपधियां हैं ।

इनके अतिरिक्त श्रीपधियां—जसद मरम, सुवर्ण मर्म, मुक्कापिठी, प्रवाल पिठी, कुल्लिजन, अदरक, चनेलीके पत्ते, चिरमोके पत्ते, कल्या, मिथी, सौंरु, लौंग इलायची, दूध, मक्खन, गोघृत, शहद, यासा, घरेखा आदि ।

प्रतिदलित कफनि हारक श्रीपधियां, बिनको मुल्लमें रम्यकर रस घूसा जाता है उनमें भी कण्ठय गुण रहता है ।

आयाम निरुति वातप्रकाप, पित्तप्रकोप, कण्ठप्रकोप आदि अनेक कारखोसे होती हैं । यदि अधिक देरतक बोलने या बर्षां आयाजसे बोलनेके हेतुसे उदमन वायु प्रकुपित होकर आयाज पैठ गई हो, तो कल्या, मिथी, मुल्लहठी, मुनक्का, चिरमोके पत्ते, शवायरी आदि श्रीपधियां प्रयोजित होती हैं ।

पित्तप्रकोप, सर्पके तापमें अमण, गरम गरम पेय या मोहनका सेवन, तीक्ष्ण पदार्थोंका सेवन आदि कारखोसे स्वरयन्त्रमें उग्रता उतरन हुई हो, तो दूध, मक्खन, बनवसा सारिका, मुनक्का, मुल्लहठी, मिथी, सौंरु, इलायची, वंशलोचन आदि म्बद्धत होते हैं ।

श्वसन संस्थामें या स्वरयन्त्रमें दूषित कफ संयहोत हुआ हो तो वायक वा उचेजक कण्ठय श्रीपधियोंका प्रयोग होता है । दोनोंका वर्णन पहिले नं० २१ और नं० १० में किया गया है ।

कभी कण्ठस्य मांसपेशीमें क्षिपिलता आ जाती है, तब उसे सुदृढ़ बनानेके लिये घरेखा, लोभ हरक, कल्या, वंशलोचन आदि कपासरक प्रदान श्रीपधियोंका उपयोग किया जाता है ।

यदि अविनिद्रा, उपविद्रा अथवा गलशुषिद्रका आदि रोगमें शुष्क वात वायक काठ हुई हो और आयाज विरुति हो गई हो तो मोक्षिक और प्रवालपिठी उपकारक माने गई हैं ।

यदि क्षय, कफप्रकोप या लसिका ग्रन्थियोंकी विकृति होने पर उपद्रव रूपसे स्वरसाद और स्वरमंग आदि लक्षण उत्पन्न हुए हों, तो प्लेग मरुत सामदायक मानी जाती है।

(८७) अर्शाघ्न ।

जो द्रव्य बवासीरके उत्पन्न मस्सेके नष्ट कर और नूतन उत्पत्तिको रोके उसे अर्शाघ्न या अर्शनाशक कहते हैं।

धरक संहिता कथित अर्शाघ्न गण—कुबैकी छास, बेल, चित्रकमूल, सोंठ, अतीस, हरब, घमासा, दावहल्दी, बच और चम्प, ये औषधियां कही हैं।

इतर औषधियाँ - ताम्र मरुत खोद मरुत, शिलाजीत, नागमरुत, पद्मा, पुस्तुरज, जमीकन्द, भिलावा, कुचिला, रसात, छोटी वूषी, रीठा, नीमके फल, बकायनके फल, उत्तरयाके पत्ते, बनगोमी, फाले तिल, बूरका वूष, पीलूके फल कुकरोँघा, मन्खन मझा आदि।

मलाबरोष हो, तो दूर करनेके लिये हरब, पररुड तैल, गुलाकन्द, मुनफा आदि औषधि दी जाती है, पचनक्रिया सबल बनानेके लिये दोषन औषधियाँ— ताम्र मरुत, चित्रकमूल, भिलावा, जमीकन्द, इन्द्रजव, सोंठ, अतीस, बूर घार, मझा आदि व्यवहृत होती हैं। स्थानिक रक्षाभितरय क्रिया सुधारने और मस्सेका नष्ट करनेके लिये लोहमरुत, जमीकन्द, चित्रकमूल, भिलावा, मझा आदि उपकारक हैं। रक्तसाव होता हो तो रोकनेके लिये मन्खन, मझा, रसात, कुकरोँघा आदि तथा स्थानिक वेदना दूर करनेके लिये स्थानिक उपचार किया जाता।

सामान्यत इस रोग की सब औषधियों में मझा भेद माना है। केवल मझेका सेवन (उष्णरूप) करनेसे अर्श प्रहरी आदि अनेक रंग समुद्र नष्ट हो जाते हैं।

इस रोगमें अन्तर-धात्रा दोनों प्रकारकी चिकित्साकी अग्रश्यकता है। तीक्ष्ण बीजाके शमनार्थ भोंग, सोंप की केंचुली, ऊँटके मोंगणों, मनुष्य केर, मैसके सींगके अंकुर, देवदाली, लोभान, कुचिला, बची कटेलीके फल आदि औषधियोंमें से एक या अनेक मिलाकर घुँआ दिया जाता है; भोंग, देवदालीके फल, बच आदिकी लुगदीसे सेक मो किया जाता है। एवं विविध पुलित्स लेप, तैल, मरुत आदिका प्रयोग किया जाता है तथा हुक्के के सके हुए जलसे आबदस्त लिया जाता है।

इस अर्श रोगके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विस्तृत विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थ खण्डमें किया गया है।

(८८) कासहर

जो द्रव्य खासीके वेगको शमन करे उसे कासहर कहते हैं। सुश्रुत संहितामें विशारी गन्धादि गण (न० १ वातदोषघ्नमें) और मुरसादि गण (न० २ कफ दोषघ्नमें), इन दोनों को कासहर कहा है।

अन्य औषधियाँ—अन्नक मसम, मृग मसम, शय्य मसम, शोह मसम, मौक्तिक पिष्टी, प्रवाल पिष्टी, सुवर्ण मसम, मुनक्का, हरक, श्राविला, पीपल, बमाला, काकशासिगी, छोटी कटेला, वसलोचन, सौंफ, इलायची, गोंद, वच, मरेवा, कल्या, अफीम, शफेद पुननवा, लाल पुननवा, मुश्क श्राविला, भारगी, लौंग, कालीमिर्च, पीपलामूल, शहरद, मिथी, गुड आदि ।

कासके २ प्रकार हैं । कुम्भज्वर, कुम्भज्वरवाहिनो या स्वरमन्त्र आदिकी स्थानिक श्लैष्मिकरूपायें उभवा आनेसे शुष्क कास चलती है । दूसरा प्रकार कुम्भज्वरदिमेंसे का आदि मलको बाहर निकालनेके लिये उत्पन्न कास । इनमें प्रथम प्रकारमें कम्बुली, लोहमसम, मुष्कापिष्टो, प्रवालपिष्टी, सुवर्णमसम, कल्या, गोंद वसलोचन, इलायची, सौंफ, आदि शामक औषधियाँ व्यवहृत होती हैं । द्वितीय प्रकारमें अन्नक मसम, वच, कटेला, लौंग आदि उच्छेजक औषधियों का उपयोग होता है । कमी कमी रात्रि को निद्रामें याथा न होनेके लिये द्वितीय प्रकारमें भी अप्रीम वैली शामक औषधि देनी पड़ती है ।

कुम्भज्वर कोष, श्याम नखिका, स्वरमन्त्र, नासिका आदिमेंसे किस स्थान पर विकृति हुई है, और क्या विकृति हुई है ? इस बातका निर्णय कर विचार अनुरूप चिकित्सा करनी चाहिये ।

धनेक बार श्वर, शययक्का, उरस्तोम, हृदावरण प्रदाह, उदय्याकला-प्रदाह और कण्ठरोग आदि व्याधियोंमें यौगव्याधि (लक्षण) रूपसे कास उत्पन्न होती है । ऐसे समय पर मुख्य रोगकी औषधिके अनुरूप कासकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

इसे कस रोगका विशेष विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है ।

*

(८९) श्वासहर

जो द्रव्य श्वासोच्छ्वासमें होनेवाले अवरोध और श्वास प्रक्षेपको दूर करे, उसे श्वासहर कहते हैं । सुभुव संहितामें विशदीमान्वादि गण्य (नं० १ श्वात दोषज्जने), सुरसादि गण्य (नं० ९ कफ दोषज्जने) तथा दशमूल को श्वासहर कहा है ।

धरक सहिता कथित श्वासहर कपाय—शठी, पुष्करमूल, अम्लबैठ, छोटी इलायची, हींग, अगर, तुलसी, मुँई श्राविला, जीवन्ती और चयवा (चोरफुली), ये १० औषधियाँ कही हैं ।

इतर औषधियाँ—अन्नक मसम, मृग मसम, मैनसिल, सोमल, सुबो बूटी, अफीम, भारगी, काकशासिगी, कटेला पदुयके बीज, आकके फल, अरुण, नीसाहर, आपामागवार, कलमी सोरा, वच और शहरद आदि ।

श्वासकृच्छ्रता (Dyspnea) होने के मुख्य हेतु—

- (१) स्वर यन्त्रके विदग्धि, प्रदाह, आक्षेप या इतर विकार ।
- (२) स्वर यन्त्र या मुख्य श्वासनसिञ्च पर दबाव ।
- (३) हृदय और फुफ्फुसोंकी विविध वेदना ।
- (४) आमाराशदादि पचनेद्रियकी विकृति ।

कमी कमी स्वर यन्त्रमें अत्यधिक अवरोध होने पर श्वासमहश्यामें या श्वासत्वाग में कष्ट होता है । क्वचित् यह कष्ट इतना अधिक हो जाता है कि, रोगीकी स्थिति अति दबाजनक हो जाती है । यदि श्वासोच्छ्वास अत्यन्त तेज हो तथा चेतना और ज्ञानमें कुछ भी विलक्षणता न हो, तो फुफ्फुसोंमें वायुका अभाव होनेसे अत्यन्त वेदना हुई है, ऐसा माना जाता है ।

क्वचित् वायुके अभावसे श्वासकृच्छ्रता भी उत्पन्न होती है ।

सञ्चयमे से आयुर्वेदमें श्वासरोगके महाश्वास, कर्षश्वास, क्षिन्नश्वास, तमश्वास, और क्षुद्रश्वास, ऐसे ५ भेद किये हैं । इनमेंसे महाश्वास, कर्षश्वास और क्षिन्नश्वासको घातक माना गया है ।

अनेक बार बुक संन्यास (Uraemia) और हृदयकी मेदापक्रान्ति होने पर श्वासके कालमें विलक्षणता हो जाती है । फिर क्षिन्न श्वास (Cheyne Stoke Respiration) उत्पन्न हो जाता है । इस तरह सुपुम्ब्यासीर्यके भीतर रहे हुए श्वासोच्छ्वास केन्द्रकी घमनीमें रक्त संचालनका अवरोध होने पर भी इस क्षिन्न श्वास की घमासि हो जाती है । यह भी असाम्य-सा विकार है ।

तमकश्वासकी उत्पत्ति अपचन, अपच्य आहार-विहार सेवन, त्रिदोष-अकोप आदि अनेक कारणोंसे हो जाती है । इस श्वासका दौरा बार-बार अजीर्ण, शीत लगना, बाइल आना, इत्यादि कारणोंसे होता रहता है । तब श्वासोच्छ्वास क्रिया अति कष्टमें होती है । यह प्रयत्न करने पर दूर हो जाता है ।

क्षुद्रश्वासकी उत्पत्ति निर्बलता, वृद्धावस्था, भेदबुद्धि, और सामान्य अजीर्ण आदि कारणोंसे हो जाती है । बुढ़ों और भेद विकारवालोंका रोग सत्वर दूर नहीं होता । सामान्य कारण या किसी रोग विशेषसे निर्बलता आकर क्षुद्रश्वास हुआ हो, तो सत्वर दूर हो सकता है ।

सामान्यावस्थामें अभ्रक, लोह आदि फुफ्फुसपौष्टिक और रक्तपौष्टिक औषधियाँ देनी चाहियें और तीव्र अकोप कालमें अफीम घृत्य आदि वेदनाशामक और आक्षेप निवारक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ।

श्वासयन्त्र को, परिवेष्टित वायु, वेहमें रहा हुआ रक्त, रक्तसंचालन क्रिया, वातनाडी विधान और सुपुम्ब्यामें रहे हुए श्वासोच्छ्वास करने वाले केन्द्र, इन सबके साथ अति धनिय सम्बन्ध रहता है । इन सबमें कुछ भी विकार होने पर यह श्वास-

यत्र पर प्रतिफलित होता है। जैसे अस्थामाविक संचाप और उष्ण वायु, धूलि आदिके परमाणुमिश्रित वायु अथवा अत्यन्त वायु श्वास द्वारा ग्रहण होने पर श्वासोच्छ्वास क्रियामें व्यतिक्रम हो जाता है। इस तरह रक्तमें रहे हुए रक्तानुओं की संख्यामें न्यूनता हो, या रक्तानु विकारमस्त हो जायें, तो श्वासविकार हो जाता है। रक्तामिसरस क्रियामें विकृति अथवा श्वासयन्त्र और हृत्तर मन्त्रोंके केन्द्रामिसुली वातवाहिनियों (Affluent) में क्रिया परिवर्तन हो जाय, तो भी श्वासोच्छ्वास क्रियामें बाधा पहुँच जाती है। इन सब विष्टियोंकी चिकित्सा करनेमें मूलकारणको दूर करना चाहिये।

श्वासोच्छ्वासके शमनार्थं घृत्य और सूचीबूटीका घूस्रपान रूपसे उपयोग किया जाता है। इस तरह मैनसिल प्रपान श्रीपथिक मो प्रयोग होता है। पूर्वचन्द्रोदय रस, सोमल, अपीम, घृत्य, सुरासानी अत्रवायन, सूचीपूरी, गौंसा, मांग आदि श्रीपथियाँ खानेके लिये मो दी जाती हैं।

केवल उत्तेजना पहुँचानेके लिये (तमालूके म्यसनीको) तमालूका घूस्रपान करया जाता है। एवं शराब, अजोम, वृद्धनाग, किनाइन, 'लोरोघर्म', ईयर आदि श्रीपथियाँ दी जाती हैं। परन्तु ये सब सुषुम्सामें रहे हुए श्वासकेन्द्रको पहिले उत्तेजित करनी हैं, फिर अयत्न घनातो हैं।

यदि नासिकसे दुर्गन्ध निकलती हो, तो सेन्द्रिय विपनायक नीलगिरी तैल, तार्विन तैल, लोभानसत्त्व, अफीम, शृङ्गमर्म आदि श्रीपथियोंका सेवन करया जाता है।

यदि कफ अति चिपथिया हो जानेसे सरलतासे बाहर नहीं निकल सकता, तो कफको बाहर निकलानेके लिये कटेली, मुलाहठी, बरेषा, तार्विन तैल, कपूर, लोभान, तमालू घार आदि प्रयोजित होते हैं। ये सब श्रीपथियाँ श्वासनलियोंकी छावस क्रियाको बढ़ाती हैं। इस हेतुसे कफ सरलतासे बाहर निकलता रहता है। एवं बंग घार, ज्वालार, अपामाग घार, अर्क घार, घृत्य, सूचीबूटी, शृङ्गमर्म आदि श्वास नलियोंमें छाव कम करती हैं; और कफको गाढ़ा बनाती हैं। फिर कफको बाहर निकालती हैं। इनके अतिरिक्त श्वासनलिकाओंके भीतर रक्तवेग, पेशिक क्रिया और श्वाण्य क्रिया हृदि करनेके लिए बाध पहुँचानेके प्रयोगीक उपयोग भी होता है। लोभानका अक, काजुपटी तैल, कार्बोलिक एसिड आदि श्रीपथियोंको उबलते हुए जलमें मिलाकर बाष्प सुँघाई जाती है।

श्वासविघ्नरका निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य सम्बन्धी विशेष विचार 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' द्वितीय अरण्यमें किया है।

(९०) हिक्काहर।

जो द्रव्य हिक्काका दमन करे उसे हिक्का निग्रहण और हिक्काहर करते हैं। चरक चिकित्सामें हिक्का निग्रहण रूपसे शठी, पुष्करमूल, बेरकी गुठलीकी गिरी,

छोटो कटेली, बड़ी कटेली, बूदबहा (वान्दा), हरक, पोपल, घमाता, काक्यासिंगी, ये १० औषधियां कही हैं ।

इनके अतिरिक्त सुपर्ण मरुम, ताम्रमरुम, मयूरपुण्ड्रके चन्द्रलोकी मरुम, रससिंदूर, मैनफ्रल, अजवायन, घदरा, सुरानीयं आदि औषधियां भी उपकारक हैं ।

हिंका क्वचित् स्वतंत्र रोग रूपसे और क्वचित् सन्निपात आदि व्याधियोंमें मारक उपद्रव रूपसे प्रकाशित होती है । आमाशय विकृति, कुम्भुसान्तरालमें विद्रधि, मन्त्रिष्कमें विद्रधि आदि विकार महाप्राचीरा विकृति, इतर अवयवोंकी विकृतिसे महा प्राचीरापर दवाभ आदि कार्योंसे हिंका रोग उत्पन्न होता है । इन सबका उपचार मित्र मित्र होता है ।

श्वासग्रहण क्रिया करने वालोंमें मुख्य महाप्राचीरा पेशी है । इस मांस पेशीमें विकृति होनेपर हिंका और श्वासकी संप्राप्ति होती है; अतः श्वासरोगपर उपकारक औषधियां भी हिंकाको दमन करती हैं ।

आयुर्वेद और डाक्टरी, दोनों प्रकारके निदान, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विवेचन 'विकृत्सातत्वप्रदीप' द्वितीय खण्डमें किया गया है ।

(९१) ज्वरहर ।

अस्थिपायरेटिस—अस्थिकेत्रित्स—फेब्रिफुगस ।

Antipyretics—antifebriles—febrifuges

जो द्रव्य ज्वरको या रोग विशेषमें उत्पन्न शारीरिक सञ्च्यताको शमन करे उसे ज्वरहर, ज्वरघ्न और ज्वरप्रशमन कहते हैं । उक्त ज्वरहर औषधियोंमेंसे जो एकाधिक आदि विषमन्वरोके कीटाणु और विषको नष्ट करते हैं, उनको निवधकासिक ज्वरहर (अस्थि पिरियोडक्स—Anti periodics) संज्ञा दी है ।

सुभुत संहितामें पटोलादि गण, गुह्य्यादिगण, आरम्ब्यादिगण और सारिया दिगणको ज्वरहर शिखा है । इनमेंसे आरम्ब्यादिगणका वर्णन नं० ३७ फलहूणमें तथा सारियादिगणका वर्णन पहिले नं० ५१ दाहप्रशमनमें किया है ।

पटोलादिगण—इस गणमें पटोल, सफेदचन्दन, रक्तचन्दन, मूय, गिलोय, पाठा और कुटको ये ७ औषधियां कही हैं । यह गण पित्त, कफ, अरुचि, ज्वर, शूल, क्षुब्ध, कण्ठ और विषको नष्ट करता है ।

गुह्य्यादिगण—इस गणमें गिलोय, निम्ब, बनियां, सफेदचन्दन, रक्त चन्दन और पद्माल ये ६ औषधियां हैं । यह गण दीपन और सर्नन्वरोहा नाश करता है । तथा हृत्तास, अरुचि धमन, व्यास और दाहको भी दूर करता है ।

अरुंके संहिता कथित ज्वरहर कपाय—अनन्तमूल, गिलोय, पाठा, मगोठ, मुनिफा, पीतू, घसला, हरक, बरेषा, अमैला, ये १० औषधियां चरक संहिता और अष्टाङ्ग संप्रहमे लिखी हैं ।

इनके अतिरिक्त बच्छनाग, सप्तपर्ण, फलमेघ, घृत्वा, चिरायता, कुटकी, विषपापना, कुबेकी छाल, अतीव, फिटफटी, प्रवाल, मौक्तिक, गोदन्ती, सुरमा, सिरकेके साय नीसादर, गुग्गुलु, तुलसी, द्रोणपुष्पी, नीमकी अन्तर छाल, वेद-सुरक, सहदेवी, कटुयी नार्ई, पटोलपत्र, नागरमाया, पीपल, कालीमिर्च, अर्कमूलक, कनेर मूलक आदि ।

नियत फालिक उषरहर—किनाइन, सोमल, हठ्वाल, घृत्वा, सखानारी, मांग, फिटफटा, द्रोणपुष्पी, सप्तपर्ण, अतोष, अर्जुनी, अफीम, सुबर्णचम्पा, पीली-कनेर, बच, तुलतुल, कोडामारी, इन्द्रजी कालीमिर्च आदि ।

इनमेंसे कितनीही उष्ण उत्पादक केन्द्रकी क्रियाका शमन कराती है। कितनीही औषधियां बड़ी हुई उष्णताका मलात्कारसे हास करती हैं, कितनीही शनैः शनैः कीदृशान्ताको नष्ट करा या दोषपचन करा उष्णताको न्यून कराती है; और कितनीही सामान्य स्थितिमें रहनेवाले शारीरिक उष्णताको कम कराती हैं। किन्तु आधुनिकमें इन सबका योग्य वर्गीकरण अभी तक नहीं हुआ ।

उष्ण केन्द्रपर कार्यकर औषधियाँ—बच्छनाग, सप्तपर्ण, कपूर, किनाइन, शराब, कटुवी नार्ई, तुलसी, द्रोणपुष्पी, विषपापना, पटोलपत्र, वेदसुरक और गिलोय आदि ।

शीत उष्णताशक औषधियाँ—बच्छनाग, सुरमा और अर्कमूलक कनेरकी छाल, अतोष, सौंफ, चिरायता, कुटकी, नीसादर आदि प्रस्वेदवर्धक औषधियां, उष्णतासे स्नान, शीत सेक (मस्तिष्क पर शीतल जल या बर्फका सेक), नाभि पर कालीका पात्र रख उसमें अलभारा बालना, गीसा मत्र लपेटना आदि ।

बच्छनागविसे रक्तमार्गिनियां विकसित होती हैं, जिससे सहज उष्णताका हास हो जाता है। स्नान और प्रस्वेदवर्धक औषधियां त्वचामेंसे उष्णताको मलात्कारसे बाहर ला देते हैं। सोमल, हठ्वाल, किनाइन आदि औषधियां ज्वरेत्या एक विषयसे नष्ट करती हैं। एवं वेदसुरक आदि औषधियां मस्तिष्क गत उष्णता उत्पादक केन्द्रपर शमक असर पहुँचाकर ज्वरको दूर करती हैं ।

सन्ध उष्णताशक औषधियाँ—जोर्ण ज्वरमें घातवहा नाभियोंको सबल बनाकर शनैः शनैः उष्णताका हास करनेवाली औषधियाँ—अन्नक मरम, पिप्पली, कुचिला, परादमरम, प्रवाल, गिलोय आदि ।

ज्वरहर औषधियां यदि अत्यधिक मात्रामें न दी जाय तो उनका असर स्वस्वास्थ्यमें शारीरिक उष्णता पर बहुत कम होता है, किन्तु जब शारीरिक उष्णता बड़ा हो तब ये उष्णताको शमन करनेके लिये प्रबलक्रिया दर्शाती हैं। सामान्यतः स्वस्थ मनुष्योंका शारीरिक उष्णता लगभग ३८°C होता है तथा उष्णताकी उत्पत्ति और शून्य लगभग समान होता रहता है। जिससे सामान्यतया बनी रहती है;

किन्तु जब आम्रप्रकोप अथवा मल या कीटाणुजन्य विष संग्रह होता है, तब शारीरिक उत्थाप बढ़ जाता है। फिर जीवनीय शक्ति साम्यावस्था पुनः स्थापित करनेके लिये स्वचा और स्वसनमार्गसे उष्णताको बाहर निकालने लगती है। त्वचामें से संचालन (Conduction) और वायु विकिरण (Radiation) द्वारा तथा स्वेदका वाष्पीकरण (Evaporation) द्वारा उष्णताका त्याग किया जाता है। एवं निःश्वास द्वारा श्वसन मार्गसे भी उष्णता बाहर निकाली जाती है। इनके अतिरिक्त मल-मूत्र मार्गसे भी कुछ अंशमें उष्णता बाहर निकलती है।

सामान्यत उष्णताके दूरीकरणमें या ह्रास करनेमें दो क्रिया शामिल होती हैं। १ स्वचागत कैशिकाओंका आकुंचन, यह स्वेद साव कम कराता है, २ तन्तुओंकी दहनक्रियाकी वृद्धि, या उष्णताको अधिक उत्पत्ति करती है। इन दोनों प्रतिबन्धवाली स्थितिमें साम्यावस्था लानेका कार्य उष्णता नियमन केन्द्र (Heat regulating Center) करता है, जो छात्रु मस्तिष्कके मस्तिष्कमूल पिराइड्रय (Basal ganglia) के भीतर और पोपसक वृत्तिका (Tuber Cinerum) के समीपमें रहता है। उनके समीपमें कोई भी क्षति उत्पन्न होती है, तब उसके अनुगमनरूप शारीरिक उत्थाप बढ़ जाता है। जैसे रागिलपिण्ड (Corpus Striatum) को आघात होने पर उत्थाप वृद्धि होती है। फिर उत्थापका ह्रास होनेके साथ ही स्वेद आता है, तथा स्वचापर तेजी आती है। जो प्राणायामुका शोषण होता है और फासन आयो स्वाह (CO₂) बाहर निकाली जाती है तथा उनके परिमाणमें भी न्यूनता आ जाती है।

डाक्टरी मतमें जो औषधियां अस्वास्थ्यमें उत्थापका ह्रास कराती हैं, फिर स्वेद आनेसे स्वचागत कैशिकाओंका प्रसारण होता है। फिर उष्णताके त्याग द्वारा उत्थापका ह्रास होता है। इन स्वरहर औषधियोंमेंसे अधिकतमके भीतर येदनाहर गुण भी प्रतीत होता है।

शारीरिक उत्थाप शामक हेतु—

१ यकिल पिराइडमें अवस्थित उत्थाप उत्पादक केन्द्र (Thermogenic Centre) पर क्रिया करके उत्थापका ह्रास करनेवाली औषधियां। उदाहरणार्थ एमिडो-पाइरिन, एसिटिनलाइड, फेनासिटिन आदि ये सभी स्वरहर औषधियां हैं।

२ स्वचागत कैशिकाओंका प्रसारण कर तापका विकिरण करनेवाली औषधियां। जैसे अल्कोशाल, नाइट्राइट्स, सेलिसिलेट्स, वाष्प स्नान आदि।

३ स्वेदका परिमाण बढ़ाकर वाष्पीकरण कराकर शाम पहुँचाने वाली औषधियां। उदाहरणार्थ स्वेदल औषधियां।

४ उत्थापका बाहर आकर्षण करने वाली क्रिया। उदाहरणार्थ शीतल पट्टी, शीतल जलसे स्नान, गीलाकपडा सपेटना, गीले बजसे पोंछना आदि शीतल उपचार।

५. विशेष प्रकारक ज्वरोत्पादक विरसो नष्ट करके या, निर्वाप करके साम पहुँचाने वाली श्रीपथिया। उदाहरणार्थ विषमन्बरमें विवनाहन, कण्ठरोहिणीमें कण्ठरोहिणी-विषहर रकरस आदि।

तापको यदी हुई किरणोंको कम करने वाली श्रीपथिया वे हैं, जो शारीरिक उचापको फैलाती हैं। शारीरिक उचापकी वृद्धि दो कारणोंसे होती है। या ठा उचापकी उत्पादनकी वृद्धि या उचाप हासमें न्यूनता। जब यह परिवर्तन घटि पूर्तिकी शक्तिसे बढ़ जाय, तब अराधस्या उत्पन्न होती है। यह अराधस्या कम चिह्न है, किन्तु अचापचय बढ़ानेवाले पदार्थोंसे भी ऐसी अवस्था उत्पन्न हो सकती है। इसलिये प्रबैयक प्रथिकी क्रिया वृद्धि भी शारीरिक उचाप वृद्धिके साथ बहुधा सम्बन्धित होती है।

वर्तमानम कितने ही रोगोंमें चिकित्साके लिये भी उचाप वृद्धि करानी जाती है। जैसे धिरग धीर पूयमेहमें संक्रामक फोणगुओंको नष्ट करनेके लिये कुछ पदार्थोंके उचाप कमय रहे उस तरह उपचार किया जाता है। कुछ उन्मादग्रस्त मनुष्योंको पदबन्ध होनेपर विषमन्बर, उत्पन्न करया जाता है।

ज्वरकी उत्पत्ति अनेक कारणोंसे होती है। कारण भेदसे ज्वर रोगमें अनेक व्याधि हैं। इन सबके हेतु, लक्षण, विह, संप्राप्ति, चिकित्सा, पथ्यापथ्य आदिका विस्तृत विश्लेषण 'चिकित्सावत्समदीप' ग्रन्थमें स्पष्टके ज्वरप्रकरणमें किया है।

(९२) वृष सरसक।

वेष्टीमाहसिस—Dentifrice.

जो ग्रन्थ दांत, डाल और मसूढ़ोंके ऊपर जमे हुए मलको दूर करते हैं, कोयगुणोंको नष्ट करते, दांतोंको उष्ण बनाते तथा मसूढ़ोंको सुदृढ़ बनाते हैं, उनको दन्तसरसक संज्ञा दी है। इनमें तीन प्रकार हैं। १. दंतशुद्धिकर; २. कीरमणुनाशक, तथा ३. दन्तवेष्टोंको दूर बनानेवाली श्रीपथिया।

(१) दन्त शुद्धिकर श्रीपथिया—चाकमिष्टी, सेलसनी, वादामके तिष्ठिकेके कोयले या बबूलके कोयलेकी क्यबखान की हुई कासी राल, गेरू, पीलीमिष्टी, बबूल आदि द्रव्योंकी दत्तौन आदि।

२) कीटाणुनाशक—पचनविकारनिवारक Antiseptics—सोहाया, कपूर, कसीस, फार्मोसिक एसिड, पीपरमेण्ट वेल, नीलगिरी वेल, दाखचीनी, खौय, शीतलनिर्च, अकरकय, पीपल, नीलायोया, हींग, वेजमसूढ़ी दत्तौन, सरसक वेल आदि। इन सबमें दन्तशूलघ्न (Antodontalgics) अर्थात् दन्तशूलोत्पादक कीटाणुओंका नाश करनेका गुण पूनाधिक अंशमें अवस्थित है।

(१) मसूहोंको सवल बनानेवाली औषधियाँ—सुपारी, लोब, कन्या, हरण, लालबोला, मानफला, मोलसरकी छाल, फिटकरीका फूला और बट्प्ररोहकी दतौन आदि । इनमें फिटकरीका उपयोग अति सूक्ष्म परिमाणमें करना चाहिये ।

यदि दांतोंपर घातक अम्लता (मल) की तरह आई हो, तो उसे अधिक हानिकर मान, उस पर तैल, धी या मक्खनसे कुछ मर्न कर फिर सबीखार (सोडा याई अम) मिश्रित जल या साबुनके जलसे दांतोंको साफ कर लेना या फुस्ले करना चाहिये ।

यदि तीव्र रूष (Tooth-ache or Odontalgia) चढता हो, तो अफीमका अर्क, कपूरका अफ, लौंगका तैल, हींग, नीसादर आदि औषधियां दांतोंके नीचे रखी जाती हैं । एव नमक आदि मिले हुए नियामे जलके या तैलके फुस्ले किये जाते हैं ।

मोअनके परिपाक होनेमें चर्षण क्रिया करनेकी पूर्वोक्तमें आत्मशयकता है । यद्यपि यैश्यावस्यामें अर्चवित आहारका परिपाक आमाराय और अन्त्रमें होता है, तथापि यपोहृदिके साथ इस अम्लताका हास हो जाता है । फिर चर्षण क्रिया यपोचित न होनेपर अर्षीय आदि रोगीकी उत्पत्ति होती है । जिससे दांत भी मलिन होने लगते हैं ।

मुख और दांतोंके पार्श्व भागमें मुक्त द्रव्यका अणु संयहीत होता है । फिर इस संचित अणुमें विक्रिया होकर यह अम्ल बन जाता है । पश्चात् उसमेंसे घनसति बैटिके बीजणुओं (Bacteria) की उत्पत्ति हो जाती है । यही दंतद्रव्य प्रदान कारक है । इस हेतुको दूर करनेके लिये प्रतिदिन दंतमर्जन, दतौन या सूक्ष्म पीसे हुए सैबानमक मिश्रित सरसोंके तैलसे दंतमार्जन करना चाहिये । दंतमार्जन करते रहनेसे संचित धोशकी निवृत्ति होती रहती है, और दंतद्रव्य नहीं होता ।

दास साफ रखनेके लिये प्रतिदिन दो बार दतौन करनेके लिये शास्त्रमें लिखा है और यह दतौन इस तरह सम्गलपूर्वक करना चाहिये, कि मसूहोंको आघात न पहुँचे । एक समय दतौन प्रातःकाल शौचसे निवृत्त होनेपर और स्नान करनेके पहिले तथा दूसरी बार सायंकालको मोअनके पश्चात् करना चाहिये । दतौन करनेके लिये नष, असन (विजयसार), आरु, सैर, करछ, करि, सय, दुर्गन्धवाला सैर, अपा मार्न, मालती, तेजवल, कद्रव्य, गूलर आम, अजुन, बबूल आदि बूचोंकी शाला प्रदय करनेको लिखा है ।

दतौनके लिये कसेले, कहुवे, चरपरे और मधुर रस वाले बूचोंकी शाला या मूल (अपामार्ग आदिकी मूल) का उपयोग किया जाता है ।

दतौनके लिये कहुवे बूचोंमें नीम कसेले रस पालोंमें सैर, मधुर बूचोंमें महुवा और चरपरे बूचोंमें करछको भेद्य माना है । दतौनकी लग्नाई सामान्य रूपसे २२ अंगुल रखी जाती है ।

दंतों को मुसकी पुराण, दांतों पर लगा हुआ मल, और कफ, जे सफ दूर होते हैं ; दांत उज्वल होते हैं , तथा अघ पर रुचि और मानसिक प्रसन्नता होती है । परन्तु फल, तालु, छोठ और जिह्वाके रोग, मुखवाक, श्वास, फास, हिका आदि व्याधियाँ और बमन होनेपर दंतोंका उपयोग नहीं करना चाहिये । इसी तरह दुर्बल, अजीर्णमें भोजन करने पर, मूच्छापीकित, मदपीकित, शिरदर्द मुक, वृषाशुक, यका हुआ, शयनसे सुत बना हुआ, अर्द्धित घातके रोगी, कर्णाग्रल मुक और दांतोंके रोगवाल, इन सबको दंतोंन करना निषेध है । इन्हें केवल दंतमंजन आदि द्वारा दांतोंको साफ कर लेना चाहिये ।

(९३) शिथिलकारक ।

मोर्द्धक्य—एमोलिएण्ट्स Emollients त्वचा आदिको शिथिल और सुखामय बनाने वाली औषधियाँ—विभिन्न औषधि छायाकी वायु (Inhalations) उष्ण सेक पुस्त्रिय, घृत, चर्बी, तैल, मीम, वेस्कीन शहद, ऊनका तैल (Lanolin), श्वेतसार, मिट्टी, सेलसुडी, ग्लिसरीन, कोकम, अमचूरका तैल, मलहम, छलून आदि । इन औषधियोंका उपयोग किसी स्थानका आर्द्र, उष्ण, शिथिल और आहत रखनेके लिये होता है । इन औषधियोंसे प्रशहयुक्त स्थानकी पीडा और खिंचाव (Ten sion) का उपशमन होता है । ये सब औषधियाँ संकोचशील घटकोंको शिथिल करती हैं । एवं रक्तप्रवाहियोंको प्रचारित कर स्थानिक घातवाहिनियोंका खिंचाव और संघापको दूर करती हैं । इस वर्गकी औषधियाँ वायुके आघातसे संरक्षण करती हैं । इस हेतुसे इनको संरक्षक (Protectives) भी कहते हैं ।

शिथिलकारक औषधियाँ शिथिलता लानेके साथ स्वचा आदिको कोमल बनाती हैं , एष स्निग्धकारक औषधियाँ स्निग्धता लानेके साथ बहुधा अकलको शिथिल बनाती हैं । इस तरह इन दोनों भेदियोंकी औषधियोंमें विशेष प्रमेद नहीं होता । तथापि विशेष सूत्रम विशार किया जाय, तो कहना होगा, कि शाल स्वचा पर कार्य करने वाली औषधियोंको शिथिलकारक और श्लैष्मिक कला पर कार्य करने वाली औषधियोंका स्निग्धकारक कहा जाता है ।

श्वासकर्त्रकी विविध वेदना—फास, श्वास, प्रतिश्याय, इन्क्युपण्डा, दय, आदिके निवारणार्थं कुष्कण्डमिं श्वास द्वारा विविध औषधियोंकी वायु (Vapours) पहुँचाई जाती है । इसके कितने ही प्रयोग 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्ड के पृष्ठ १४ में दिये हैं ।

घृत-तैल मिश्रित शिथिलकारक औषधियोंसे त्वचा शिथिल और कोमल होती है । आक्मकता पर इनसे मर्दन भी करया जाता है । इनका गुण शाल स्वचाके नीचे रखनेवाले विधान पर भी हो जाता है । शीत लग जाना, श्रेय अरु, पीर्य अरु

आदि रोग या सप्यतासे श्लेष्म, त्वचा, हाय-पैर आदि फटने पर इन औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

स्थानिक शिथिलकारक औषधियोंमें पुष्टिस और गरम जलके सेकको उत्तम माना है। प्रदाहजनित वेदनाके निवारणार्थं पुष्टिसका सपयोग किया जाता है। पुष्टिस और गरम जलके सेकमें अनेक प्रकार हैं। मनानेकी विधि, उपयोग विधि और फल सम्बन्धी विचार 'चिकित्सासूत्रप्रदीप' प्रथम खण्ड पृष्ठ ५० से ५६ तक में किया गया है।

(९४) स्निग्धकारक ।

स्नेहन—किमससेप्स—Demulcents.

स्नेहन स्नेहविष्यन्द्मार्दवक्लेदकारकम् ।

द्रव्यं सूक्ष्मं सर स्निग्ध पिच्छिलं गुठ शीतलम् ॥

प्रायो मन्द मृदु च यद् द्रव्यं तत् स्नेहनं स्मृतम् ॥

जो द्रव्य देहमें स्नेह (चर्बी) का विलयन करावे, मृदुवा लावे और क्लेद उत्पन्न करावे उसे स्नेहन कहते हैं। जो द्रव्य द्रव, सूक्ष्म, सर, स्निग्ध, पिच्छिल, गुठ, शीतल, मन्द और मृदुगुण युक्त हो वह प्रायः स्नेहन होता है।

स्नेहन औषधियाँ—शिल मूँगफली, सरसों, कानू, अलरोट, धादाम, नारियल, विनीला, अलसी, जेठन और कोकम अमचूर आदिके तैल, मन्सन, घृत दूध, दही, अण्डेका श्वेत अण्ड, शहद, सीक, श्वेतछार आदि। इनके अतिरिक्त मुसहठी आदि क्विन्तीही स्नेहोपग औषधियोंको भी आन्तर्यमें स्निग्धकारक संज्ञा दी है।

स्नेहोपग—स्नेहन औषधियोंको सहायता पहुँचानेवाली औषधियाँ—मुनझा, मुसहठी, गिलोय, मेदा, विदारीकन्द, काकोली, छीरकाकोली, जीवक बीवन्ती और गालपशी, ये १० औषधियाँ अरक संहिता में कही हैं।

अन्य स्नेहोपग औषधियाँ—वनतुलसीके बीज, सफेदमुसली, इरुनगोस, विहदाना, गुलार, सेसवा, गु जामूल मिण्डीके बीज, तालमखाना, बड़े गोसलरू, गोद, मिथो, साबुदाना आलरोट, गेहूँ, जो और अन्नका मासक आदि।

स्निग्ध औषधियोंका प्रयोग श्लैष्मिक कला या त्वचा पर करने पर यहाँ कोमल आवरण (पर्दा) की तरह बन जाती है। जिससे आवरणके नीचे संस्कार प्रक्रिया निर्दिष्ट रूपसे सिद्ध होती जाती है। उम्रवाञ्छक अथवा रोगमें त्वचा निकल पाने या फट जानेपर इन औषधियोंका प्रयोग हितकारक माना गया है। उम्रविय या हवर पदार्थोंके सेवनसे श्लैष्मिक कलामें उम्रता उत्पन्न हुई हो, तो इन औषधियोंका आन्तरिक प्रयोग किया जाता है।

जय प्रथमिका या श्वासनलिकाके ऊर्ध्वां शमें रक्षत्प्रह होकर काव उपस्थित होती है, तब कण्ठनलिकाकी वेदना और उग्रताका नियारण करने तथा कासकी वीक्षणवाका दमन करनेके लिये मुलाहठा आदि उपलेपक अर्थात् स्निग्ध और लसदार (Mucilaginous) गुणवाली स्नेहोपग श्रीपथियां उपयोगमें ली जाती हैं।

अथचिद् तीक्ष्ण दाहक वस्तु खानेमें आ जाती है तब आमाराय या अत्रमें चत न होनेके लिये अण्डे, बादामका तैल, जैतूनका तैल, दूध, दही, मखन या घृत-मान आदि स्निग्ध वस्तुका सत्वर प्रयोग किया जाता है।

(९५) लाला निःसारक

लाला प्रेसकजनन—सालोत्तेजक—सायलोगोस-सायलोगोसिस ।

Sialogogues-Sialogogics.

जो द्रव्य लाला (मूक) खानको बढ़ाता है, उसे लालानिःसारक कहते हैं। यह लालासाव लालासाधोत्पादक प्रन्थियोंसे होता है। इन प्रन्थियों पर स्वतन्त्र और परिस्वतन्त्र नाबियोंका अधिकार है। इतमें जब स्वतन्त्र नाबियां उच्चैःश्रित होती हैं, तब रक्ष्यादिनियां अफुंचित होती हैं, जिससे थोड़ा और पिच्छल लालासाव होता है तथा परिस्वतन्त्र नाबियां जब उच्चैःश्रित होती हैं तब रक्ष्यादिनियां प्रसारित होती हैं और प्रचुर लालासाव होता है। इन नाबियोंकी उच्चैःश्रित और लालानिःसारक श्रीपथियोंमें २ विभाग हैं। स्थानिक और विशेष ।

जो श्रीपथियां मुँहमें रखनेपर वातयहा नाबियोंके अन्तको या लाला प्रन्थियोंको उच्चैःश्रित करके उनकी क्रियामें वृद्धि करती हैं उनको स्थानिक, जो श्रीपथियां शोषण होने पर वातयहा नाबियों द्वारा लाला प्रन्थियों पर कार्य करती हैं, उनको विशेष कहा गया है।

स्थानिक लाला निःसारक श्रीपथियां—अम्ल रसयुक्त पदार्थ, अम्लघार, सरसों, छोट पीपल, काली मिर्च, लाल मिर्च, शीतल मार्च, छोटी इलायची, सुपारी, नागरबेलका पान, लौंग, दालचीनी, अकरकप, तेजपल आदि ।

विशेष लाला निःसारक श्रीपथियां—पारदप्रतिष्ठ श्रीपथियां, रसकपूर, तमाखू, नमकका तेजाप, बबुआर और घमनकारक पदार्थ आदि। इन सब श्रीपथियोंका आमाराय शोषण होनेपर मुँहमें अथिफ लालासाव और रक्षिष्मिक साव होता है। परन्तु ये श्रीपथियां लाला सावके हेतुसे उपयोगमें नहीं ली जातीं ।

अम्ल पदार्थ, अम्ल मिश्रित लक्षण छोट, सरसों आदि मुँहमें रही हुई मिहामूलिका रक्षप्रन्थियांकी वात नाबियों (Gustator or Lingual Nerves) और रसना-प्रसूनिकासे सम्बन्ध वाली वात नाबियों (Glossopharyngeal Nerves) को उच्चैःश्रित करके विशेष लालसाव करती हैं। ये नाबियां परिस्वतन्त्र नाबी मसलकी हैं।

डाक्टर घोपने मेटेरिया मेडिकामें विशेष स्पष्टाकरणाय निम्नानुसार ४ विभाग किये हैं।

(१) केन्द्राभिमुखी घात नादियोंके शिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस प्रकारमें अम्ल (Acids), अम्ल लवण (Acid-salts) तीक्ष्ण (Pungents) उद्बन्धनशील सुगन्धमुक्त तैल, कड़ुषी औषधियां, शरप्रा, ईसर, फ्लोरोफार्म आदि। ये सब मुलमेंसे प्रतिफलित क्रिया करती हैं। यत्र, इषिकाक्सुहाना आदि उबाक छाने वाली औषधियां आमाशयके भीतर प्राखदानाशियोंके सवेदन वन्तुके ठिरेकी उत्तेजना द्वारा क्रिया दर्शाती हैं।

(२) परिस्वसन्न नादियोंके सिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस प्रकारकी औषधियां कतिपय समय विशेष साक्षानिःसारक द्रव्य कहलाते हैं। उदाहरणार्थ पाइलो-कार्पीन, एसिटीलकोपीन आदि।

(३) रेषसंचालित वातगोचरकी उत्तेजना द्वारा निकोटिन (तमाखु तिल) हमलोकके पान आदि। ये पहिले उत्तेजना पहुँचाते हैं फिर अवसादकता ला देते हैं।

(४) स्वतन्त्र नादियोंके सिरेकी उत्तेजना द्वारा—इस तरह कार्य करने वालोंमें एड्रेनलीन, एफेड्रीन (सोमसत्व) आदि द्रव्य हैं।

इनके अतिरिक्त पारद, पोटस आयोडाइड आदि औषधियां थूकके प्रवाहको बढ़ा, उनके साथ मलरससे बाहर निकलती हैं, किन्तु यह क्रिया एट्रोपीन द्वारा नियंत्रित होती है।

इनके अतिरिक्त कतिपय पदार्थोंके सुगन्ध, दशन या भ्रम्य मात्रसे मानसिक आवेग उत्पन्न होता है। फिर वातवाहिनियों पर प्रतिफलित क्रिया होकर साक्षात् निःसारण में वृद्धि होती है।

मुँहमें साखा निफलती रहनेसे मुँहमें आर्द्रता रहती है और हानिकर द्रव्य को विपक रहा हो, वह अस्वस्थ हो जाता है। एवं चर्षय क्रियाके हेतुसे भोजनमें साखा मिश्रित होनेसे वह द्रवीभूत और कोमल होकर निगलनेमें सा क्लृप्त बन जाता है। साखा सावसे गोलनेमें बिड्ढाको विशेष सरलता होती है। एवं तलु, जिह्वा आदि आर्द्र रहनेसे तृपाकी उत्पत्ति भी नहीं होती।

दंशराल, कर्णराल, कर्णप्रदाह नासा दाह, मस्तिष्कप्रदाह, रक्तवेगवृद्धि और हृत्तर वेदना आदि बिड्ढाओंमें साक्षानिःसारक औषधियां प्रत्युत्पत्ता सामक होकर लाभ पहुँचाती हैं। इनके अतिरिक्त भोजनमें साखा मिल जानेसे भोजनमें रहे हुए श्वेत सारका पचन उत्पन्न होता है। कारण, साक्षानिःसारक वृद्धि होने पर आमाशय रसकी भी वृद्धि होती है।

(९६) लाला निःसरणरोधक ।

लाला प्रसेकापनन—एण्टिसायलोगोन्स—एण्टिसायलिसिस ।

Antisialagogues—Antisialics.

जो द्रव्य लाला सावका हास करता है, उसे लालानिःसरणरोधक करते हैं ।

औषधियाँ—सोहागा, अफीम, सूचीबूटी, चट्टा, हरण, कन्या केरके पत्ते,

जामुनके पत्ते आदि ।

लालासावका हास दो प्रकारसे होता है—१ मुलके भीतर शोमके शमन द्वारा ;

२ परित्वत्तय नाभियोंके सिरेके अवसाद या पक्षव च द्वारा ।

शोभयामक औषधियोंमें सोहागा, कन्यावरस प्रधान औषधियों (यमूल छाल, हरण, माण्डूफल, लोघ आदि) के कायसे गण्डूष आदि । परित्वत्तय नाभियोंके सिरे पर अरसर पहुँचानेवाली औषधि—सूचीबूटी, सूचीबूटीसत्य (एट्रोपीन्), सुरासानी अजवायन, चट्टा आदि । इनके अतिरिक्त अफीम, मोरफिया आदि भी बृक्का साव कम कराते हैं ; किन्तु वे संवेदना नाभियोंके केन्द्रकी उत्तेजन क्षमताका हास द्वारा कार्य करते हैं ।

मांग, गांगा, चट्टा या सूचीबूटीके विपक्वोप, अर, शुकप्रदाह मधुमेह आदि अनेक व्याधियोंमें लालासाव कम हो जाता है या मुँह सूख जाता है । एवं बार-बार अत्यधिक प्यासका मास होता रहता है ।

(९७) भ्रमहर

यकाभट्टो हरनेवाली औषधियाँ—अगूर, सियङ्गबदर, चिरौंजी, बेर, अनाद, पत्तु (गूलर या अंजीर), फालसे रैल, जी, सौंठी चावल ये १० औषधियाँ अरक संहितामें भ्रमहर लिखी हैं ।

इनके अतिरिक्त सन्तरा, मोसम्बी, सेव आदि फलोंके रस, शीतल वायु, शीतल अल्पान बाराण्ड मोदुग्ध, निवाये जलसे पैर पोना, तैलकी मास्त्रिय कर रान करना, मियकनोंका मिलाप या मधुर गीत भवश आदिसे मानसिक प्रसन्नता द्वारा तथा चन्द्रको चौदनीमें या शीतल स्थानमें विभान्ति इत्यादिसे धकानको दूर करनेमें सहायता मिल जाती है ।

इनके अतिरिक्त शरान, ताकी, अफीम, मांग, गांजा आदि मादक और मोहजन पदार्थोंके सेवनसे भी निद्रा, उन्मा या मद् उत्पन्न होकर परिभ्रमकी निवृत्ति होती है । इनका विवेचन पहिले नं० ७१, ७७ और ७८ में किया है ।

(९८) शीतप्रशमन ।

श्लेष्म, अर्शात्, शीतको दूर करनेवाली औषधियाँ—सगर, अगूर, बनिस, सौंठ, अजवायन, बच, छोटी कटेली, अरणी, अरलू, पीपल, ये १० औषधियाँ

चरक संहितामें लिखी हैं। ये सब शीतको दूर कर उष्णता लाती हैं। सामान्यतः श्वेत और कट्टरसर्पभान वीक्षण और उष्ण गुणयुक्त होती है, ये सब कफघ्नास तथा पित्तघातकी वृद्धि कराकर शीतका शमन करती हैं।

इनके अतिरिक्त पहिले नं० ७५ में जो उच्छेदक औषधियोंका विवेचन किया है। वे सब उष्ण होनेसे शीतको दूर करनेके लिये प्रयोजित होती हैं।

(९९) चक्षुष्य ।

मनुष्योंको सांसारिक सुखकी सिद्धिके अर्थ ५ शनेन्द्रिय (भ्रूण, त्वक्, चक्षु, श्रिणा, घ्राण) और ५ कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु और उपत्य) मिली हैं। इन सबमें नेत्रेन्द्रिय प्रधान है। बिना नेत्र जीवन दुःखमय बन जाता है। अतः नेत्रके सरक्षण और जीवन सुखकी प्राप्तिके निमित्त चक्षुष्य गुणके बोधकी आवश्यकता है।

परन्तु पाठकोंको इस चक्षुष्य गुण विवेचनका लाभ सभी मिल सकता है, अब चक्षुरचना, चक्षुस्य विविध अथयवोंकी क्रिया और इनकी विवृति आदिका परिचय हो। अतः इनका वर्णन आनरयक मान कर और ग्रन्थके फलेवरको लक्ष्यमें रख कर संक्षेपमें विवेचन किया जाता है। विशेष जानना हो तो नेत्ररोग विज्ञान ग्रन्थ देखें।

चक्षुष्य अर्थात् नेत्रहितकारी औषधियाँ—सुवर्ण मरुम, रौप्य मरुम, ताम्र मरुम, लोह मरुम, असद मरुम, नाग मरुम, सुवर्णमादिक मरुम, कांस्य मरुम मीकिक, प्रवाल, शुक्ति, शराटिका, शल, कपूर, नीलायोषा, सिन्दूर, सुरमा, फिट्करी, सोण, नौसादर, मैनासल, कासीस, गिलोय सत्व, दाहहल्दी, रसांजन, हरद, आंवला, पीपल, शोष, विष्कपत्र, परब पत्र, छोटी कटेली, सत्वानारी, मुलइठी, अर्धम, गोंद, धतूरा, सूतीवृटी सैधा नमक, समुद्रफेन, निर्मली, पुनर्नवाकी मूल, छोटी इलायची, भावित्री-बादाम, सफेद मिर्च, अगस्तके पुष्प, जीवक, शृपमक, चाण्डाल दुग्धिका (उदरस्थ), पद्माशमूल अथवा पुष्पका अक, शतिस मिर्च, बभूलकी छाल, खससाकी छाल, कमल, कमलमधु, करज, नीमकी अन्तर छाल, वनकुशत्य (चासक) ओषन्ती, उरुसी, खीबुन्ध, वासाके पत्ते, चमेलीके पत्ते शहद, मूग, रक्तशालि धनिया, गोधूत, अजाधूत, खीर घृत (दूधमेंसे निकला दुग्धा बी), सर्पिमण्ड (घृतके ऊपरका परल अथ), मिमी, खांड, गुलाबजल और धारोष्ण घृष आदि।

इनमेंसे कतिपय औषधियाँ खानेमें, कितनीही बाहर लगानेमें और कितनीही खाने और लगाने, दोनों प्रकारसे उपयोगमें आती हैं।

सुवर्ण, रौप्य, लोह, असद, सुवर्णमादिक मरुम, मीकिक, प्रवाल कांस्य मरुम, शुक्ति मरुम, गिलोयसत्व और शिपला आदिका सेवन आम्बुतरिक उष्णता शमनाय किया जाता है।

इनमेंसे कञ्ज होने पर शिफला विशेष हितकर है। शिफलात्मक हिम नेत्र प. क्षिप्त करने और शिरके घीनेमें भी उपयोगी है।

सुवर्ण विषको नष्ट करता है रीप्य घातधादिनिषोंके शूलको शमन करता है; तथा लोह रक्तदोषका निवारण करता है।

सुवर्णमाक्षिक, मौक्तिक, प्रवाल, गिहोयसत्व, पित्तशामक होनेसे नेत्रको ठण्डा शमन करते हैं।

अफीम, वनकुल्लपी, रसोत, खलसा आदि रक्तवेग होने पर रक्तप्रसादनमें शिफकारक हैं।

नौसादर, सोप, मैन्सिल, सिन्दूर, निर्मली, पीपल, सफेद मिर्च आदि पूष्ठा, कुक्कुट, पायकी, मांसवृद्धि आदिको हटानेमें उपयोगी हैं।

बिल्वपत्रका स्वरस, परशुपत्रका स्वरस, तुलसीका स्वरस, चमेलीपत्रका स्वरस, पयलपत्रका स्वरस, कमलका रस, गुलाबजल आदि स्थानिक ठण्डा शमन करते हैं, और रक्तसंग्रहको दूर करते हैं।

पुनर्नवा—सफेद पुनर्नवाको एक विविध दोषोंके शमनार्थ प्रयोजित होती है। श्रीधूममें पिस कर अंजन करने पर कण्डू शब्दमें पिसकर लगानेसे नेत्रसाध, गोघृतमें लगाने पर पूष्ठा, शैलनं पिसकर लगानेसे शिमिर और कंजीमें पिस कर अंजन करनेसे नचान्बवा (रसोपी) दूर होती है। इस तरह यह औषधि नेत्रके अनेक विकारोंपर आश्चर्यजनक लाभ पहुँचाती है।

प्राचीन आचार्योंने पुनर्नवाका उपयोग अनेक व्याधियोंपर किया है। पुनर्नवामें दो आसि हैं—सफेद और लाल। विशेष विभाग क्रिये पार्य, तो इनको ३ अथवा ५ इनसे भी अधिक आसि हैं। इनमेंसे सफेद पुनर्नवा (साठी) में ठण्ड, तिक्त, रूक्ष, कफन (विपनाशक) गुण हैं। कस, इद्रोग, शूल, उरःशूल, रक्तविचार पायडू, शोथ और घातविचारको दूर करती है। रक्त पुनर्नवात्त्रे तिक्त, छारक, शोफनाशक, पित्तशामक, रक्तप्रदरहर और पाण्डुनाशक कहा है।

प्राचीन ग्रन्थकारोंने पुनर्नवाका प्रयोग खर, शोथ, मशामब, विपदोष, प्लीहोदर, निद्रानाश आमबाध, मातम्याधि, योनिशूल, मूकगर्भ, गुल्मशूल, शुक्रबिचार, कुष्ठ, अशमरी, मूचिकविष, विद्रधि आदि अनेक रोगोंपर किया है। इनके अतिरिक्त आचार्योंने स्वेदन, अनुवासन और बन्ध-स्थापन कर्मों में इसका उल्लेख किया है।

नम्य चिकित्सकोंके मतमें पुनर्नवा, पाचक, मूत्रविरिचक, मूत्रल, कफन और वामक है। बजोर, शोथ, कामला, आम्यन्तरिक प्रदाह, प्लीहाशुद्धि, यक्ष्मशुद्धि, चक्षुप्रदाह, वृद्धिकर्दश, मूत्रकण्डू, प्रमेह और श्वासरोगमें लाभदायक है। इसका मूत्रल गुण विशेष रूपसे प्रकाशित होता है। किष्कूके विष पर इसकी मूत्र बाहर आनेमें और धूम्रपान रूपसे प्रयोजित होती है। इस तरह चिरकरी पूषमव नेत्रपाक

(Ophthalmia) पर इसकी मूलका श्वाय शहद मिलाकर बिन्दु रूपसे प्रयोक्त होता है। पुनर्नवा अधिक मात्रामें सेवन करने पर घमन करता है।

सूचना—अनेक धार पित्तप्रकोप, फाउयदता, धूम्रपान, शराय आदिके सेवनसे नेत्रको हानि पहुँचती है। ऐसे समयपर मूल कारखको दूर करनेके साथ चिकित्सा करनी चाहिये।

नेत्ररोगन और ज्योतिकी वृद्धिके लिये सेक, आइज्योतन, पिण्डी, मिशाल, सपख, पुटपाक और अजून आदि अनेक प्रकारके उपचार किये जाते हैं। इन सबका विवेचन "चिकित्सातत्वप्रदीप" प्रथम खण्ड पृष्ठ १०२ से १०९ तक नेत्ररोगन क्रिया के अन्तर्गत किया गया है।

आन्तरमें नेत्ररोग सम्बन्धी भिन्न भिन्न विकारोंपर निम्नानुसार औषध बोधना की है—

(१) श्लैष्मिक कक्षा पर कार्यकारी—नेत्रको श्लैष्मिक या आद्रकक्षा (Conjunctiva) पर लामदायक औषधियां। इसके विकारमें प्रायः संकोचक (ग्राही) और श्वसादक औषधियां ब्यवहृत होती हैं। इन औषधियोंमें सूचीबूटी और रोष्यपट्टि लवण (Nitrate of Silver) विशेष महत्वकी औषधि हैं। आयुर्वेदिक औषधियोंमें अफीम, रसाइन, पुनर्नवा, कासीस, चाकस आदि निर्दोष और उचन हैं।

सूचना—सीसा और फिट्करीके द्रवका संकोचक गुणके लिये व्यवहार नहीं करना चाहिये। कारण, सीसा घातुवटित लवण अद्रवशीय एल्ब्युमिन मिश्रण (Albuminate) रूपसे परिवर्तित हो जाता है जिससे वह स्थान दोषकाल तक अस्वच्छ रह जाता है। एवं फिट्करी द्वारा शुक्रमयबलका विदारण (Perforation) होनेकी संभावना है।

इस तरह कोकीन (Cocain) कनीनिका (Pupil) के चैतन्यका लोप करती है अतः यह भी श्लैष्मिक कक्षाके विकारमें प्रयोक्त नहीं होती।

(२) अश्रु निःसरण पर कार्यकारी—सोरा, लालमिच, पीपल, काली-मिर्च, सरसों, प्याजका रस, नीबूका रस आदि डालने पर नेत्रमें उमटा उत्पन्न होकर अश्रुसाव होने लगता है।

सूचीबूटी सत्व (Atropine) डालने पर अश्रुसावका हास होता है। एसेरिन (' २५५) डालने पर एट्रोपिनकी क्रिया नष्ट होती है और सत्वर अश्रुपात होने लगता है।

(३) कनीनिका पर कार्यकारी—इसके प्रसारण और संकोचन वारामण्डस (' ११५) की क्रिया पर अवलम्बित है। अतः वारामण्डल पर असर पहुँचाने वाली औषधियां परम्परागत कनीनिका पर लाम पहुँचायी हैं। इन औषधियोंमें दो

प्रकार है—कनीनिका प्रसारक (Mydriatics) और कनीनिका सकोचक (Miotics)।

कनीनिका प्रसारक औषध—सूचीपूये (Belladonna) सूचीबूयी सत्व, सुरासानी अजययन, यवरा (Stramonium), जेलसिमियमकी चार (Gelseminae) आदि।

कनीनिका सकोचक औषध—अफीम, अफीम सत्व, कालाबारचीन (Calabar Bean) के पक्के बीजका सत्व और जेलसिमियमका चार आदि। जेलसिमियम चारका आभ्यन्तरिक प्रयोग करने पर भी कनीनिका संकोचित होती है।

कनीनिका प्रसारक और सकोचक, दोनों प्रकारकी औषधियोग्य प्रयोग नेत्रकी श्लैष्मिक कक्षाकी उम्रवाके दमन और वेदनाके निवारणके लिये होता है। अक्सादन क्रियाके निमित्त प्रयोग करना हो, सब बेलाडोनाका उपयोग किया जाता है।

नेत्रपरीक्षाके निमित्त कनीनिका प्रसारक औषधका उपयोग किया जाता है। इनके अतिरिक्त तारामण्डल निर्गमन (Prolapse) होने पर उसके निवारणार्थ कनीनिका प्रसारक औषधि प्रयोजित होती है। एवं यह तारामण्डलके प्रदाह (Iritis) में भी हितकारक है।

कनीनिका सकोचक औषधियां आलोकशय (Photophobia) अर्थात् प्रकाश सहन न होना, इस विकार पर सामदायक हैं। एवं कनीनिका प्रसारक औषधिका क्रियाके विरुद्ध अंतर पहुँचानेके लिये भी व्यवहृत होती है। कण्टरोरिशीय जन्य दृष्टि केन्द्रोपस्थ (Accommodation) होने पर कन्वुमय पेशी (Ciliary muscle) की क्रियाकी सीखवा एवं अक्षमता होनेपर और दिपान्वता (Hemeralopia) में भी इसका उपयोग होता है।

तारामण्डलका कार्य भाग-चिपका हुआ है या नहीं, इसके निश्चयके लिये और संलग्नता (Adhesion) हो, तो उसे दूर करनेके लिये कनीनिका सकोचक और कनीनिका प्रसारक औषधि क्रमशः व्यवहृत होती है।

तारामण्डल आक्षेपग्रस्त होने पर, उसको आक्षेप मुक्त या शिथिल करनेके लिये कनीनिका प्रसारक औषधि प्रयोजित होती है।

नेत्र पटलामें तरलाविक्रमसे दवाबद्धि अर्थात् अयिमंघ (Glaucoma) रोगमें कनीनिका सकोचक औषधि उपकार दर्शाती है।

दर्शनेन्द्रिय पर फार्यकारी औषध—मिसाभा, कुचिला और कुचिला सत्वके सेवनसे दर्शनक्षेत्र (Field of Vision) के आस्तनमें हृदि होती है, जिससे दूरकी वस्तु स्पष्ट दिखलाई देती है।

किरमायी अजययन सत्व (Santonin) के सेवनसे पहिले सब वस्तु रंगकी प्रतीत होती है फिर हरी-नीली प्रतीत होती है।

कालाचारबीनके बीजका उपचार (Physostigmine) का प्रयोग करने पर नेत्रकी लाल और हरे पदार्थको देखनेकी शक्ति कम हो जाती है।

शराबके अधिक सेवनसे नेत्रमें लाली आ जाती है। एवं तमाखू और गांजा आदिके धूम्रपानसे नेत्रशक्ति कमजोर हो जाती है परन्तु कभी-कभी गांजाके सेवनसे दृष्टिके सामने विविध सुन्दर दृश्य भासमान होते हैं और मदात्म्य रोगसे रोगीको दृष्टिये समस्त पिशाच आदि मीपख मूर्ति खड़ी होनेका भ्रम होता है।

अधिक गुड़, अधिक मिर्च और कम्ज करनेवाले पदार्थोंके अधिक सेवनसे नेत्रमें दाह होने लगता है। एवं नेत्रमें लाली आ जाती है।

नेत्र रचना—मनुष्योंको ईश्वरने दो नेत्र दिये हैं। दोनों नेत्र नेत्रगुहामें अवस्थित हैं। ये नेत्रगुहा भ्रूवीके नीचे नासिकाके दोनों ओर एक-एक गूहा रूपसे प्रतीत होती हैं। इनको अक्षिस्ताव (Orbital fossae) भी कहते हैं। इन गूहामें नेत्रगोलक (Eyeballs) रहते हैं। इनकी रक्षा सम्यक् प्रकारसे हो, इसलिये निसर्गने पूरा प्रवच किया है। अगले भागकी रक्षाके लिये दोनों नेत्रोंके ऊपर एक और नीचे एक मिलकर दो नेत्रच्छद अर्थात् पलक (Eyelids) बनाये हैं। इन पलकोंके किनारे पर पाल लगे हैं इनको अक्षिपद्म (Eyelashes) संज्ञा दी है। इन पालोंमें धूल, मिट्टी आदिके सूक्ष्म परमाणु और वायुमें घूमने वाले सूक्ष्म कीटाणु बहुधा फँसकर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह दोनों नेत्रगुहाओंके ऊपर जो एक-एक भ्रू-भ्रू (Eyebrow) बनाई गई है, ये प्रत्येदको कपालमेंसे नेत्रमें आनेसे रोकती है। इन नेत्रोंकी रचना अति आश्चर्यजनक है। इस छोटेसे मात्रके भीतर अनेक पुरजे रहते हैं।

अक्षिगोलक (Eyeballs or The bulbs of the Eyes)—ये नेत्रगोलक बहुधा कपेटके अगड़े या गेंद सदृश गोल होते हैं। इनकी आकृति समझानेके लिये छोटे-बड़े दो गेंद (Spheres) अर्थात् दिया जाता है। इनमेंसे छोटे गेंदका २ हिस्सा और बड़ी गेंदका २ हिस्सा काट लेंगे। फिर बड़ी गेंदके २ हिस्से (segment) पर छोटी गेंदके २ हिस्सेको रखनेसे वैसी आकृति होती है, वैसी आकृति नेत्रगोलकोंके है। इनमें छोय अंश, जो सन्मुख प्रवर्धित प्रतीत होता है, वह शुक्लसमरदल (Cornea) से निर्मित होता है। इन दोनों नेत्रगोलकोंके भीतर एक-एक दृष्टिनाबी रहती है। एवं नेत्रगोलकोंके धारों ओर ६-६ मांसपेशियाँ लगी हैं।

इस नेत्रगोलकका व्यास (Diameter) उचान (Vertical) अर्थात् खड़ी पंक्तिमें २३॥ मिलीमीटर है, अनुप्रस्थ (Transverse) अर्थात् आधी पंक्तिमें नासिकाके कोनसे ऊपरकी ओर खनेवाले दूसरे कोन तक २४ मिलीमीटर है।

●सगमगा २५ मिलीमीटर का एक इंच होता है।

एवं अनुलम्ब (Anteroposterior) अर्थात् मोटारुंका नाप मी २४ मिलीमीटर है। सामान्यतः जन्मके समय अनुलम्ब व्यास लगभग १७॥ मिलीमीटर होता है, श्रीर युवावस्थामें (१८ वर्षकी आयुमें) यह २० से २१ मिलीमीटर हो जाता है। ब्रिजमें ये तीनों व्यास कुछ कम होते हैं। १८ वर्षके पश्चात् मी व्यास बढ़ कर २४ मिलीमीटर हो जाता है।

ये नेत्रगोलक जिन नेत्रगुहाधर्मों रहते हैं, वहां पर ये पतली एलैम्बिक कक्षासे निर्मित दृढ़ गिलाफ (Sheath) के भीतर रहते हैं, उसे नेत्रपरकक्षा कोष (Fascoia bulbi or Capsule of Tenon) संज्ञा दी है। इसके बाह्य और आन्तर्य, ऐसे दो स्तर हैं। इन दो स्तरोंके भीतर लचीला रहती है। जिससे नेत्रगोलक अपनी चेष्टा सरलतापूर्वक कर सकते हैं।

इन अक्षिगोलकोंमें तन्मुस भाग पारदर्शक (Transparent) और पश्चात् भाग अपारदर्शक (Opaque) है। इन नेत्रगोलकोंको नितगनि इस तरह रखा है कि, चारों ओर फिरने या दबने पर भी घुमवित रह सकें।

इन अक्षिगोलकोंमें रवेत पटल शुक्रमण्डल, मध्यपटल, कनीनिका, धातुमण्डल, नेत्रदर्पण, दृष्टिमणि, पीतक्षेत्र दृष्टिक्षेत्र, दृष्टिनाडी, नेत्रश्लैष्मिक कक्षा, अग्रिमा अक्षवानी, पश्चिमा अक्षवानी, तेजोमल, सान्द्रजल, नेत्र चाक्षणी पेशिया, अग्रप्रन्थि, घमनी, शिराएँ, रसायनियाँ आदि आदि अमयव अवस्थित हैं, जो विविध जीवनोपयोगी महत्वके व्यापार और संरक्षण कार्य करते हैं।

अक्षिगोलक प्राचीर—दीवारमें ३ पटल या वृत्ति (Tunics) हैं—बाह्य, मध्य और अन्तर। इनके अतिरिक्त विविध स्तब्ध वस्तु हैं—तनुजल (तेज्यवारी), दृष्टिमणि और सान्द्र जल।

वाह्यपटल बहिर्वृत्ति—(External Tunic of the Eyeball)—यह दृढ़ स्नायु सूत्रोंसे बना है। इसके दो विभाग हैं। रवेतपटल और शुक्रमण्डल। इनमें रवेत पटल नेत्रगोलकके परिधम ३ हिस्सेको आवृत करता है, और शुक्रमण्डल अग्रिम ३ हिस्से पर आवरण रूपसे रहता है।

शुक्रमण्डल (Cornea) यह कृषि सदा स्तब्ध है। यह रवेत पटल के अग्रोकी ओर विमाध्य रूपसे संयोजित है। आपात दृष्टिसे रोकने पर यह कृष्ण वा विह्वल वर्णक प्रतीत होता है। इसमेंसे पीछेकी ओर रहे हुए कृष्ण वर्णके धातुमण्डलकी प्रतीति होती है। इस रवेतसे सामान्य जनता इसे अमयव काले वर्णका मानती है।

शुक्रमण्डल और रवेतपटलके तन्तु परस्पर मिले हैं। यद्यपि रवेत पटल इस शुक्रमण्डलको परिबेष्टित करता है। जिस तरह बहीके ऊपर लगा हुआ कर्तव्य नीचेके अंशसे आवृत रहता है, वही तरह शुक्रमण्डल इस पटलमें समा हुआ है।

यह गोलाकार है, और अति सूक्ष्म ५ स्वरोसे बना है। यह स्वस्याक्सामें रक्त-प्रणाली विहीन होता है। अतः परिवेष्टनसे अपना पोषण ग्रहण करता है।

श्वेतपटल—बाह्यपटल (Sclera sclerotica coat)—यह पटल घन स्नायुओंसे बना है और समग्र नेत्रगोलकको वेष्टन करता है। दृष्टि नाबी, शिरा और धमनीसे इसका पीछेकी ओर भेदन होता है जो कि, दृष्टि नाबी आदि वायुमण्डलकी ओर गति करती है। इसके भीतरके अंशमें मांसपेशियां लगी हैं। इसी हेतुसे यह कूड़ा रहता है। यह अक्षिगोलकके आन्तरिक अक्षयको संरक्षण करता है। यह आगेकी अपेक्षा पीछेकी ओर स्थूलतर है।

मध्यपटल (Middle or Vascular Tunic of the Eyeball) यह पटल बाह्यपटलके अन्तरमें संसक्त है। यह पटल आन्तर पटलको धारण करता है। इसके तीन विभाग हैं—छनीनिका सहित वायुमण्डल, सभानमण्डल (कन्दुसमूह) और कर्पूर वृत्ति (मध्यपटल)।

धारामण्डल (Iris)—यह पतलेमण्डलाकार पेयीसूत्रोंसे बना है। यह संकोच विस्तारणशील है। इसके भीतर सूक्ष्म रक्तप्रणालियां अधिक रहती हैं। इसकी कृष्य कणकी या क्वचित् पित्तल वर्णकी प्रतिछाया शुक्लमण्डल पर पड़ती है। जिससे उसका बर्ण इयाम दिखलाई देता है।

नेत्रके पीछेके ३ भागमें मध्यपटल और बाह्यपटल विशुद्ध संलग्न हैं। परन्तु आगेके ३ भागमें ये दोनों पुष्पक हो जाते हैं। बाह्यपटल शुक्लमण्डलके हेतुसे मध्यपटलसे कुछ दूरी पर रहता है। इस दूरी पर रहने वाले मध्यपटलके भागको ही वायुमण्डल संज्ञा दी है।

छनीनिका (Pupil)—धारामण्डलके मध्यमें दैवकृत एक छोटा-सा विवर है, जो फैलता और सिकुड़ता है, उसे छनीनिका (पुतली) कहते हैं। इसमें तेजो परिमया और उज्वल वस्तुओंकी किरणें प्रवेश करती हैं। इस विवरका संकोच-विकास वायुमण्डलके गोल इन्द्रधनुषके चक्रोंकी तरह पेयी तन्तुओंके संकोच-विकास द्वारा होता है।

इसे टक देनेवाली पतली छनीनिकाच्छदनी कला (Membrane Pupillaris) जन्म लेनेवाले अनेक शिशु (सद्योभाव पशुओंके बच्चोंमें भी) प्रतीत होती है, जो जन्मके पहिले या पश्चात् स्वयमेव विलीन हो जाती है।

इस वायुमण्डलके भीतरकी ओर पूर्वमें रहा हुआ हिस्सा तेजोवारिते पूर्ण है। इसे अग्रमण्डलका पूर्व खण्ड और अग्रिमा जलधानी (Anterior Chamber) संज्ञा दी है। एवं इसके पश्चिमकी ओर वृक्ष बना खण्ड रहता है। जो नेत्रगोलकके ३ भागमें व्याप्त है उसे अग्रमण्डलका पश्चिम खण्ड और पश्चिमा जलधानी (Posterior Chamber) संज्ञा दी है। दोनों जलधानियोंका सम्मिश्र छनीनिका द्वारा होता है।

इसके ऊपरकी ओर शुक्लमण्डल, नीचेकी ओर अग्रिमा अक्षवानी, पश्चिम भागमें पश्चिमा अक्षवानी और दृष्टिमणि तथा चारों ओर सन्धानमण्डल रहते हैं। इस कर्नोनिफामें दो प्रकारके पेशी सूत्र हैं। एक कर्नोनिफा सकोचक (Sphincter Pupillae) हैं, जो इसके चारों ओर गोल लग हुए हैं। दूसरे कर्नोनिफा प्रसारक (Dilator Pupillae) हैं, जो इसके चारों ओर चक्र नाभिमें अराके समान रहते हैं।

तन्तुसमूह—सन्धानमण्डल (Ciliary body—Corpus Cillare) यह मण्डलताया और कर्नुर वृत्तिके मध्यमें रहता है, अर्थात् इस सन्धानमण्डल द्वारा दोनोंका सन्धान होता है। इसके तीन विभाग हैं—सन्धाननल्लयिका, सन्धानपेशिका और सन्धानदशिका।

सन्धानवलयिका (Orbiculus Ciliaris)—यह कर्नुर वृत्तिकी अग्रिमभागाका बन्धन करता है।

सन्धानपेशिका (Ciliary Muscles)—यह आगेकी ओर बाहरकी परिधिमें लगा हुआ है। इसके पेशीसूत्र शुक्लमण्डलमेंसे निकलकर कर्नुर वृत्तिमें मिल जाते हैं। दूसरे सूत्रसमूह सन्धानमण्डल और सन्धानदशिकाको जोड़ता है।

सन्धानदशिका धाराप्रवर्धन (Ciliary Processes)—इसके तन्तु सन्धानमण्डलके पश्चिमकी ओर नागकेशरके पुष्पके केशराओंके समान कर्नुर वृत्तिकी चारों ओर लगे हुए हैं। इन केशराओंकी संख्या लगभग ७०-८० है। यह तारमण्डलसे पिछले भाग द्वारा पृथक् हो जाता है।

पारदर्शक सान्द्रजल (कांचम रस) नष्ट न हो जाय, इस हेतुसे सन्धानमण्डल और धाराप्रवर्धन, ये बाह्य आवरण और मध्य आवरणको पृथक् करते हैं। द्वि धाराप्रवर्धन सबको सान्द्रजलधराकोय (Hyaloid Membrane) से स्थिर करता है। इस तरह सान्द्रजल और दृष्टिमणिको भी मध्यपटलके तन्तुल अंशसे पृथक् करता है।

सन्धानमण्डल और बाह्यपटलकी तन्तुल धारामें एक सूत्रम प्रवाही या सुरंग रहती है, यह अक्षिगोलकी समग्र परिधिको पेशन करके धाराप्रवर्धनमें प्रवेश करती है। इसे तन्तुमय सुरंग (Canal of Fontana or Ciliary canal) संज्ञा दी है।

कर्नुर वृत्ति—मध्यपटल (Choroid Coat) इस वृत्तिपर वर्ष कभय होनेसे इसे कर्नुर वृत्ति कहते हैं। यह नेत्रगोलक के भीतर ३ भागको आवृत करती है, और शुक्ल वृत्ति में मिल जाती है। इस दोनों के बीच में व्यक्तधातुक (दोनोंको पृथक् करने वाली) और पतली, शिथिल वर्णद्रव्य (Pigment) प्रधान संयोजक-कला अवस्थित है। इसे शक्लकला (Lamina Fusca) संज्ञा दी है।

इस कर्पुर वृत्तिका निर्माण दो स्तरोंसे होता है। पहिला स्तर वाह्य है, उसका वर्ष कषय है। उसमें ४ शिरायुक्त सिरा गुल्मिका (Venae Vorticosae), इतर शिराएँ और घमनी प्रतान (Arterioles) रहते हैं। द्वितीय स्तर आन्तरिक है। इसमें भी शिरा और घमनियोंके प्रतान और जालक (कैपिलरिअस Capillaries) हैं। इसकी स्थूल शिरा और घमनियाँ बाह्यपटलके मध्यभागका भेदन कर अन्दर बाहर फैल जाती हैं और उसका पोषण करती हैं।

इस कर्पुर वृत्तिमें तीसरी और पाँचवीं शीर्ष नाडीके प्रतान (अनुशाखाएँ) तथा स्वतन्त्र नाडीप्रतान रहते हैं। तृतीय नाडीप्रतान कनीनिकाका सङ्कोच और स्वतन्त्र नाडीप्रतान कनीनिका का विस्तारण करता है, एव पञ्चम नाडीप्रतान स्पर्श संज्ञाका बोध कराता है।

आन्तरपटल—नेत्रदर्पण (Retina)—यह नेत्रगोलक की अन्तरतम अति फसली वृत्ति है। यह आगेके २ भागकी छोरकर शेष सम्पूर्ण नेत्रगोलकमें व्याप्त है। यह वृत्ति दृशनेन्द्रियका प्रधान अंग है।

यह आगे की ओर मध्यपटलसे और पीछेकी ओर दृष्टिनाडी (Optic Nerves) के साथ जुगा है। इसका विस्तार आगेकी ओर संधानमण्डल तक है। यह आन्तर पटल जीवितावस्थामें स्थूल और नोललोहित रङ्गका होता है तथा मूल्यके परचात् नेत्रगोलकके दबावका हास हो जानेसे मसिन घूसर रंगका हो जाता है।

इस वृत्ति में दृष्टिनाडियोंके तन्तु फैले हुए हैं। यह दृष्टिनाडी नेत्रगोलककी अक्षरेखा (Axis) अर्थात् शुक्लमण्डल और आन्तरपटल आदिके मध्य बिन्दुको संयोजन करनेवाली रेखाका अनुसरण नहीं करती। दृष्टिनाडीका प्रवेश स्थान दृष्टिनाडी स्तव (चितविक्ष-Optic Disc) में है। जो अणुबीज्य यन्त्र द्वारा देखने पर शुभ्र और उसके चारों ओरका भाग लालसा दिखार् देता है।

इनके अतिरिक्त अक्षरेखाके स्पर्शस्थानके पार्श्व भागमें कुछ नीचे पीत बिम्ब रहता है, जो पूर्वोक्त परीक्षा कालमें प्रतीत नहीं होता।

इस अन्तर्वृत्तिकी आगेकी ओर फैली हुई घारा ओ करपत्राप्र (ह्येली) सद्य योज है, जो कर्पुर वृत्तिकी अग्रधारसे लगी हुई है, उसे दन्दुर घारामण्डल (Ora Serreta) संज्ञा दी है। इसके आगे अनुबन्धमूल अति पतली कक्षा, जो वारा प्रवर्धन की पश्चिम आवरणरूपका है, उसे वितानाप्रकला (Pars Ciliaris Retinae) संज्ञा दी है।

इस पटलमें १० स्तर (पर्त) हैं। इनमेंसे नवमी वह दृश्यद्वारा (Jacob's Membrane or Layer of Rods and cones) की है। इसका सम्बन्ध दृष्टिके साथ अति निकटका है। यह पर्त पोछे से मोटी और कितना आगे बढ़े उतनी पतली होती जाती है। दृशनी पर्त विषय वर्षा से बनी हुई होने से उसे रंभितस्तर

(Tapetum Nigrum of Pigmentary Layer) करते हैं। इस पर विविध वर्णके चित्रोंके प्रतिबिम्ब पड़ते हैं, और क्षण मात्र रह कर विलयको पाते हैं। इस फलाको प्राचीन आचार्योंने आलोचक पित्तवरा कहा संज्ञा दी है। ये दोनों पर्व इतर आठ पर्वोंसे आच्छादित हैं। परन्तु इनमें स्वच्छता होनेसे प्रतिबिम्ब ग्रहणमें प्रतिबन्धक नहीं होती।

पीतक्षेत्र (Macula lutea or yellow spot)—आन्तरपटलके पोखे ठीक बीचमें एक गोला अष्टाक्षरि स्थान है, उसे पीतक्षेत्र कहते हैं। और स्थानोंकी अपेक्षा इस क्षेत्रमें देखनेकी शक्ति तीव्रतम है। इसका व्यास लगभग २८ इंच है। इस क्षेत्रके बीचमें अधिक गहरे रंगका केन्द्रस्थान है, जा गहरे सदाश प्रतीत होता है। इसे दशन केन्द्र अथवा दृष्टि-निपन्त्रणखार्त (Fovea centralis) संज्ञा दी है। इस सात पर आन्तरपटल अत्यन्त सूक्ष्म होजाता है।

जब किसी वस्तुकी ओर अपनी दृष्टि डालते हैं, तब गति उत्पन्न होकर, वह स्थान उस पदार्थके सम्मुख आजाता है। दृष्टिनालीका सिरा (सित विम्ब) या दृष्टिनालीसात (Optic Disc or porus opticus) इस स्थानसे ३ मिलीमीटर अर्थात् ३ इंच दूर नासिकाकी ओर रहता है। इसका व्यास लगभग १॥ मिलीमीटर है। इसे विम्बादृष्टिका (Optic papilla) भी कहते। यह दृष्टिनालीके मध्यमें रही हुई धमनी और शिराका प्रवेश स्थान है। इस स्थान पर प्रकाशके प्रभावका अभाव है; अर्थात् इस स्थान पर प्रकाशग्राही कोष (Cells) नहीं हैं। इस हेतुसे इसे अन्ध बिन्दु (Blind spot) संज्ञा भी दी है।

इस नेत्रगोलक गर्भमें त्रिविध स्वच्छ वस्तु रहती है—तनु जल (जेयो जल), दृष्टिमणि और सान्द्र जल। इसके आगे वहिर्दृष्टिके अंशमूत शुक्लमण्डल रहता है। इन चारोंके समुदायको स्वच्छ वस्तु म्यूड (Transparent or Refracting Media) संज्ञा दी है। ये सब रूपवाली वस्तुओंके प्रकाश को किरणोंको ग्रहण करनेमें परस्पर सहायक हैं। शुक्लमण्डलमें संग्रहकी हुई किरणोंका कनीनिका पथसे प्रवेश होता है। फिर दृष्टिमणि द्वारा एकीकरण (Focussing) होता है। पश्चात् ये संघटित दृष्टिमणि, सान्द्रजलका अतिक्रमण करके आन्तरपटलके अन्तिम (दशन) स्तर पर प्रतिबिम्बकी रचना करती है।

नेत्रगोलकमें देखने पर पहिला शुक्लमण्डल (Cornea) है। दूसरा तनुजल, यह पोषण योग्य कर्म करने वाला होने से प्रधान है। तीसरा दृष्टिमणि चौथा, पारदर्शक सान्द्रजल है इससे नेत्रगोलकका अधिकांश पूर्ण है। इसके अभावमें गोलककी आकृति नष्ट हो जाती है, और प्रतिबिम्ब ग्रहण भी नहीं होता।

तनुजल—जेयोजल (Aqueous Humour)—यह एक प्रकार का तरल पदार्थ है। जो दोनों नेत्रोंकी अग्रिमा जलधानी (Anterior Chamber)

और परिचमा जलधानी (Posterior Chamber) में रहता है। यह जल कुछ नमकीन-सा है। इसका परिमाण केवल २-३ रसी ही है। यह रक्तस (Plasma) मेंसे बना है। यह तेजोजल दोनों नेत्रोंमें तन्तु प्रवर्द्धन (Ciliary Process) द्वारा पश्चात् कोष्ठमें पहुँचता है। यह अपने स्वरस द्वारा स्वच्छ क्लब्यूल्का पोषण करता है। यह प्रतिदिन क्षीण होता जाता है, और नूतन उत्पन्न भी होता रहता है। यह आमदनी वाह्य पटल और शुक्लमण्डल सन्धिके मध्यमें रही हुई अग्निमा रसायनीके मार्ग द्वारा लवीकामेंसे होती है। इस जलको प्राचीन आचार्योंने तेजोजल संज्ञा दी है।

दृष्टिमणि (Crystalline Lens)—इसे जल संज्ञा भी दी है। यह दोनो ओरसे समर हुआ अर्थात् युगल उभयोदर (Biconvex lens) है परन्तु आगेकी ओरकी अपेक्षा पीछेकी ओरका हिस्सा अधिक उभरा हुआ है। यह तारमण्डलके पीछे और नेत्रगोलकान्तके मध्यमें रहता है। यह सधानमण्डल द्वारा बद्ध है। इसके आगे कनोनिफासहित तारमण्डल है। इस दृष्टिमणि और तारमण्डलके मध्यमें परिचम जलधानी है। पीछेकी ओर सान्द्रभलका पतला कलाकोष है। इसके उदरमें दृष्टिमणिके अनुक्रम सात है। जिससे दृष्टिमणिका धारण होता है।

स्वस्थावस्थामें यह पूर्णरूपसे स्वच्छ रहता है। फिर आयुवृद्धि और रोगके हेतुसे धुँबला होता जाता है। इसकी लिङ्गनाश (मोतियाबिन्द Cataract) नामक मुख्य व्याधि है। इस जलके ऊपर एक पतला आवरण चका हुआ है उस स्फलीको दृष्टिमणिकोष (Capsule of Lens) कहते हैं। इसके आगे फैले हुए परिभिवेष्टन कलाच्छ (Zonula Ciliaris or Zonule of Zinn) के स्नायु हैं, जो दो स्तरी द्वारा दृष्टिमणि बन्धनी (Suspensory Ligament of the Lens) की रचना करते हैं।

सान्द्रभल—काँचरस (Vitreous Body)—यह दृष्टिमणिके पीछे स्थित है यह कोष्ठनेत्रके ४ हिस्सेमें स्थित है। यह नेत्रगोलकमें परिचमकी ओरसे नेत्रके यत्तुलाकारका रक्षण करता है। यह पारदर्शक कलासे बना है, जिसे सान्द्रजलधरा कोष (Hyaloid membrane) कहते हैं। इसमें पदार्थोंके अणुओंमें रहनेवाले तरल पदार्थ सदा विपचिया रह-सान्द्रभल रहता है। इस रसमें जल ९८६ प्रतिशत है। रोप अंशमें कुछ नमक और किञ्चित् प्रथिन (Protein) रहता है। इस रसके द्रव्यसे नेत्रके तीनों पटल परस्पर मिले रहते हैं।

यह काँचरस अन्तर पटलके अङ्गमें स्थित है, और आगेकी ओर अपनी गोदमें रहे हुए छोटेसे सङ्घर्षमें नेत्रद्वयको धारण करता है। इस सातको दृष्टिमणि सात (Fossa hyaloid or fossa patellar) संज्ञा दी है। इस सान्द्रभलके मध्यमें दृष्टिमणिके पीछेकी ओर दृष्टिनाडी प्रवेशस्थान तक एक पतली प्रयासिका

लसीका पूर्ण रहती है। उसे सान्द्रकलान्तरिया प्रपिका (Canalis Hyaloideus) संज्ञा दी है। यह गमस्य शिशुओंकी कनीनिकाके आन्ध्यादनको पोषण करने वाली घमनीका अवशेष रूप है।

सान्द्रजलधरा कला अन्तरपटलकी सीमा पर रही हुई कलाको चिपका हुआ है। इसका भागका हिस्सा स्थूल कलाचक्र रूपसे नेत्रदर्पणकी परिधिमें प्रतीत होता है। इस कलाचक्रकी चारों ओर चक्रनाभिमें शराके सदृश सन्धानदर्शिकाके अंश लये हुए हैं, इस कलाचक्रमेंसे दो स्तर निकले हैं। पहिला दृष्टिमण्डि-कलाकोपकी उभय ओर संलग्न है; तथा सन्धान-पेशिकाकी सहायतासे दृष्टिमण्डि कन्धनीकी रचना करता है। दूसरा स्तर इसके पीछे दृष्टिमण्डि खातको आवृत करता है।

दृष्टि (Sight-Vision) - बाहरकी ओर दृष्टि जालने पर प्रकाशकी किरणें शुक्लमण्डल पर पड़ती हैं। फिर वे नेत्रके भीतर प्रवेशकर तेजोवार्ति, कनीनिक, दृष्टिमण्डि और सान्द्रजलमेंसे क्रमशः अन्तर पटलके अन्तस्तर (रंजितस्तर) तक पहुँचती है। फिर इसी पर वस्तुओंका प्रतिबिम्ब पड़ता है। यह प्रतिबिम्ब उलटा होता है, अर्थात् खड़े मनुष्यके पैर ऊपर और शिर नीचे होता है। परन्तु यह चित्र मस्तिष्कगत दृष्टिकेन्द्रमें मन द्वारा सीधा ही प्रतीत होता है। कारण मनका इसी तरह ग्रहण करनेका अभ्यास हो गया है। यह चित्र क्षणमात्र रहता है। उस समय प्रतिबिम्ब जितना साफ होता है, उतनी ही वस्तु, स्पष्ट दिखाई देती है। इस प्रक्रियाका प्रभाव तत्काल नवम दृष्टिचक्र स्तर द्वारा विलोम क्रमसे होता है। प्रतिबिम्ब परम्परा जन्म दृष्टिनाडी (Optic Nerves) द्वारा मस्तिष्कमें रहे हुए दृष्टिकेन्द्रमें पहुँचता है, वहाँ वस्तुके बर्ण, आकृति, लम्बाई, स्थान आदिप्रबोध होता है।

दर्शनाङ्गी-दृष्टिनाडी (Optic Nerves) - दोनों नेत्रोंकी दृष्टि नाडी नेत्रके दोनों पटल और सितबिम्बका मेदन कर नेत्रके पीछेकी ओरसे प्रारम्भ होकर वृद्ध मस्तिष्कमें गमन करती है। इस नाडीमें लगभग ५ लाख धनुष तार उपस्थित हैं। इस दृष्टिनाडीके सामान्यतः स्थान मेदसे तीन विभाग होते हैं १ दृष्टिनाडी, २ दृष्टिनाडी चतुष्पथ और ३ दृष्टिनाडी मुखिका (दर्शनप्रबंध)।

दोनों नेत्रोंकी दृष्टिनाडी नेत्रोंमेंसे निकल नासिकाकी ओर होकर पहिले मस्तिष्कके अधोभागमें स्फेरोइड (Sphenoid bone) के ऊपर दृष्टिनाडी परिसा (Optic groove) में गमन करती हैं। इस क्षणिक दोनों ओर एक-एक छिद्र है। इन छिद्रोंको दृष्टिनाडी रन्ध्र (Optic Foramen) संज्ञा दी है। इस क्षणिक यहाँ दोनों नाभियोंका सम्मिलन होता है, उसे दृष्टिनाडी योजनिका और दृष्टिनाडी चतुष्पथ (Optic chiasma or commissure) संज्ञा दी है। यह स्थान पोषकिका ग्रन्थि (Pituitary Body) के पीछेकी ओर अवस्थित है।

फिर वहाँसे यह नाबी दृष्टिनाबी मूलिका (Optic tract) नाम धारण कर दोनों ओर विच्छिन्न दिशामें होकर नृसृष्ट मस्तिष्कके पश्चात् क्षण्ड (Occipital lobe) के भीतर रहे हुए दर्शनकेन्द्रो (Visual centres) में प्रवेश करती है। इन दोनों केन्द्रोंका परस्पर सम्बन्ध रहता है, एवं ये नाबियाँ गतिक्षेत्र और लघु मस्तिष्कसे भी सम्बन्धित रहती हैं।

नेत्ररत्नौष्मिक कक्षा (Conjunctiva)—दोनों नेत्रोंके नेत्रच्छदोंके भीतर आवरणमूत्र पतली श्लैष्मिक कक्षा अवस्थित है। यह प्रतिफलित होकर नेत्रगोलकके आगेके हिस्सेको अर्थात् आकाशवर्णके सन्मुख अंश और शुक्लामण्डलको आवृत करती है। इसका कुछ भाग नेत्रपुटके भीतर है। शेष हिस्सा चक्षुमें बाहर प्रकीर्ण होता है।

अग्रिमा खलघानी—जलमय रसका पूर्व क्षण्ड (Anterior chamber)—यह कोष्ठ शुक्लामण्डल और तारामण्डलके मध्यमें स्थित है। यह तेजोमक्षसे मृत है।

परिचमा खलघानी—जलमय रसका परिचम क्षण्ड (Posterior chamber)—यह कोष्ठ पूर्ण क्षण्डकी अपवा छोटा है। इसमें तेजोजल रहता है। यदि इसमें से तेजोजल को निकाल दिया जाय, तो इसके अस्तित्वका निर्णय नहीं हो सकता। यह क्षण्ड तारामण्डल और दृष्टिमण्डिके आवरणके मध्य स्तरमें स्थित है।

नेत्रचालनी पेशियाँ (Oculo Motor Muscles)—दोनों अक्षिगोलकोंको चारों ओर घुमानेके लिये मुख्य मंसपेशियाँ ६-६ लगी हैं। ये पेशियाँ अक्षिगुहाके पोछेकी ओरसे निकलकर धातु पटलमें सम्मिलित हो गई हैं। इनमेंसे एक ऊपर, एक नीचे, एक भीतरके कोणकी ओर तथा एक बाहरके कोणकी ओर लगी हैं। ये चारों ही सरल पेशियाँ हैं। परन्तु एक ऊपर और एक नीचे मिलकर दो मरु पेशियाँ हैं। इन पेशियाँके सकोचसे नेत्र चारों ओर घूमता रहता है। इनके अतिरिक्त नेत्रोन्मीलनी और नेत्र निमोचनी, दो गौण पेशियाँ अलग हैं।

इन अवयवोंके अतिरिक्त अम्ब्र प्रत्नियाँ अम्ब्रुत्थली, अम्ब्रु बाहिनियाँ शिवा, धमनी, रसायनियाँ, अम्ब्रु अक्षिप्लवन, तपास्त्रियाँ, स्नायुवृत्त, स्पर्श संश्रय प्रदृश्य करने वाली चक्षुषी नाबी (Ophthalmic Nerves), नेत्रचेष्टनी नाबियाँ (Oculo Motor Nerves) और इतर नाबियाँ आदि अवस्थित हैं।

मुख्य नेत्र व्याधियाँ

(१) दूर दृष्टिमान्द्य (Myopia or Short Sight)—जब नेत्रोंके गोलोका दृष्टिज अक्ष दीर्घ हो जाता है, और अन्तर पटल दृष्टिमण्डिके स्वल्प अक्षयाकी अपेक्षा अधिक दूर हो जाता है, तब दूरकी वस्तु ठीक तरह नहीं देखनेमें आती। इस हेतुसे दूर दृष्टिमान्द्य दोषकी सम्प्राप्ति होती है। किसी-किसी व्यक्तिकी दृष्टि कल्पसिद्ध निर्बल होती है। ऐसे रोगियोंको ऐनकका उपयोग करना पड़ता है।

(२) निकट दृष्टिमान्य (Hypermetropia or Hyperopia)—कचित् दूर दृष्टिमान्यसे विरुद्ध विकृति हो जाने पर, निकट दृष्टिमान्य विकार हो जाता है। यह व्याधि वृत्तमानमें अनेकोंको हो जाती है। इसकी प्राप्ति होने पर रोमी छोटे अक्षरकी पुस्तक नहीं पढ़ सकता एव छोटी-छोटी वस्तुओंको साध नहीं देख सकता।

(३) जरासन्न्य दृष्टिमान्य (Presbyopia)—जिस तरह छोटी आयुमें दोष विकृतिसे निकट दृष्टिमान्यता हो जाती है, उसी तरह बुढ़्यावस्थामें दृष्टिमक्षिकी विकृतिसे भी दृष्टिमान्य हो जाता है।

(४) विषम दृष्टि (Astigmatish)—कचित् दृष्टिमक्षिके दोनों पृष्ठ परानर उन्नतोदर नहीं होते। सम्भावकी ओरका पृष्ठ चित्तिनाचके पृष्ठकी अपेक्षा अधिक उन्नतोदर हो जाता है। या इसके विपरीत चित्तिनाचकी ओरके पृष्ठ सम्भावकी ओरके पृष्ठकी अपेक्षा अधिक उन्नतोदर हो जाता है। इस हेतुसे नेत्रदपक्ष पर आलोकप्रतिम पकने पर कोई-कोई अंश अस्पष्ट दिखालाई देता है।

(५) गुणल दृष्टि (Spherical Aberration)—कचित् सामनेकी या पार्श्व मागकी प्रकाश किरण दृष्टिपटल पर एकत्रित नहीं हो सकती, सब दो-दो पदार्थ प्रतीत होते हैं।

(६) वर्णव्यभिचारी दृष्टि (Chromatic Aberration)—जिस तरह प्रकाशकी किरण किसी आतसी काँचके मीकरसे जाने पर विविध वर्ण दिखाई देते हैं, उस तरह किसी काँचसे नेत्रदर्पणमें विकृति होनेसे परार्थका रंग दूसरा ही (एक-या अनेक) प्रतीत होता है।

(७) अर्ध दृष्टि (Half Vision or Hemianopsia)—दृष्टि क्षेत्रका कुछ अंश नष्ट हो जानेसे दृष्टि दोपक्षी बन जाती है। इसे क्षेत्रानाशयन दृष्टि भी कहते हैं।

अतिरिक्त व्याधियाँ—

- १—बकलक्षि (Strabismus)
- २—नक्तान्य (Nyctalopia or night blindness)
- ३—दिवान्य (Hemeralopia or day blindness)
- ४—प्रकाशकी असहनता (Photophobia)
- ५—तारामण्डलका निर्गमन (Prolapse of Iris)
- ६—धर्म अर्थात् भेल (Pterygium)
- ७—शुक्लमण्डल प्रदाह (Keratitis)
- ८—तारामण्डल प्रदाह (Iritis)
- ९—मन्त्रपटलप्रदाह (Choroiditis)

- १०—लिङ्गनाश अर्थात् मोतियाबिन्द (Cataract)
 ११—नेत्रमें दबाव वृद्धि अर्थात् अघिमन्य (Glaucoma)
 १२—नेत्र श्लैष्मिककलाप्रदाह (Conjunctivitis)
 १३—नेत्र श्लैष्मिककलाका पूयप्रदाह (Purulent Conjunctivitis)
 १४—गोयकी, दानेदार श्लैष्मिककलाप्रदाह या रोहे (Granular Con-
 junctivitis)

१५—अन्मकालमें पूयप्रदाह (Ophthalmia Neonatorum)

१६—अभ्रु आशय नाडीप्रवाह (Lachrymal Fistula)

इनके अतिरिक्त नेत्रके पुट, पद्म आदिमें अजन नामिक (Sty) पद्म-
 कोप (Trichiasis) नेत्रपुटप्रदाह (Blepharitis), नेत्रच्छदका अन्तरावर्तन
 (Entropion), नेत्रच्छदका बहिरवर्तन (Ectropion), निमेष अर्थात्
 नेत्रपुटका आचेप (Blepharospasm) आदि आदि, विकारोंकी संप्राप्ति होती है।

जब तक नेत्रमें शुनसमयबल, तेजोवारी, कनोमिका, दृष्टिमण्डि और फांचरस
 आदि स्वच्छ और स्वस्थ रहते हैं, तब तक हमें पदार्थ ज्ञान यथोचित होता है। जब
 इनमेंसे किसीमें भी विकृति हो जाती है, तब उतने अंशमें दृष्टि विकृत हो जाती है।
 इन सबका विशेष विचार नेत्ररोगविज्ञान के भीतर किया गया है।

(१००) सोमोत्पादक ।

उप्राता साधक—इरिटन्ट्स—Irritants

जो द्रव्य त्वचापर स्रोम उत्पादन कर तथा रक्तसञ्चालनमें उत्तेजना लाकर
 वेदनाको शमन करें उनको सोमोत्पादक संज्ञा दी है, वे सब स्थानिक किया निमित्त
 प्रयोजित होती हैं, इनमें चार प्रकार हैं।

१ रक्त प्रदाहक (रुबिफेसीएन्ट्स Rubefacients) ।

२ स्फोटोत्पादक (वेसिकन्ट्स-वेसिक्योरिय-एपिस्पेस्टिक्स Vesicants
 Vesicatories Epispastics) ।

३ पूयोत्पादक (पल्स्युलन्ट्स Pustulants) ।

४ तीक्ष्णदाहक-एस्कार्बिक-कास्टिक्स Escharotics-Caustics) ।

उक्त चारों प्रकारकी औषधियाँ सोमोत्पादक होनेसे एक ही प्रकारका कार्य
 करती हैं। केवल तारतम्य प्रमेद है। क्षीण औषधि भी अधिक देर तक देह पर
 लगी रहे, तो प्रवहातर क्रिया प्रकाशित करती है। एवं प्रबल औषधि भी स्वल्प
 असावक प्रयोजित होनेपर मृदु कार्य करती है।

(१) त्यक् प्रवाहक औषधियाँ—शोषितोत्करोहक इन औषधियोंके प्रयोगसे
 रक्तवेग होकर त्वचा लाल हो जाती है। यह साली स्वल्प कालस्थायी है, बहुधा
 कुछ मिनटोंमें ही शमन हो जाती है, क्वचित् कुछ दिनों तक भी रह जाती है।

नौसादर मिश्रित द्रव, कपूर, शराव, राई, सरसों, घोंठ, हुलहुल, सासमिर्च, फालोमिर्च, पीपल, लहशुन, अजधामन, लौंग, दालचीनी, चिन्कमूल, नागरवेष्टात्र पान, आकका पान, समुद्रशोरका पान, कामफल, पीलू, क्षायफलका वेल, रोहिण वेल, नोलगिरि वेल, विष्टपीन वेल, तार्पिन वेल, पिपरमैण्ट वेल विविध घातहर वेल आदि। इन श्रीपथियोंकी त्वचा पर मालिश या लेप करनेसे प्रदाहकी उत्पत्ति होती है, जिससे खुजली नष्ट होती है।

शोथरोगमें कर्णामिश्रित चर्पण करनेसे बहुत अंशमें रक्त दूर हो जाता है, और त्वचाका खिंचाव कम हो जाता है। इस तरह मालिश और चर्पण से लसिकाके सञ्चालनमें वृद्धि होती है और मांसपेशियोंमें से त्याज्य पदार्थ (मल) सार्वत्रिक रक्तसञ्चालनमें प्रवेशित हो जाता है तथा भ्रमाभिस्यमन्य पक्कान भी दूर हो जाती है।

पीठमें मालिश करनेसे वातवहा नाभियोंकी उत्तेजनात्मक शमन होता और निद्रा आजाती है।

सन्धियोंके तीव्र प्रदाहका उपशमन होनेपर उच्छेदक तैलकी मालिश करनेसे क्रियाशक्ति और विकृति दूर होकर स्वस्थताकी प्राप्ति होती है।

घातशूलयुक्त स्थानमें राईका लेप लगानेसे प्रदाह होकर शूल नष्ट हो जाता है। वातवहा नाभियोंकी निर्मूलतामें पीठ पर सरसोंके तैलका मर्दन कराया जाता है। यदि वातवहा नाभियोंकी उग्रतासे निद्रा न आती हो, तो प्रीबाके पीछे राईका प्लास्टर लगानेसे मषेष्ट उपकार होजाता है। यह लेप अति उग्र होनेसे अश्लील आदिके विषमकोषमें मूत्रप्रसृत व्यक्तिको जागरित करनेके लिये भी व्यवहृत होता है।

कुम्भसप्रदाह पथरकी निवृत्ति होनेपर कुम्भसकी दृढता (Consolidation) रह जाय, तो उस भागपर राईका प्लास्टर लगानेसे प्रदाहजनित द्रव पदार्थका शोषण हो जाता है। कुम्भसकी दृढता होनेपर कुम्भसावरण या दृढयावरणमें रक्तसञ्चालन होता है, वह भी राईके प्लास्टरसे शोषित हो जाता है। इसी तरह शक्कलमांसके प्राथमिक स्थानों पर इस लेपका प्रयोग करनेसे अर्थात् लाम पहुँच जाता है।

सामान्य प्रदाहप्रसृत होनेपर रक्तसञ्चालनमें वृद्धि होती है परन्तु प्रदाह और रक्तसञ्चालन वृद्धि, समयमें पूर्वांशमें विभिन्नता है। शरीरके उपादानके किसी भी तन्तु (Tissue) को क्षति पहुँचाने पर वहाँ प्रदाह होती है और इसी प्रदाह रूप क्षतिके पूरकार्य रक्तसञ्चालनमें वृद्धि होती है।

किसी स्थान या अन्तर्गम क्रियाविधम होनेपर वहाँ क्रियाके अनुरूप रक्तसञ्चालनकी भी वृद्धि होती है। प्रथियोंके खाव या विकृति संस्कार होनेके लिये रक्तसञ्चालनकी अतिक्रिया होती है। इस तरह प्रथियोंकी सब सन्धियोंके चिरकारी प्रदाह या क्षतमें चर्पण, मर्दन, लेप या फाटा उत्साहक प्रयोग करने पर वहाँ सञ्चालित रक्तके परिमाणमें वृद्धि होकर कार्य सफल होता है।

आयुकारी प्रदाहमें रक्तसञ्चालनमें अत्यधिक वृद्धि हो जाती है, और साथ साथ प्रदाहयुक्त स्थानकी सहाहादिनियोंमें अत्यधिक उच्चैःपना आ जानेसे अतिशय वेदना उत्पत्तियत होती है। फिर प्रदाहयुक्त स्थानमें रक्तके वेगका हास करने पर वेदना उत्पन्न हो जाती है। जैसे टेंगली पर काँटा या सुईसे विष जाने अथवा इतर प्रकार का आघात होनेसे टेंगली पर प्रदाह होता है। फिर हाथ नीचा रक्ता जाय, तो रक्तवहा नाबियोंके आघात के साथ वातवहा नाबियोंमें भी कष्टदायक पीड़ा बढ़ने लगती है और हाथको ऊँचा रक्ता जाय, तो रक्तदाबमें कमी होकर पीड़ामें भी न्यूनता होने लगती है। इसके अतिरिक्त प्रदाह युक्त स्थानसे सम्बन्ध वाली बाहुकी घमनी पर दबाव डालने या कपड़ा बाँधनेसे और टेंगलीको शीतल पदार्थों से रखनेसे भी घमनी समुचित हो जाती है। फिर रक्तका वेग कम होकर लाभ पहुँच जाता है।

इस तरह उष्ण पुष्टिसका प्रयोग करने पर भी वेदना शमन हो जाती है। इसका तात्पर्य यह है कि, प्रदाहग्रस्त स्थानमें रक्तवाहिनियोंके भीतर रक्तसञ्चालन स्थगित या मन्द हो जाता है, वहाँ पर पुष्टिस बाँधनेसे उष्ण द्वारा कैथिकाएँ प्रसारित हो जाती हैं, और प्रदाहग्रस्त घमनीमेंसे रक्तस्रोत अल्प संचारित हो जाता है। इस तरह गौण या प्रासंगिक रक्तसञ्चालन (Collateral Circulation) क्रियाका प्रारम्भ हो जानेसे वेदनाका हास हो जाता है।

त्वचाके किसी स्थान पर सोमोत्पादक औषधि प्रयोग करने पर उस स्थानकी रक्तवाहिनियाँ प्रसारित होती हैं। फिर लाली उत्पत्तियत होती है और अन्य स्थानकी रक्तवाहिनियाँ आकुञ्चित होती हैं। इस कारणसे आन्तरिक मन्त्रके प्रदाहमें म्लिष्टर पुष्टिस, सेक आदि उपकारक होते हैं।

यदि प्रदाहयुक्त स्थानके विकृत निकटमें म्लिष्टर प्रयोग किया जाय तो रक्तसञ्चालनका हास नहीं होता, परन्तु वृद्धि होती है। जिससे इस प्रयोग द्वारा उपकार नहीं होता, बल्कि अपकार होता है। परन्तु हृदयस्थानके लिये यह नियम नहीं है। हृदयपर कक्षाकोषके विकारमें हृदावरणके ऊपर म्लिष्टर बहुधा निषिद्ध है किञ्चित् दूरीपर ही प्रयोग किया जाता है।

(२) स्कोटोत्पादक औषधियाँ—जिन प्रबल सोमोत्पादक औषधियोंकी क्रिया होने पर रक्त रस (Plasma) उत्सृष्ट होकर उपत्वक् (Epidermis) के नीचे संचालित होता है, और फिर फाला हो जाता है। वे औषधियाँ स्कोटोत्पादक कहलाती हैं। यथाहि राई का तेल, राईका तैल, जमाशगोटेका तैल, जलकी वाष्प, कुसकुलके पत्र, त्रिभक्तमूलकी छाल आदि।

वीर्यवृद्धकी सन्धिमेंसे निःसृत रस शोथशार्थ अथवा इसके चारों ओर अधिक मात्रास्थायी स्थूलता लानेके लिये फाला उत्पादक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

तीव्र वातरोगमें प्रदाहमुक्त सन्धिके चारों ओर यह प्रयोग करनेसे पीड़ा और च्वर दोनोंही निवृत्ति हो जाती है।

वातवहानाशियोंके शूलजनित वेदनास्थानमें इस प्रयोगसे उपकार होता है। पाश्र्वदेश या वक्षःस्थलके वातशूलमें कोई-कोई समय क्योरुकाके किसी स्थान विशेषमें वेदना प्रतीत होती है। उस पर इस श्रीपथिका प्रयोग करनेसे रोगका उपशमन हो जाता है। हृदावरण या फुफ्फुसावरणके प्रदाहमें वक्ष पर ब्लिस्टर लगानेसे वेदनाका ह्रास हो जाता है। अनेक बार उपसीजन्य शूलमें ब्लिस्टर लगानेसे विशेष फल प्राप्त होनेका अनुभव मिला है। एवं आमाशयकी उग्रता आंजाने पर जब फमनका शमन हस्त्र प्रयोगसे नहीं होता, तब यहाँका प्लास्टर लगानेसे सत्वर लाम हो जाता है।

मस्तिष्ककी विविध बीजा—मयानक शिरदह, मस्तिष्कपरतःप्रदाह (Meningitis) और मस्तिष्कमें तरलसंचय (Hydrocephalus) आदिमें मस्तिष्करोगोत्तन प्रवर्धनक (Mastoid Process) के निम्न प्रदेश पर फाला उठानेसे उपकार होता है। हिस्टीरिया जन्य किसी अङ्गका पचापात होने पर उसी स्थान पर तथा हिस्टीरियाके हेतुसे होनेवाले स्वरलोपमें स्वरयन्त्रके ऊपर ब्लिस्टर लगानेसे लाम पहुँच जाता है।

(१) पूयोत्पादक औषधियाँ—ये औषधियाँ प्रयोगस्थानको सब स्वचापर आक्रमण नहीं करती, परन्तु कुछ-कुछ अन्तर पर उग्रता उत्पन्न कर छुद्र-छुद्र पूवपिटिकाएँ उत्पन्न करती हैं, जैसे—ज्वालामोटेका तैल, मिशावेका तैल, पृथरका दूध आदि।

इस प्रकारकी औषधियोंके प्रयोगसे कैपिलारियों (Capillaries) की दीवारोंमें श्वेतगणु (Leukocytes) प्रवेश कर जाते हैं। फिर वे फलेमें सञ्चित होकर पूयोत्पत्ति करा देते हैं।

जोर्ण प्रदाहमें दीर्घकाल तक किञ्चित उग्रताको कायम रखनेके लिये पूयोत्पादक प्रयोग किया जाता है। संयोजक कला या प्लैथमिक कलाका जीर्णप्रदाह, चिरकारी कफ-कफकास, सरस्तोम और क्वचित् राजस्यवर्णमें ज्वालामोटेके तैलका लेप करनेसे पूयोत्पत्ति होकर लाम पहुँच जाता है।

(४) सीमवाहक (वारण) औषधियाँ—ये औषधियाँ प्रयोग स्थानके समस्त विषानको जलाकर नष्ट कर देती हैं। अनेक प्रकारके तेजाब, सजीला, चूना, तीव्र चाट, सोमल, नीलायोषा आदि। सूत्रा और श्लैथमिक कलामें चर्मकीला या मोसहृदि (Polypus) आदिको नष्ट करने तथा अधिक अङ्कुर और पीडा बाला श्वर होने पर चूना, यषचाट, सोमल, तीव्रचाट, तेजाब और नीलायोषा आदि दाहक औषधियोंका प्रयोग किया जाता है। अनेक बार विपरीत स्थान और

घातक क्रीमएणु मुक्त स्थलमें विकरकी वृद्धिसे रोकनेके लिये तेजाब या तपाये हुए लोहेसे बसाया जाता है।

इस तरह जीर्ण अपस्मार, जीर्ण शिरदर्द, पागल कुत्तेका दंश, आदि रोगोंमें भी इस प्रकारकी अज्ञाने वाली औषधियां (चारमिभित मरहम आदि) लगायी जाती हैं। स्वेद, पुल्टिस, दम्भ क्रिया (दाग देना), स्फोट (फासा उठाना, ब्लिस्टर प्रयोग और चार प्रयोग), ये सब प्रयोग सोमोत्पादक हैं। इनका विवेचन 'चिकित्सा क्लवप्रयोग' प्रथम खण्ड पृष्ठ ४८ से ५७ तक और ११७ से १२५ तक किया गया है।

सोमोत्पादक प्रयोग हेतु—

(१) समस्त शरीरमें उर्ध्वजना लाना। ब्लिस्टर लगानेसे प्रयोग स्थानमें प्रदाह होकर सारे शरीरमें उर्ध्वजना आती है। यथा स्वर आदि रोगोंमें जोबनीय शक्ति अक्षय होनेपर उसे इस प्रयोगसे उर्ध्वमित की जाती है।

(२) शोषक शिराओंकी क्रिया वृद्धि। ब्लिस्टर लगाने पर शोषक शिराएँ उर्ध्वमित होकर क्रिया उत्त्वर करने लगती हैं। इसलिये विविध प्रदाहजनित सण्डीत रसशोषणार्थ और शोषके रसरक्तको फैला देनेके लिये प्रयोग किया जाता है।

(३) प्रसिद्धोत्पादक—इस उद्देश्यसे आम्यन्तरिक विविध स्थानोंके प्रदाहमें इस प्रयोगका आभय लिया जाता है।

(४) दोहन—ब्लिस्टर लगाकर स्फोट होने पर उसकी त्वचा निकाल लेनेसे सूत्रमेंसे रस निकलने लगते हैं, जिससे दोहन (दोष निवारण) की सिद्धि होती है। अनेक प्रकारके आम्यन्तरिक जीर्ण प्रदाहमें यह विशेष उपकार दर्शाता है।

(५) अन्तर त्वचा-वेध (Endermo Method) इस प्रकारमें पहिले स्फोट उठाकर फिर सूत्रमें औषधि लगाई जाती है। इस तरह प्रयोग करने पर औषधि उत्त्वर शोषित होकर क्रिया दर्शाती है। जिन औषधियोंकी क्रिया अति उन्न हो, उनका प्रयोग इस तरह नहीं किया जाता। अफीम आदि उद्भिद् औषधियोंके छत्वीका इस तरह व्यवहार किया जाता है। औषधका सूत्रम चूर्ण सूत्र पर लगाया जाता है, या मसहम रूपसे लेप किया जाता है। यमनके निवारणार्थ उदरकी त्वचा पर अफीम उत्त्वरका इस तरह प्रयोग करनेसे उत्त्वरक फल प्रतीत होता है। जीर्ण आमवात और वात शूल (Neuralgia) में वेदनास्थान पर इसी तरह अफीम उत्त्वरका प्रयोग किया जाता है।

(६) विविध कास्पनिक वेदना निवारण—डिस्टीरियामें अनेक स्थानोंमें कास्पनिक वेदना उपस्थित होती है। ब्लिस्टर लगाने पर स्फोट उत्पन्न होनेपर इनका निवारण होता है।

सूचना—(१) प्रदाहका प्रारम्भ होने पर तुरन्त या प्रदाहको उग्रता प्राप्त होनेके पूर्विल्ले ब्लिस्टरकी औषधिका उपयोग नहीं करना चाहिये।

(२) स्नान, वृष्य आदि कोमल स्थानोंमें और जिस स्थान पर इन्हीं केँची ठठी हो, वहाँ पर स्कोट नहीं ठठाना चाहिये।

(३) क्षोभोत्पादक प्रयोगकी औषधि आठ घण्टे बाद रखना निष्कल है। बच्चोंके लिए म्लिष्टर लगानेमें त्वचा लाल हो, तब तक रखना चाहिये। फिर म्लिष्टर ठठा उस स्थान पर गरम पुकिट्स बाँध देनेसे २-३ घण्टेमें फाला हो जाता है। यदि म्लिष्टर अधिक देर तक रक्सा जायगा, तो त्वचा कोमल होनेके हेतुसे अत्यन्त प्रवाह हो जाता है, फिर कमी-कमी त्वचा भी गलकर पक जाती है।

(४) म्लिष्टरके क्षतको जल्दी सुखानेके लिये स्कोटको कुचल न दें। यदि कुचल दिया हो, तो भी त्वचाको न निकाल दें।

(५) स्वरयन्त्रप्रदाहमें म्लिष्टर न लगायें।

(६) सर्गावस्थामें स्नान आदि मात्र पर म्लिष्टरका प्रयोग निष्कल निषिद्ध है।

(७) रक्तपित्त (Scurvy-स्फूर्ति और इतर प्रकार) होने पर म्लिष्टर लगानेसे त्वचा पक जानेकी भीति रहती है।

(८) यक्ष्मी और कटिप्रित्तोष्ण प्रदेशके शरीरमें म्लिष्टर पैरके टखने पर लगानेसे विशेष लाभ होता है।

(१०१) प्रति क्षोभोत्पादक।

प्रत्युपद्रवासाधक—प्रतिदाहक-प्रतिक्षोभक-कटन्टर इरिटिप्स।

Counter Irritants.

जिन उपद्रवासाधक औषधियोंके क्रिया प्रतिकूलित हो अर्थात् एक स्थान पर प्रयोक्त औषधिका परिश्राम इतर सम्बन्ध वाले स्थान पर प्रकाशित हो, ऐसे प्रयोगोंके प्रत्युपद्रवासाधक कहते हैं। प्रयोग भेदसे इनके ३ प्रकार हैं।

१ स्पर्शप्रदाहक (Rubefacients)

२ क्षोभोत्पादक (Vesicants)

३ दोषाकर्ष्य (Revulsives or Derivatives)—आकन्त स्थानसे रक्तके स्थानान्तरित करने वाली औषधियाँ।

इन प्रत्युपद्रवा प्रयोगोंके क्रिया आत्ममन्तरिक यन्त्रमें वातवहा नासियों द्वारा प्रतिकूलित होकर और रक्तसञ्चालनमें परिवर्तन कराकर कार्य करती है।

शरीरमें जो अंग या अन्तःसाक्ष्य सम्बन्धसे त्वचासे संयुक्त हों, उनके रक्तसञ्चालनका हास करने या प्रदाहका शमन करनेके लिये प्रतिक्षोभोत्पादक प्रयोग किया जाता है। यथा कुम्भकस खण्डप्रदाह, कुम्भकनावरकप्रदाह, वक्ष्यप्रदाह आदि रोगोंमें म्लिष्टर प्रयोग किया जाता है।

शीत शरीरमें नैसर्गिक नियमानुसार रक्त और वातवहा नाभियोंके परिमाण और बल निश्चित मात्रामें रहते हैं। यदि किसी कारखबरा किसी स्थान विशेषमें रक्तके परिमाण और वातवहा नाभिकी शक्तिका अर्धिक संचय हो जाय, तो इतर स्थानके वातवहा नाभियोंकी शक्तिमें ह्रास हो जाता है। इसलिये इतर सब स्थानोंमें क्रिया मन्द हो जाती है।

इस नियमानुसार यदि किसी स्थानमें वेदनाके हेतुसे रक्त और वातवहा नाभियोंकी शक्ति संपृष्ट हो जाय, तो उसके निकटस्थ किसी स्थान पर औपच प्रयोग द्वारा रक्त और वातवहा नाभियोंकी शक्तिका आकषण कर लेने पर पीडित स्थान स्वस्थ हो जाता है। मिर्च आदिका लेप और राई आदिके मिश्रण द्वारा आन्तरिक प्रदाह और पीडाके निवारणमें पही हेतु हैं।

स्वचित् इसके विपरीत परिष्काम भी देहमें प्रतीत होता है। जैसे शीतकालमें देहसे सहन हो सके उतनी शीत लगने पर त्वचामें रहा हुआ रक्त और वातवहा नाभियोंकी शक्ति आन्तरिक मन्त्र आदिमें प्रवेश कर रक्षाभिन्य और उष्णताकी वृद्धि करते हैं।

कर्म अशुभगत विकारोंमें हाथ या कण्ठ पर दम्म क्रिया करनेसे तीक्ष्ण वेदना दमन हो जाती है। वाम वृषण पर शोथ आनेसे दक्षिण पैरके अंगुष्ठीकी शिरा पर और दक्षिण वृषण पर शोथ आने पर वाम पैरके अंगुष्ठीकी शिरापर तप्त लोहखलाकासे दवा देनेसे लाभ पहुँच जाता है। अर्श रोगमें दहिने हाथकी अनामिका पर गेंठके चर्मके भाग आठ घातकी अंगुठी पहननेसे दबाव आकर एवं वस्तुप्रभावसे रोग दमन हो जाता है।

आशुकारी र्जिप्रदाहमें जब प्रदाहजनित रक्त आदिका पुनः शोषण रूप उद्देश्य हो, तब यह प्रतिचोभोत्पादक प्रयोग व्यवहृत होता है। फुफ्फुसावरणमें संचित रक्तका शोषण करनेके लिये वाक् त्वचा पर क्रिया हुआ लेप इस नियमानुसार कर्म करता है। परन्तु जब रक्त संपृष्ट हो जानेसे रक्तप्रदाहका ह्रास कराके वेदना निवारण करना इष्ट हो, तब इस प्रतिचोभोत्पादक प्रयोगका व्यवहार नहीं होता।

मस्तिष्क और सुषुम्न्यास्थित वातायातकारी (Traffic) और रक्तप्रणाली सञ्चालक (Vaso Motor) वातवहा नाभिकेन्द्र द्वारा प्रतिफलित क्रियाके प्रभावसे प्रयोग स्थानके समीप या चर्मके नीचे विकार वृद्धि (Morbid growth) के शोषण होनेमें सहायता मिले, इस उद्देश्यसे इस प्रतिचोभक औपचिक प्रयोग किया जाता है। यथा संविस्थानोंके गहरोंमें चिपचिपे रक्तसाधन्य रक्तप्रदाह (Syno- rath) और फुफ्फुसावरणमें रसेस्खन होने पर यथा स्थान बार-बार छोटे-छोटे मिश्रण (Flying Blister) और ग्रन्थिके प्रसादनार्थ लेप प्रयोजित किया जाता है। मूत्राशयमें अशमरी या पिचाशयके निर्ममनसे उत्पन्न मा वातवहा नाभिकेन्द्रसे

उत्पन्न वेदनाके निवारणार्थ तथा हिस्टिरियामें नाडी केन्द्रकी व्यथा दमनार्थ प्रयोजित होता है।

इस तरह यह प्रयोग बेहोशी, मादक औषधिये तथा उत्पन्न और आशुभरी श्वातकरस्यजन्य (Idiopathio) स्वर और प्रवाहिक स्वरकी अवसन्नावस्थामें केन्द्रसे सम्बन्ध वाली वातनाभियोंको उच्चैर्ध्वित करनेके लिये विशेष फलप्रद है। एव कृत्रिमकोष प्रदेशमें शूल (Lumbago) चलने और विद्युच्चिकामें मस्तिष्कियोंका खिंचाव (Cramps) होने पर राईका म्लिष्टर लगाया जाता है।

कचित् रोगस्थान पर क्षोभोत्पादक प्रयोग करके विकारको स्थानान्तरित कराया जाता है। जैसे ग्राम्प्रातमें पैर या पैरोंके अग्रगुह पर राईका लेप लगानेसे विकार हठ स्थान पर चला जाता है। इस तरहके प्रयोगोंको दोषाकर्षण (Reversives or Derivatives) संज्ञा दी है।

५. इतर गुणदर्शक विभाग।

उपरोक्त १०१ गुणदर्शक भागोंके अतिरिक्त प्रमेहहर, पूयमेहहर (Antigo norrhoeis), मूत्रसावरोधक (Antidiuretics) अस्मरीनाशक (Antilithics-Lithontriptics), किरंगहर (Antisyphilitics) स्वरहर (Antituberculars), रक्तपिचनारक (Antiscorbutics), भ्रमनारक (Antidemics), केशरक्षक, केशरक्षक (Hair dye-Hair blackeners), केशघ्न (Depilatories), गर्भ त्यागक, गर्भपातक (Abortifacients), गर्भोत्पादक (Impregnation), संततिनिरोधक (Birth-controllers) आहादनक (Exhalarants), मूत्रच्छाहर, कर्णोन्मिष पर कार्यकर, घ्राणोन्मिष पर कार्यकर तथा परस्पर विरोधी औषधियाँ (Antagonists) आदि-आदि विभाग हो सकते हैं।

ऊपर अस्मरीनाशक औषधियाँ कही हैं उनमें जो अस्मरीकी उदात्तिये रोकती हैं उनको आण्टिलिथिक और मूत्राशय आदिमें उत्पन्न शर्करा, सिक्का या अस्मरीको पिघला कर नष्ट करती हैं, उनके क्षिपोसिद्धिच्छक-संज्ञा दी है।

मूत्रावरोधकके साथ कितनीही मूत्रप्रवर्धनीय यूरिन डिमिनिशर-Urine diminisher) औषधियाँ भी हैं। उदाहरणार्थ, अक्षीम, जसदमस्म, तगर, जामुनकी छाल, आमकी छाल, पीपलबुदकी छाल, पिलखनकी छाल, बेंतकी छाल, गुन्गरकी छाल, मेलच्छाल, बेलपत्र, मिसावे, कचनारकी छाल आदि ये सब मूत्रका हाव करती हैं।

विपाक

जाठरेणाग्निना योगाद् धतुदेति रसान्तरम् ।

रसाना परिणामान्धे स विपाक इति सूत्र ॥

जठराग्निसे सम्बन्धसे खाये हुए अन्नके मधुर आदि रसोंका पाक होकर जो रसान्तर (रस बिरोप) उत्पन्न होता है, उसे विपाक संज्ञा दी है।

आयुर्वेदके मत अनुसार सेवन किये हुए आहारका पाक द्विविध होता है। १ अन्नस्थापाक (आहार पाक, २ निष्ठापाक (विपाकघातवग्नि पाक)। अन्नस्थापाकको नभ्य चिकित्सा शास्त्रकी मर्यादा अनुसार भौतिक और रासायनिक रूपान्तर (Transformation or Physical and Chemical Changes) तथा विपाकके पचनक्रियाके अन्तमें उत्पन्न सत्वरूप रसद्रव (Final Product of digestion) नाम दिया है। यह रस विराममें प्रसिद्ध होकर रक्तके साथ मिलकर हृदयमें गमन करता है।

अन्नस्थापाक—खाया हुआ जो अन्न मुखमेंसे आगे कण्ठ (ग्रसनिका और अन्ननलिका), आमाशय और पन्थाशयमें गति करता है। वह प्राणवायुके बलसे केंद्रमें पहुँचता है, उसमें क्लेदक रूप सम्मिश्रित होता है जिससे उसका संघात नष्ट होता है। मंथन क्रिया द्वारा छोटे कण बन जाते हैं, तथा कफकी स्निग्धताके कारण वह मृदु भी बनता है। यदि योग्य मात्रामें पच्य आहारका सेवन हुआ हो तो आसुकी वृद्धि करने (शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धिको पुष्ट बनाने) के लिये उसका उपयोग होता है। पहिले मधुर रसमेंसे म्लान सट्टण मलरूप कफकी उत्पत्ति होती है। फिर आमाशयके भीतर पाक कालमें और अन्तमें जानेके समय विदग्भावस्थामें पच्य अपच्य अम्ला होनेवाले रससे मलरूप ही उत्पत्ति होती है, तथा अन्तमें पन्थाशयमें प्रसिद्ध आहारमेंसे जठराग्निसे शोष्यमाण और पाक होकर जो पित्तकी मात्राको प्राप्त होता है, उस आहारमेंसे उद्भूत कट्ट रससे मलरूप घातकी उत्पत्ति होती है। इस तरह पच्यरसमें आहारसे त्रिविध अन्नस्था (ग्राम, पच्यमान और पन्थावस्था) पाक होते हैं। भात और मल, इन दोनोंके स्वरूपमें कुछ अन्तर है। खाये हुए अन्नका परिपाक होनेपर किट्ट और सारभाग पूर्य होता है। उनमें जो सारभाग है, वह रसघात (इस रसघातमेंसे पुनः घात पाक होकर रक्त आदि घातका निर्माण होता है) और शेष रहा हुआ किट्ट, वह मल है।

विपाक अन्नस्था पाककी अपेक्षा विशिष्ट पाकको विपाक कहा है। यह विपाक अन्नस्था पाक हो जानेके पश्चात् प्रारम्भ होती है। ये विपाक महर्षि आश्रेय और श्री. वात्सनाचार्यके मत अनुसार त्रिविध है। चरक संहितामें लिखा है कि—

कटुतिक्तकपायाणां विपाकः प्रायशः कटुः ।

अम्लोऽम्लं पच्यते स्वादुर्मधुरं जयगुस्तथा ॥

चरणरे, कड़वे और कसेले रसका विपाक प्रायः चरणर ; लहटे रसका प्रायः चरा तथा मधुर और लवण रसका प्रायः मधुर विपाक होता है।

किन्तु किठनीही श्रीषषियाके लिये इस नियमका भंग होता है। अलावा समय, देश और कृति मेदसे भी विपाकमें परिवर्तन हो जाता है। जैसे फुलपी और शरद ऋतुमें उत्पन्न होनेवाले चावल मधुर हैं परन्तु उनमेंसे विपाक खटा हो जाता है। हरक कसैली, आवले और अनारदाने खटे तथा पीपल और पटोल कहवा अदरक चरपरी है, परन्तु इन सबका विपाक मधुर होता है। अनिया और वहेकेमें कसैला रस, पीण्णारमें कडुघारस तथा हरी कालीमिर्च, प्यास और लहसुनमें चरपरा रस होनेपर भी इन सबका विपाक मधुर होता है।

लघुसका विपाक मधुर होना चाहिये, किन्तु फालानमकका विपाक कट्ट होता है। इस तरह तैलका विपाक मधुर नहीं होता किन्तु कट्ट हो जाता है।

मधुर विपाकसे कफ, अम्लसे पित्त और कट्टसे वात उत्पन्न होता है, और मधुर विपाकसे वात-पित्तशमन, अम्ल विपाकसे वातकफ शमन, तथा कट्ट (चरपरे) विपाकसे पित्त-कफ शमन होता है।

कट्टविपाक धीर्यनाशक, मलमूत्रको, बांधनेवाला और वातबद्धक है। मधुर विपाक मल मूत्रका त्याग तथा कफ और शुक्रको वृद्धि करता है। अम्ल विपाक पित्तकर मल-मूत्रका त्याग करनेवाला और शुक्रनाशक है। इन, तीनों विपाकोंमेंसे मधुर विपाक गुह तथा कट्ट और अम्ल विपाक लघु होते हैं।

मगवान् धन्वन्तरि और नागाइनके मतमें गुह, लघु अदसे विपाक २ प्रकारके हैं। यह विपाक मधुर आदि पखरोंका नहीं, किन्तु यह महाभूतमय द्रव्यका होता है। पृष्ठी, बलकी अभिक्रिया होनेपर गुह तथा अग्नि, वायु और आकाशकी अभिक्रिया होने पर लघु। इन गुह और लघुको मधुर और कट्ट संज्ञा भी दी है। ये मधुर और कट्ट शब्द गौण और पारिभाषिक हैं। अर्थात् इनका मुख्यार्थ रूप मधुर और कट्ट रससे तात्पर्य नहीं है। इस तरह त्रिविध और द्विविध विपाक दोनोंका तात्पर्य समान है, केवल समझानेका षैलीमें अन्तर है।

इन दो प्रकारके अतिरिक्त प्राचीनकालमें रससदृश विपाक, अनिबल विपाक आदि महात्तर थे। किन्तु वे सब मुक्ति और अनुभव दृष्टिसे सद्योप होनेसे उनके मतका प्रचार नहीं हो सका।

त्रिविध विपाकभादीके मत अनुसार कट्ट विपाकसे विशेषतः शुक्रनाश, मल-मूत्रावरोध और वातघातका निर्माण, ये ३ क्रिया होती हैं। कट्ट, तिक और कपाय, ये तीनों रस उत्पन्न, मध्यम, अमममात्र होनेसे वायु, मूल (शुक्र भी) और मलका त्याग प्रायः दुःसपूर्वक होता है। अम्ल विपाकसे शुक्रनाश, मलमूत्र शुद्धि और पित्त घातकी उत्पत्ति, ये ३ क्रिया; तथा मधुर विपाकसे शुक्रोत्पत्ति, मलमूत्रकी शुद्धि और कफ घातका निर्माण ये ३ क्रिया होती हैं। मधुर, लघु और अम्ल

ये तीनों रस उत्तम, मध्यम और अधमभावसे स्नेह गुण युक्त होनेसे वायु, मूत्र और मलका त्याग सुखपूर्वक कराते हैं। प्रायः कहनेसे अम्लरस प्रधान कपित्य प्राहो है।

इस त्रिविध विपाक वादोंके मत अनुसार गुग्गुलु आदि मधुर रसवाले द्रव्यका मधुर विपाक कहा है। उसका यह अर्थ नहीं होता कि, मधुर विपाकवाले द्रव्यसे श्लेष्म भातकी ही केवल उत्पत्ति होती है तथा पित्त और वातकी नहीं। यथायंमे तीनों घातुओंकी उत्पत्ति और पुष्टि होती है। सब द्रव्योंमें पित्त रस सम्मिलित रहते हैं, इस हेतुसे मधुर विपाकके साथ गौण रूपसे कटु और अम्ल विपाक होते हैं। इस तरह कटु और अम्ल विपाकके साथ मधुर विपाक भी गौण रूपसे रहता है।

विपाक में सम्यक् और मिथ्या, दो प्रकार होते हैं। सम्यक् विपाक होने पर गुण और मिथ्या विपाक से दोषोत्पत्ति होती है। सम अग्नि से सम्यक् पाक तथा मंद और तीक्ष्ण अग्नि से मिथ्यापाक (हीनपाक और अतिपाक) होता है। हीनपाक से आम विकार तोक्ष्यपाकसे मलमकविकार तथा समपाकसे घातु साम्यरूप आरोम फलकी प्राप्ति होती है। सम्यक् विपाक और मिथ्याविपाकका अर्थ दूसरे प्रकारसे भी टीकाकारोंने किया है। द्रावगुणानुरूप निष्ठापाक को सम्यक् विपाक तथा उसके विपरीत होने पर मिथ्याविपाक कहा है। जैसे चिर्नक रसमें और पाकमें कटु है वह सम्यक् विपाक, पिप्पली रसमें कटु होते हुये भी मिथ्यामें मधुर होती है। सामान्यतः सम्यक् विपाक और मिथ्या विपाक उत्पन्न होने पर गुण और दोषकी उत्पत्ति होती है। सम्यक् विपाकवाले चित्रकका पाक होने पर अग्निर्दीपन आदि गुण तथा कुछ मूत्रारोघ आदि दोष उत्पन्न करता है। मिथ्या विपाकवाली पिप्पलीका विपाक होनेपर शुक्रवर्धन आदि गुण तथा प्रकरोद्जनन आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

द्विविध विपाक वादोंके मतमें गुरुपाक वातपित्तजन और लघु पाक श्लेष्मजन है। विपाक सर्वदा परोक्ष है। अतः गुरु पाकका ज्ञान मल-मूत्र त्याग और कफके उरभ्रंशेय द्वारा तथा लघु पाकका ज्ञान मल मूत्रारोघ और वातप्रकोप द्वारा होता है।

विपाक परिवर्तन—द्रव्यका परिमात्र संस्कार, सप्तम्य, अग्निबल, देश, काल, संयोग और पाक विशेष्य भेदसे विपाकमें विपरीतपन हो जाता है। जैसे दूध गुरु विपाकवाला होनेपर भी याका होनेपर लघुपाक होता है, चावल लघुविपाक होनेपर भी अति या लेनेपर गुरुपाक होता है। संस्कार गुरुविपाकवाला द्रव्य दीपन संस्कार से लघुविपाकवाला होता है। सात्व्य—दूध जिसे पच्य हो उसके दूध का विपाक लघुविपाक वाला बनता है। अग्निबल—तीक्ष्णाग्नि होनेपर गुरुविपाकवाले आहार का भी लघुविपाक होता है। देशविशेष—जांगल देशमें गुरुविपाकवाला आहार प्रायः लघु विपाकवाला अर्थात् शीघ्र पचन होने योग्य बन जाता है। इससे विपरीत अन्य देशमें लघुविपाक-

वाला आहार भी देर से पचता है। काल-श्रीम कालमें गुह हो वे धर्पा और हेमन्त-
में लघु बन जाते हैं। संयोग विशेष-सौठ मिलाकर गरम किया हुआ दूध लघु
विपाकवाला हो जाता है। पाक विशेष-जला हुआ या अदपका द्रव्य लघु होनेपर
भी देरसे पचन होता है तथा गुह होनेपर भी सम्यक् पकाया हुआ दूध सत्वर
पचता है।

यदि यही विचार नव्य चिकित्साशास्त्र को भाषामें दिया जाय, तो मोहन
करनेपर मुखमें लास्यारस मिल जाता है। फिर पहिले लुग्माम्ल (Lactic acid)
और पश्चात् आमाशयिकरस (Gastric juice) सम्मिश्रित होकर पचन क्रिया
होती है। उस समय सब आहार सहा बन जाता है। फिर अर्धपाकित आहार
अन्त्रमें जाता है, उसके साथ बफक्ति, (Bile), आम्नेय (Pancreatic
juice) और अक्रस (Succoentericus) मिल जाता है। जिससे सब
आहार रस रूपान्तरित होकर नमकीनता बन जाता है। फिर बसामधान द्रव्योक्त
पचन हो जाता है। इस तरह आहार पर त्रिविध क्रिया होनेसे योग्य परिपाक
(Assimilation) होता है। दूधमरस भाग बनता है, यह शिरायें या पयस्विनीमें
प्रविष्ट होकर हृदयकी ओर गति करता है; तथा मलभाग मल-मूत्रके रूपमें बाहर
निकाश दिया जाता है।

नव्यविज्ञानके परीक्षक अनुसार प्रथिनो (Proteins) मेंसे पाक होकर
अमिनो अम्ल (Amino acid), कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrates) या
श्वेतसारप्रधान पदार्थोंमेंसे ग्लूकोस (Glucose) तथा लिपि वृत्त-तैल
आदिमेंसे अरुसप्रधान घिसाम्ल और ग्लायसेरोल (Fatty acid and glycerol)
का निर्माण होता है। इनके अमिनो अम्लरस को सुभ्रतमत अनुसार गुह तथा शेष
शर्करा, वसाम्लरस विपाकको लघु कह सकेंगे।

आहार का निष्ठापाक होकर रसपात्र बनकर रक्तमें प्रविष्ट होनेके पश्चात् भी
पांच भूतानि और सात धात्वानि द्वाय विपाक होनेपर ही रक्तादि वातारूप परिवर्तन
होता है। ये सब अग्नि अडरागिनके आश्रित हैं। नव्य चिकित्साशास्त्रमें उसे
रासायनिक परिवर्तन (Metabolism) कहते हैं।

वीर्य

महर्षि आश्रयेने 'यिन कुवन्ति तदीर्यम्' अर्थात् जिस रस, विपाक, प्रमाण
या गुणसे वृत्ति, आनन्द या धामन आदि रूप क्रिया होती है, उस क्रियाके उस रस
विषये वीर्य करते हैं। इस पचन रस द्रव्यमें रही हुई कार्यकारिणी शक्ति (क्रिया-
सामर्थ्य, Potency) को वीर्य संज्ञा दी है। संसारमें जो कुछ कार्य होते हैं

वे सब बीर्यसे ही होते हैं। बीर्यके अभावमें कुछ भी क्रिया नहीं हो सकती। इस प्रकारकी व्याख्या करनेवालोंको शक्तिरूप बीर्यवादी या बहुबीर्यवादी कहते हैं।

मगधान् घन्वन्तरिणो, बृद्धवाग्मृत् आदिने उत्कृष्ट शक्तिसम्पन्न गुरु आदि आदि आठ वा शीत-उष्ण, इन दो गुणोंको ही बीर्य संज्ञा दी है। इस मतवालोंको पारिभाषिक बीर्यवादी या गुणबीर्यवादी कहते हैं।

अष्टविध बीर्यवादीके मतमें शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुच, मृदु, तीक्ष्ण, पिच्छिल और विशद, ये ८ गुण विरह्यायी हैं, अर्थात् जिस तरह मधुर आदि रस-गुण जठरग्नि संयोग (पाचक पित्तका संमिश्रण) होने पर अपने स्वभावको छोड़कर या अन्यथा भावको प्राप्त हो जाते हैं, उस तरह ये ८ गुण स्वभाव त्यागी नहीं होते। ये रस विपाक और इतर गुणोंका परामत्र करके अपनी विशेषता दर्शाते हैं। इसलिये इन अष्टगुणोंको ही बीर्य संज्ञा दी है, यह सार्थक है।

इन अष्टबीर्यमेंसे तीक्ष्ण और उष्ण आग्नेय, शीत और पिच्छिल जलप्रधान, स्नेहगुण पृथ्वी और जलकी अधिकतावाला मृदुगुण जल और आकाशकी अधिकतावाला, रुचवायुकी अधिकतावाला, विशदगुण पृथ्वी और वायुकी अधिकतावाला है।

उष्णबीर्य के कर्म—दहन (जलाना), पाचन, मूर्च्छालाना, स्वेदन, वमन, विरेचन तथा घात और कफका शमन करना है। शीत बीर्यके—मुलादेना, शोषन, वृद्धि, घृणा (भ्राना) स्थिर करना, रक्त आदिका प्रसादन (स्वच्छ करना), भस्म उत्पन्न करना और वेहोश आदिको शशा देना, ये कार्य हैं। स्निग्धबीर्यके—स्नेहन, वृहण, तर्पण (वृष्टि, पोषण) याजीकरण, वय स्थापन, और घातशमन ये ३ कार्य हैं। रुचबीर्य के—वातवृद्धि, कफनाश, प्राही, पीडन (त्र्य पीडन), रुचतालाना और नष्टका रोपण ये ३ कार्य हैं। विशद बीर्यके—स्नेहरोपण, शुष्कतालाना, नष्टरोपण और कफ शमन ये ४ कार्य हैं। पिच्छिलबीर्यसे विपरीत गुणवाला है। पिच्छिल बीर्य जलप्रधान है। प्राणधारक, जलप्रद, मन्सघानकारक, क्षिन्नब्रह्मसंशोषक, कफघर्षक और गुरु है। एवं चिकनाइट लाना, पूरक (आमाराय आदि का भरना), वृहण, बाजीकरण और विशमन कर्म करता है। मृदुबीर्यके रक्त-मांसका प्रसादन, स्पर्श करनेमें मुलायम तथा पिचनार, ये ३ कर्म हैं। तीक्ष्णबीर्यके प्राही, शोषण, त्र्य विनाश, कफसाधी और कफनाश, ये ५ कर्म हैं। संक्षेपमें उष्ण और स्निग्ध, वातहर, शीत मृदु और पिच्छिल, पित्तहर तथा तीक्ष्ण, रुच और विशद छेप्पहर है। मृदु, शीत और उष्ण स्पर्शद्वारा विदित होनेवाले; पिच्छिल और विशद दृष्टि और स्पर्शसे विदित होनेवाले स्निग्ध और रुचका बोध नेत्रसे होता है तथा तीक्ष्णबीर्यका बोध मुख और नाकमें सुख-शुखकी प्राप्ति द्वारा होता है।

द्विविध धीमवादिभ्योः मत्तमं चेतना चेतन और व्यक्याव्यक-वित्त्यमें सब द्रव्य अग्निसोमीय (पांचमौतिक) हैं । इन मूतामें दूधरौकी अपेक्षा अग्नि और सोम (जल) मलयचर होनेसे सब द्रव्योंपर इनका अधिक प्रभाव पड़ता है । एवं काल मी उष्ण शीतमेदसे दो प्रकारका है । अतः अग्नि प्रधान उष्णधीय और सोमप्रधान शीतधीय, ये दो ही धीर्य मानना चाहिये ।

मधुर आदि पदरस द्रव्यों के विपाक और शीतोष्णधीर्यमें क्या मेद है ! इस बातको समझनेके लिये चरकसहिताकार कहते हैं कि—

रसो निपाते द्रव्याणां विपाकं कर्मनिष्ठया ।

धीर्यं यावद्धीवासाभिपाताच्चोपलभ्यते ॥ (सू० स्या० २६।६८)

द्रव्योंके रसोंका बोध निपात (जिहापर डालने) से, विपाकका शान कर्म निष्ठा (अवस्थापाक और निष्ठापाकका शान मल-मूत्र उकार, अपचन आदि क्रिया) से, तथा धीर्यका निपात अधिवास (शरीरमें अवस्थान पर्यन्त होनेवाली क्रियाओं और निपात द्वारा रसनेन्द्रिय, प्राणोन्द्रिय या त्पगेन्द्रियके सम्बन्धके साथ) होता है । सामान्यतः जब द्रव्यका जिहासे स्पर्श होता है, तब उसी समय द्रव्यमें रहनेवाले रस और अनुरसका शान हो जाता है । फिर द्रव्योंके परिपाक हो जानेके अनन्तर कफ, पित्त, मल-मूत्र आदिकी उत्पत्ति, उकार आना, अपचन होना-न-होना, घृषा लगना न लगना, स्फूर्ति या आलस्यकी प्राप्ति होना आदि कर्मोंपरसे अनुमान द्वारा विपाकका बोध हा सकता है तथा पारिभाषिक (गुणप्रधान) धीर्यके बोधमें अधिवास और निपात दो साधन हैं ।

जैसे आनुपदेशमें रहनेवाले पशु-पक्षियोंके मांसमें, मछलियोंके मांसमें उष्ण-धीर्य होनेका अनुमान अधिवास (घातुओंमें प्रवेश) तक होनेवाली उनकी क्रियाओंपरसे होता है । एव कितनेक मिर्च, राई, आदि द्रव्योंके धीर्यका बोध निपात और अधिवास, दोनोंसे होता है ।

सामान्यतः जो द्रव्य रस और विपाकमें मधुर हो उसे शीतधीर्य रस और विपाकमें आम्ल हो उसे उष्णधीर्य तथा रस और विपाकमें जो कटु हो उसे मी उष्णधीर्य समझना चाहिये । इस तरह रसोंसे धीर्यकी शक्तिका परिचय होता है । किन्तु इस नियममें किछनेक अपवाद भी हैं । ऐसे अपवादात्मक द्रव्योंके कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं ।

शुद्ध पंचमूलमें कपावरस और तिक्त अनुरस होने पर मी उष्णधीर्य होनेसे वायुको शमन करता है ।

कुलथीमें कपावरस और प्याजमें कटुरस होनेपर मी स्निग्धधीर्यके हेतुसे ये घात शमन करते हैं । परन्तु ईसमें मधुर रस होनेपर मी शीतधीर्य होनेसे यह वायुको उड़ाती है ।

पीपलमें कटुरस, अर्वालेमें अम्लरस और सैधानमकमें लवण रस होनेपर भी मूत्र और शीतवीर्यके हेतुसे पित्तको शमन करते हैं। (कटुरस बहुधा अम्ल माना गया है, किन्तु पीपल और सोंठ दृश्य हैं)।

काकमाची (मकोय) में तिक्तरस और मधुरस्त्रीमें मधुररस होनेपर भी उष्णवीर्यके हेतुसे पित्तको घटाते हैं। मूली कटुरस प्रधान होने पर भी स्निग्ध बीर्यके हेतुसे कफका घटाव होता है। कैय अम्लरस प्रधान और शहद मधुर रसप्रधान होनेपर भी रुचबीर्यके हेतुसे कफका शमन करते हैं।

मुलाहठी, मधुर और शीतवीर्य होनेसे नेत्रोंको हितकर है; एवं लौंग, सफेद मिर्च और पीपल चरपरे होनेपर भी शीतवीर्य होनेसे नेत्रोंके लिये आमदायक हैं। परन्तु सोंठ उष्णवीर्य होनेसे नेत्रोंको हितकर नहीं है। सोंठ विशेषतः कफनाशक और आमपाचक है।

कपायरस प्रायः स्वप्न और शीतवीर्य माना गया है किन्तु इरीतकी कवेली होने पर भी उष्णवीर्य और भेदन है।

वीर्यका सामान्य परिचय देनेके लिये प्राचीन शास्त्रकारोंने लिखा है कि, स्नेह और मृदुवीर्य जिस जिस औषधिमें होवे, उसमें प्रायः वमन अथवा विरेचन करनेकी शक्ति होती है। परन्तु बूचके साथ यदि मधुर रस होवे, तो उसमें शरीरको पुष्ट करनेकी शक्ति होती है। कटुरसप्रधान औषधि प्रायः पित्तशामक होती है, परन्तु वह कटार होवे, तो शरीरको पुष्ट बनाती है। कसैला रसप्रधान औषधि हृदयको प्रायः हानि पहुँचाती है, परन्तु उस गुणमुक्त औषधिमें यदि मधुररस भी होवे, तो वह हृदयको हितकर होती है।

जो रस वातशामक है, उसमें रुद्धता, क्षुब्धता और शीतलता हो, तो वह वायुको शान्त नहीं कर सकेगा। पित्तशामक रसमें तीक्ष्णता, उष्णता और क्षुब्धता हो, तो वह पित्तशमन नहीं कर सकेगा। कफशामक रसमें स्निग्धता, गुस्ता और शीतलता हो, तो वह कफशमन नहीं कर सकेगा बल्कि वह कफकी वृद्धि ही करेगा। अतः इन सब कार्योंमें वीर्य ही प्रधान माना जाता है।

शक्तिबीर्यवाद और गुणवीर्यवादके अतिरिक्त चौथरा मत नागाह्वेन और निमिष्वादि आचार्योंका है। इनके मतमें कर्मलक्षण (फललक्षण) बीर्य है। इस मतमें अनेक प्रकारके औषध ब्रह्म (Active Principles) को वीर्य माना है। क्षुब्धीय, अनुलोमनीय (विरेचन), उमयतामाग (वमन-विरेचन करनेवाले), प्रशमन, (महद और प्रकुपित दोषघात और मलोके साम्यकर), संग्रहण (प्राणी), दीपन, प्राण्य (मारक), मदन (मदकर), विदारण (शोथके फोड़नेवाला), शोथकारक, शोथविलिनन, मेघजनन, आसुरदक, दृश्य, वयस्यापन, वचंस (वर्षजनन), रघोपन (राघवोंके नाराक), पुंसवन (पुत्रोत्पत्तिकर), सौभाग्यकर

(दूसरोंके प्रीतिपात्र होनेके लिये रूपवान बननेवाला), विशाल्यकर (शरीरमेंसे शल्य निकालनेवाला), विमोक्षकर (बंधन आदि बंधनसे मुक्तिकर), उन्मादकर, मत्त्र्यकर (मत्तवृत्तता खानेवाला), धशीकर (द्रोणोत्पत्ति करानेवाला), प्रवासन (स्थानसे निकालनेवाला) आकर्षक, आन्तर्भान्जिक (आहार्य करनेवाला), पीष्टिक (घन आदिकी प्रात करानेवाला) और रागहारिक (रागको धशीभूत करनेवाला) आदि कार्य उस प्रकारके धर्म द्वारा होते हैं। यह सब प्राणिक विशयके अधिक अनुकूल है। इन विशिष्ट धर्मोंके अस्तित्वके हेतुसे समान रस, गुण, विपाकवाले द्रव्योंके औषधक्रिया (Pharmacological action) में विभिन्नता होती है।

सर्वनीय धर्म अग्नि और वायुसे उत्पन्न होनेके हेतुसे ऊर्ध्वगमन और गति करानेके स्वभाववाला होता है, यह मधुरादि सब रसोंका आश्रय करके रहता है। अनुलोमनीय धर्म पृथ्वी और जलसे उत्पन्न होता है, सब रसोंके आश्रित है तथा पृथ्वी प्रधान होनेसे अधोगति कराता है और जलात्मिक होनेसे द्रवपना छा देता है। उभयतोभाग धर्म वायुके कट्टिक और कषाय, रस तथा पित्तकी उत्पत्ति करनेवाले तीक्ष्ण, उष्ण और लघु गुण इन सबका आश्रित है। यह धर्म पृथ्वी, जल (ये गुण) तथा तीक्ष्ण और वायु (ये लघु) से उत्पन्न होता है।

प्रशमन धर्म वात, पित्त और कफके अपने अपने रसों और गुणोंसे विपरीत रस गुणोंके आश्रयसे रहता है। जैसे मधुर, अम्ल, लवण ये रस तथा गुण, उष्ण, स्निग्ध और पिच्छिल, ये गुण, इनका आश्रित धर्म वातको शमन करता है। यह धर्म पृथ्वी, जल, अग्निसे उत्पन्न होता है।

सामाहिक धर्म लवणको खोकर शेष ५ रस तथा तीक्ष्ण और उष्णको खोकर शेष-गुणोंका आश्रित है तथा पृथ्वी और वायुसे उत्पन्न होता है। शीतोष्ण पित्तोत्पादक कट्ट, अम्ल और लवणरस तथा तीक्ष्ण, उष्ण और लघुगुणका आश्रित है। यह धर्म आग्नेय और वायव्य है प्राणन धर्म शीत, मृदु, स्निग्ध, विकारी इन गुणों तथा सर्व रसोंके आश्रित है। एवं यह अग्नेय है। उष्ण, सूक्ष्म, तीक्ष्ण और विकारी, विशद, लघु, व्यपायी, रुक्ष और शीत ये ९ गुण विकके रहे हैं। प्रदारण (विदारण) धर्म पित्तवर्द्धक कट्ट, अम्ल, लवण, ये रस तथा तीक्ष्ण और उष्ण गुणका आश्रित है। यह पार्थिव और आग्नेय है।

अधुनान (शोथोत्पादक) धर्म मधुर और कषायके अतिरिक्त ४ रस तथा तीक्ष्ण, उष्ण और रुक्ष, इन गुणोंको आश्रय करके रहता है। यह अग्नि और वायुका विस्फेपणकर उष्ण उठकर शोथकी उत्पत्ति करता है। विस्फेपन (शोथन) धर्म सर्व रस तथा शीत, मृदु और पिच्छिल गुण इनका आश्रित है। यह जल और पृथ्वी प्रधान है।

शोधन (वमन, विरेचन, आस्थापन वस्ति) वीर्य किसी एक दोपके लिए व्यवहृत होता है, प्रयुक्त होनेपर इतर दोषोंको भी दूर करता है। उदाहरणार्थ श्लेष्महर सार्य व्यवहृत वमन पित्तको भी हरता है। पित्तहरणार्थ प्रयुक्ति विरेचन घात और कफको भी दूर करता है।

सांम्राहिक वीर्य पार्यिय और धायव्य होनेसे पित्त और श्लेष्मका प्रशमन करता है। तीक्ष्ण और उष्णके अतिरिक्त गुण और लवणके अतिरिक्त रस द्वारा पित्तका निग्रह करता है। तथा रौक्ष्य और विशद गुण द्वारा श्लेष्मका निग्रह करता है।

प्राणहनन, मदन और प्रदरण, ये वीर्य सब दोषोंको प्रकुपित करते हैं। स्वपुष्जनन वीर्य वातपित्तका प्रकोप करते हैं। विलयन वीर्य सब दोषोंका प्रलयन तथा वातशोफका प्रशमन करता है।

मेघ्य आदि अनेक वीर्य किन रसों, गुणों और भूतोंका आभय करते हैं वह निर्दिष्ट नहीं हो सकेगा। कितनेक मन्त्रमम वीर्य हैं, जो मूत समुदायसे सम्बन्ध रहित होनेसे अचिन्त्य हैं। इन सबके कर्मफलको देखकर अनुमान हो सकता है।

प्रभाव।

(स्पेशिफिक अॅक्शन Specific Action)

रसवीर्य विपाकानां सामान्य पत्र लक्ष्यते।

विशेष कर्मणां चैव प्रभावस्तस्य स स्मृत ॥

किन्तु द्रव्यमें रस, वीर्य और विपाक, इनका सामान्य अर्थात् उसके रसका कार्य, उसके विपाकका कार्य तथा उसके वीर्यका कार्य, इन सबके समान जितना कार्य हो, उसकी अपेक्षा जो विशेष कार्य प्रतीत हो, उसे उस द्रव्यका प्रभाव कहते हैं, अर्थात् द्रव्यीका जो विशिष्ट स्वभाव है, वही प्रभाव है। इस प्रभावको पांच भौतिक संगठन तथा रस, विपाक, वीर्यके कार्योंसे अचिन्त्य, अमीमांस्य माना है। उदाहरणार्थ चित्रक रस और त्रिपाकमें कटु तथा उष्णवीर्य है, उसका कार्य सामान्य है। क्योंकि कटुरस, कटु विपाक तथा उष्णवीर्य, इन तीनोंका कार्य प्रतीत होता है। इससे अधिक कर्म दृष्टिगोचर नहीं होता, उसी तरह दन्ती भी रस और विपाकमें कटु तथा उष्ण वीर्य है। इन रस, विपाक और वीर्यके कर्म शुक्रहनन, मल मूत्राशोष, ये सामान्य हैं, किन्तु दन्तीमें उसके प्रभावके हेतुसे विरेचन कर्म प्रतीत होता है।

• द्रव्यकी कार्य कारिणी शक्तिको वीर्य कहा है। इस शक्तिके २ प्रकार हैं।

१ चिन्त्य, २ अचिन्त्य। द्रव्योंके पांच भौतिक संगठन, रस, गुण, विपाक द्वारा कर्मके साथ कार्य-कारणरूप सम्बन्ध को दर्शासके, उसे चिन्त्यशक्ति या बोधसंज्ञा दी है। जो द्रव्योंके कार्य-कारणरूप को न दर्शा सके, उसे अचिन्त्य शक्ति या प्रभाव कहा है।

विप विपन्न (विरोधी विपका नाशक) है, जंगमविप स्थावरविपको और स्थावरविप जंगमविपको दूर करता है। कारण, ये दोनों विरुद्ध गतिवाले हैं। जंगमविप ऊर्ध्वगति करता है और स्थावर अधोगति। यह गति विपर्यय रूप कार्य उनके प्रभावसे होता है।

कितनेक द्रव्य मैनोऋत आदि ऊर्ध्वमागहर, कितनेक विदूत आदि अधोमागहर और कतिपय द्रव्य समन विरेचन दोनों क्रिया करनेवाले हैं। ये ऊर्ध्वोपगति प्रभावके हेतुसे होती है।

कुचिला और अफीम, दोनों तिक्त, रुख और उष्णवीर्य होनेपर भी दोनोंके प्रभाव परस्पर विपरीत है। कुचिला निद्राहर और उष्णक तथा अफीम निद्राप्रद और श्रवसादक है। महुवेका फूल और मुनफा, दोनोंके रसादि समान होनेपर भी मुनफा विरेचन कराता है और महुवेका फूल नहीं कराता। घृत और दुग्ध, दोनोंमें समरस रहनेपर भी घृत दीपन है- और दूधमें दीपन गुण नहीं है। गेहूँ और जौ, दोनों मधुर और गुण हैं, किन्तु गेहूँ वातहर और जौ वातकारक है। मखली और दूध, दोनों मधुर और गुण गुण्यसुक्त हैं; तथापि मखली उष्णवीर्य और दूध शीतवीर्य है। एवं सुवर्ण आदि वातुओंसे कायकारणका सम्बन्ध न मिलने पर भो-मिन्न भिन्न परिष्कार प्रतीत होते हैं। अतः ये प्रभावके हेतुसे ही होते हैं, ऐसा मानना पड़ेगा।

सहस्रन कटुरस और कटुविपाक द्वारा कफको तथा स्निग्धत्व और गुरुत्व प्राय वातको जोड़ता है किन्तु अपने गुणों प्राय वात-कफकी उत्पत्ति नहीं कराता। सहस्रनमें कटुरस विपाक कफ छेदनमें पर्याप्त है किन्तु वातकरत्वके लिये नहीं। पर्य स्निग्धत्व और गुरुत्व प्राय जित्यमें द्रव्य प्रभावसे पर्याप्त है किन्तु रसेष्मकरत्वके लिये नहीं।

रक्तशालि परस्पर विरुद्ध गुणवाले वात, पिच और कफ, इन तीनों दोषोंको नाश करता है किन्तु ययक इनकी उत्पत्ति कराता है, यह द्रव्यका प्रभावकर्म है। शिरीष, हरिद्रा आदि विपको नष्ट करते हैं। स्यन मेघ (बरल आना) आदि विपकी वृद्धि करते हैं, यह प्रमाय कर्म है।

वाजीकर द्रव्योंसे शीघ्र शुक्रोत्पत्ति, मदनफलासे बमन, हरितीक्ष्णसे विरेचन, आमलकीसे वात, पित्त, कफ का शमन, शंखपुष्पीसे मेघावृद्धि, रसायनोंसे आसुवृद्धि आदि काय प्रभावसे ही होते हैं।

सुवर्ण स्वयंके जन्तुओंका नाशक है। पारंश और सोमल उपदशके जन्तुओंको मारते हैं। गन्धक त्वचामें उत्पन्न होनेवाले जन्तुओंको नष्ट करती है। फिनाहन मलेरियाके जन्तुओंको नाश करता है। इन सब कार्योंमें कार्यकारण सम्बन्ध नहीं, मित्र

सकता । इसलिये प्रभावसे हो ये सब कार्य होते हैं । इस तरह प्राचीन आचार्योंने प्रमायका अचिन्त्य कहा है ।

श्रौपधियोंमें स्वामाविक, संयोगजन्य और प्रेरित, इन तीन प्रकारकी प्रामाविक शक्तिका परिचय होता है ।

स्वामाविक शक्ति उसे कहते हैं कि, श्रौपधियोंमें रस सम प्रकारके होनेपर भी एक श्रौपधि दूसरीसे विशेष प्रभाव दिखाती है । एक अथवा अधिक श्रौपधियोंके संयोगसे ज्ञानकी वृद्धि होती है, यह संयोगजन्य शक्ति है । जैसे यिपके संयोगसे पारद बुभुक्षित (स्वर्णका प्रास करनेकी शक्ति वाला) होता है । एष हरिद्रा चूनेके संयोगसे रक्तवर्णकी उत्पत्ति होती है । प्रेरित शक्ति मन्त्र, तन्त्र, यन्त्र, विधि, काल, देश, योग अथवा मनोबल द्वारा उत्पन्न या प्रेरित की जाती है । जैसे गायत्री आदि मन्त्रोंसे अमिमन्त्रित जल, दूध, फल, फूल, मिमी अथवा कोई इतर श्रौपधि अमिमन्त्रित करके खिलानेसे तत्काल रोग दूर हो जाता है ।

शास्त्रप्रथित विधिसे निश्चित समयपर लार्ई हुई सखेईकी जब शिरपर बांधनेसे ज्वर बला जाता है । सत्यानाशी, अपामार्ग, काकजंघा, ईंस्वकी उत्तर दिशाकी जब अथवा ठाककी उत्तर दिशाकी जब विधिपूर्वक लाकर स्त्रीकी कमरपर बांधनेसे तत्काल प्रसव सुखपूर्वक हो जाता है । आपामार्ग (अगो) के पत्ते (शाखा सहित) अङ्गुलमें बाँधकर गौ आदि पशुओंके पुच्छके साथ शिथ्योंकी कमरपर डोरीसे इस तरह बाँधेकि श्रौपधि योनि पर लटकती रहे, ऐसा करनेपर उसी समय प्रसव हो जाता है । ऊँटकारकी जब विधिपूर्वक लाकर शिरपर बाँधनेसे भी प्रसव सुखपूर्वक होता है । ये सब विधि द्वारा उत्पन्न प्रामाविक शक्तिके उदाहरण हैं ।

काचरा (सेंद) का फल दिवालीके पहिले पककर गिर जाय, तो कोई मोठा और कोई कटुवा भी रहता है, परन्तु दिवालीके पीछे जो पकते हैं, वे सब मीठे ही रहते हैं, यह काल प्रभाव है ।

हिमालयकी शिलाभीत और मेवाड़के पहाड़ोंमें निकलनेवाली शिलाजीतके गुणमें महद्व अन्तर है । बंगाल और ब्रह्मदेशके चावलके गुणमें भी प्रभेद है । ये सब देश प्रभावके उदाहरण हैं । हीरा, माणिक्य, पना, नीलम, पुष्कराज, मोती, विद्रुम, चन्द्रकान्त आदि मणि, मन्त्र और दिव्य श्रौपधियोंको धारण करने पर नाना प्रकारके कार्य सक्षमी और कीर्तिकी प्राप्ति, यशोकरण, दीर्घसुखकी प्राप्ति, प्रहरीषा शक्ति सन्धानोत्पत्ति, राक्षस आदिसे रक्ष्य, समान प्राप्ति, शत्रुओंका आकर्षण आदिकी सिद्धी होती है । अगद दर्शन आदिसे विपका नाश होता है ।

मन्त्र प्रमाण द्वारा भी कार्यसिद्धि होती है । जैसे योगवासिष्ठ महारामायणमें उत्पत्ति प्रकरणके ७० वें सर्गमें वशिष्ठ भगवान् विद्युच्चिका शमनार्थ विद्युच्चिकाको कर्ण्ये नामकी राक्षसीकी उपमा देकर कहते हैं कि:—

हिमात्रेरुत्तरे पार्ष्वे कर्कटी नाम राक्षसी ।
विषुचिकाभिधाना सा नाम्नाप्यन्यायबाधिका ॥

इस विषुचिकाके नाशके लिये निम्न प्रयोग दर्शाया है ।

‘ॐ ह्रीं ह्रीं रीं रीं विष्णुराक्षये नमः।’

‘ॐ नमो भगीयती विष्णुराक्षिमेनां ॐ हरहर नयनय पचपच मय मय उत्साव्य दूरे कुह स्वाहा हिमवन्त गच्छ सीध स स स चन्द्रमण्डल-
नासोऽसि स्वाहा ।’

इस मन्त्रको पत्र पर लिख बयि हाथसे ग्रहण कर उठी हाथसे रोगी पर मार्जन करें । पहिले भाषना करें, कि महाशक्तिके स्वाधीन रही हुई रोग शक्ति स्वस्थान हिमाञ्चलकी ओर प्रयाण करें । फिर रोगीके प्रथि कहे, कि पूर्वकालके पुण्य कर्मसे उत्पन्न इस विषुचिका रोगसे अभिमूर्ख हाकर चाहे मृत्युसे भी प्रसित हुआ हो, तो भी मेरी भावना द्वाय इस महाल मन्त्रकी सामर्थ्यसे जीवन अमृत पूर्ण चन्द्रमण्डलको तू प्राप्त हुआ है । जैसे प्रदीप्त अग्निमें आहुती डाली जाय, इस तरह तुम्हें (रोगी को) पूर्णचन्द्रमण्डलमें स्थानित करता हूँ; अर्थात् चन्द्रमण्डलस्य अमृत द्वाय तेरी जीवनीय शक्ति पूर्ववत् सञ्चल भावको प्राप्त हो जावे ।

इस तरह मेत्सेरेजम तथा हिनायइजम करनेवाले अफीम जैसे कड़ुषी जहरी बस्तु दूसरोंको मिथी कहकर लिखा देते हैं, तब खानेवालोंको स्वाद मिथीका ही आता है, और विषाक भी मिथीका ही होता है; यह मनोबल अथवा योगबल द्वाय प्रेरित प्रभाव है ।

इस तरह और भी सदृशों उदाहरण दे सकते हैं । संक्षेपमें भगवान् आश्रय कहते हैं कि ‘प्रभावोऽप्यन्त्य उच्यते’ अर्थात् प्रभाव अच्यन्त्य है । मौनब बुद्धि और मुक्तिसे उसकी सिद्धि नहीं हो सकती । जैसे अमालगोदा विरेचक है । यह विरेचक क्रिया क्यों कराता है ? यदि नम्यधिक्रिसक बर्ग अबाध देवें कि, यह अत्रफी पुरुसरस क्रिया और रससावकी वृद्धि कराकर मलको बाहर, फेंकनेकी क्रिया करता है, इसलिये यह रेचक है, तो फिर प्रश्न उपस्थित होता है कि, यह पुरुसरस क्रिया और रससावकी वृद्धि क्यों कराता है ? अमालगोदाके समान स्वादवाले वृक्षे द्रव्यमें यह गुण क्यों नहीं है ? सुवर्ण धूपके कीटाणुओंको क्यों मारता है ? और लोह आदि पात्रधोते यह कार्य क्यों नहीं होता ? इन प्रश्नोंका संतोषप्रद उत्तर नहीं मिलता । इस देवुसे अन्तमें कहना पक्ता है कि, यह उनका प्रभाव (कर्म विशेष) ही है, रस, गुण, बौर्य, विषाक और प्रभावोंमेंसे कार्य करनेका गुण किसमें है । इस सम्बन्धमें भगवान् आश्रये कहते हैं कि:—

किञ्चिद् रसेन कुरुते कर्म धीर्येण चापरम् ।

द्रव्यं गुणेन पाकेन प्रभावेण च किञ्चन ॥

कतिपय द्रव्य रस द्वारा कितनेही धीर्य द्वारा, कुछ गुणों द्वारा, कोई विपाक द्वारा और कतिपय प्रमात्र द्वारा कार्य करते हैं; अर्थात् द्रव्यमेदसे किसीमें रसका, किसीमें गुणका, किसीमें विपाकका और किसीमें प्रमात्रका प्राधान्य रहता है ।

रस, धीर्य, विपाक और प्रमात्र, इनमें जब बलको समानता हो, तब रसको विपाक, रस और विपाकको धीर्य तथा रस, विपाक और धीर्यको प्रमात्र हटा देता है । यहाँ पर जो बलवान् हो वही कार्य करेगा । परन्तु समफल होने पर उक्त क्रम रहेगा । यथा शहदमें रस मधुर और विपाकमें कटु है, अतः मधुर रसका कार्य कफादि सही होता, बल्कि कटु विपाकके हेतुसे कफका नाश होता है । इस दृष्टान्तमें विपाकने रसको परास्त किया है ।

अनूप मांसके रस और विपाक मधुर होनेपर भी वह पित्तको शमन नहीं कर सकते । बल्कि उष्णधीर्यके हेतुसे पित्तको वृद्धि करते हैं । इस दृष्टान्तमें धीर्यने रस और विपाकको दया दिया है ।

पुरानी अंगूर आदिकी देशी शराब रस और विपाकमें अम्ल है; तथा धीर्यमें उष्ण है । फिर भी स्वन्ययदक है । यह कार्य प्रभावसे हुआ है । इस उदाहरणमें प्रभावने रस, विपाक और धीर्य, तीनोंको हरा दिया है ।

अष्टांगहृदयकारने पदार्थोंकी रचना द्वादशे २ विभाग दर्शयि है । १ समान प्रत्ययारम्भ; २ विचित्र प्रत्ययारम्भ । जिन पदार्थोंकी रचना करनेवाले पंचमूलात्मक और उनके रस, धीर्य, विपाकके आरम्भके पंचमूलात्मक द्रव्य सम प्रकारके उत्कर्ष और अपकर्षसे सगठित हुए हों, उनको समान प्रत्ययारम्भ तथा जिनकी रचना करनेवाले पंचमूलात्मक द्रव्य और उनके रस, धीर्य, विपाकके आरम्भके पंचमूलात्मक द्रव्य विपम प्रकारके हों, उनको विचित्र प्रत्ययारम्भ संज्ञा दी है ।

उदाहरणार्थ टूथ, गेहूँ, सुअरका मांस आदि रस, धीर्य और विपाक एक दूसरेके अनुकूल हैं । ये समान प्रत्ययारम्भ होनेसे इनके समग्र क्रम केवल रसोपदेशसे पार्श्व सकते हैं, इसके विपरीत मत्स्य, जो, सिंहका मांस आदिके रस, धीर्य, विपाक एक दूसरेके प्रतिकूल हैं । ये विचित्र प्रत्ययारम्भ होनेसे इनके कर्म, रस, धीर्य और विपाककी अपेक्षा भिन्न प्रकारके होते हैं । अतः उनका केवल रसोपदेश नहीं दयाया । शास्त्रमें उनका स्वतन्त्र वर्णन किया है ।

गेहूँ और जो, दोनों मधुररसवाले और गुड हैं । इनमें गेहूँ समान प्रत्ययात्मक होनेसे रस, धीर्य, विपाकके अनुरूप वातशमन करता है, किन्तु जो विचित्र प्रत्ययारम्भ होनेसे अपने गुणके अनुरूप वातवर्द्धन करता है ।

मत्स्य और दूध दोनों मधुर रसवाले हैं, इनमें दूध समान प्रत्ययारम्भ होनेसे रसके अनुरूप हीवीर्य और कर्म हैं, किन्तु मत्स्य विचित्र प्रत्ययारम्भ होनेसे रसके विपरीत उष्णवीर्य युक्त है एवं कर्म भी इससे भिन्न (पित्तकारक) है।

सिंह और सूअर, दोनोंके मांस मधुर और गुरु है। इनमें सूअर-समान प्रत्ययारम्भ होनेसे रसके अनुरूप मधुर विपाकवाला है। अतः इसके कर्म रस विपाकके अनुसार मधुर होते हैं, किन्तु सिंहका मांस विचित्र प्रत्ययारम्भ होनेसे उसका विपाक कटु होता है तथा कर्म भी विपाकके अनुसार पित्तकारक होता है।

पी शीतवीर्य होनेपर भी जठराग्निको प्रदीप्त करता है। वसा उष्णवीर्य होनेपर भी जठराग्निको मंद करती है मूग कटु विपाकवाला होनेपर भी पित्तशामक और उषद मधुर विपाकवाला होनेपर भी पित्तवद्रक है। फाशित (गुबकी राव) स्निग्ध, उष्ण गुरु होनेपर घातकारक है मधुर दही गुह होने पर अग्निदीपक है; किन्तु कबूतर जठराग्नि का दीपन नहीं करता। कैय और अनार अम्ल रसवाले होनेपर भी प्राही हैं, किन्तु अम्ले नहीं। चायके फूल कषाय और शीतवीर्य होनेसे प्राही है, किन्तु हरीशकी नहीं। उक्त उदाहरणोंमें धी, वसा, मूग, उषद, फाशित, दही, कैय, अनार और हरब, ये सब विचित्र प्रत्ययारम्भ हैं।

रसनेन्द्रिय

यह एक शानेन्द्रिय है। इस इन्द्रिय द्वारा मधुर, अम्ल आदि रसोंका बोध होता है। इस हेतुसे इसे रसनेन्द्रिय (The Organ of Taste) कहा-दी है। इस इन्द्रियका बाह्य अभिधान स्वादाङ्कुरको धारण करनेवाली रसना (जिह्वा) है। आन्तरिक अभिधान उपभानपिण्डका नामक स्वादकेन्द्र (Taste Centre) मस्तिष्कके अन्तर्गत है।

यह रसना (जिह्वा) मांसपेशियोंसे बनी है। इस पर पतली श्लैष्मिक कलाक आवच्छादन है। इस कला पर छोटी-छोटी पिटिका सदृश अनेक स्वादाङ्कुर (Taste-buds) अवस्थित हैं। यह मुसके तलपदेशमें कण्ठिकास्थि और सेबनीके साप संलग्न हैं। जोछेकी ओर मध्य रेखामें अधिभित्तिकाके साप और सप ओर पूर्वा गलस्तम्भिकाके साप संयोजित है।

जिह्वा मूल दृष्टिसे मांसपेशीमय प्रतीत होती है; परन्तु सूक्ष्म दृष्टिसे निरीक्षण करने पर इसमें दो विभाग प्रतीत होते हैं। दोनों विभागोंका संयोग मध्यरेखामें एक स्नायु सूत्रमयी सेबनी (Fibrous partition) द्वारा होता है। यह जिह्वा छोटी मोटी ९ मांसपेशियों मिलकर बनी है। इन मांसपेशियोंके हेतुसे लम्बी छोटी और ऊँची-नीची होती है। उसकी आकृतिमें दोमे भागो सूत्रमय परिवर्तनोंके हेतुसे विभिन्न हो सकते हैं।

यह जिह्वा स्वादग्रहण, चर्षणक्रिया, प्रसन्नक्रिया और मायणके साधन रूप मन्त्र है। स्वस्थानस्थानमें इसका अग्रभाग पतला और नोकिला तथा मूल प्रदेश मोग और चौका होता है। इसका रंग गुलाबी सा होता है। रक्तहीनता या पायडुवा आने पर रंग फीका हो जाता है। अपचन होने पर इस पर मैलफे वह आ जाती है। आमाशय रसमें तीव्रता देने पर इस पर घृत हो आते हैं तथा चरपरे पदार्थ या चार आदिके सेवन या स्पर्शसे जिह्वा फट जाता है।

इस जिह्वाके दो तल हैं—ऊर्ध्वतल और अधस्तल। इसमें अनेक स्वादांकुर, खाला ग्रन्थियां, घमनी, शिरा, मांसपेशियां, रसायनिर्मा, लसीका ग्रन्थियां आदि अवस्थित हैं।

ऊर्ध्वतल—यह किञ्चित् स्कीतोदर है। इसे रसना पुष्ठ (Dorsum of Tongue) कहते हैं। यह ऊपरसे मुक्त है। इस तलपर अनेक स्वादांकुर लगे हैं। इस क्षेत्रसे यह सुरुचुरा मासता है। इन अंकुरोंके मूलमें रसग्राही नाबीके सूत्रम उद्भूत होते हैं। इस तलके मध्यमें एक विवर-सा खात है उसे अन्धविवर (Foramen Caecum) कहते हैं। इसके पश्चिममें अभिभिद्धिकाके साथ संयोग कराने वाली स्नायुमय प्रसन्धिनी स्थित है।

अधस्तल—(Inferior Surface) यह तल चिकना है। इसका वर्ण कुछ बैजनी-सा है। इसकी मध्यपंक्तिमें पतली त्रिकोण कलामयी सेबनी (Frenulum linguae) अवस्थित है। जो रसनातलके पश्चिम अर्द्धभागको तलभागसे संयोजित करती है। इस तलमें स्वादांकुर न होनेसे यह चिकना है। इसके मूलमें दोनों ओर हन्धरिया और जिह्वाधरिया नामक खाला ग्रन्थियां हैं। सेबनीके दोनों पार्श्वमें चपटी घमनी और रासनी शिरा हैं, जो श्लैष्मिक कलाके भीतर सुस्पष्ट प्रतीत होती हैं। इस स्थानमें श्लैष्मिक कलाकी पर्व मंजरी या झालर सदृश बन गई है, उसे कला मंजरिका (Plica Fimbriate) संज्ञा दी है।

स्वादांकुर (Lingual Papillae) मुख्यमें छोटे बड़े अर्धसंख्य स्वादांकुर रहते हैं। ये स्वादांकुर जिह्वाके ऊर्ध्वतलकी श्लैष्मिक कलामें सर्वत्र दृष्टिगोचर होते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ कोमल दाढ़, भ्रूष और गालमें भी रहे हैं। ये अंकुर सीथिक उद्भूत, नाबी सूत्र और कैशिकाओंके सम्मिलनसे बनते हैं।

सब स्वादांकुरोंके मूलमें सूत्रमा रसग्राही नाबी प्रदानकर सम्बन्ध हैं। जो मस्तिष्कमें रसज्ञानको पहुँचाती है। इनके अतिरिक्त रसनाके अग्रभागमें कुछ स्पर्शाङ्कुरियाँ और श्लैष्मिक कलामें कुछ दलेष्मसाध करने वाली ग्रन्थियां भी हैं, जो असा सदृश पतला प्रवाही पोषक कणिका घृत साध करती रहती हैं। इसी क्षेत्रसे जिह्वा सर्वदा आर्द्र रहती है।

स्वादाक्षरोंके मुख्य समूहः—१ द्वीपाक्षर २ शिलीन्ध्राकार और ३ कूर्चाकार ।

(१ द्वीपाक्षर स्वादाक्षर Papillae Vallatae or Circumvallate Papillae)—ये दाने स्थूल हैं । इनका व्यास १ से २ मिलीमीटर तक होता है । जिस तरह फिलेके चारों ओर खाई रहती है, उस तरह इन दानोंके चारों ओर खात है । इस हेतुसे इनकी आकृति परिष्ठावेष्टित घुर्ग सदृश होनेसे 'हमारे शरीरकी रचनाकार' ने इनको खातवेष्टिताक्षर संज्ञा दी है । ये दाने जिह्वाके पीछेकी ओर शेष ३ भागमें अवस्थित हैं । इन अक्षरोंकी संख्या ८ से १२ है । ये दाने पीछेकी ओर एक दूसरेसे मिले हैं । इन दानोंके समूहकी पंक्ति की आकृति 'A' सदृश बन गई है ।

(शिलीन्ध्राकार स्वादाक्षर (Fungiform Papillae)—इन दोनोंकी आकृति खगमग छत्राकके समान गोलाकार, ऊर्ध्व भागमें फैली हुई और नीचे संकुचित होती है । इस हेतुसे 'हमारे शरीरकी रचनाकार' ने इसे छत्रिकाक्षर संज्ञा दी है । इसका रंग अत्यन्त लाल (Deep red colour) है । ये धनुषा रसनस्य और पार्श्व धाराओंमें अवस्थित हैं । इनको डाक्टरीमें पपिल्ला लोप्टिन्युलर (Papillae Lenticulares) भी कहते हैं ।

(३) कूर्चाकार (Filiform Papillae)—ये दाने अति सूक्ष्म हैं । इनकी आकृति शंकुसदृश (Conical) या घेसनाकार (Cylindrical) शिली है । "प्रत्यक्ष शरीरकार" ने तृण कूर्चकी समानता दर्शाई है, ये दाने प्रायः जिह्वाके ३ भागमें घेसनेमें आते हैं । विशेषतः ये समानान्तर पंक्तियोंमें होते हैं । इनको डाक्टरीमें पपिल्ला कोनिफला (Papillae Conical) भी कहते हैं । इनमें स्वादकी परीक्षा शक्ति कम होती है ।

इन त्रिविध अक्षरोंके अतिरिक्त सामान्य अक्षर (The Papillae Simplicis) भी हैं । जो जिह्वाकी इलेभिक कला पर सर्वत्र फैले हुए हैं, ये सब धनुषा यन्त्र द्वारा स्वभाके रूपपर ठठे हुए मांसम देते हैं । प्रत्येकके साथ कैशिका छिद्र मिलता है और वे सब इलेभिक कला (Epithelium) से आच्छादित हैं ।

स्वादक्षर (Taste buds or Taste buds)—द्वीपाक्षर स्वादाक्षरके चारकी दीवारोंमें छोटे-छोटे कोपसमूह दबे हुए हैं । इनको स्वादक्षरक कहते हैं । प्रत्येक स्वादाक्षरमें लगभग १०० १५० स्वादक्षरक होते हैं । इनकी आकृति श्लेष पुष्पीकी कनी या प्याज सदृश दिखाई देती है । कुछ स्वादक्षरक कोमल तातुके नीचेक छिद्र और स्वर यन्त्रके आवरणके पीछेकी ओर भी रहते हैं । इन स्वादक्षरकोंमें एक छिद्र स्वादरन्ध्र (Gustatory pore) रहा है । इन स्वादक्षरकोंमें दो प्रकार

६८८५० कोप और सहाय कोप ।

स्वादसंरक्षक कोष (Gustatory Cells) भीचमें मोटे और दोनो सिरे पर पतले होते हैं। ऊपरके सिरेसे एक बालके सदृश पतला तन्तु निकलता है, वह स्वादरन्ध्रमें प्रवेश करता है। दूसरे नीचेके सिरेसे जो तार निकलता है, वह रसना नाड़ीके तन्तुमें मिल जाता है। ये कोष विशेषतः स्वादकोरकके केन्द्रमें रहते हैं। इनके चारों ओर तथा कुछ इनके बीचमें भी इतर कोष होते हैं। ये सब इन कोषोंके सहायक कोष हैं।

रसादान प्रकार—परमात्माने शिवाजी रसग्रहण क्रियामें एक प्रकारकी विलक्षणता रक्खी है। वह यह है कि, जयतक घोषक श्लेष्मा, लासारस या जल आदि द्राव रसवत् वस्तु द्रवीभूत न हो जाय, तब तक उस वस्तुके स्वादका बोध नहीं हो सकता। द्रवीभूत होने पर ही यह स्वादकोरकोंके अग्रभागको उरोधित करता है। फिर अग्रभागमें रहे हुए नाडी प्रदानों द्वारा रसनोषको मस्तिष्क केन्द्रमें पहुँचाया जाता है।

विशेषतःके मतानुसार रस और गन्ध पृथक् होने पर भी अति पृथक् भूत नहीं हैं। रस और गन्ध, इन दोनों में घनिष्ठ सम्बन्ध परस्पर है। रस और गन्धका नियम पूर्वक सादृश्य है। एव मस्तिष्कमें रसकेन्द्र उपधाननियंत्रका (Taste centre) और गन्धकेन्द्र अंकुशकर्णिका (Olfactory centre) सम्यक् समिक्षित हैं।

यदि शिवाजी अशुद्धी तरह पोंछ कर मुखा शालें तो किसी भी वस्तुके स्वादका पता नहीं चल सकता। सन्तरे आदि फलके टुकड़े खाने पर मनमोहक स्वादका जो परिचय मिलता है, वह केवल मधुर अम्ल कह कर नहीं समझाया जा सकता। इसके स्वादके साथ सुगन्ध भी मिश्रित है। जो तालुमें होकर नाकके भीतर जाकर प्रायेन्द्रियको उतेजित करती है और मस्तिष्कमें रहे हुए अंकुशकर्णिकामें पहुँच कर प्रसन्नताका बोध कराती है।

पदार्थ—आसुर्वेदकी मान्यतानुसार रस ६ हैं। मधुर, अम्ल; लवण, कटु, तिक्त और कषाय। किन्तु नव्य विज्ञानवादने मधुर, अम्ल, लवण और तिक्त, इन चार रसोंको ही स्वादांकुर प्राणी माना है। उनके मत अनुसार कटु (चरपय) और कषाय रस स्पष्टतया उच्छेदक अर्थात् स्वनेन्द्रियके विषय हैं।

रसनामें पृथक्-पृथक् रसकी रसप्राक्षिका पृथक्-पृथक् स्थान पर हैं। मधुर रसका ग्रहण रसनाग्रमें, तथा तिक्त (कड़ुवा) रस रसनामूलमें (कण्ठकी ओर) विशेषतः दीपाकार स्वादांकुरोंमें होता है। अम्लरस रसनाके दोनो पार्श्वोंमें और लवण रसकी प्राक्षिका रसनाग्रमें मधुर रसके साथ अवस्थित हैं। शिवाजीके किसी-किसी मगमें स्वादकोरक नहीं हैं। अतः उन स्थानोंसे स्वादका बोध नहीं हो सकेगा।

जो कटु और कषाय रस हैं, वे स्पर्शमात्र हैं। ऐसा नव्य विज्ञानका कथन है कि सम्बन्ध नहीं है। कटु रसप्राक्षिका रसनाग्र और रसनाके दोनो पार्श्व भागमें मुख्यतः स्थित होती हैं। कषाय रसप्राक्षिका रसनामूल और पार्श्वमें स्थित है।

यदि इन दोनों रसोंको स्पर्श मात्रत्व मान लें, तो स्थान भेदसे रसप्रतीकत्व भेद नहीं होना चाहिये। अतः रस ६ प्रकारके हैं, यह प्राचीन सिद्धान्त ही सत्यक है।

रस ग्रन्थियाँ (Lingual Lymph Glands)—जिह्वाके मूलमें जिह्वाकण्ठिका पेशी (Hyoglossus Muscle) और चिबुककण्ठिका पेशी (Genioglossus Muscles) के बीच दो तीन छोटी रस ग्रन्थियाँ अवस्थित हैं। इनमें जिह्वाके मूल भागकी कतिपय रसायनियाँ प्रवेश करती हैं।

जिह्वामूक्षिनी नाड़ी (Hypoglossal Nerves) इस नाड़ीके एक नीचे जानेवाली शाखा जिह्वामें प्रवेश करती है। वह नाड़ी शाखा कण्ठकी प्रवाहिकाके एक हिस्से रूम मातृका कंजुक (Carotid Sheath) के आगे होकर निकलती है। इस जिह्वामूक्षिनी शाखाके शाखापात्र (Ansa Hypoglossa) मेंसे प्रवेशनी नाड़ी प्रशाखा रूपसे निकलती है।

जिह्वावरीया ग्रन्थि (Sublingual glands)—ये ग्रन्थियाँ प्रिन्डुके फल कितनी बची होती हैं। मुसलतलमें जिह्वा सेवनीके पार्श्व भागमें निम्न स्तर रहे हुए सातमें दोनों ओर एक एक ग्रन्थि रहती है। ये श्लैष्मिक कलासे आरुच हैं। इनमें १० (अधिकत २० तक) छोटे-छोटे छोट होते हैं। इनमेंसे कितनेही अन्यवरीया ग्रन्थिके स्रोतके धायमें संलग्न हैं और कितनेही जिह्वा सेवनीकी दोनों ओर स्वयं रूपसे सुलते हैं।

अनुजिह्विका धमनी (Lingual Artery)—यह धमनी जिह्वाके रक्त पहुँचावा है। इस धमनीकी उत्पत्ति महिमवृत्त धमनी (Ext. Carotid Art) मेंसे हुई है। यह वेदी होकर ऊर्ध्व और मध्य रेखाकी ओर कण्ठिकारिक्तके निम्न २७ तक गति करती है। पुन नुदकर नीचे आती है, और जिह्वाके नीचेकी ओर बिल्कुल अग्रभाग तक फैल जाती है। यहाँ पर यह गम्भीर जिह्विका धमनी (Arteria Profunda Lingual) कहलाती है। यथायमें इस अनुजिह्विका धमनीकी ४ अनुशाखाएँ हैं।

डाक्टरों मसानुसार गुण विचार।

डाक्टरों मतमें श्रीपथियोंके रस परसे गुण और परिष्काम सम्बन्धी अनुमान और गुणनिर्णय निम्नानुसार नियमोंको लक्ष्यमें रख कर किये जाते हैं:—

(१) सामान्य रूपसे श्रीपथिके गुणका निर्णय—यहाँ, स्वाद, रस और परसे हो सकता है। तीव्र गन्धयुक्त द्रव्य बहुधा आग्नेय, उष्ण, पातकर और यमननिवारक होते हैं। मधुर द्रव्य बहुधा स्निग्ध होते हैं। कटुदे द्रव्य बहुधा बल पर्यक आमाशय पीथिक होते हैं तथा दुर्गंधयुक्त द्रव्य बहुधा आग्नेयनिवारक होते हैं।

(२) रासायनिक तत्वोंकी सादृश्यता परसे श्रीपथियोंकी क्रियाकी समानता ही हो जावा है। समान गुण धर्म होने पर अभाव कालमें एकके परसे दूसरी

श्रीपथि प्रतिनिधि रूपसे ली जाती है। इसी नियमानुसार खनिज अम्ल और उम्रिद् अम्लका परस्पर एक दूसरेके स्थान पर व्यवहार किया जाता है।

(३) समान जातिकी वनौषधिका फल प्रायः एक समान रहता है, और जातिभेद होनेपर गुणमें अन्तर हो जाता है।

मल्वेसी (Malvaceae) जातिकी मला चतुप्रय, जपाकुसुम, मियडीके बीज, पारसपीपलाफो छाल, कपासके बीज (गिनीले), सेमलाफी मूल आदि श्रीपथियां प्रायः तिग्म हैं।

वेन्सियेनेसी (Gentianaceae) जातिका विद्ययता और नागच्छिदा (कडुबीनाई-गुजराती) आदि श्रीपथियां प्रायः मलकारक (आमाराय पौष्टिक) हैं।

कन्वलव्युलेसी (Convolvulaceae) जातिकी निशोप, कालादाना, अमरवेल और प्रसारथी मूल आदि श्रीपथियां विरेचक हैं।

सॉलेनेसी (Solanaceae) जातिकी श्रीपथियां—पत्रा, सुयवानी अज-पायन, कंटकारी, काकमाची, असगंध, (Withania Somnifera) की जड़, सुलीभूटी (Belladonna), काकतुल, उमाखू आदि जनन माने गये हैं।

पिपेरीसी (Piperaceae) वर्गकी श्रीपथियां—पीपल, वाम्बूरा, (नागरबेल), कालोमिर्च, शीवलामिर्च आदि उच्चैःक हैं।

इस तरह समानता होने पर भी कितने ही स्थलोंमें इन जातियोंसे सम्बन्ध होने पर भी फलमें सादृश्यता बहुत कम देखी जाती है, और क्वचित् किसी-किसी श्रीपथिकी निषा बिस्कुल विपरीत प्रतीत होती है। इसके विपरीत पृथक जाति की श्रीपथियोंके गुणोंमें भी क्वचित् सादृश्यता हो जाती है।

जैसे कन्वलव्युलेसी जातिकी शंखपुष्पी, हृदयदार और आकुपर्सी (नूयाकानी) आदि कितनी ही उपभेदोंकी श्रीपथियोंमें विरेचन गुण प्रारम्भमें दृष्टिगोचर नहीं होता। सॉलेनेसी जातिकी श्रीपथियोंमें छालमिर्च केवल उच्चैःक है, इसमें मोहजनन गुण बिस्कुल नहीं है।

अम्बेलिफेरी (Umbelliferae) जातिके जीरा, अजवायन, अजमोद आदि माहरिष्टिकेई (Myristiceae) जातिके जायफल आदि, सिट्रिमिनेई (Citramineae) जातिके अदरक, कुलिजन, इलायची आदि और मार्कैसी (Myrtaceae) वर्गके लौंग, अमरूद, जामुन, समुद्रफल आदि मित्र-मित्र जातिकी अनेक श्रीपथियोंकी क्रियाओंके भीतर अनेकानेक समानता प्रतीत होती है। एवं वेन्सियेनेसी (Gentianaceae) सिमेरुबेई (Simarubae) वर्गके मरानिभ्य आदि, रेनुकुलेसी (Benunculaceae) वर्गके कसौंजी, अतीठ, अथमाय आदि और मेनिस्पेरीसी (Menispermaceae) वर्गके गिलोय, पाठा

आदि, ये सब विभिन्न आविष्कृत श्रीपचियां होनेपर भी मनुष्या समान गुणवाली अर्थात् कष्टुषी और यलवर्द्धक हैं।

(४) अनेक बार पशु आदि जीवोंके ऊपर श्रीपचियोंकी परीक्षा करके गुण निष्पन्न किया जाता है, परन्तु बहुत सी श्रीपचियोंका गुण इस तरह निर्धारित नहीं हो सकता। जैसे खुरावानी अथवायन (शाइपोसाइमास) का पान गौ, भैंस आदिके किसी भी प्रकारका अपकार नहीं करता; किन्तु सूक्ष्म मात्रामें मानव देह पर मोहजन्य और अचिक मात्रामें विष प्रकोप दर्शाती है।

(५) मनुष्य देह पर श्रीपचि द्वारा फल निर्णय करना, पक्षी सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

श्रीपच परिणाम।

वैज्ञानिक दृष्टिसे विचार करने पर श्रीपचियोंका देह पर जो परिणाम होता है, उसके साक्षात् और परम्परागत मेदसे दो प्रकार हैं। जैसे कोई श्रीपचि देहमें प्रवेश करके तत्काल फल प्रदर्शित करे, उसे साक्षात् परिणाम; और साक्षात् क्रिया प्रकटित होनेके पश्चात् उन्नी हेतुसे जो परिवर्तन होता है, उसे परम्परागत परिणाम कहते हैं। जैसे शरीरके किसी भाग पर राईकर लेप लगानेसे उस स्थान पर जाली आकर दाह होने लगता है, वह साक्षात् परिणाम, तथा इस लेपके प्रभावसे समस्त देहमें उष्णता और उच्चैःपना उपस्थित होती है, यह परम्परागत परिणाम कहलाता है।

इतर प्रकारसे श्रीपचियोंके स्थानिक परिणाम और दूरवर्ती परिणाम, ये दो विभाग होते हैं। श्रीपचिका किसी स्थान पर प्रयोग होनेसे उस स्थान पर क्रिया या फल प्रदर्शित हो, उसे स्थानिक परिणाम, और इतर स्थान पर परिणाम उत्पन्न हो, उसे दूरवर्ती कहते हैं। जैसे गन्धकके द्रावको किसी स्थान पर लगानेसे उस स्थान पर दाह होकर जाली आ जाती है, और जाला भी हो जाता है। एवं गन्धक द्रावको छदरस्थ करने पर आमाशयकी भातवहा नाभियोंमें उग्रता आ जाती है, ये दोनों स्थानिक परिणामके उदाहरण हैं। फिर इस उग्रताके हेतुसे हृदय, रक्तवाहिनियों और वातवाहिनियोंके ऊपर परिणामकी प्राप्ति होती है, अर्थात् हृदय गति स्थगित हो जाती है; रक्तसंचालन क्रिया मन्द होती है और इतर स्थानकी वातवाहिनियोंमें श्लिषाप होकर मृत्यु हो जाती है ये सब दूरवर्ती क्रिया कहलाती हैं। इन स्थानिक और दूरवर्ती परिणामोंका अन्तर्भाव भी साक्षात् और परम्परागत परिणामोंमें हो जाता है।

साक्षात् परिणाम।

(डायरेक्ट चेंजेज—Direct changes)

साक्षात् परिणामके ३ विभाग हैं। भौतिक (Physical), रासायनिक (Chemical)—और जीवनीय (Vital)। इन त्रिविध विभागोंके नियन्त्रण शरीर पर अपना परिणाम दर्शाती हैं।

भौतिक परिणाम

(फिजिकल चेंजेज Physical Changes)

भौतिक रूपान्तर होनेपर यस्तुकी षण, रूप और अवस्थाका परिवर्तन हो जाता है, तथापि द्रव्यके रचनात्मक पांच भौतिक संगठनों (Composition) के भेद स्थायी (Permanent) परिवर्तन नहीं होता। जैसे पीको तपानेपर बर्फ, रूप और अवस्था, ये कुछ समयके लिये (Temporary) बदल गये, किन्तु पीपना कामम रहता है। इस भौतिक परिणामके नियमके सम्बन्धमें भगवान् आशियने कहा है कि—

सर्वदा सर्वभावाना सामान्य वृद्धिकारणम् ।
 हासहेतुविशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु ॥
 सामान्यमेकत्वकर विशेषस्तु पृथक्त्वकृत् ।
 सुन्यार्थता हि सामान्यं विशेषस्तु विपर्यय ॥

समान गुणधर्म युक्त द्रव्यसे समान गुणधर्मयुक्त द्रव्यकी वृद्धि होती है। इस संसारव्यापी अविच्छन्न नियमानुसार औपधिर्मोंमें भी समान व्याप्तिके समान गुणोंके द्रव्यसे वेहमें स्थित उन व्याप्तिके द्रव्यको ही परिपोषण मिलता है। एवं समान द्रव्य समान द्रव्यकी ओर आकर्षित होकर मिश्रित भी हो जाता है। जैसे लोहमन्मके सेवन करनेपर वह रक्तस्य लोह तत्वके साथ मिश्रित हो जाती है। घूना या चारका सेवन करने पर वे अस्थियोंकी ओर आकर्षित हो जाते हैं। चरपरे द्रव्य— चित्रकमूल, पीपल, मिर्च आदि आमाशय या यकृतको विचरि-सरण वृद्धि अथ सहायता पहुँचाते हैं, मांस और हवर मधुर गुणयुक्त गुण द्रव्य मांस तत्वकी ओर आकर्षित होकर वृहस्य गुणकी प्राप्ति कराते हैं। उच्छेक पदार्थ घातवाहिनियों, घातनाशियोंकी अन्तिम शिरार्थ, घातबहा नाशियोंके केन्द्रस्थान और रक्तवाहक यन्त्रमें पहुँचकर उच्छेकनामें वृद्धि कराते हैं। संक्षेपमें द्रव्य, गुण और कर्म तीनों अपने अपने समान स्वभाव वालोंके साथ मिलकर स्वशक्ति अनुसार द्रव्य, गुण, कर्ममें वृद्धि कराते हैं।

विशेष अर्थात् विषम द्रव्य, विषम गुण, विषम कर्मके सम्बन्धसे न्यूनताकी प्राप्ति होती है। विरोधियोंके परस्पर युद्ध या प्रत्याकर्षण होनेसे शक्ति (तत्व) का हास या मल दोषकी न्यूनता हो जाती है। इस नियमानुसार चिरामता आदि औपधियों शोषित होकर शारीरिक उचापका हास कराती हैं। एष अमसादक पदार्थ घातवाहिनियों द्वारा विविध यन्त्रोंकी उच्छेकनाका हास कराते हैं, अर्थात् शामक अक्षर पहुँचाते हैं। इस तरह सम विषम गुणोंवाली औपधियोंका कार्य चिकित्सा-अक्षरमें सर्वथा प्रत्यक्ष होता रहता है।

उपयुक्त नियमानुसार समस्त सम क्रियम औषधियाँ रस द्वारा रक्तमें प्रवेशित
 होकर अपनी-अपनी शक्ति अनुसार परिष्कार (क्रिया अथवा फल) की प्राप्ति
 कराती हैं।

आन्तरी मूलमें औषधि क्रिया देखने में मौखिक नियमके अगुरुत्व तीन प्रकारसे
 होती है—१ शोषण, २ आशरण, ३ तरलाकरण। इन तीनों प्रकारकी क्रिया द्वारा
 औषधियोंके गुण-शोषरूप परिष्कारकी प्राप्ति होती है। जब तक औषधि इन विविध
 नियमोंमेंसे किसी एकके अनुकूल नहीं बन सकती, तब तक अपना परिष्कार नहीं
 दर्शा सकती।

(१) शोषण क्रिया (Absorbents)—जो औषधि मुक्त द्रव सेवनकी
 जाती है, उनमेंसे अनेकोंका शोषण मुखमेंसे, कितनीहीका आमाशयमेंसे तथा
 अनेकोंका अन्त्रमेंसे होता है। कितनीही औषधियाँ पकृत, सूक आदि अवसथोंमें
 संयोजित होती हैं। म्वायो, विक्रमती और विशद द्रव्य पाक होनेके पहिले आमाशयमेंसे
 शोषण हो जाता है। यह शोषण क्रिया उन औषधियोंकी होती है, जो रक्तमें मिश्रित
 हो जाती हैं। परन्तु यह शोषण क्रिया औषध द्रव्य और रक्तकी गाढ़ता और
 तरलताके ऊपर विशेष निर्भर है। जैसे यबदार आदि लवण द्रव्यको थोड़े अल्पमें
 मिलाकर सेवन करनेसे (वह द्रव रक्तकी अपेक्षा गाढ़ा होनेसे) अन्तर्ग्रहण और
 वहिर्ग्रहण रूप नियमानुसार रक्तमेंसे अल्प अंशका आकर्षण कर विरेचन करनेका
 प्रयत्न करता है। परन्तु शलको अधिक परिमाणमें मिश्रित कर सेवन करने पर
 (रक्तकी अपेक्षा तरलता अधिक हो जानेसे) यह रक्तमें शोषित होकर मूत्रविरेचन
 करता है।

शोषण क्रिया शरीरमें सर्वत्र यथा नियम होती रहती है किन्तु जिस स्थानका
 आन्तर्ग्रहण अति कोमल और सूक्ष्म होता है, उस स्थानमें शोषण क्रिया इतर स्थानकी
 अपेक्षा सहज और शीघ्र होती रहती है। इस नियमानुसार कुम्भकृतारसमें इतर
 स्थानोंको अपेक्षा शोषण शक्ति अधिक रहती है। आमाशय और अन्त्रको स्मैरिमक
 कक्षा कुम्भकृतारसकी कक्षाकी अपेक्षा स्थूल होनेसे न्यून शोषक है, और प्रातः
 स्वभा स्थूलतम होनेसे अति न्यून शोषक है।

मुखसे सेवनकी हुई औषधियोंमें लालास्राव, आमाशय रस पित्त आदि मिश्र
 जानेसे उसका शोषण देरसे होता है और सन्ध्या रक्तमें शोषण प्रायः नहीं होता।
 किन्तु शिरामें अन्तःसेषण करने पर सब औषधिका तरलाल रक्तमें मिश्रण होजाता
 है। यदि अन्तःसेषण स्वभा या मांसपेटीमें क्रिया जाय, तो शिराकी अपेक्षा
 किञ्चित् अधिक, फिर भी जल्दी शोषण हो जाता है। इनके अतिरिक्त स्वभा, नासिका,
 नेत्र, उदा, मूत्रेन्द्रिय आदि मार्गोंसे प्रयोगित औषधियाँ भी शोषित हो जाती हैं।

इस शोषण क्रियामें अनेक कारणोंसे न्यूनाधिकता भी हो जाती है। जैसे समस्त शिराएँ रक्तसे परिपूर्ण होने पर शोषण क्रियामें प्रतिबन्ध होता है और बिजुत् शक्ति (Electricity) उच्चजित होने या प्रबल बनने पर शोषण क्रिया घटकर हो जाती है। उदर मरा हो, तो मुखसे सेवनकी हुई औषधिका शोषण बरसे होता है, खाली पेट हो तो अल्प शोषण होता है।

यह शोषण क्रिया अन्तर्वहन और बहिर्वहन (Endosmosis and exosmosis) के नियमाधीन है। यदि किसी कपड़ेके दोनों ओर दो प्रकारके तरल पदार्थ रखे जायें, तो उन दोनोंका मिश्रण करने पर सरलवासे मिश्रण हो जाता है। परन्तु उन दोनों तरल पदार्थोंमें यदि गाढत्वका अंतर हो, तो जब तक व्यवसायक स्तरमेंसे तरल द्रव प्रवाहित होकर समान गाढत्वको प्राप्त न हो जाय, तब तक दोनों ओरके द्रव परस्पर आकृष्ट होकर मिश्रित होते रहते हैं। इस स्थान पर पाठकोंको लक्ष्य देना चाहिये कि, दोनोंके आकर्षणमें समानता नहीं है। यह नियम है कि, तरल पदार्थ गाढ़े पदार्थको आकर्षित करे, इसकी अपेक्षा गाढ़ा पदार्थ तरल पदार्थको अधिकतर आकर्षण करता रहता है। इसी नियमानुसार औषधिके शोषणरूप परिखाममें क्रिया होती है। फिर औषधसत्य रक्तसातमें संचालित होकर यथास्थान अपना-अपना प्रमाण दर्शाता है।

भौतिक परिणामके नियम—

(अ) जब कोई औषधि शरीरके एक देशमें प्रयोजित होकर स्थानान्तरमें प्रमात्र दर्शाती है, तब माना जाता है कि, औषधके परिखामका ह्रास हुआ है। शिरा आदि द्वारा वृषित होनेके अतिरिक्त इसका इतर कोई कारण नहीं है।

(आ) अनेक औषधि द्रव्यके गन्ध, स्वाद और वृष आदि निःश्वास, प्रसवेद और मूत्र आदि शरीरस्य रसाके मोतार प्रकाशित होते हैं, जैसे शराब, लहसुन और प्याजकी गन्ध निःश्वासमें, रेन्दचीनीका वर्ण मूत्रमें, और मंजिष्ठाका वर्ण अस्थिमें प्रतीत होता है।

(इ) एक व्यक्तिके औषधि सेवन करने पर उसके शरीरका रसरक्त आदिके प्रवेश द्वारा वृत्तोंके प्रति ठसी औषधिके फलकी प्राप्ति हो जाती है। जैसे माता द्वारा उसके स्तनपायी शिशुके शरीरमें औषधिका गुण व्यक्त हो जाता है। मछली को खा जाय, और सर्पके भिषका पूर्वांशमें स्थान्तर हो जानेके पहिले उस मछलीका मांस किसी मनुष्यके खानेमें आ जाय, तो सर्पभिषका असर मनुष्य पर हो जाता है।

मामरुकर (कपह) आदि पशु कृमि या कीटाणु मिश्रित बिना खा लेते हैं; फिर उन कीटाणुओंका पूर्वांशमें पचन हो जानेके पहिले उस अक्षरका मांस मनुष्यके

खानेमें आ जानेसे अनेक खानेवालोंको उदरकुमि (Taenia Solium) आदि रोगोंकी सम्प्राप्ति हो जाती है।

बीमार जीवोंके मांसमध्यसे अनेक लीमोंको व्याधियाँ हो जाती हैं। प्रियामर (Pligue) से पीड़ित चूड़ोंको खा लेनेसे अनेक किस्मियोंकी भी मृत्यु हो पाई है।

(ई) देहके किसी स्थानमें श्रीपथयोग करने पर उस स्थानसे उद्गृत रक्तवहा नलियों (हृदयकी ओर रक्तवहन करनेवाली शिराओं) के समुदाय पर दम्बन बाँध देनेसे दूर स्थान पर श्रीपथिके गुणका प्रतिरोध हो जाता है। इसी नियमानुसार सर्पविष आदिके घातक गुणको रोकनेके लिये रक्तवाहिनियोंको बरो या वस्त्र आदिसे ढक बाँध दिया जाता है।

(व) शिराओंमें श्रीपथिका प्रकृत करने पर उस का परिष्कार सत्कृत प्रकाशित होता है। जैस वमन श्रीपथिका इल्लेक्शन द्वारा शिरामें प्रवेश करने पर घान्ति होने लगती है, और विरेचन श्रीपथिके प्रयोगसे विरेचन होने लगते हैं। इस प्रभावका घोष श्रीपथ सेवनके पश्चात् मीठिक परीक्षा या देहस्य रस और विभिन्न यन्त्रोंकी रासायनिक परीक्षा करने पर हो जाता है।

(२) आवरण क्रिया (Covering)—असि स्थान पर श्रीपथिका लेप आदि आवरण लगाया जाता है, वह स्थान दूसरे द्रव्यके पर्यन्त और इतर रासायनिक परिष्कारसे सुरक्षित रहता है। इस नियमानुसार मथ-विद्रधि आदि पर मलहम, लेप आदिकी पट्टे लगायी जाती है।

(३) प्रवाहीकरण (Dilution)—यथेष्ट परिमाणमें जलपान और फलता मोजन करने पर आमाराशयस्य अम्ल और उष्ण रक्तका प्रवाहीकरण होता है; अर्थात् पतलापन साधित होता है। फिर उम्रताका शमन होता है तथा पित्ते हुए पक्षम रक्तमें शोथण होनेसे पेशाब आदिमें तरलता सपादित होकर विष, क्षार और धीर्यता आदि दूर हो जाते हैं।

आमाराशयमें अम्ल और उष्ण रक्तका संश्लेष होने पर आतस्यक जलपान करनेसे उसका शमन हो जाता है। यदि आमाराशयमें अत्यधिक उम्रता या विकृति आ पाई हो, तो अधिक जलपान करा वमन करनेसे दोष सरलतापूर्वक बाहर निकल जाता है।

रक्तमें अधिक गाढ़ापन और उष्णता हो गई हो, तो वे भी रक्तमें अम्लता शोषण हो जानेसे दूर हो जाती हैं। इस तरह रक्तमें मृदुता भी जलपानसे दूर हो जाती है।

आयुर्वेदने रोगवेदसे जलपान विधिमें भेद करनेको सिखाया है। कृत्रिय रोगोंमें गरम क्रिया हुआ पक्ष पिलाया जाता है, तथा कृत्रिय रोगोंमें ताप शोषण पक्ष निकाली जाना गया है। कषित जलमें शक्कर या इतर श्रीपथि मिलाई जाती है।

कचित् जल कुछ कम परिमाणमें पिलाया जाता है। इन सम्बन्धके नियम 'रसतन्त्र सार व सिद्धप्रयोगसंग्रह' के धावस्मक सूचनाके नं० १४७ से १५४ तक दिये हैं।

जलपान करने पर यह आमाशयमें शोषित होकर रक्तमें प्रवेश करता है। फिर रक्तमें तरलाधिक्य और शीतलताकी प्राप्ति होती है। इस हेतुसे विद्युच्चिका आविरोमोंमें रक्त जय गाढ़ा हो जाता है या ऊपर प्रदाह आदिमें रक्त जय उष्ण हो जाता है, तब रक्तके तरलाधिक्य होने पर रक्त विकृति कम होती है। फिर रक्तमेंसे प्रस्वेद ग्रन्थियों और बृक्कोको योग्य रक्तरस मिल जानेसे विकृतिको शमन करनेके शीघ्र क्रिया होने लगती है।

रसायनिक परिणाम

(केमिकल चेंजेज Chemical Changes)

रसायनिक परिवर्तन होने पर मूलके गुण, रूप, और स्थिति सब बदल जाती हैं और जिसके रूप, गुण बिल्कुल भिन्न हों, ऐसी घट्ट बन जाती है। उदाहरणार्थ जलको गंधकके तेषामें डालने पर गैस निकल जाती है और धौप द्रव्य वेजाबमें जुल जाता है। उसे सुखालेने पर जलके स्थान पर एक श्वेत धूसर्य मिलता है। जो जलके रूप, गुणसे बिल्कुल भिन्न है। पारद, शम्बरु और फिट्कको आदि मिलाकर कूर्पापन्थ रसानन बनानेपर पारद आदि द्रव्योंसे भिन्न रूप, गुणवाला रसकूपूर बन जाता है। इल्दी और चारका रासायनिक संयोजन होनेपर साल रगका ऊंकुम बन जाता है। २ भाग हाइड्रोजन और १ भाग ऑक्सिजन मिलनेपर भिन्न गुण, रूपवाला जल तैयार होता है। पीपरमेण्टके फूल और कपूर मिलनेपर एक प्रकारकी प्रवाही औषधि बन जाती है।

कितनेही द्रव्योंके परमाणु शारीरिक तन्तु और घटकोंके बीचनरसके रासायनिक मिश्रण पर क्रिया करते हैं और वे उसके साथ रासायनिक विधि से मिल जाते हैं। परिष्काम में उन द्रव्योंके विमल गुणोंका परिचय मिलता है। इन द्रव्योंकी क्रिया किस प्रकारसे प्रकाशित होती है, यह पूर्वोक्तमें निर्णय करना अति कठिन है। इस शारीरिक व्यापारपर मनका प्रभाव भी पड़ता है। मनकी प्रसन्नता होनेपर या श्रद्धासे औषधिकी साम मान लेनेपर लाभ होता जाता है। इसके विपरीत, शोक, अभय, क्रोध आदिसे लाभदायक औषधिकी सेवन व्यर्थ हो जाता है और विपरीत मानस क्रिया द्वारा हानि पहुँच जाती है, परिष्काममें शिवकर औषधि भी हानिकर माननेकी सूख हो जाती है।

रासायनिक नियमानुक्रम मधुर और लघ्वर रस द्वारा अम्लता का नाश, मधुर रससे दाह शमन, अम्लरस द्वारा चारत्व गुणका लोप, और जठराग्नि द्वारा विविध औषधिकोंके गुणका संहार होना आदि-आदि परिष्काम शरीरमें सर्वदा होता रहता है।

इस रासायनिक परिणामका बोध आयुर्वेदने श्रीपथियोंके गुण, वीच, विपाकसं समझाया है।

जीवनीय परिणाम।

(याइटल चेंजेज Vital Changes)

श्रीपथिक परिणाम मुख्यतः इसी नियमानुसार मिलता रहता है। कारक, श्रीपथियोंकी क्रिया बहुधा जीवन पर ही निर्भर है। यद्यपि भौतिक नियमानुसार श्रीपथि देहमें शोषित हो जाय, तथापि इसके पश्चात् किस विशेष यन्त्र पर फलकी प्राप्ति होगी ? यह बात भौतिक नियमके अधीन नहीं है। जैसे तार्पिन रसका सेवन करने पर भौतिक नियमानुरूप शोषण होकर रक्तमें मिश्रित हो जाता है, और इतर सब यन्त्रोंका परित्याग कर केवल यृस्क स्थानोंके ऊपर विशेष फल दर्शाता है, यह परिणाम सजीव देह के नियमसे ही साधित होता है। यह क्रिया मृत शरीरमें प्रतीत नहीं होती।

अपीन द्वारा चेतना हरण, राई आदिके ब्लिस्टर द्वाय फाला होना, ऊनकी झाली रसके सेवनसे गमाशयके रक्तसावका निरोध, कपासमूलत्वक् द्वाय गमशय संकोच सुहृती फलके सेवनसे शुक्र विरेचन, कुचिलासे वातबहा नासियोंकी उधेजना, ताम्र मससे पित्तका अतिक्र साव, रंग मससे शुक्राणुयकी दृक्ता, गुणकर्ममि (कहेरवा) से किसी स्थानमेंसे होनेवाले रक्तसावका रोध, और मस्तिष्कमें उत्पन्न कुमियोंका नासिका द्वारा पतन आदि आदि परिणाम जीवित देहमें ही प्रतीत होते हैं।

विभिन्न भेदसेव्य परिणामभेद—श्रीपथ परिणामके सम्बन्धमें विशेष विचार करने पर विदित होता है कि, श्रीपथ प्रयोगमें विभिन्न होने पर बान्धिक क्रिया और संलक्षणमें भेद हो जाता है। जैसे कुचिलाको घृतके ऊपर लगाया जाय, तो बिना आक्षेप पाठक फलकी प्राप्ति करता है। कुचिलासे संचालन क्रिया करने पाली वातबहा नासियोंका पक्षाघात होता है। फिर इसी हेतुसे शरीरकी सब मांसपेशियोंक बलका हरण होकर वे अवसन्न हो जाती हैं।

कुचिलाका यदि अधिक मात्रामें मुल द्वाय सेवन क्रिया जाय, तो मूत्रनिरोधकी क्रियाका अयरोध होता है, और मरुखके पक्षिसे तीव्र आक्षेप आने लगता है। वर तीव्र आक्षेप कुचिलाका साक्षात् अय नहीं है, परन्तु परम्परा परिणाम है। कुचिलाके विपसे प्रारम्भमें शेषावहा नासियाँ वृणित होती हैं; तथा श्वासान्ध्यास क्रिया करनेवाली महाप्राचीर और उदरद्विष्टका आदि मांसपेशियाँ पक्षाघातसे मसित हो जाती हैं। इस हेतुसे श्वासान्ध्यासमें व्यापात होकर रक्तकी संश्लेषन क्रिया मन्द या बन्द हो जाती है; फिर शरीरका सब रक्त अशुद्ध हो जाता है और वही रक्त देहमें संचालित होकर वातबहा नासियोंके केन्द्र स्थानमें गमन करता है परिणाममें वहाँ उग्रता से उत्पत्ति होकर दृढ आक्षेप उपस्थित होता है।

कुक्कुटा के बाह्य प्रयोग और अन्तर प्रयोग, उभय प्रकारमें अघसादक गुणकी स्पष्ट प्रतीति होती है। दोनोंमें श्वसोच्छ्वास क्रिया करने वाली पेशियाँ और दोनों शाखाओंकी मांसपेशियोंसे सम्बन्ध वाली चेष्टावहा नाबियाँ, सब अवसन्न हो जाती हैं। फिर दोनों प्रकारके प्रयोगोंसे श्वासावरोध होकर मृत्यु होजाती है। तथापि मुख द्वारा ग्रहण करने पर शाखाद्वयकी मांसपेशियोंकी चेष्टावहा नाबियोंमें अवसन्नता कुछ अंशमें ही आती है, विशेष रूप से नहीं, और वातवहा नाबियोंके केन्द्रस्थानमें मस्तिन रक्तसंचालन रूप विशेष हानि होने पर उग्रता आकर तीव्र आक्षेप उपस्थित हो जाता है। बाह्यप्रयोगमें शाखाद्वयकी मांसपेशियाँ पूर्णरूपसे अवसन्न हो जाती हैं किन्तु वात केन्द्रमें उग्रता नहीं आती और तीव्र आक्षेपकी प्राप्ति भी नहीं होती। इस तरह दोनों प्रकारोंमें क्रिया और परिणाममें कुछ-कुछ अन्तर हो जाता है।

यहाँ जो परिणामनिर्णय दर्शाया है, उसका अनुमान या निर्णय कुछ अंशमें ही होता है, पूर्णरूपमें नहीं। कारण, कतिपय शारीरिक क्रिया अपर क्रियाका परिवर्तन कराती हैं और वह द्वितीय क्रिया प्रथम क्रिया पर प्रतिक्रिया दर्शाती है। इस हेतुसे किसी यन्त्र पर किस औपधिकी क्रिया किस तरह और कितने अंशमें होती है, औपघ द्रव्य साक्ष्य सम्बन्धसे यान्त्रिक क्रियाको कहाँ तक परिवर्तित कराती है और कहाँ तक औपघ द्रव्यकी क्रिया परम्परा परिणामको प्रकाशित करती है ? इत्यादि बातोंका पूर्ण रूपसे निर्णय करना दुःसाध्य माना गया है।

परम्परागत परिणाम।

(इण्डायरेक्ट चेंजेस Indirect Changes)

परम्परागत परिणाम साक्षात् क्रिया होने पर नैसर्गिक नियमानुसार मिलता रहता है। इस परम्परागत परिणामकी प्राप्ति समय, स्थान, शक्ति, अनुकूलता, प्रतिकूलता, सखन, रोगमेद, व्यसनमेद, आयुमेद आदि कारणोंसे पृथक्-पृथक् रूपमें मिलती है। इसके लिये निम्नानुसार अनेक नियम बनाये गये हैं।

(१) उत्तेजना के पश्चात् क्षीणता—किसी भी शारीरिक यन्त्रकी क्रियामें उत्तेजना आ जानेके पश्चात् शक्तिका हास होने पर क्षीणता—निस्तेजताकी प्राप्ति होती है। इस नियमके अनुसार शराबीको शराब पीनेसे उत्तेजना होकर फिर अवसन्नताकी प्राप्ति होती है।

(२) क्षीणताके पश्चात् उत्तेजना—धीरधीर शक्तिको हानि न पहुँचे यदि इस तरह वेदस्थ क्रियाको स्थिर किया जाय, तो योने समयमें ही उस क्षीणताका अंत होकर उत्तेजनाकी समाप्ति होती है। जैसे बलवान् व्यक्तिको शीतकालमें शीतल पहासे स्नान करनेके क्रियत् कालके पश्चात् प्रतिफलित क्रिया (Reaction) रूप शरीरमें उत्पन्नकी प्राप्ति होती है। एवं इसी नियमानुसार परिभ्रमके पश्चात् सुनिद्रा मिलानेसे शारीरिक स्फूर्ति आ जाती है।

(३) एक यन्त्रका इतर यन्त्र पर परिष्काम—शरीर के भीतर किसी एक प्रधान क्रिया द्वारा एक या एकाधिक मुख्य यन्त्रोंकी क्रिया में निरुद्धत्व का भाव सञ्जात है। जैसे शरीर और शरीर आदिका सेवन अधिक परिमाणमें होने पर मस्तिष्कमें रक्तधिक्य होता है। फिर उस क्रियाका हास होने पर श्वासेच्छ्वसन, रक्तसंचालन और दर्शन, भ्रम्य आदि शारीरिक क्रियाएँ व्यवसन्न हो जाती हैं। ऐसे स्थान पर औपचिकी साक्षात् क्रिया (मस्तिष्कमें रक्तधिक्य) होकर परम्परापर परिष्काम रूप तांभातिक अयसभताकी प्राप्ति होती है।

इसके अतिरिक्त किसी औपचिक द्वारा वातवहा केन्द्रका अमसादन होने पर भी साथ शरीर अवसन्न हो जाता है। यह भी परम्परागत परिष्काम है। शस्त्रचिकित्सा शस्त्रचिकित्सायें रोगीकी मूर्च्छा (Shock) की प्राप्ति करते हैं, यह भी एही नियमाधीन है।

(४) सवेदनाजन्य परिष्काम—अनेक औपचिकों द्वारा किसी एक स्थानमें वातवहा नाभियों उत्तेजित होती हैं। फिर ये स्थानान्तरमें परिष्कामकी प्राप्ति करती हैं। जैसे गर्भाशयमें स्तनों पर स्थितर शगानेसे ठरोजना गर्भाशयमें प्रवेश कर गर्भाशयमें अयसभता प्रयत्न कराती है।

कचित् इसके विरुद्ध प्रक्रिया द्वारा कायजिद्वि होती है। यथा संव्यात रोगमें विरेचन देनेसे अन्त्रकी वातवहा नाभियों उत्तेजित होकर विष और रक्तसञ्चय का निष्कालती हैं। परिष्काममें मस्तिष्कमेंसे रक्तवहा और रक्तमेंसे विष का हास हो जाता है।

सुखावत् (Hemiorania) में प्रायःकाल दूध-जलेरी खिला देनेसे आम शयमें उत्तेजना उत्पन्न होती है। फिर मस्तिष्कमें उत्तेजनाकी उत्पत्ति नहीं होती।

(५) प्रतिचोमख परिष्काम (Counter Irritation) किसी स्थान विशेषमें औपचिक प्रयोग द्वारा उन्नता उत्पन्न कर स्थानान्तरके विकारको शमन करवाया जाता है। इसका विरोध विचार पहिले प्रतिचोम साधक गुण नं० १०१के निवेदनमें किया गया है।

(६) रोगनिवारण शक्तिजन्य परिष्काम—वेहमें किसी भी प्रकारकी हास होने पर उसे रोगनिवारण शक्ति अपने क्लानुसार न्यूनाधिक कालमें पूर्य करती है। अतिनेत्र प्रबल रोगोंमें कभी-कभी औपचिक द्वारा नूतन रोग उपस्थित करने पर रोग निवारण शक्ति उत्तेजित होकर पूर्व रोगका प्रतिहार करती है। यथा प्रबल आरोग्यमें वाहक औपचिक द्वारा प्रवाह करने पर उन रोगोंका नाश हो जाता है। हास आनुवंशिकमें व्याधि विपरीतार्थकरणी क्रिया करा है।

(७) कारण नारासे रोगशमन—अपचन होने पर आमाशयमें दूषित रक्त उत्पन्न होकर शिरदर्द होता है, तब शमन औपचिक देनेसे रक्त नष्ट होकर रोग दूर हो

जाता है। एव क्षोभकत्वके हेतुसे शिरदर्द होने पर उदरशुद्धि करानेसे मस्तिष्ककी बेदना निवृत्त हो जाती है, इसे आयुर्वेदने हेतुविपरीत चिकित्सा कहा है।

व्याधि प्रतिकार।

जो औषधियाँ सेवन की जाती हैं या अन्तःक्षेपण रूपसे प्रवेश करायी जाती हैं अथवा सहायक क्रिया उपयोगमें ली जाती है, ये सब अपने गुण या शक्ति अनुसार नैसर्गिक नियमानुसार घनहर रोग प्रतिकार करती हैं। औषधिके गुणभेदानुसार शारीरिक परिस्थाममें विभिन्नता प्रतीत होती है।

औषधि देहमें प्रविष्ट होने पर सामान्यतः उसे शोषण, प्रसर, संग्रह तथा निःसरण, इन अवस्थाओंकी प्राप्ति होती है। मुख्यसे सेवन की हुई औषधि रसगहिनियों द्वारा शोषित होकर परम्परागत तथा अन्तःक्षेपित औषधि साक्षात् रक्तमें मिल जाती है। फिर देहमें सर्वांग फैलाकर लसीकासे विलिन्न घटकोंके सपर्कमें आती है। अनेक औषधि लसीकामें ही रह जाती हैं, कितनी ही लसीका और घटकोंकी दीवारका भेदनकर भीतर प्रविष्ट हो जाती है। इनमें से सबल औषधियाँ घटकोंके जीवन द्रव (Proto-plasma) पर अपनी क्रिया प्रकटित करती हैं (जैसे-शराब आदि) और बहुवसी घटकोंके इतर मागपर फाय करती हैं।

अनेक औषधियाँ—मल्ल, कुचिला, डिजिटैलिस आदि यकृत आदि अवयवोंमें सम्प्रति होती हैं, वे इन पर क्रिया करती हैं या कुछ समय तक निष्क्रिय पड़ी रहती हैं। कितनी ही शराब, अहस्तुन आदि औषधिका निःसरण त्वचाके छिद्रोंमेंसे स्वेदके साथ और नासिका मार्गसे निःश्वासके साथ होता है। कितनी ही मलमूत्रके साथ निकलत हैं। इनमेंसे कोई पल्दी बाहर निकलती है और कोई देरसे।

शारीरिक यन्त्रोंके प्रभाव और रासायनिक प्रभाव द्वारा अर्थात् रस आदि घातुओंकी औषधि पर विशेष क्रिया होकर विविध परिस्थामोंकी प्राप्ति होती है। इन परिस्थामोंमें निम्नानुसार १२ प्रकार होते हैं—

(१) अपतर्पण, (२) संतर्पण, (३) संशोधन, (४) प्रवाहीकरण, (५) उष्णता, (६) अवसादन, (७) प्रत्युत्पत्ता, (८) दमन, (९) परिवर्धन (१०) कारकप्रतिकार, (११) रासायनिक प्रभाव, और (१२) वाय्विक प्रभाव।

(१) अपतर्पण (Depletion)—अर्थात् देहमेंसे रक्त परिमाणका ह्रास करना। इसके दो प्रकार हैं— साक्षात् (Direct Depletion) और परम्परागत (Indirect Depletion)। व्यापक अथवा स्थानिक रक्तका सावकाश और धमन-विवेचन आदि द्वारा रक्तको अधिक निकलवाकर रक्त परिमाण कमया जाता है, उसे साक्षात् अपतर्पण कहते हैं। उपवास दाय या पौष्टिक

आहारका त्याग करा रक्तोत्पत्ति कम कराई जाती है, उसे परम्परागत अपतर्पण करते हैं।

इस अपतर्पण प्रमात्रकी प्राप्तिके लिये आयुर्वेदमें अपतर्पण (संपन) चिकित्सा कही है। इसके शोधन और शमन दो मेद हैं। इसकी आयुर्वेदिक विधि, अधिकारी, फल आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके पृष्ठ ३६ से ३७ तक किया गया है।

इस अपतर्पण क्रिया द्वारा रक्षाधिक्यका हास, दाहशमन और आम, मेद आदि दोषोंका शोधन होता है। इनमेंसे रक्षाधिक्यका हास और दाहशमन, वे रक्त-सावरूप साक्षात् अपतर्पण द्वारा सत्वर सफल होते हैं, और आम, मेद आदिके शोधनार्थ स्वेदन, बमन, विरेचन, रक्तसाव, उपवास, पौष्टिक आहारका त्याग आदि साधन लाभदायक होते हैं।

अपतर्पणसे रक्तकी मात्रा न्यून होने पर शारीरिक समस्त क्रिया आहारपचन, रक्तसंचालन, रसासोष्णवास, रक्तसाव, परिपोषण और शारीरिक उत्थाप इत्यादिमें न्यूनता हो जाती है; एवं समस्त मांसपेशियोंमें क्षीणता, स्पर्शगणमें न्यूनता, मानसिक भावना और बुद्धिवृत्तिमें हीनता (उत्साह भंग और विचार शक्तिसे वयोभित्त कार्य न होना) आदि परिणामोंकी प्राप्ति भी होती है। क्वचित् अधिक रक्तसाव होने पर मूर्च्छा होकर मृत्यु भी हो जाती है। अतः रक्तसाव विचारपूर्वक रूपसे साधिये।

इस तरह अपतर्पण द्वारा उपर्युक्त सब क्रियाओंमें शिथिलता आ जाती है। परन्तु रक्त परिमाणमें न्यूनता होने पर सब शिराओंकी शोधन क्रिया बढ़ जाती है। वेहकी समस्त स्थिर रक्तनेके लिये शिरार्थ वेहमेंसे चारों ओरसे जलोप शंशका शोधन बलपूर्वक करने लगती हैं। अतः रक्तका परिमाण सत्वर पूर्व हो जाता है, परन्तु इतर कार्योंमें जो शिथिलता आगई है, वह शनैः शनैः ही बूर होती है।

(२) संतर्पण—बृंहण (Repletion)—इस बृंहण गुणका फलरक्त, मांस आदिकी वृद्धि करता है। जब अधिक दुर्बलता या रक्तहीनता आदिकी प्राप्ति हुई हो, तब इस बृंहण साधनका उपयोग होता है। वेहमें रक्त, मांस आदिकी वृद्धि करनेके लिये पौष्टिक औषधियां, बलवर्धक आहार, विशुद्ध वायुका सेवन, व्यायाम और आवश्यक विभ्रान्ति आदि संतर्पण साधन माने जाते हैं।

आयुर्वेदमें बृंहणचिकित्सा कही है। इसके विधि, अधिकारी फल आदिका विवेचन 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' प्रथम खण्डके द्रव्याद्रव्य चिकित्साके अन्तर्गत पृष्ठ ३५ से ३९ तक किया गया है।

(३) सरोधन (Elimination)—वेहमें अनेक वस्तु त्याग करने पन जाती है; इसमेंसे अनेकोंका रक्तमें शोधन हो जाता है। फिर वे वस्तु

आदि संशोधक यन्त्रोद्गी क्रिया द्वारा मूत्र और प्रसवेद आदि रूपसे वेदमेंसे बाहर निकल जाती है। इस तरह नैसर्गिक शक्ति रक्तको शुद्ध रगनेके लिये निरन्तर प्रयत्न करती रहती है।

जब किसी कारणवश संशोधक यन्त्र अपना अपना कार्य यथोचित न कर सके, तब तदानीय यस्तु देहमें संगृहीत होने लगती है। फिर प्वरोत्पत्ति, चर्मरोग, रक्त-सिकार, कुष्ठ आदि अनेक रोगोद्गी संप्राप्ति होती है। इस हेतुसे दोषसंचय होने पर संशोधक यन्त्रोद्गी क्रियाको वृद्धि करा दोषको बाहर निकाल दिया जाता है; अथवा रोगप्रति हो जाने पर संशोधन यन्त्रोद्गी क्रिया द्वारा रोगका शमन कराया जाता है।

अनेक बार किसी भी प्रकारके विष—ओमल, रसकपूर, नाग (शीशा), चमर आदि घात, सर्प, वृश्चिकरु, लूटा (मकड़ी), चूड़े आदि जीवोंका विष, सूत्रम क्रेयस्यु, चाब, तमासू, गांशा, कोकीन, अफीम, पत्रा आदिका देहमें प्रवेश हो जाने पर संशोधक यन्त्रोद्गी क्रियाको बढ़ानेके लिये औषधि दी जाती है। ऐसे प्रसंगों पर पहिले विष द्रवीभूत होकर रक्तमें शोषित हो जाता है। फिर उसे संशोधक यन्त्र बाहर निकाल डालते हैं।

आयुर्वेदने स्वेदन, वनन, विरेचन आदि अनेक कर्म संशोधन निमित्त कहे हैं। इनका संक्षिप्त विचार 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' के उपोद्घात प्रकरण पृष्ठ ३८ से ३९ तक में किया है, और विशेष विचार शरीर शुद्धि प्रकरणमें पृष्ठ ४२ से १३४ तक दर्शाया है।

(४) प्रवाहीकरण (Dilution)—अधिक मात्रामें पतला भोजन या पक्क आदिके सेवन द्वारा इस प्रवाहीकरण (पतलापन) की संप्राप्ति होती है। इसका विशेष विचार पहिले पृष्ठ २९६ में किया गया है।

(५) उत्तेजना (Stimulation)—शरीरस्य एक या एकाधिक क्रियाके वेगको वृद्धि होने पर उत्तेजना कहलाती है। इसके स्थिर और अस्थिर भेदसे तथा व्यापक और स्थानिक भेदसे दो-दो प्रकार हैं। जिसका परिणाम स्थिर रहे वह स्थिर उत्तेजना। जिसका फल अल्पक्षण पर्यन्त रहे, वह अस्थिर या अस्थायी उत्तेजना, जो परिणाम सम्पूर्ण देह पर हो, वह व्यापक उत्तेजना, और जो फल किसी यन्त्र विशेष पर प्रतीत हो, वह स्थानिक उत्तेजना कहलाती है। इस उत्तेजनाके प्रभावका विवेचन पहिले औषधगुणविचारके उत्तेजक गुणके साथ किया गया है।

(६) अवसादन (Sedation or Depression)—शारीरिक एक या अधिक जीवन क्रियाके हासको अवसादन कहते हैं। इस अवसादनके दो प्रकार हैं—व्यापक और स्थानिक।

जब समस्त देह अकसादित, शिथिल या शान्त हो जाय, तब व्यापक अवसादन; और जब किसी यन्त्र या स्थान विशेषमें अवसन्नता आ जाय, तब स्थानिक अवसादन

फहलाता है। इस अथसादन गुणकी प्राप्ति क्लोरोफार्म, यथचार, अक्षेम, कार्पिन तैल, बर्फ आदि श्रीपधियों द्वारा होती है। इसका विस्तृत विवेचन श्रीपघ गुण विचारके नं० ७४ अथसादक (शामक) गुणके साथ किया गया है।

(७) प्रतिक्षोभ (Counter Irritation)—प्रतिक्षोभोत्पादक श्रीपधि द्वारा एक स्थानमें उग्रता उत्पन्न कर स्थानान्तरकी उग्रताका शमन करना। जैसे यकृतमें दाह होने पर उदर पर राईकस मिश्रण लगाता, संन्यास रागमें वीर विरेचन देना इत्यादि। इसका विवेचन इस ग्रन्थमें पहिले श्रीपधगुण विचारके नं० १०१ में किया गया है।

(८) दमन (Superoession)—एक चूतन विकारकी प्राप्ति कर पहिलेके रोगका दूर करना। जैसे गन्धाविरोधा या शीतलमिर्चिके प्रयोग द्वारा मूत्र-प्रसेफ नलिकामें उग्रता उत्पन्न कर पूसमेहका निवारण करना।

(९) रसायन (Alteration)—परिवर्तन अर्थात् शारीरिक दूषणोंका क्षमन श्रीपधि द्वारा परिवर्तन कर रोगको नष्ट करना। जैसे रसकपूर, सोमल आदि श्रीपधिया द्वारा पीछे उपदेशजनित विहृत घातुओंका निवारण करकर स्वास्थ्यकी प्राप्ति करायी जाती है। यह परिवर्तन पीछे रोगोंमें और निर्बलतामें ही कराया जाता है श्रीपधिगुणद्वारे विशेष विस्तृत विवेचन पहिले नं० २६ रसायन गुणविवेचनके साथ किया गया है।

(१०) कारण प्रतिकार (Anticausation)—मूल रोगका विनाश कर उससे उत्पन्न उग्रवर्तक रोगोंको नष्ट करना। जैसे कृमिनाशक श्रीपधि द्वारा कृमिप्रकोपसे उत्पन्न ज्वर, पाण्डु, उदरपीडा, अग्निमान्द्य, अरुचि, कण्डु आदिनाश करायी जाती है।

(११) रासायनिक प्रभाव (Chemical Influence)—अथवा शारीरिक रस आदिके साथ विरोधी पदार्थका संयोग करकर लाभ पहुँचाना। संयोग करनेमें तीन उद्देश्य हैं १ कीटाणुनाश २ शारीरिक रस आदि पातके गुणका परिवर्तन ३ रक्तमें या कृमिके इतर उपादानमें रोगशामक क्रिया या रसकी उत्पत्ति करना।

जैसे रक्तमें विषम ज्वरके कीटाणुकी वृद्धि होने पर कीटाणु नाशार्थ सप्तपर्वाका सत्व या निबनाइनका सेवन कराया जाता है।

आमाशयमें अम्लता प्रधान रसकी वृद्धि होने पर अम्ल रस विरोधी शंख वराटिका, युक्ति, समीसार आदिका सेवन, चारीय रसकी वृद्धि (परतक पिच्छाय अथिक) होने पर अम्लविपाक युक्त श्रीपधि और मोहनका सेवन तथा अल्पिक रसवृद्धि हो, तो विरेचन आदिसे संशोधन कराया जाता है। राईके छेप आदि दाहक श्रीपधि द्वारा फला छटा या चूत कर दोषको आकर्षित कर लिया जाता है।

आयुर्वेदकी दृष्टिसे इस रासायनिक प्रभावका वर्णन पहिले पटरस गुण-दोष विचारके साथ किया गया है।

(१२) यान्त्रिक प्रभाव (Mechanical Influence)—अर्थात् देह रूप यन्त्रके क्रिया द्वारा रोगको दूर करना, इसके विकार मेदसे ५ विभाग होते हैं।

(अ) संस्थिति (Position)—जैसे मस्तिष्कमें रक्तवृद्धिबन्ध प्रवाह होने पर मस्तिष्कको ऊँचे स्थिररहने पर रखवाकर धाराम करनेसे मस्तिष्कमें रक्त-सञ्चालनका वेग शान्त हो जाता है। यह मद्ध्याकर्षण क्रिया द्वारा सम्पादित होता है।

(आ) संपीड़न (Compression)—शिरा-धमनी आदिको दबा रक्तसञ्चालन क्रियाका निग्रह करा रोगको दूर करना। जैसे धमन्युद् (Aneurysm) होने पर उस धमनीके ऊर्ध्व भागमें बन्धन द्वारा दबाव डालकर रक्तसावधे रोकनेसे रोगका निवारण हो जाता है।

(इ) प्रसारण (Distention)—मूत्र आदि दोषको दूर करनेके लिये श्लेष्मि आदिका प्रवेश करा दोषको फैला देना। जैसे अन्त्रके निम्न भागको क्रियाकी उच्छेदनाके निमित्त वस्ति या पिचकारीका उपयोग करनेसे दोष विखर जाता है। वस्तिमें अनेक प्रकार हैं। इनके विधि, अयिकारी, फल आदिका वर्णन 'चिकित्सा तत्त्वप्रदीप' ग्रन्थ खण्ड पृष्ठ ६८ से पन्न तक किया है।

(ई) घर्षण (Friction)—यह घर्षण (मर्दन) क्रिया बहुधा स्वचाको क्रियाके उच्छेदनाथ व्यवहारमें लाई जाती है। इस पपणका वर्णन आयुर्वेदिक दृष्टिसे 'चिकित्सातत्त्वप्रदीप' ग्रन्थ खण्ड पृष्ठ १२६ में तैलाम्यंग रूतसे तथा पृष्ठ १३१ में उद्वर्तन रूपसे किया गया है।

(उ) आच्छादन (Covering)—जैसे ब्रण आदि पर मलहम आदिका प्रयोग।

इनके अतिरिक्त मानसिक प्रसन्नता व्याधिनिग्रहमें सहायक होती है, तथा विना श्लेष्मसेवन केवल मानसिक संकल्प, प्रेरणा अथवा धारणीवाद द्वारा रोगीको तत्काल या शनै शनै काम पहुँचाया जाता है। परन्तु, यह कार्य बलवान् मनोबल वालोंसे ही होता है।

चिकित्सा विधान।

आभि क्रियामिर्भावन्ते शरीरे घातवः समा।

सा चिकित्सा विकाराणां कर्म तदुभयजां स्मृतम् ॥

मिम्या आहार-विहारसे शरीरमें खे हुए वात, पित्त और कफ, इन घातुओंमें उत्पन्न हुई विकृति किन क्रियाओं द्वारा दूर होकर घातु साम्यकी प्राप्ति हो, यह

पुस्तकें मिलनेके पते ।

- १—कृष्ण-गोपाल आयुर्वेदिक धर्मार्थ औषधालय पो० कालेवा भोगवा (बरमेर)
 २—श्री० प० श्रीगोवर्धनजी शर्मा छांग्राणी, सीतावल्लभी—नागपुर
 ३—श्री० पं० शंकाकृष्णजी द्विवेदी उदुं शर्मा—ईशरायव (बखिण)
 ४—भारत सेवक औषधालय नई सबक, दिल्ली
 ५—धनवन्तरि कार्यालय विजयगढ़ (अलीगढ़)
 ६—प्राणाचार्य भवन विश्वगढ़ (अलीगढ़)
 ७—देशरक्षक औषधालय मातेरकोटला (पंजाब)
 ८—देशरक्षक औषधालय पो० कनसल (हरद्वार) वि० सहारनपु
 ९—श्री० गणेशदासजी घुलचन्दजी चायदक सौसर (हिन्दवाहा)
 १०—वैद्य शशिलाश एन० घसत, १३७ रोस मेमनस्ट्रीट
 बम्बई-२
 ११—श्री० घन्नाखालजी शर्मा चौदपोत्र-उदयपुर
 १२—श्री० प्यामलालजी शर्मा बुकसेलर दौलत मार्केट—प्रागप
 १३—श्री० पं० विश्वनाथजी वासुदेवी औरिया (इटावा)
 १४—श्री० जयकृष्णदासजी हरिदासजी गुप्ता बनारस संस्कृत सीरीस बीसम्भा
 १५—श्री० मालर खेलाजीलाल एएड सन्स कर्षाजी गली, बनारस
 १६—श्री० पं० शक्तिस्वरूपजी श्रीरामरोड—बलनठ
 १७—श्री० पं० रामगोपालजी, संस्कृत-हिंदी पाठशाला गंग—बरमेर
 १८—धनपालिया ब्रदर्स अकोला
 १९—सरस्वती पुस्तकालय चौक—कानपुर
 २०—मोहता रसायनशाला कचौरा (अलीगढ़)
 २१—मोतीलाल बनारसीदास बीर—बनारस
 २२—गंगवाल आयुर्वेदिक औषधालय रामनाद, गांध (सी० पी०)
 २३—श्रीशुत महदत्तजी तिवारी भरयना (इटावा)

